



# जैन-ग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह

( अपभ्रंश जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह )

द्वितीय भाग

प्रकाशक

पं० परमानन्द जैन शास्त्री

प्रकाशक

वीर-सेवा मन्दिर-सोसाइटी

२१ दरियागंज, दिल्ली

प्रथम मस्वरुप ज्येष्ठ शुक्ला १४ वी० ति० सं० २४८६

द्वितीय सं० १९६३, ति० सं० २०२०

प्रकाशक

वीर-सेवा मन्दिर-सोसाइटी

२१ दरियागंज, दिल्ली

मूल्य १२ रुपया

प्रथम संस्करण

कापी ५००

मुद्रक

रूप-चाणी प्रिंटिंग हाउस,

२३, दरियागंज, दिल्ली-६

# Jain Granth Prashasti Sangrah

श्री चत्वारंगन्धीय शाल मन्दिर, जयपुर

PART II

*Edited by*

*Pt. Parmanand Jain Shastri*

Published by

**Vir Sewa Mandir Society**

21 DARYAGANJ, DELHI

Jetha, Shukla 14, Vira N. Samvat 2489, Vikram Samvat 2020

June 1963

*Publisher*

**VIR SEWA MANDIR SOCIETY**

21, Daryaganj, Delhi

**PRICE Rs. 12**

**FIRST EDITION**

**Copies 500**

*Printers*

**ROOPVANI PRINTING HOUSE**

23, Daryaganj, Delhi.

## प्रकाशकीय

प्रस्तुत प्रगति संग्रह पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इससे पाठकों को वीर-सेवा-मन्दिर के अनुसंधान कार्य का आभास मिल सकेगा। इस ग्रन्थ में अनुसंधान में सम्बन्ध रखने वाली सभी सामग्री को आकलन करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अधिक विलम्ब हो गया है, और उसका कारण प्रेस भादि की अव्यवस्था है। ग्रन्थ के तय्यार करने में भी काफी समय और श्रम करना पड़ा है, और यह अनुसन्धत्तुओं के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होगा; क्योंकि इसमें अपभ्रंश भाषा के साहित्य की कृतियों और ग्रन्थकर्ताओं के परिवय तथा समयादि पर प्रकाश डालने का भरमक प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना पं० परमानन्द शास्त्री ने बड़े परिश्रम से लिखी और वह प्रमेय बहुल है तथा उपयोगी परिगिष्टों से भलंकृत है।

सबसे महत्व की बात यह है कि इस ग्रन्थ का प्राक्कथन डाक्टर श्री वासुदेव जी सरण भद्रवाल हिन्दु विद्व विद्यालय बनारस ने लिखा है, और प्रिफेस (PREFACE) दिल्ली विश्वविद्यालय के रीडर डा० श्री दत्तारथ शर्मा, डी० लिट् ने अपभ्रंश भाषा में लिखा है। इससे ग्रन्थ की महत्ता और भी अधिक बढ गई है। मैं संस्था की ओर से उन दोनों ही मान्य विद्वानों का बहुत ही आभारों हूँ। भाषा है विद्वान, विश्वविद्यालयों, लायब्रेरियों और कालेजों के पुस्तकालयाध्यक्ष इस ग्रन्थ को भंगाकर उसने अधिकधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

जयभगवान् जैन, एडवोकेट  
मंत्री—वीर-सेवा-मंदिर सोसाइटी  
२१ दरियागज, दिल्ली

## सम्पादकीय

वीर-सेवा-मन्दिर एक ऐतिहासिक संस्थान है, जो एक जैन रिसर्च इन्स्टिट्यूट के रूप में प्रतिष्ठित है। उसके उद्देश्यों में पुरातन-प्रवन्धों का अन्वेषण, पुस्तकालय का संकलन, पुरातन जैनाचार्यों, राजाचार्यों, विद्वानों और भट्टारकों आदि के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाशित करना भी शामिल है। वीर-सेवा मन्दिर मोसाइटी अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के अनुरूप ही कार्य कर रही हैं। उसके मामले 'जैन साहित्य का इतिहास, भगवान नेमिनाथ के समय से लेकर अब तक ऐतिहासिक प्रमाथनों का संकलन, संयोजन और महत्व की सामग्री के प्रकाशन की ओर रहा है। परन्तु समाज का पूर्ण सहयोग न मिलने से वह जैसा चाहिये था वैसा कार्य सम्पन्न करने में समर्थ न हो सका। पर जितना भी कार्य कर सका वह सब उसकी प्रगति का संसूचक है, उसने अपने प्रतिष्ठित और ख्याति प्राप्त अनेकान्त पत्र द्वारा ऐतिहासिक साहित्यिक एवं पुरातत्व सम्बन्धी अनुसन्धानात्मक सामग्री को प्रकाशित किया है और कर रहा है।

### आवश्यकता

जैन साहित्य और संस्कृति का इतिहास लिखने के लिये जिस तरह शिलालेख, ताम्रपत्र, पुरातात्विक अवशेष और भूउत्खनन से प्राप्त विविध सभ्यताओं के अलंकरणों से बड़ी सहायता मिलती है। अतएव अनुसंधान कर्तव्यों को विविध भाषाओं के साहित्य से साहाय्य मिलना है। अतएव ऐतिहासिक अनुसन्धत्सुओं के लिये भारतीय साहित्य के परिशीलन, मन्तन, और अनुसंधान करने की महती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वह आवश्यक समझा गया कि अपभ्रंश का जैन साहित्य, जो दिल्ली, ग्वालियर, जयपुर, व्यावर, बम्बई, कारंजा, भालरापाटन और नागौर आदि के विविध जैन ग्रन्थागारों में सुरक्षित है उनके ग्रन्थों के आदि अन्त भाग का संग्रह कर ऐतिहासिक प्रशस्तियों को प्रकाशित किया जाय। और उनकृतियों के परिचयादि के साथ ग्रन्थकर्ता विद्वानों के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए उनके समय की भी चर्चा की जाय। जिससे हिन्दी के आदिकाल पर प्रकाश पड़ सके, और हिन्दी के उद्गम एवं विकास को भी अच्छा संकेत मिल सके। साथ ही, विविध उपजातियों द्वारा समय समय पर निर्माण कराये गये और प्रति लिपि कराने वालों का इतिवृत्त भी अंकित हो सके। और उस समय की धार्मिक जागृति तथा सामाजिक रीति-रिवाजों का भी परिज्ञान हो सके। इन्हीं सब कार्यों को ध्यान में रखते हुए अपभ्रंश प्रशस्तियों के संकलन का विचार स्थिर किया गया।

वीर सेवा मन्दिर की इस योजना को कार्य में परिणत करने के लिये मई सन् १९५४ में सरसावा से जयपुर गया, और वहाँ के प्रतिष्ठित विद्वान् पं० चैनसुखदास जी और महावीर तीर्थक्षेत्र कमेटी के मंत्री रामचन्द्र जी खिन्दुका आदि महानुभावों के सहयोग से शामेर का भट्टारकीय भंडार जयपुर लाया गया, और सेठ बधीचन्द जी के कमरे में रखा गया। मैंने बड़े परिश्रम से उन गहड़ों को खोला और ग्रन्थों को निकाल कर उनके आदि अन्त भाग का संकलन शुरु कर दिया; परन्तु बीच में ही सरसावा लौटना पड़ा, जिससे पूरा भंडार न देखा जा सका, जितना देखा और नोट कर सका उसका परिचय अनेकान्त वर्ष ६ किरण ११-१२ के पृष्ठ २६२ में 'जयपुर में एक महीना' नाम के लेख में प्रकाशित कर दिया। और बाद में संस्कृत ग्रन्थों की प्रशस्तियों का संग्रह भी प्रकाशित हो गया। अपभ्रंश प्रशस्तियों के संकलित मैटर की प्रेस कापी तय्यार की गई, और अन्य अपभ्रंश ग्रन्थों को मंगवा कर उनकी भी प्रेस कापी करली गई, प्रकाशन का विचार किया गया किन्तु आर्थिक कठिनाई ने उसे कार्य रूप में परिणत न होने दिया।

सन् १९५६ में अग्रअंश प्रगस्तियों को अनेकान्त की प्रत्येक किरण में एक फार्म रूप में प्रकाशित करने का निश्चय डा० ए० एन० उपाध्ये कोल्हापुर की गम्ति में किया गया, और १४ वें वर्ष के अनेकान्त में प्रगति संग्रह के १० फार्म छापए, उसके बाद आर्थिक कठिनाई आदि के कारण पत्र का प्रकाशन स्थगित हो गया, और मेरा भी संस्था में सम्बन्ध विच्छेद हो जाने में प्रगस्तियों का प्रकाशन अमूर्त ही रह गया। किन्तु सन् ६० में उसे प्रकाशित करने का पुनः निश्चय हुआ, और बाबू जयभगवान जी एडवोकेट, मंत्री वीर-नैवा-मंदिर सोसाइटी ने मुझ से प्रगस्तियों का मँटर देने तथा प्रस्तावना लिखने की प्रेरणा की। मैंने मँटर देने और प्रस्तावना लिखना स्वीकृत कर लिया, मँटर दे दिया गया, परन्तु संस्था में योग्य विद्वान के अभाव में प्रगस्तियों का प्रकाशन दबारा-मगरा हुआ, कुछ मँटर भी प्रेम वालों से गुम गया और एक प्रगति के अन्त का भाग भी प्रकाशित नहीं हुआ, फिर भी दूसरी प्रगति प्रकाशित हो गई, आबक-आविकाओं के नाम जाने परिशिष्ट का पूरा चार पेज का अंतिम मँटर भी तो गया। मैंने उसे पुनः तय्यार करके दूसरे प्रेम में छपवाया, उसमें भी टाइप की विभिन्नता रही। प्रस्तावना का मँटर भी प्रेम में दे दिया गया, परन्तु प्रेम में कार्याधिनय के कारण ५-६ महीने वों ही पड़ा, रहा, बाद में प्रेरणा पाकर १०-१२ दिन में ८ फार्म छाप दिये गए और फिर कम्पोज रुक गया, इन तरह बड़ी कठिनाई से छपाई का कार्य पूरा हो पाया है। यही सब उसके प्रकाशन में विलम्ब का कारण है।

### आभार प्रदर्शन

मुझे यह लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि श्रीमान् डा० वासुदेव शरणजी अग्रवाल हिन्दी विश्व-विद्यालय बनारस ने प्राक्कयन लिखने की मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया और मित्रवर पं० दरबारीलाल जी कोठिया ग्यायाचार्य एम० ए० को प्राक्कयन लिखवा कर अनुगृहीत किया, और वह मुझे तत्काल प्राप्त हो गया मैं इसके लिये डाक्टर माहव का और कोठिया जी का बहुत ही आभारी हूँ। नाथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के चीफर श्रीमान् डा० दगधर शर्मा डॉ० निट् का भी मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को मान्य करते हुए अग्र जी भाषा में प्रकृत निम्न देने की कृपा की।

इनके प्रतिरिक्त वा० जयभगवान जी एडवोकेट पानीपत, वा० छोटैयान जी मराठवा कलकत्ता, श्री पं० भुगतकिशोर जी मुख्तार दिल्ली, पं० श्रीपचन्द जी पाण्ड्या केवडी, डा० वस्तुरचन्द जी कामतीदास जयपुर, और डा० प्रेमसागर जी का आभारी हूँ, जिन्होंने उचित सहाय-सहायता दिया।

साक्षर समुद्र अध्ययन विज्ञान और गभीर है यद्यपि मैंने पूरी गावधानी नहीं है फिर भी मेरे ज्ञान अल्पज्ञ का स्थिति हो जाना संभव है। आशा है विद्वज्जन प्रस्तावना का अध्ययन कर मुझे उम सम्बंध में विशेष जानकारी देकर अनुगृहीत करेंगे।

परमानन्द और शारदा



## REVIEW

It was with great interest that I went through the "Jaina-grantha-prasasti-sangraha" edited by Pandit Paramanand Jain Shastri. The work includes 122 prasastis from Apabhramsa work by Jain authors.

The prasastis are a mine of historical information. They are important source material because most of them are from unpublished works. The author has taken pains to collect all available information about the poets and their patrons. An exhaustive introduction of over 140 pages and 11 appendices make the work useful even to a general student of history, who cannot read Prakrits, particularly Apabhramsa. I congratulate Pandit Paramanand Shastri on his excellent performance.

L. G. PARAB

Librarian—Central Archaeological Library

New Delhi, the 23rd July, 1963.

Janpath, New Delhi-11.

### प्रस्तावना का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	३१	१३ (आगे)	और युद्धकाण्ड में २१	५१	२२	कुहाकवि	कुकावि]
				५६	—	मणिपुर	जोयणिपुर
४७	१६	प्राप्ति	प्राप्ति	७५	८	अपनी	अपनी रानी
५७	१७	सुभद्रा (के आगे)	धारिणी	५६	३६	रोमिमिणाह चरिड	रोमिणाह चरिड
६३	२	१०५२ में या उसके एक दो वर्ष पूर्व ही	१०५२ से ११०० के मध्य	६२	३०	सरदादर	सरदार
				६२	३४	इहीं	इन्हीं
७५	३५	रत्नवरा	राजवंश	१२८	३	औव	और
८०	२६	उड़ा	वड़ा	१२८	१०	पद्मवती	पद्मावती
७८	३०	जायस या जैसवाल	लंबकचुक	१३४	४	मणिकचन्द	माणिकचन्द
७६	४	उभयश्री	उदयश्री				

## प्राक्थन

श्री परमानन्द जी जैन द्वारा लिखित इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का मैं स्वागत करता हूँ। इसमें ११४ अपभ्रंश हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रवृत्तियों और पुष्पिकाओं का खोजपूर्ण संग्रह किया गया है। अपभ्रंश साहित्य हिन्दी के लिए ध्रुव की चूट के समान है। इसका कारण स्पष्ट है। भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश भाषा प्राचीन हिन्दी का एक महत्वपूर्ण मोड़ प्रस्तुत करता है। जब प्राकृत भाषा के प्रति उत्कर्ष के बाद जनता का सम्पर्क जनपदीय संस्कृति से हुआ और उसे साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई, तब अपभ्रंश भाषा साहित्यिक रचना के योग्य करली गई। सप्तम शती के आचार्य दण्डी ने अपने युग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा था कि आभीर आदि अनेक जातियाँ, जो राज्याधिष्ठित होकर भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थीं, उनकी जो उच्चारण क्षमता थी उनसे अपभ्रंश भाषा का जन्म हुआ और उसे काव्य स्वरूपों में मान्यता प्राप्त हुई। याद होता है कि दण्डी से भी ३०० वर्ष पूर्व भाषा सम्बन्धी यह तथ्य भारतीय वाङ्मय का अंग बन गया था; क्योंकि पश्चिमी भारत में आभीरों के व्यवस्थित राज्य का प्रमाण प्रागुत्पयुग के लगभग मिलता है। विक्रमोर्वशीय में जो अपभ्रंश भाषा के मजे हुए ललित छन्द पाए जाते हैं उन्हें कुछ विद्वान् कालिदास की रचना मानते हैं और कुछ नहीं मानते हैं। विक्रमोर्वशीय के नवीनतम संशोधित संस्करण के सम्पादक श्री वेलणकरने उन्हें महाकवि कालिदास की रचना मानकर अपने संस्करण में रचान दिया है। हमारी धारणा है कि इस विषय में अपने किसी पूर्वग्रह को स्थान न देकर जो पारस्परिक अनुयुक्ति है, उसे ही मान लेना ठीक है। महाकवि कालिदास ने संस्कृत और प्राकृत में जहाँ इतनी प्रभूत रचना की, वही उन्होंने विशेष रचना के अनुसार अपभ्रंश के भी कुछ छन्द लिखे हों तो हममें कोई आश्चर्य नहीं, कहने का तात्पर्य यह कि अपभ्रंश की जो परम्परा इस प्रकार आरम्भ हुई, उसे इस प्रकार बल मिलता गया और षठी शती के लगभग तो वह साहित्यिक रचना का भी एक प्रमुख माध्यम ही बन गई। सिद्धों की पद रचना अपभ्रंश में ही हुई। आगे चलकर नायों ने भी इसी परम्परा को अपनाया। श्वर जैन आचार्यों ने अपभ्रंश भाषा के माध्यम को अधिक उदार मन से ग्रहण किया। क्योंकि लोक में विचरण करने के कारण वे जन सम्पर्क के अधिक निकट थे। ११वीं शती में लिखे गए 'कण्ठाभरण' नामक अपने ग्रन्थ में भोजदेव ने अपभ्रंश के कुछ और विकसित रूप का उल्लेख करते हुए उसे अपभ्रंश कहा है। आगे चलकर उसी का रूप अवहट्ट भाषा हो गया, जिसका उल्लेख १५वीं शती के आरम्भ में विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता में किया है। वस्तुतः विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें एक ओर अवहट्टभाषा और दूसरी ओर मैथिली इन दोनों का प्रयोग मिला-जुला किया गया है। विद्यापति से पहले ही लगभग ३०० वर्षों तक यही प्रभु देखने में आया है। अर्थात् एक ओर अपभ्रंश अवहट्ट के माध्यम से ग्रन्थ रचना होती थी और दूसरी ओर प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन ब्रज, प्राचीन अवधी और प्राचीन मैथिली भाषाओं में स्वच्छन्द ग्रन्थ रचना हो रही थी। उनका अन्वेषण हिन्दी के आदिकावीन इतिहास का उज्ज्वल अध्याय है।

अपभ्रंश एवं अवहट्ट भाषा ने जो ध्रुव विस्तार प्राप्त किया उसकी कुछ कल्पना जैन भंडारों में सुरक्षित साहित्य से होती है। अपभ्रंश भाषा के कुछ ही ग्रन्थ मुद्रित होकर प्रकाश में आये हैं। और भी सैकड़ों ग्रन्थ अभी तक भंडारों में सुरक्षित हैं। एवं हिन्दी के विद्वानों द्वारा प्रकाश में आने की वाट देख रहे हैं। अपभ्रंश साहित्य ने हिन्दी के न केवल भाषा रूप साहित्य को समृद्ध बनाया, अपितु उनके काव्यरूपों तथा कथानकों को भी पुष्पित और पल्लवित

किया । इन तीनों तत्त्वों का सम्यक् अध्यापन अभी तक नहीं हुआ है । जो हिन्दी के सर्वांगपूर्ण इतिहास के लिए आवश्यक है । वस्तुतः अपभ्रंश भाषा का उत्तम कोप बनाने की बहुत आवश्यकता है; क्योंकि प्राचीन हिन्दी के सहस्रों शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ अपभ्रंश भाषा में सुरक्षित है । इसी के साथ-साथ अपभ्रंशकालीन समस्त साहित्य का एक विशद इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता अभी बनी हुई है ।

जब हम अपभ्रंश के साहित्य की चर्चा करते हैं, तो हमारा मन उन अनेक ग्रन्थों की ओर जाता है जो ग्रन्थ भंडारों में बड़ी सावधानी से अभी तक सुरक्षित रखे गये हैं । उन ग्रन्थों का लेखन काल विक्रम की दूसरी सह-स्राब्दि है ।

जैन लेखक अपने ग्रन्थों की प्रशस्ति अर्थात् आरम्भिक भाग में और पुष्पिका अर्थात् अंत के भाग में देवता नमस्कार आदि के अतिरिक्त आचार्य, गच्छ, शिष्य परम्परा, सम सामयिक शासक, अपने आश्रयदाता, उसके परिवार, इष्टपूति, धार्मिक कार्य, तिथि, सम्बन्ध, स्थान एवं लेखक-पाठक के सम्बन्ध में बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारी लिख देते थे । वह सब इतिहास और वाङ्मय के लिए महत्वपूर्ण है । जैन भंडारों से अत-प्रोत संस्कृत ग्रन्थों की भी इस संबंध में ऐसी ही स्थिति है । जैन संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की प्रशस्तियों के दो संग्रह पहले प्रकाशित हो चुके हैं । अब अपभ्रंश हस्तलिखित ग्रंथों से उसी प्रकार का यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है । इसकी सामग्री भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जैसा कि पाठक देखेंगे कि इसमें लगभग १४० पृष्ठों में प्रस्तावना के रूप में विद्वान् सम्पादक ने अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह किया है और लगभग १५० पृष्ठों में ११४ हस्तलिखित ग्रन्थों से कान्यवद्ध अपभ्रंश प्रशस्तियों का संग्रह दिया है । अन्त में प्रशस्तियों में आये हुए आचार्य नाम, श्रावक नाम, संघ-गण-गच्छ नाम, एवं ग्रंथ नामों का उपयोगी संग्रह किया है । इनमें विशेषतः श्रावक-श्राविकाओं के नाम अध्ययन के योग्य हैं, क्योंकि वे अपभ्रंश और अबहट्ट भाषा रूपों के परिचायक हैं । यदि अपभ्रंश और प्राकृत ग्रन्थों एवं संस्कृत ग्रन्थों की प्रशस्तियों में आये हुए समस्त स्त्री-पुरुषों के नाम रूपों पर अलग एक शोधनिबन्ध ही लिखा जाय तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा । श्री परमानन्द जी ने तिल-तिल सामग्री जोड़कर ऐतिहासिक तथ्यों का मानों एक सुमेरु ही बनाया है । मुझे उनका यह परिश्रम देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।

वासुदेवशरणा अग्रवाल  
आचार्य, भारती महाविद्यालय  
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय  
वाराणसी

२० जनवरी १९६३

## Preface

I have enjoyed going through the *Jaina-grantha-prasasti-sangraha*, Vol. II, edited by ... text of the 122 *prasastis* presented here would of Indian languages, literature, history and introduction appended to them by the Editor, their value has become much greater, for he throws therein considerable light on important ... (a) the General Value of the *Prasastis*, (b) Apabhramsa, its meaning and development, (c) early Indian languages dialects and their inter-varieties, and (d) Apabhramsa writers and formation in the last section is only about available Apabhramsa works, *Jaina* as well as non-*Jaina*, which the Editor has given, should give the reader a fairly comprehensive idea of the subject and encourage him to pursue his studies in the direction he chooses.

Under all the heads, often new information, as a *r* Bhandars. But I personally Apabhramsa literature under each comprising generally

ize, (3) *Sandhikavya* which consists only independent verses in the form of *dohas* | *Charchari*, he has criticised incisively but convincingly some theories of earlier writers and given a well-balanced view of the nature and objectives of *Jaina* poetry. He has also taken a rapid survey of early books on Apabhramsa metrics and grammar and added a few remarks about the nature of Apabhramsa used in Sanskrit plays.

The final section of the Introduction, pp. 41-136, begins with the account of Svayambhu's ... (*Sarvabha*), one dealing with ... Both the works had comparison with the best *kavyas* in Sanskrit or in any other language for their graphic description of scenes of nature as well as battles, successful depiction of various poetic sentiments and aesthetically controlled use of figures of speech.

Originally a Brahmana, Svayambhu had become a *Jaina*, and most of his literary work was done at Manyakheta where he was patronised by Dhananjaya and Dhavalaiyya. Tribhuvanavayambhu mentions Vandaiyya as his patrons. These three patron were, probably, related to one another.

In the 104th *sandhi* of the *Ritthanemichariu* is a very valuable list of 70 earlier poets, *Jaina* as well as non-*Jaina*.<sup>2</sup>

The 3rd and 17th *prasastis*, respectively, are of Nayanandin's *Sudamsanachariu* and *Sayala-vihivihana-kavya*, of which the former is a beautiful *khandakavya* written at Dhara in V. 1100 (1043 A.D.) in the reign of Bhoja Paramara, and the latter a religio-philosophic work in verse, which in its *prasasti* mentions about 33 earlier poets.<sup>3</sup>

Padmakirti's *Parsavapurana* (*prasasti* No. 4) is again a *khandakavya* written in V. 999 (942 A.D.). Later than it by nearly 45 years (V. 1044) is the *Dharmapariksa* of Harisena who belonged to Chittor but wrote the work at Achalapura where he had gone to transact some state business.

Far more poetic than these is Vira's *Jambusvamichariu* (*prasasti* No. 6) which like, No. 3, was written in Malwa in the reign of Bhoja. Vira's father, Devadatta, also must have been a good poet. He restored the *Varangacharita* and *Ambadevi-rasa*, both of them unfortunately unavailable now. The *chariu* deserves being published for its beautiful poetry and vigorous description and also for popularising further the story of the last *kevalin*, Jambusvamin. Jhunjhuna, the place where the work was copied out in V. 1516, should in my opinion be identified with Jhun-jhanu in Shekhawati, Rajasthan.

The *prasastis* No. 7 and 8 are, respectively, of Srichandra's *Kathakosa* and *Ratnakarandasravakachara*, of which the former deals with *kathas* relating to various Jaina *vratas* and the latter is a good explanatory commentary on Svami Samantabhadra's *Ratnakaranda*. The *Sravakachara* was completed in V. 1123 during the reign of the Chaulukya ruler, Karna. This being so, I am not sure whether the Editor is right in assigning the composition of Srichandra's other work, the *Kathakosa* to a period before 1052, i.e., not less than 71 years before the composition of his other work. It may be well to remember also that according to the *prasasti* of the *Kosa*, Srichandra was not a contemporary of Mularaja's courtier, Sajjana, but of his son, Krsna, who at the time of writing the work, was old enough to have three sons (who are described as proficient in the knowledge of *dharma* and *karma*) and also four daughters. Thus it would probably be best to assign its composition to the end of the 11th Century.

The *Sukumaracharita* of Sridhara (*prasasti* No. 9) deals with the well-known story of Sukumara *muni*. As the work was composed in V. 1208 in the reign of Govinda-chandra, I feel like identifying the ruler with Govindachandra Gahadavala of Kannauj who ruled from V. 1171 to V. 1212.

The 10th *prasasti* is of Dhavala's *Harivamsa-purana*. It is a well-written *kavya*, the utility of which to historians of Apabhramsa literature is increased by its list of earlier poets.<sup>4</sup> The Editor puts him after V. 999 on the basis of the poets he mentions.

*Prasastis* 11-13 are of works written by Amarakirti. His *Chhakammovaesa* was written at Godhra during the reign of Kanha-narendra, a son of Vandiggadeva, in V. 1247. Another of his works, the *Neminahachariu* was written in V. 1244. It is known from various sources that Godhra was a strong principality of *Mahitata*, which defied more than once the might of the Chaulukyas of Anahillapattana.<sup>5</sup>

The 13th and 18th *prasastis*, respectively, are of Laksmāna's *Jinadattacharita* and *Anuvayarayanapaiva*. Of these the former, a beautiful *kavya* setting forth the ideal of real love in the form of Jinadatta's story, was written in V. 1275 (1218 A.D.), at *Bilarampur* in the present Etah district to which the poet and his relatives had fled after the sack of Tribhuvanagiri (Tahangarh)<sup>6</sup> by the Muslims in 1196 A.D. (V. 1253). The *Anuvayarayanapaiva* deals with *Samyagdarsana* and the twelve *vratas* of a Jaina householder. It was written in V. 1313 (1256 A.D.), at Raybaddiya which was then ruled by the Chauhan king, Ahavamalla.<sup>7</sup> The poet was patronised by Ahavamalla's minister, Kanha, of the Lambakanchuka or Lemchu family.

The *Sulochana-charita* of Devasena-gani (*prasasti* No. 14) was composed in the city of king Mammala<sup>8</sup>, probably in V. 1132, and is practically an Apabhramsa rendering of Kunda-kunda's work of this name. Of the earlier poets he mentions Valmiki, Vyasa, Kalidasa, Bana, Mayura, Haliya, Govinda, Chaturmukha, Svayambhu, Puspadanta and Bhupala.

The *Pajunnacharia* was begun by Siddha and completed by Simha. Siddha mentions Brahmanavataka, its ruler Ballala, son of Ranadhoritya, and Ballala's servant, the Guhilaputra Bhullana. Brahmanavataka is known to have been in *Nirmada-mandala*.<sup>10</sup> This Ballala could have been, as surmised by the Editor, Ballala of Malwa; whose servant the Guhilaputra Bhullana might then be regarded as the man put in charge of the Brahmanavataka area.

The 16th *prasasti* is of the *Parsvanathacharita* of Devachandra which was composed at Gundijjagara (the location of which is uncertain).<sup>11</sup> The work might have been written in the 10th or 12th century A.D., our dating depending in this case on the identification of Devachandra's *guru*, Vasavachandra.

The author of the *Bahubalicharita* (*prasasti* No. 19) was Dhanapala. He wrote it in V. 1454 at the instance of Vasadhara, a minister of the Chauhan ruler Ramachandra, of Chandwar. The poet himself belonged to Palanpur and was a disciple of Prabhachandra who is said to have pleased Mahmudshahi at Yoginipura. This Mahmud should in my opinion be identified with Muhammad bin Tughlaq, as Prabha Chandra ascended the *gaddi* at Delhi before V. 1416 (1359).

The *Harivamsapurana* of Vasahkirti was written at Unmattagrama in Gurjaradesa, from Bhattaraka Yasahkirti, four *prasastis* of whose in the *Sangraha*. The *Pandavapurana* was written in V. 1497 at the instance of Hemaraja who is described as a *mantrin* of "Suratana Mumarakha" (Mubarak Shah). But as Saiyyad Mubarak Shah was no longer on the throne in 1440 A.D. or V. 1497, we to suppose that by that time Hemaraja had retired from ministership?

Yasahkirti's *Harivamsapurana* was written in V. 1497 of Jalal Khan who should be identified with the Mewati c trouble to Saiyyad Mubarak Shah and was besieged *Mubarakshah*, p. 211). Elsewhere we find Indore menti Nos. 23 and 24 are *vata-kathas*. Yasahkirti, as pointed out by the Editor, was one of the most influential religious figures of his time.

*Prasasti* No. 25 is of Sridhara's *Parsvanathacharita* written in V. 1189 at the instance of Nattula Sahu of Dhilli which was then being ruled by Anangapala Tomara. Another of his work was the *Vardhamanacharita*, the *prasasti* of which has been given in an appendix to the *Sangraha*. Both these *prasastis* contain valuable material about the economic and political conditions of that period.<sup>12</sup>

*Prasasti* No. 26 is of Halla's *Srenikacharita* which was written before V. 1471. Halla wrote also the *Mallinaha-kavya* (*prasasti* No. 104). He was patronised by Amarasimha, a minister of the Chauhan chief Bhojaraja of Karahal, a place about 13 miles from Etah.

The *Bhavisattakaha* (*prasasti* No. 27) was written by Sridhara who was probably different from Sridhara, the author of the *Parsvanathacharita*. He wrote his work in V. 1230 (1173 A.D.).

*Prasastis* 28-29 and 100 are of works by Tejapala. They were written at Sripatha (not Sriprabha) of the Bhadanaka-desa, which was then ruled by Daud Shah Auhadi. I have found this reference extremely important, because it has helped me in locating definitely Bhadanaka

which, thanks to Muslim historians and Prakrit phonology, turned into Bhayanaya and then into Bhayanaa and Bayana.<sup>13</sup> The poet's *Varangacharita* was written in V. 1507 and the *Pasapurana* in 1515 V.

The 30th *prasasti* is of the *Sukumalacharia* of *Purnabhadra* who flourished before 1632 A.D. Much more poetic than it is the *Neminahachariu* of *Laksmāna* (*prasasti* No. 31) which must have been written before V. 1510. *Prasastis* No. 32 and 33 are of two works by *Manikyārāja*. Of these the *Amarasenacharita* was written at *Rohtak* in V. 1576 (1519 A.D.). The second work, the *Nagakumaracharita*, was written in V. 1579.

*Prasastis* Nos. 35-49, 99 and 106 are of works by *Raidhu*, one of the best *Apabhramsa* poets of this later period. He belonged to the *Pomavai-Poravada-kula* and passed much of his time at *Gwalior* which was during his days ruled first by *Dungarsimha* of the *Tomara* dynasty and then by his son, *Kirtisimha*.

*Prasastis* No. 50-64 are of *kathas* by *Gunabhadra*. He lived at *Gwalior* in the sixteenth century of the *Vikrama* era.

*Prasasti* No. 65 is of an anonymous *Anantavatakatha*, and the 66th of the *Aradhanasara* by a poet named *Vira*. The 67th *prasasti* is of an anonymous *Harisenachariu*.

The 68th *prasasti* is of *Haradeva's* allegorical poem, the *Mayanaparajaya* in which *Jinarāja* is represented as defeating *Kamadeva* and marrying *Mukti-kanya*. The poet flourished before V. 1551.

The *Siddhachakra-kaha* and *Jinarattivihana* (Nos. 69 and 105) are by *Narasena*. He might have been a poet of the fourteenth century.

The *Anatthamiyakaha* (No. 70) was written by *Harichanda* and is directed against *ratribhojana* (taking food at night). It might have been written in the 15th century.

The *prasastis* 71-73 are of works by *Vinayachandra*. The *Churadirasa* is a short but exquisite piece written at *Tribuvanagadha* in the *Ajayanarendra-vihara*. The *Nirjharapanchami-rasa* is another *katha* in the form of a *rasa*. The third work is the *Kalyanaka-rasa*. *Dr. Prem Sagar* has put *Vinayachandra* in V. 1576. Actually, however, as the *Editor* of our *Sangraha* points out, he cannot be put later than the 14th century.

The 75th *prasasti* is of *Lakhu's Chandana-chhatthikaha*, and the *prasastis* No. 76-77 of works by *Balachandra* who probably lived in the thirteenth century.

*Prasastis* No. 78-80 are of various *kathas*. No. 81 is the *Anupeharasa* by *Jalhiga* and No. 82 of *Anuyekha-rasa* by *Yogadeva*. Nos. 83-84 are also similar works.

*Prasastis* 85-86 and 107 are of works by *Srutakirti*, who lived in the middle of the sixteenth century. Of these the *Harivamsapurana* was written in V. 1552. Its copy from *Jorhat* in *Damoh District* mentions its governor, the *Great Khan Bhoj Khan*, under whom the affairs at *Jorhat* were managed by *Soni Shri Isura*. The *Paramestiprakasa-sara* was written in V. 1553 during the reign of *Nasiruddin* of *Malwa* and the *Yogasara* in V. 1552.

*Mahindu* wrote the *Santinaha-chariu* (No. 87) in V. 1587 during the reign of *Babar*. Nos. 88, 108 and 109 are *prasastis* of the works of another prolific *Apabhramsa* writer, *Bhagavatidasa* of *Buria* (*Ambala District*). His *Miyankalekha-chariu* was written at *Hissar* in V. 1709. His *Apabhramsa* brings us fairly near *Hindi*, though he was a good scholar of *Sanskrit*, *Prakrit* as

well as Apabhramsa. His works were written at Buria, Dilli, Agra, Hissar, Kapisthala, Siharadi and Sankasa and he lived on at least up to V. 1712.

The 89th *prasasti* is of Vijayasimha's *Ajita-purana* written in V. 1505 and the *prasastis* 90-98 of 9 works by Brahma Sadharana who mentions himself as a disciple of Narendrakirti.

The 101st *prasasti* is of Damodara's *Siripalachariu*. The writer was a disciple of Bhattaraka Jinachandra.

Oswal's *Pasachariu* (No. 102) was written in V. 1479 (1422 A.D.) in the reign of Chahamana Bhoja of Karahala at the instance of Lonasimha whose family had been responsible for much of the good literary work done at Karahala even earlier. The *prasasti* is thus of great importance for literary and political history.

Thakur's *Santinaha-chariu* (No. 103) was written in V. 1652 when Akbar ruled at Delhi and Mansingh at Amer. The work gives a good genealogy of the Sarasvati-gachchha. The poet was a disciple of Visalakirti.

Appendix 1 has 6 *prasastis* of works already printed, and Appendix 2 of 3 important *lipi-prasastis*. Of these latter the first *prasasti*, which is dated in V. 1521, throws important light on the political as well as cultural set-up of Gwalior. The second *prasasti* is of V. 1530, and the third of V. 1607.

The three *prasastis* in Appendix 3 are of *Rohinivihana-katha* of Devanandi, *Vaddhamana-chariu* of Sridhara, and *Neminahachariu* of Damodara. All the three are important additions to the works of these authors already noted in the *Sangraha*.

One need hardly emphasise the importance of this collection of *prasastis* which opens a new door of research in the little-known political, social, cultural, religious and linguistic questions of a period of nearly eight hundred years. The publication of these works is the prime duty not only of the Jaina community but also of non-Jaina institutions of learning. The Editor has discharged well his duty by bringing these priceless treasures to their notice; let others now perform theirs by spending like their ancestors a part of their money in popularising works and teachings which are their priceless heritage.

Pandit Parmanand Shastri's work has been done with the greatest care and deserves the appreciation of every lover of oriental learning. We have seen also other *prasasti-sangrahas* but this one surpasses them, not of course in the amount of material it puts together, for a few bigger catalogues have been published, but in the way all this material has been systematically arranged. He has thrown new light on the lives of some of the earlier poets whose writings inspired the standing of the Jaina theory of poetics than many other writers on the subject whose views have been largely influenced by the writings of western scholars. And even when one does not fully agree with him, one has to respect his views on account of the reasoned way in which they have been presented. When future writers compile either the history of Apabhramsa or early Rajasthani and Hindi literatures, Shri Parmanand Jain Shastri's work will be found not only useful but indispensable.

'Navin-vasant'

E-4/1, Krishnanagar,

Delhi-31

Dasharatha Sharma

Reader, History Department

University of Delhi



## Footnotes

1. See for instance his criticism of the view of Dr. Shambhunath Singh, pp. 22 ff.
2. See page 46 of the Introduction.
3. See pages 50-1 of the Introduction. I do not, however, find the name of Magha in the original *prasasti*.
4. See page 65 of the Introduction.
5. *Prabandhakosa*, p. 107. 101 Rajputs are said to have died fighting against him. He was subdued by Vastupala. The same story is found in the *Puratanaprabandhasangraha* which speaks also of the subduing of Godhra by Kumarapala.
6. On the identification of Tribhuvanagiri with Tahangarh see our paper in the *Bharatiya Vidya*, (Hindi edition), Vol. II, pp. 62-66.
7. For an assessment of the historical material in the *Anuratna-pradipa* see our paper the *Jainasiddhantabhaskara*, VII, part 1, p. 11.
8. Can it be Mammalapuram founded by Mahamalla Pallava ?
9. The line containing the information is prosodically defective.
10. In Ajayapala Chaulukya's reign, Brahmanavataka of Narmadamandala was governed by Vaijaladeva Chahamanana.
11. There is one Gundoch in former Jodhpur State. The Editor thinks that it was somewhere in the south.
- 11a. See my paper "Revenue in 1680 A.D.", *Journal of Ganganatha Jha Research Institute*, Vol. IV. p. 72.
12. Partly utilised by us in our *Early Chauhan Dynasties* in the chapter on Arnoraja.
13. For my earlier view on the subject which has been adopted by some historians see *IC*, Vol. X and *Early Chauhan Dynasties*, pp. 91-92.

## प्रस्तावना

### प्रशस्तियों की उपयोगिता

भारतीय इतिहास के अनुसंधान में जिस तरह शिलालेख, प्रशस्तियाँ, दानपत्र, स्तूप, मूर्तिलेख, ताम्रपत्र और सिक्के आदि उपयोगी होते हैं। उसी तरह पुरातन ग्रन्थों के उल्लेख, ग्रन्थकर्ता विद्वानों के ग्रन्थों के आदि ग्रन्थ में दी हुई प्रशस्तियाँ और लिपि प्रशस्तियाँ भी उपयोगी होती हैं। इनमें दिए हुए ऐतिहासिक उल्लेखों से अनेक तथ्य प्रकाश में आते हैं। इनकी महत्ता भारतीय अन्वेषक विद्वानों से छिपी हुई नहीं है। ये सब चीजें भारत की प्राचीन आर्यसंस्कृति की समुज्ज्वलधारा की प्रतीक हैं और ये इतिहास की उलभी हुई समस्याओं एवं गुटियों को सुलभाने में अमोघ अस्त्र का काम देती हैं। इनमें पूर्वजों की गुण-गरिमा का सजीव चित्रण एवं इतिवृत्त गुंफित मिलता है।

ये महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रशस्तियाँ भारतीय साहित्यादि के अन्वेषण में ग्रन्थकर्ता विद्वानों, आचार्यों और भट्टारकों द्वारा लिखी गई होने से विद्वानों के समयदि का निर्णय करने में अथवा वस्तुतत्त्व की जांच करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं और कहीं-कहीं प्रशस्तियों में अंकित इतिवृत्त उलभी हुई समस्याओं का केवल समाधान ही नहीं करते; प्रत्युत वास्तविक स्थिति को प्रकट करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं।

अप्रभ्रंश भाषा के ग्रन्थकारों ने ग्रन्थ निर्माण कराने में प्रेरक अनेक अग्रवाल खंडेलवालादि कुटुम्बों का परिचय दिया है, और उनके तीर्थयात्रा और मन्दिर निर्माण, मूर्ति निर्माण एवं विम्ब प्रतिष्ठा, राजमंथ्री, कोपाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी आदि पदों का भी उल्लेख किया है, जिनसे उस कालके जैनियों की धार्मिक परिणति और उदारता आदि के साथ तात्कालिक सामाजिक राजनैतिक वातावरण का भी पता लग जाता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसी से अन्वेषकों और इतिहासज्ञों के लिये इस प्रकार की ग्रन्थ प्रशस्तियाँ अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध हुई हैं। शिलालेखों और ताम्रपत्रादि से इनकी महत्ता किसी प्रकार कम नहीं है।

प्रस्तुत प्रशस्तिसंग्रह में अप्रकाशित ग्रंथों की १०६ प्रशस्तियाँ दी गई हैं परिशिष्ट नम्बर एक में छः प्रशस्तियाँ मुद्रित ग्रन्थों की दी हुई हैं, और परिशिष्ट नं० दो में तीन लिपि प्रशस्तियाँ दी गई हैं, तथा परिशिष्ट नं० ३ में चार अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ दी हैं। इस तरह प्रशस्तियों की कुल संख्या एक सौ बाईस हो गई है। ये प्रशस्तियाँ जहाँ साहित्य और इतिहास की मौलिकता को प्रकट करती हैं—उसकी कड़ी जोड़ती हैं। वहाँ वे तात्कालिक सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाज पर भी अच्छा प्रकाश डालती हैं अतएव उपलब्ध अप्रभ्रंशसाहित्य का यह प्रशस्तियों का संग्रह विशेष लाभप्रद होगा। इनके अध्ययन एवं संकलन से इतिहास का भूतिमान स्पष्ट प्रकट होता है, इतना ही नहीं; किन्तु ये जैन संस्कृति की उत्तम प्रतीक हैं। इनमें उल्लिखित ग्रन्थकर्ता, विद्वानों, आचार्यों, भट्टारकों, राजाओं, राजमंथ्रियों, श्रावक-श्राविकाओं और उनकी गुरु परम्परा तथा संघ, गण-गच्छादिका वह परिचय भी प्राप्त हो जाता है। जिन पर से अनेक वंशों जातियों, गोत्रों और गुरुपरम्पराओं, उनके स्थान, समय, कार्यक्षेत्र तथा लोगों की ज्ञान निप्ता के साथ-साथ

तात्कालिक परिस्थितियों, राजाओं, गहामात्यों, सेनापतियों और नगरसेठ आदि के इतिवृत्त सहज ही संकलित किये जा सकते हैं।

इस प्रशस्ति संग्रह में अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों की प्रशस्तियों का ही संग्रह किया गया है। ये सब प्रशस्तियाँ हस्तलिखित ग्रन्थों पर से समुद्धृत की गई हैं। यह सब संग्रह दिल्ली, जयपुर, आमेर अजमेर, व्यावर आदि स्थानों के जैन ग्रन्थ भंडारों के ग्रन्थों पर से किया गया है, जिससे अपभ्रंश भाषा के उपलब्ध साहित्य पर से उसके उत्थान और पतन का क्रमवार इतिहास लिखा जा सके। ये प्रशस्तियाँ अपभ्रंश भाषा के इतिहास संकलित करने में जहाँ मूल्यवान् सिद्ध होंगी वहाँ अध्येता अन्वेषकों के लिये भी उपयोगी रहेंगी।

इस प्रशस्ति संग्रह के अंत में कुछ परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिनमें प्रथम परिशिष्ट में कुछ मुद्रित ग्रन्थों की ऐतिहासिक प्रशस्तियों का भी संकलन दिया है। उसका एक मात्र कारण रिसर्च स्कालरों या अन्वेषकों के लिए उपयुक्त सामग्री का संचित करना है। अन्य परिशिष्टों में भौगोलिक ग्राम-नगरादि के नामों, संघों, गणों, गच्छों, अन्वय, या वंशों, जातियों, गोत्रों राजभंगियों, राजाओं, विद्वानों, आचार्यों भट्टारकों थावक-थाविकाओं और ग्रंथों की सूची अकारादि क्रम से दी गई है। जिससे अन्वेषक विद्वानों को बिना किसी विशेष परिश्रम के उनका परिचय मिल सके और उन्हें ऐतिहासिक स्थलों आदि का भी परिचय सुलभ हो सके।

इस संग्रह में वर्तमान में उपलब्ध अपभ्रंश के दिग्म्बर साहित्य-विषयक प्रशस्तियाँ ही दी गई हैं। किन्तु प्रस्तावना में अपभ्रंश साहित्य की एक ऐसी सूची दे दी गई है, जिसमें प्रायः उपलब्ध अनुपलब्ध ग्रंथों को भी संकलित किया गया है। इससे विद्वानों को अपभ्रंश के साहित्य की पर्याप्त जानकारी हो सकेगी। इस तरह यह प्रशस्ति संग्रह अपने विशाल रूप में साहित्यिक अनुसंधाताओं के लिए विशेष उपयोगी रहेगा।

प्रस्तुत प्रस्तावना को तीन भागों में विभक्त किया गया है जिनमें पहला भाग अपभ्रंश भाषा के इतिहास का है, जिसमें शताब्दी क्रम से अपभ्रंश के ऐतिहासिक निर्देश दिये गये हैं, जिनसे अपभ्रंश के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश का वर्तमान साहित्य ६वीं से १७वीं शताब्दी तक का उपलब्ध है। ५वीं से ६वीं शताब्दी तक उसका प्रारम्भिक काल और ६वीं से १३वीं तक मध्याह्न काल और १४ वीं से १७ वीं शताब्दी तक उसका अपरान्ह काल समझना चाहिये। मध्याह्न काल ही उसके विकास का समय है।

दूसरे विभाग में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिसमें भारतीय भाषाओं के विकास के साथ अपभ्रंश के विकास एवं साहित्य की चर्चा की गई है और वर्तमान में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य की एक सूची भी दी गई है।

तीसरे विभाग में प्रशस्ति संग्रह में मुद्रित प्रशस्तियों के ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का परिचय कराया गया है।

भारतीय साहित्यिक भाषाओं में प्राकृत संस्कृतादि की तरह अपभ्रंश भी सदियों तक साहित्यिक भाषा रही है और जनता के कण्ठ को विभूषित करती रही है। अपभ्रंश प्राकृत भाषा का ही एक रूप है। जिसे 'अवहट्ट, अवहंस, अपव्भट्ट, अपभृष्ट या अपभ्रंश के नाम से उल्लेखित किया जाता है। देश विशेष के कारण उनकी बोलियों और प्रांतीय भाषाओं के उच्चारण में अन्तर पड़ जाता है, और वही अन्तर धीरे-धीरे भाषाओं के आदान-प्रदान में व्यवहृत होने लगता है। पाली और प्राकृत भाषा में प्रचुर साहित्य रचा गया है। प्राकृत भाषा देश भेद के कारण अनेक रूपों में विभक्त है, फिर भी उसके मुख्य दो रूप दृष्टिगत

होते हैं। महाराष्ट्री और शौरसेनी। इन दोनों भाषाओं में विपुल साहित्य रचा हुआ उपलब्ध होता है। यद्यपि अपभ्रंश भाषा का कोई प्रामाणिक इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया। अतएव उसका पूरा इतिवृत्त लिखना, तो यहाँ सम्भव नहीं प्रतीत होता; किन्तु उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार जरूर किया जायगा।

अपभ्रंश भाषा का जो भी पुरातन साहित्य वर्तमान में उपलब्ध होता है यद्यपि राज्यविप्लवादि के कारण बहुमूल्य पुरातन साहित्य विनष्ट हो चुका है, फिर भी जो किसी तरह अवशिष्ट रह गया है, वह अपनी महत्ता का स्पष्ट द्योतक है। उसका उद्गम कब और कहां पर हुआ, और कैसे वह साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति पा सका, उसमें क्या कुछ विशेषताएँ थीं, कैसे वह आम लोगों के लिए बोलचाल की भाषा में परिणत होता हुआ साहित्यिक भाषा बनने का श्रेय प्राप्त कर सका, यह सब अभी विचारणीय है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अपभ्रंश भाषा के साहित्य का अध्ययन बड़ा महत्व रखता है। भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य का अध्ययन तब तक सुसम्पन्न नहीं कहा जा सकता, जब तक अपभ्रंश भाषा के साहित्य का विधिवत् पारायण न कर लिया जाय। इतना ही नहीं; किन्तु विविध प्रादेशिक भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए अपभ्रंश भाषा का मौलिक अध्ययन करने की जरूरत है। साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी भाषा के विकास में अपभ्रंश भाषा ने क्या कुछ योगदान दिया है। अपभ्रंश भाषा ने केवल हिन्दी के विकास में ही सहयोग नहीं दिया किन्तु उसे प्रभावित और प्रतिष्ठित भी किया है। अतः भाषा विज्ञान की दृष्टि से अपभ्रंश का साहित्य प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अध्ययनीय है।

अपभ्रंश भाषा का कोई प्रामाणिक इतिहास न लिखा जाने से उसके साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार नहीं हो सका है, उसमें साहित्य का अभी तक अप्रकाशित रहना भी एक कारण है। अपभ्रंश भाषा के साहित्य की जब हम विपुलता देखते हैं और उसकी रचनाओं का ध्यान से समीक्षण करते हैं तब हमें उसकी विशेषता और महत्ता का यथेष्ट परिज्ञान होता है। वर्तमान में अपभ्रंश भाषा का समुपलब्ध साहित्य ८वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी तक का रचा हुआ अवलोकन करने में आया है। यद्यपि ८वीं से १३वीं शताब्दी तक के साहित्य में जो प्रौढ़ता देखी जाती है, वह आगे के साहित्य में नहीं पाई जाती; क्योंकि उसमें देशी भाषा के तत्सम शब्दों का बहुलता से समावेश पाया जाता है, अतः उसमें उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा के विकास का औचित्य उपलब्ध होता है।

अपभ्रंश भाषा का सबसे पुरातन उल्लेख हमें पतञ्जलि के महाभाष्य<sup>१</sup> में मिलता है। उसमें उन्होंने लिखा है :—“अपशब्दों का उपदेश बहुत विस्तृत या व्यापक है; क्योंकि एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश हैं। जैसे एक ही गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि बहुत से अपभ्रंश होते हैं।”

दूसरा उल्लेख ‘वाक्यपदीय’ ग्रन्थ के कर्ता भर्तृहरि ने सग्रहकार ‘व्याडि’ नामक आचार्य के मत का उल्लेख करने हुए किया है :—

“शब्दसंस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते।

तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशनम् ॥”

वार्तिक—शब्द प्रकृतिरपभ्रंशः इति संग्रहकारो नाप्रकृतिरपभ्रंशः स्वतन्त्रः कश्चिद्विद्यते। सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृतिः। प्रसिद्धेस्तु रूढतामापद्यमानास्वातन्त्र्यमेव केचिदपभ्रंशा लभन्ते। तत्र

१. “परीयानपशब्दोपदेशः। एकैकस्य शब्दस्य बहुवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा गौरितस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः ॥”

गौरिति प्रयोक्तव्ये अशक्त्या प्रमादिभिर्वा गाव्यादयस्तत्प्रकृतोपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते ।”

—वाक्यपदीयम् प्रथम कांड का० १४८

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि तत्सम अपभ्रंश किसी भाषा विशेष का नाम नहीं था किन्तु संस्कृत के विकृत रूप ही अपभ्रंश कहलाते थे ।

अपभ्रंश का तीसरा उल्लेख हमें भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र में मिलता है ।\* जिसमें भाषाओं की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए बतलाया गया है कि—'हिमवत, सिन्धुसीवीर तथा अन्य देशों के आश्रित लोगों में नित्य ही उकार बहुला भाषा का प्रयोग करना चाहिए ।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के ३२ वें अध्याय में जो वाक्य उपलब्ध होते हैं वे अपभ्रंश के प्रारम्भ की सूचना देते हैं । 'मोरुल्लउ-नच्चन्तउ । महागमे संभत्तउ । मेहउ हर्नुं गोइ जोण्हउ । गिन्च रिण्णहे एहु चंदहु ।' आदि समुद्धृत वाक्य अपभ्रंश के प्रारम्भिक रूप हो सकते हैं । इनमें कुछ विशेषतायें अपभ्रंश भाषा की देखी जाती हैं ।

इससे ध्वनित होता है कि नाट्यकार के समय हिमालय से सिन्धु तक के देशों में जो बोली प्रचलित थी उसमें उकार का प्रयोग विशेष रूप से होता था । समस्त प्राकृत भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है जिसमें कर्ता और कर्म कारक की विभक्ति में 'उ' होने से उकार का बाहुल्य पाया जाता है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश भाषा का आदि क्षेत्र हिमालय से सिन्धु तक का भारत का वह पश्चिमोत्तर प्रदेश ही है । परन्तु भरत मुनि के समय वहां अपभ्रंश एक प्रकार की बोली ही थी, जिसे विभाषा कहा गया है, उसने तब तक साहित्यिक रूप धारण नहीं कर पाया था, और न वह अपभ्रंश विशेष से प्रसिद्धि को ही पा सकी थी, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस भाषा ने परवर्ती काल में बड़ी उन्नति की है और उसने इतना अधिक विकास पाया कि विक्रम की ६वीं ७वीं शताब्दी से कुछ समय पूर्व उसमें गद्य-पद्य में रचना होने लगी थी । कवि भासह ने अपने काव्यालंकार में संस्कृत प्राकृत की रचनाओं के साथ अपभ्रंश की गद्य-पद्य मय रचना का भी उल्लेख किया<sup>३</sup> है ।

महाकवि दण्डी ने इस सम्बन्ध में कुछ मौलिक सूचनायें भी की<sup>४</sup> हैं । और वे इस प्रकार हैं—

(१) दण्डी के समय तक ग्रन्थकार संस्कृत के सिवाय अन्य समस्त भाषाओं को अपभ्रंश कहते थे, जिसकी परम्परा का उल्लेख पतंजलि ने अपने महाभाष्य में किया है ।

२. हिमवत्सिन्धुसीवीरान् ये जनाः देशान् समुपाश्रिताः ।  
उकारबहुलां तज्जस्तेषु भाषां प्रयोजयेत् ॥ —नाट्यशास्त्र १७-६२
३. "शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा ।  
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ॥" —काव्यालंकार १-३६
४. "तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा ।  
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ॥  
संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः ।  
तद्भवास्तत्समो देशी नित्यनेकः प्राकृतक्रमः ॥  
आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः ।  
शास्त्रे तु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम् ॥" —काव्यादर्श १, ३२, ३३, ३६

(२) जिन भाषाओं ने उस समय तक अपभ्रंश के नाम से काव्य-क्षेत्र में प्रवेश प्राप्त कर लिया था, वे सब भाषायें आभीरादि जातियों की बोलियाँ थीं। नाट्यकार भरत मुनि ने आभीरों की बोली को 'शावरी' बतलाया है।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आभीरों की शक्ति का लोक में जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे-वैसे ही उनकी संस्कृति में भी चेतना का जागरण होता गया और फलतः उनकी काव्य-कला अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई।

सौराष्ट्र देश से प्राप्त होने वाले बलभी के राजा धरसेन द्वितीय के सन् ५५६ (वि० सं० ६१६) के उत्कीर्ण ताम्रपट में राजा धरसेन के पिता गुह्यसेन को संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश रूप भाषानयन में प्रबन्ध रचना करने में निपुण बतलाया गया है। बुल्हेर ने इस ताम्रपट-लेख को जाली बतलाया है और वे उसे वाद का मानते हैं। हो सकता है कि यह लेख वाद में उत्कीर्ण किया गया हो, किन्तु घटनाक्रम तो उसी काल का है। भले ही इस लेख के काल में सौ, पचास वर्ष का फर्क हो सकता है, पर उसकी वारीकी से जाँच करना अभी आवश्यक है।

भाषा शास्त्र के विद्वान अपभ्रंश साहित्य का प्रारम्भ ५०० या ६०० ईस्वी से मानते हैं किन्तु अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में वैयाकरणों ने जो लक्षण निर्दिष्ट किये हैं, उनके कुछ उदाहरण हमें अशोक के शिलालेखों में दृष्टिगत होते हैं। उनमें संयुक्त 'र और उकारान्त पदों का प्रयोग भी उपलब्ध होता है। इसी तरह 'धम्मपद' में भी अनेक शब्दों के अपभ्रंश रूप दृष्टिगत होते हैं। ललितविस्तर और महायान सम्प्रदाय के अन्य बौद्ध ग्रंथों की संस्कृत में भी अपभ्रंश रूप उपलब्ध होते हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान तारानाथ ने यह स्पष्ट उल्लेखित किया है कि—'बौद्धों के सम्मितीय समुदाय के त्रिपिटक के संस्करण पाली संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश में भी लिखे गये हैं।' इससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि नाट्यकार 'भरत के समय और उसके बाद अपभ्रंश वीज रूप से विद्यमान थी और उसका अर्थ शब्द का विकृत या विगड़ हुआ रूप उस काल में देशवासियों के व्यवहार में प्रयुक्त होता था।

इस तरह अपभ्रंश का उत्तरोत्तर विकास होता गया और विक्रम की ८वीं शताब्दी में तो अपभ्रंश का काव्यरूप बहुत प्रसिद्ध और लोकरंजक हो चुका था। विक्रम की १२वीं शताब्दी के विद्वान उद्योतन मूरि ने अपनी कुवलयमाला में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की तुलना करते हुए संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश की महत्ता का उल्लेख किया है। जिससे अपभ्रंश की उस समय की लोकप्रियता का सहज ही परिज्ञान हो जाता है। उन्होंने लिखा है कि—'संस्कृत अपने बड़े-बड़े समासों, निपातों, उपसर्गों, विभक्तियों और लिङ्गों की दुर्गमता के कारण दुर्जन हृदय के समान विषम है। प्राकृत समस्तकला-कलापों की मालारूप जल-कल्लोलों से संकुल लोक वृत्तान्त रूपी महोदधि, महापुरुषों के मुस से निकली हुई अमृतधारा का विन्दु संदोह तथा एक एक क्रम से वर्ण और पदों के संघटन से नाना प्रकार की रचनाओं के योग्य होते हुए भी सज्जन वचन के समान सुख-संगम है और अपभ्रंश वह काव्य-बोली है जिसमें दोनों भाषाओं (संस्कृत-

५. आभीरोक्तिः शावरी स्यात्..... नाट्यशास्त्र १८-४४।

६. संस्कृतप्राकृतापभ्रंशभाषानयन प्रतिबद्ध प्रबन्ध रचना निपुणान्तःकरणः।

—इण्डियन् एण्टीक्वेरी भा० १० पृ० २८०

७. देनो, त्रिपिटिक के सम्मितीय संस्करण।

८. देसो बलममाला।

प्राकृत ) के शुद्ध अशुद्ध रूप पदों का मिश्रित रूप पाया जाता है, जो नव वर्षाकालीन मेघों के प्रपात से पूर द्वारा प्लावित गिरि नदी के वेग समान सम और विषम होता हुआ भी प्रणय कोप से युक्त कामिनी के वार्तालाप की तरह मनोहर है<sup>१</sup> ।

इसी तरह स्वयंभू ने भी अपभ्रंश काव्य-रचना की तुलना एक नदी से की है, जो संस्कृत और प्राकृत दोनों के तटों का स्पर्श करती हुई घनपद—संवटना की चट्टानों से टकराकर बहती है<sup>२</sup> ।

उद्योतनसूरि की 'कुवलय माला' में जहाँ अपभ्रंश का चर्चरीरास' समाविष्ट है। वहाँ लोक-भाषा सूचक अपभ्रंश गद्य के नमूने भी उपलब्ध हैं। यद्यपि वे प्राकृत के प्रभाव से परिलक्षित हैं, फिर भी मायादित्य और ग्राम-महत्तरों का परस्पर कथनोपकथन अपभ्रंश भाषा में दिया हुआ है और अवशिष्ट कथन प्राकृत में अङ्कित है। इससे स्पष्ट है कि उस समय अपभ्रंश का प्रयोग लूले-लंगड़े, रोगी और दरिद्री भी करते थे, और वह साहित्यिक विकास में अग्रसर हो रही थी।

इसी ग्रंथ के एक दूसरे उद्धरण में कथानायक राजकुमार का शूरसेन देश के केन्द्रस्थल मथुरा के एक अनाथ मण्डप में पहुंचने पर वहाँ के दीन-हीन, कोढ़ी और लंगड़े आदि रोगी गंवार लोगों से जो वातचीत या संवाद हुआ है वह बड़ा ही सजीव है<sup>३</sup>। यहाँ यह अवश्य विचारणीय है कि उन लोगों से शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग न कराकर अपभ्रंश का प्रयोग कराना खास विशेषता रखता है। वहाँ उसमें शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट है और उन शब्दों की ध्वनि में उदार प्रवृत्ति और देशी शब्दों का बाहुल्य आदि अपभ्रंश का स्पष्ट इंगित कराता है।

नवमी शताब्दी के विद्वान कवि रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में काव्य का गद्य-पद्य में विभाजन के अनन्तर भाषा के आधार पर उसे छह भागों में विभक्त किया है, और देश भेद से अपभ्रंश के बहुत भेद होने की सूचना भी की है<sup>४</sup>। इससे स्पष्ट है कि कवि रुद्रट अन्य साहित्यिक प्राकृतों के समान ही अपभ्रंश को गौरव प्रदान करते हैं। रुद्रट के इस कथन पर विक्रम की बारहवीं शताब्दी के विद्वान नमि साधु ने (१०६६ ई०) अपनी टीका में अपभ्रंश को प्राकृत में अन्तर्भुक्त करते हुए लिखा है—कि अन्य लेखकों ने उस अपभ्रंश के तीन भेद माने हैं, उपनागर, आभीर और ग्राम्य<sup>५</sup>। इसी का निराकरण करने के लिए रुद्रट ने भूरिभेद बतलाते हुए उसके अनेक भेदों की सूचना की है; क्योंकि देश की विशेषता के कारण भाषा में भी विशेषता पाई जाती है। साथ ही प्राकृत को ही अपभ्रंश माना है।

१. ता कि अवहंसं होहइ ? हूँ तं पि णो जेण सक्कय-पाय उभयसुद्धामुद्ध पयसमतंरंगंतवाग्निरं णव पाउस जलयपवाह पूर पव्वालिय गिरिणइ सरिसंसमं विसमं पणयकुविर्यापयणइणी समुल्लावसरिसं मणोहरं ॥'

—कुवलयमाला

२. सक्कय-पायय-पुलिणांलकिय देसी भासा उभय तडुज्जल । कवि दुवकर-घण सद्-सिलायल ।

स्वयंभू-पउम चरिउ ।

३. देलो, कुवलय माला कहा पृ० ५५ ।

४. 'भाषाभेदनिमित्तः षोडश भेदोऽस्य संभवति ।

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च ।

पण्डोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः ।

—काव्यालंकार २, ११-१२ ।

५. "प्राकृतमेवापभ्रंशः, स चान्यैरूपनागराभीरग्राभ्यावभेदेन त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थमुक्तं भूरिभेद इति । कुतो देशविशेषात् । तस्य च लक्षणं लोकादेव सम्यगवसेयम् ॥"

—काव्यालंकारटीका २-१२

कवि राजशेखर ने (८८० से १२० ई०) अपनी काव्यमीमांसा में अनेक स्थलों पर अपभ्रंश का निर्देश किया है। साथ ही अपने से पूर्ववर्ती कवियों की तरह स्वयं भी संस्कृत प्राकृतादि भाषाओं के समान अपभ्रंश को भी पृथक् साहित्यिक भाषा स्वीकार किया है तथा काव्य-गुरुप के शरीर का कथन करते हुए संस्कृत को मुख, प्राकृत को वाहु; अपभ्रंश को जघन—मध्यभाग, पंशाची को पैर, और मिश्र को उरस्थल बतलाया है। और तदनुसार राजा की काव्य-सभा में संस्कृतकवि उत्तर, प्राकृतकवि पूर्व, अपभ्रंशकवि पश्चिम, और पंशाची कवि दक्षिण में बैठें\* ऐसी व्यवस्था का उल्लेख किया है। कवि ने दूसरे स्थल पर सौराष्ट्र और त्रवण देश को अपभ्रंश भाषा भाषी प्रकट किया\* है। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के क्षेत्रका निर्देश करते हुए भरु (भारवाड) टक्क (टक्क) पंजाब का एक भाग भादानक—पंजाब के भेलम जिले के भद्रावती देशों में अपभ्रंश के प्रयोग होने का संकेत भी किया\* है।

महाकवि पुष्पदन्त ( वि० सं० १०१६ ) ने अपने 'महापुराण' में संस्कृत और प्राकृत भाषा के साथ अपभ्रंश का भा समुल्लेख किया है। उस काल में संस्कृत प्राकृतादि के साथ अपभ्रंश का भी ज्ञान राजकुमारियों को कराया जाता था\* ।

अमरचन्द्र ने तो अपभ्रंश की गणना षड्भाषाओं में की है—

संस्कृतं प्राकृतं चैव शीरसेनी च मागधी ।

पंशाचिकी चापभ्रंशं षड् भाषाः परिकीर्तिताः ॥ —काव्य कल्पलता वृत्ति पृ० ८

अपभ्रंश भाषा के उल्लिखित ये भिन्न भिन्न निर्देश उसके विकास में निम्न बातें फलित करते हैं और उनकी ऐतिहासिक कड़ी जोड़ने में सक्षम हैं—

प्रारम्भ में अपभ्रंश का अर्थ विगड़ा हुआ रूप था। उस समय भारत में 'विभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग होने लगा था और नाट्यकार के समय अपभ्रंश बीजरूप से विद्यमान थी और उसका प्रयोग आभीर एवं शवर आदि वनवासी जातियों में प्रयुक्त किया जाता था, पर उस समय तक उसका कोई साहित्यिक रूप पल्लवित नहीं हुआ था। किन्तु छठी शताब्दी में 'अपभ्रंश का प्रयोग वैयाकरणों और आलंकारिकों के ग्रन्थों में भी उल्लिखित होने लगा और वह साहित्यिक भाषा का सूचक भी माना जाने लगा इतना ही नहीं, किन्तु उसका स्वतन्त्र रूप भी विकसित होने लगा था और जो दण्डी तथा भामह जैसे आलंकारिक साहित्यिकों की स्वीकृति भी पा चुका था, इस तरह वह ८ वीं शताब्दी में सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा मानी जाने लगी और उसका विस्तार सौराष्ट्र से लेकर मगध तक हो गया था\* । ह्रीं देशभेद के कारण उसमें कुछ भिन्नता अवश्य आ गई थी, किन्तु काव्यादि रचना में आभीरादि की अपभ्रंश का ही प्रयोग होता था। ११ वीं से लेकर १३ वीं शताब्दी तक के कवियों—मम्मट, वाग्भट्ट, हेमचन्द्र,

१. "प्रहो श्लाघनीयोऽसि । शब्दाधौ ते शरीरं, संसृष्टं मुखं, प्राकृतं वाहुः, जघनमपभ्रंशः, पंशाचं पादौ उरौ मिश्रम् ।" काव्यमीमांसा अ० ३ ।

२. मध्येसमं राजसिनम् । तस्य चोत्तरतः संस्कृतकवयो निविभोरन् ।...पूर्वेषु प्राकृताः कवयः ।...पश्चिमेनाप भ्रंशिनः कवयः...दक्षिणतो भूतभाषाकवयः ।" —काव्यमीमांसा अ० १०

३. सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरमुवष्टकभादानकाश्च । काव्यमीमांसा, अ० १०

४. सौराष्ट्र त्रवणाद्या ये षठ्गण्यपित सोष्ठवम् । —काव्यमीमांसा अ० ७

५. सक्कउ पायउ पुण अवहंसउ, वित्तउ उप्पाइउ सपसंसउ ।

—महापुराण ५-१८-६

६. आभीरो भाषापभ्रंशस्था कथिता वचचिन्मागध्यामपि दृश्यते ।

— काव्यालंकारटीका पृष्ठ १५



रामचन्द्र, गुणचन्द्र और अमरचन्द्र आदि ने अपभ्रंश को संस्कृत प्राकृतादि के समान ही साहित्यिक भाषा माना। ८वीं से ११ वीं शताब्दी में साहित्यकों ने महाकाव्यों और खण्डकाव्यों को गुंफित किया। उसे रस और अलंकारों से केवल पुष्ट ही नहीं किया; किन्तु पल्लवित, पुष्पित भी किया तथा उसके माधुर्य की सरस सरिता में जन साधारण को निमज्जन उन्मज्जन करने की सुविधा भी प्रदान की।

इस विवेचन पर से अपभ्रंश के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। साथ ही आगे होने वाले साहित्यिक परिचय से उसके विकास और ह्रास का भी पता चल जाता है। प्रत्येक भाषा अपने प्रारम्भिक काल के बाद विकास पाती है। अपभ्रंश ने भी इसी तरह विकास पाया, और बाद में वह पतन को प्राप्त हुई।

### भारतीय साहित्यिक भाषायें

आत्म-अनात्म भावनाओं की अभिव्यक्ति साहित्य है। साहित्य के सृष्टिकर्ता विद्वानों ने अपनी चिरसाधना और अन्तर्मानस की अनुभूति द्वारा सुख, दुःख, जीवन, मरण, आशा, निराशा, भय निर्भयता, हास्य, शोक और विलाप तथा प्राकृतिक रहस्यों से विस्मित करने वाले दृश्यों एवं सौन्दर्य की अनुपम छटा को वाणी द्वारा प्रकट किया है उसे साहित्य कहते हैं। साहित्य की महत्ता उसमें चर्चित वस्तु तत्त्व से होती है। इसी से साहित्य सार्वकालिक और सार्वदेशिकता से ओत-प्रोत रहता है, वह किसी सम्प्रदाय, देश या व्यक्ति विशेष का समर्थक नहीं होता; किन्तु उसमें सार्वभौमता होती है। वह किसी एक अङ्ग का सम्पोषक नहीं होता। उसमें देश, काल, ऋतु, क्षेत्र, पर्वत और तद्देशीय युवति-जनों के वेप-भूषा के साथ धर्म के सिद्धान्तों का भी यथा स्थान संक्षिप्त या विशद रूप में निर्देश किया गया है।

साहित्य की सृष्टि अनेक भाषाओं में की गई है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती, मराठी आदि।

#### संस्कृत

संस्कार की गई भाषा का नाम संस्कृत है। वैदिक कालीन संस्कृत प्राचीन है और अवैदिक कालीन अर्वाचीन। पाणिनीय ने संस्कृत को व्याकरण से परिष्कृत कर उसके रूप को स्थिर किया। पश्चात् व्याकरण के विकास के साथ-साथ संस्कृत के प्रयोग और नियम भी सुस्थिर होते गये। व्याकरण के प्रयोग से शिक्षित समुदाय की भाषा शुद्ध और परिमार्जित होती गई। किन्तु व्याकरण विहीन जन साधारण की भाषा अपरिमार्जित और स्वल्पित ही रह गई। संस्कृतभाषा में प्रबन्ध काव्य चरित, पुराण, कथा, सिद्धान्त, व्याकरण, दर्शन, वैद्यक ज्योतिष कोष, छन्द, नाटक, चम्पू और अलंकार आदि विषयों पर विविध एवं विशाल ग्रन्थ लिखे गये। जैन जैनतर ग्रन्थकारों ने संस्कृत के भण्डार को खूब ही समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया है। उसमें विपुल साहित्य की सृष्टि ही उसकी महत्ता की संद्योतक है। संस्कृत का साहित्य प्रौढ़ और उच्चकोटि का है। परन्तु संस्कृत भाषा साम्प्रदायिक व्यामोह के कारण जन साधारण की भाषा नहीं कहला सकी। वह शिक्षित और शिष्ट लोगों की ही भाषा बनी रही। परन्तु प्राकृत और अपभ्रंश जन साधारण की भाषा बनी, और साहित्यिक महत्ता को भी प्राप्त हुई। संस्कृत की अपेक्षा ये दोनों भाषाएं सरल और सुकोमल हैं। जन साधारण उनके अर्थ को शीघ्र ही अवगत कर लेता है। यहां प्राकृतादि भाषाओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए अपभ्रंश के विकास-सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

## प्राकृत भाषा

जो प्रकृति से सिद्ध हो अर्थात् स्वभाव से निष्पन्न हो, उसे प्राकृत कहते हैं। जो लोग प्राकृत भाषा को संस्कृत से निष्पन्न बतलाते हैं<sup>१</sup>। उनका वह कथन संगत नहीं जान पड़ता; क्योंकि प्राकृत जन साधारण की भाषा थी, अथवा जिस कथ्य भाषा को जनसाधारण अपने व्यवहार में लाते हों, वही प्रकृति निष्पन्न भाषा है। प्राकृत भाषा की महत्ता जनसाधारण से छिपी हुई नहीं है। उसका सरल और मधुर साहित्य आज भी लोगों के हृदयों में अपने गौरव को अंकित किये हुए है। भगवान महावीर ने अपना उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिया था वह आधी भगव देव की भाषा थी और आधी भाषा दूरसेन देव की। पर उसमें अन्य भाषाओं के हृदयस्थ करने की क्षमता थी। बुद्ध ने भी तात्कालिक देव भाषा को अपनाया था, बाद में वही भाषा पालि के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्राकृत की महत्ता उसके हृदयंगम करने से सहज ही ज्ञात हो जाती है। प्राकृत बड़ी सरल और सहज बोधगम्य भाषा है जबकि संस्कृत दुर्लभ और कठिन है। इसी कारण वह जनसाधारण की भाषा नहीं बन सकी है। यद्यपि प्राकृत को गिराने का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया; परन्तु फिर भी उनका अस्तित्व बना ही रहा। काव्यालंकार के टीकाकार नमि साधु ने लिखा है कि "सकल जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः स्तत्र नभं, सैव वा प्राकृतं। 'आरिसं वयणे सिद्धं देवाणं अर्धमागधी वाणी' इत्यादि वचनान् वा प्राक पूर्व कृतं प्राकृतं—वाल-महिलादिमुबोधं सकल-भाषा-निवन्धनभूतं वचनमुच्यते। मेघनिर्मुक्तजलमिवैक स्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितं सत् संस्कृताद्युत्तर विभेदानान्प्नोति। अतएव शास्त्रकृता प्राकृतमादी निदिष्टं तदनु संस्कृतादीनि।" (काव्यालंकारटीका २, १२)

इसमें बतलाया गया है कि—लोगों के व्याकरण आदि के संस्कार से रहित स्वाभाविक वचन व्यापार को प्रकृति कहते हैं उसे ही प्राकृत कहा है। आप वचन में (द्वादशांग में) ग्रन्थों की भाषा अर्ध-मागधी थी, इससे प्रकट है कि जो बालक तथा महिलाओं आदि के लिए महजबोधगम्य है, वही भाषा सकल भाषाओं की मूल कही गई है और वह मेघ वर्षा के जल की तरह पहले एक रूप होने पर भी देश भेद से और संस्कार करने से वह अनेक भेदों में परिणत हो जाती है। अतएव शास्त्रकारों ने पहले प्राकृत को कहा है। बाद में (व्याकरणादि द्वारा संस्कारित हुई भाषा) संस्कृत आदि को कहा है।

इस प्राकृत भाषा का भी क्रमशः परिष्कार हुआ और उसने अपने को साहित्यिक वेश-भूषा से अलंकृत किया। शिलालेखों की भाषा और व्याकरण सम्बन्धी प्राकृत साहित्य का अध्ययन करने से इस बात का सहज ही आभास हो जाता है। बौद्धों के हीयमान सम्प्रदाय के मान्य त्रिपिटकों की पालि और जैनागमों की अर्धमागधी प्राकृत बोलियों के ही साहित्यिक रूप हैं। प्राकृत भाषा के साहित्य को संस्कृत की तरह समृद्ध एवं संगठित बनाने के लिए व्याकरणों ने व्याकरण के अनेक नियम भी बनाये। परन्तु प्राकृत की बोलियाँ अपने भिन्न-भिन्न अनेक रूपों में प्रचलित रहीं और उसमें संस्कृत के समान एक रूपता न आ सकी। क्योंकि एक भाषा के लक्षण दूसरी भाषा के लक्षणों से जुदा थे। इसी कारण त्रिविक्रम और आचार्य हेमचन्द्र आदि व्याकरणकर्ताओं ने नियमों में प्रायः 'वचि' में 'बहुल' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। जिनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि ये नियम किसी भाषा के लिए शाश्वत रूप में लागू नहीं हो सकते। यद्यपि व्याकरणों से भाषा में थोड़ा बहुत सुधार भी हुआ है। फिर भी देशभेद और विभिन्न बोलियों के कारण प्राकृत

१. प्रकृतेः संस्कृताशागतम् प्राकृतम्—आग्मट्यालंकारटीका २, ५ अथवा प्रकृतिः संस्कृतं तत्र नभं तत् प्रागत् वा

भाषा अनेक रूपों में विभक्त हो गई। प्राकृत के अर्धमागधी, मागधी, शौरसेनी महाराष्ट्री और पेशाची भेद आज भी मिलते हैं। श्वेताम्बर जैनागमों की भाषा 'अर्धमागधी प्राकृत' और दिगम्बर जैनों के प्राचीन आगम साहित्य की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' कही जाती है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र (१७-४८) में मागधी अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाल्लीका और दाक्षिणात्या नाम की सात प्रकार की प्राकृत भाषाएँ बतलाई हैं। प्राकृत भाषा में विशाल साहित्य रचा गया है। वर्तमान में उपलब्ध साहित्य से उसकी समृद्धि का यथेष्ट ज्ञान हो जाता है। यहां प्राकृत भाषा के उक्त भेदों पर कुछ विचार किया जाता है।

जैन प्राकृत और साहित्यिक प्राकृतों का उल्लेख मध्य काल के वैयाकरणों और आलंकारिकों के ग्रन्थों में मिलता ही है। उनमें शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी पेशाची, और अपभ्रंश के नाम पाये जाते हैं।

### शौरसेनी भाषा

शूरसेन देश में स्थित मथुरा नगर के आस-पास की भाषा शौरसेनी कहलाती है। इसका प्रयोग संस्कृत के नाटकों में स्त्री-पात्रों और मध्यकोटि के पुरुषपात्रों में पाया जाता है। दो स्वरों के मध्य में संस्कृत के त, थ, का क्रमशः द और ध हो जाना इसकी विशेषता है। इस भाषा में र का ल वचन ही होता है। तीनों सकारों के स्थान में 'स' ही होता है। कर्त्ता कारक पुल्लिङ्ग के एक वचन में 'ओ' होता है। 'थ' के स्थान में वचन 'ध' भी होता है और पूर्वकालिक कृदन्त के रूप में संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'त्ता'—इय, या 'दूरा' होता है। जैसे सुत-मुदो, कथम्-कथं, कृत्वा-करित्ता, करिअ, करिदूरा होता है। इस भाषा के ग्रन्थ दिगम्बर जैन साहित्य में पाये जाते हैं। आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द का प्रवचनसार, पंचास्ति काय इसी भाषा के ग्रन्थ हैं, परन्तु पंचास्तिकाय में अर्धमागधी का प्रभाव भी परिलक्षित है। शिवकोटि की भगवती आराधना इस भाषा का मौलिक ग्रन्थ है, वट्टकेरका मूलाचार भी इसी भाषा की देन है। इस में जैन साहित्य की बहुलता होने से इसे जैन शौरसेनी भी कहा जाता है।

### महाराष्ट्री

यह काव्य की पद्यात्मक भाषा है। काव्य-ग्रन्थों में इसी का प्रयोग किया जाता था। गाथा सप्त-सती, सेतुबन्ध, गडडवहो और रावणवध जैसे उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थ इसी में रचे गए हैं। पहले महाराष्ट्री महाराष्ट्र देश की भाषा मानी जाती थी, किन्तु अब वह शौरसेनी के विकास का उत्तर रूप है। ऐसा डाक्टर मोहन घोष का कहना है। दो स्वरों के मध्य के अल्पप्राण स्पर्श-वर्ण का लोप और महाप्राण का 'ह' रूप में परिणत हो जाना इसकी विशेषता है। महाराष्ट्री के विशेष लक्षण जो इसे शौरसेनी से विभक्त करते हैं इस प्रकार हैं—यहाँ मध्यवर्ती 'त' का लोप होकर केवल स्वर रह जाता है, किन्तु 'द' में परिवर्तित नहीं होता। उसी तरह यहाँ 'थ' ध में परिवर्तित न होकर 'ह' में परिवर्तित हो जाता है और क्रिया का रूप पूर्वकालिक 'ऊरा' लगाकर बनाया जाता है, इनके सिवाय जैन महाराष्ट्री में कहीं-कहीं 'र' का 'ल' तथा प्रथमान्त 'ए' हो जाता है। जैसे जानाति-जाणइ, कथं-कहं, और भूत्वा होऊण आदि।

इस भाषा में भी जैन साहित्य ही विशेष उपलब्ध होता है। विमलसूरिका 'पउम चरिउ' इसी भाषा का पद्य-बद्ध काव्य है। पर इसमें 'य' श्रुतिका अत्यधिक प्रयोग पाया जाता है। श्वेताम्बर जैन

(१) 'मागहद्ध विसयभासाणिवद्धं अद्धमागहं अट्टारस देसी भासा भासणिययं वा अद्धमागहं ॥'—निशीथचूणि

(२) मागधभाषा लक्षणं किञ्चित् किञ्चिच्च प्राकृत भाषा लक्षणं यस्यामस्ति सा अर्धमागध्याः ।

साहित्य की इसमें अधिकता है। आगम ग्रन्थों पर लिखी हुई चर्चाएँ, कथा और चरित साहित्य, जैसे समराइच्चकहा, सुरसुन्दरीचरित्रं, पासणाहचरित्रं और आगमिक ग्रन्थ हैं। हाल की सतसई और जयवल्लभ का वज्जालग महााराष्ट्री प्राकृत के श्रेष्ठ मुक्तक काव्य हैं। संघदास गणी की वसुदेवहिण्डी गद्य काव्य है। इनका समय विक्रम की छठवीं शताब्दी माना जाता है। इनके अध्ययन से यह अवश्य जाना जाता है कि इनसे पूर्व भी कोई साहित्य अवश्य रहा है।

### मागधी

यह मगध देश की भाषा कही जाती है। नाटकों में निम्न वर्ग के पात्रों द्वारा इसका प्रयोग करना पाया जाता है। अन्य प्राकृत भाषाओं में 'य' के स्थान में जहाँ 'ज' का प्रयोग होता है वहाँ इसमें 'य' ही रहता है। हाँ 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग अवश्य पाया जाता है जैसे राजा-लाभ्रा। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के अनुसार इस भाषा में वर्ग के तीसरे, चौथे अक्षरों के स्थान में वर्ग के पहले और दूसरे अक्षर हो जाते हैं। जैसे गिरि-किरि धूली-धूली आदि। इसी तरह अन्य वर्णों में भी विशेषता है। इस भाषा का प्राकृत साहित्य उपलब्ध नहीं है किन्तु व्याकरण ग्रन्थों और नाटकों में इसका प्रयोग अवश्य हुआ मिलता है।

### अर्धमागधी

औरसेनी और मागधी भाषाओं प्रदेशों के मध्य के कुछ भाग में दोनों भाषाओं का मिश्रित रूप अवश्य पाया जाता है, इसी को अर्धमागधी कहते हैं। ७वीं शताब्दी के आचार्य जिनदास गणी, (६३५) महत्तर ने अपनी निशीथ चूर्णी में आधे मगध देश की भाषा को अर्धमागधी बतलाया है। जो अष्टादश देशी भाषाओं से युक्त थी।<sup>१</sup> टीकाकार अभयदेव ने इसमें कुछ लक्षण मागधी और प्राकृत के बतलाये हैं।<sup>२</sup> जैनियों के आगम साहित्य में और अन्य धार्मिक साहित्य में इसका प्रयोग मूलकर पाया जाता है। मागधी के समान इसमें भी अकारान्त संज्ञा के मुख्य रूप से इसका प्रयोग मिलता है। कही-कही र के स्थान पर ल का भी प्रयोग पाया जाता है; और कर्ता कारक एक वचन में ओ का ए हो जाता है किन्तु इसमें 'श' का प्रयोग न होकर 'स' का ही प्रयोग पाया जाता है। भगवान महावीर ने अपना धर्मोपदेश इसी भाषा में दिया था।<sup>३</sup> परन्तु महावीर के निर्वाण से ६५० वर्ष के बाद वलभी में संकलित कर लिपिवद्ध होने वाले श्वेताम्बरीय मूत्र-ग्रन्थों की भाषा में अवश्य परिवर्तन पाया जाता है। इस परिवर्तन के साथ-साथ ईस्वी सन् ३१० से पूर्व मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्य काल में मगध देश में पढ़ने वाले द्वादशवर्षीय दुग्धिका का प्रभाव भी उस पर पड़े बिना नहीं रह सका। दूसरे साधु संघ का विविध देशों में भ्रमण तथा उन-उन देशी भाषाओं के आदान प्रदान से भी उसमें परिवर्तन होना संभव है, आगम साहित्य का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो उसमें वह परिवर्तन अवश्य ज्ञात हो जायगा। इसी को लक्ष्य में रखकर आचार्य हरिभद्र ने जैनागमों की भाषा को अर्धमागधी न कहकर प्राकृत नाम से उल्लिखित किया है<sup>४</sup>। डा० जैकोबी ने जैन वर्तमान मूर्तों की भाषा को अर्धमागधी न बतलाकर जैन महाराष्ट्री बतलाया है<sup>५</sup>। इसी को आर्य और ऋषिभाषिता भी

(२) 'भगवं च रां अर्धमागधीए भासाए धम्ममाइचखड'। —समवायांग मूत्र पत्र ६०

(३) दश वैकालिक वृत्ति पृ० २०३।

(४) Kalpa Sutrā : Sacred Book of the East Vol. XII.

कहा जाता रहा है। अतः अर्धमागधी आर्ष और ऋषिभाषिता ये तीनों एक ही भाषा के पर्यायवाची नाम हैं।

### पैशाची

यह एक बहुत प्राचीन प्राकृत बोली है। इस भाषा का साहित्य नहीं के बराबर है, गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' इस भाषा में रची गई थी, परन्तु दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। पर उसके आधार से रचित ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध है। दो स्वरों के मध्य में वर्णों का तीसरा चौथा वर्ण पहला और दूसरा वर्ण हो जाता है। जैसे वारिद—वारितो आदि। चीनी तुर्किस्तान के खरोष्ट्री शिलालेखों में पैशाची की विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। वररुचि के प्राकृतप्रकाश में (पृ० १०) पैशाची को और-सेनी की आधार-भूत भाषा स्वीकृत की है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व में कांची देश, पाण्ड्य, पांचाल, गौड, मगध, वाचड, दाक्षिणात्य औरसेन, कैंकय, शावर और द्राविड देशों को पिशाच देश बतलाया है।

### अपभ्रंश भाषा और उसका विकास

वैदिक कालीन विभाषाओं—बोलियों—का धीरे-धीरे विकास होता गया, और वे आर्यों की भाषा के उत्तर-पश्चिम प्रदेश से धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैलती गई। भगवान महावीर और गौतम बुद्ध के जन्म समय तक यह भाषा विदेह (उत्तर बिहार) और मगध (दक्षिणी बिहार) तक फैल गई थी। इस आर्य भाषा का रूप उत्तर भारत, बङ्गीरिस्तान, मध्यप्रदेश और पूर्वी भारत में उस समय पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। इसी से उन प्रदेशों की भाषा को उदीच्या, प्राच्या और मध्यदेशीया के नाम से उल्लेखित किया गया है।

उदीच्या—पेशावर और उत्तरीय पंजाब की भाषा कहलाती थी, इसमें अधिक परिवर्तन तो नहीं हुआ; किन्तु प्राच्या का प्रयोग करने वाले वैदिक मर्यादाओं का पालन नहीं करते थे, और वे वेदों को नहीं मानते थे, और न ब्राह्मणों के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों का आचरण ही करते थे; क्योंकि वे ब्राह्मण थे, अर्हन्तों के उपासक थे और चैत्यों के पूजक थे। किन्तु मध्यदेशीया भाषा उदीच्या और प्राच्या के मध्य मार्ग का अनुसरण करती थी। उदीच्या और प्राच्या में व्यंजन समीकरण के अतिरिक्त 'र' और 'ल' के प्रयोग में भी भिन्नता थी। उदीच्या में जहाँ 'र' के प्रयोग की प्रचुरता थी वहाँ प्राच्या में 'र' के स्थान पर

(५) सक्कता पागता चैव दुहा भणितीओ आहिआ ।

सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्या इसिभासिता ॥ —स्यानांग ७ पत्र ३६४ ।

सक्कया पायया चैव भणिईओ होंति दोणिण वा ।

सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्या इसिभासिआ ॥ —अनुयोगद्वार पत्र १३१

१. देखो, इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ. ५६.

अथर्ववेद के १५ वें काण्ड में एक ब्राह्मण सूक्त है, ब्राह्मण ब्रती का पर्यायवाची है। अथर्ववेद के काण्ड ४ सू० ११ मंत्र ११ में ब्रत का पर्यायवाची 'ब्रत्य' शब्द आया है। जिसका अर्थ ब्रत धारण करने वाला होता है। उक्त वेद के ४ थे काण्ड में ब्राह्मण को मागध विज्ञान भी बतलाया है। जिससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण लोग मगध देश के रहने वाले थे। अतएव इनकी संस्कृति 'मगध' कहलाती थी। सामवेदी ताण्ड ब्राह्मण में एक 'ब्राह्मण स्तोम' है, जिसमें ब्राह्मणों का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि 'ब्राह्मण लोग वैदिक यज्ञादि से घृणा करते थे, तथा अहिंसा को अपना मुख्य धर्म मानते थे।' (ताण्ड ब्राह्मण १७-१-५)

“अर्हन्तों के अनुयायी ब्राह्मण कहलाते थे, जिन का उल्लेख अथर्ववेद में है। लिच्छविलोग प्राचीन भारत की एक प्रसिद्ध ब्राह्मण जाति के थे।”

(भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ३६६)

'ल' की श्रौर मध्य देशीया में 'र' 'ल' दोनों का प्रयोग होता था। बाद में इस में भी परिवर्तन श्रौर विशेष-पताएं होती गई।

पूर्वकाल में यद्यपि यात्रा करने के साधन सुलभ नहीं थे। किन्तु व्यापारीजन पूर्व-पश्चिमी-देशों में अपने व्यापार के निमित्त जिस-तिस प्रकार यात्रा जाया करते थे। उससे उन देशों से भाषा सम्बन्धी व्यवहार का आदान-प्रदान बराबर होता रहता था। इसी से अनेक शब्दों का प्रयोग दूसरे देशों की भाषाओं में भी व्यवहृत होने लगा था।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने सन् १५०० ई० पूर्व से लेकर सन् ६०० ईस्वी पूर्व तक प्रथम प्राकृतों अथवा विभाषाओं के अनेक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप बुद्ध और महावीर के समय भारत में भाषा के निम्न रूपों का संकेत किया है।

उदीच्या, मध्यदेशीया श्रौर प्राच्या रूपमें तीन विभाषाएँ विकास पा गई थीं।

वैदिक मूर्त्तों की प्राचीन भाषा छान्दस श्री जिसका व्यवहार ब्राह्मण वर्ग में चल रहा था।

तीसरी वह जो छान्दस भाषा के नूतन संस्करण श्रौर उदीच्या के प्राचीन रूप से विकसित हुई थी, जिसमें प्राच्या श्रौर मध्यदेशीया के तत्त्वों का समिश्रण था। इसी भाषा में संभवतः वैदिक ग्रन्थों के भाष्यादिक भी उम समय लिखे गए थे।

भगवान् महावीर श्रौर गौतम बुद्ध ने अपनी-अपनी देशना श्रौर उपदेश का माध्यम उस समय की बोलचाल की जन साधारण की भाषा को बनाया। इस कारण तत्कालीन प्रांतीय भाषाओं के विकास में क्रान्ति आ गई श्रौर परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं के साहित्यिक विकास का सूत्र-पात प्रारम्भ हो गया।

उस काल में संस्कृत का विकास शिक्षितों में अपनी चरम सीमा को पहुंच चुका था, परन्तु उसमें साम्प्रदायिक संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उसका पूर्णविकास जैसा चाहिए था वैसा न हो सका। यद्यपि वह भारत से बाहर भी गई श्रौर वह वहाँ भी फैली, पर उसे सार्वभौमता का पद प्राप्त नहीं हो सका।

ईसा की छठी शताब्दी से ईसा की १० वीं शताब्दी तक की प्रचलित विभाषाओं को त्रिवर्तन ने दूसरी श्रेणी की प्राकृत (Secondary Prakrits) बतलाया है\*।

किन्तु डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उस काल की भाषा को मध्यकालीन आर्य भाषा (Middle Indo Aryan Speech) कहा है श्रौर उसे तीन भागों में विभक्त किया है। इस काल को मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल कहा जा सकता है।

(१) मध्य कालीन आर्यभाषा की प्रारम्भिक अवस्था (४०० ई० पूर्व से लेकर १०० ईस्वी तक) प्रारम्भिक प्राकृत भाषाओं का काल माना जाता है।

(२) भारतीय आर्य भाषा की मध्यकालीन अवस्था (१०० ई० से ५०० ई० तक) साहित्यिक प्राकृतों का काल माना जाता है। किन्तु वर्तमान में प्राकृत भाषा का साहित्य ५०० ईस्वी के बाद का रचा हुआ भी उपलब्ध होता है। कौतूहल की 'लीलावती', निस्सन्देह उत्तर काल की, रचना है श्रौर 'गोउड्यहो' का रचना काल भी ७ वीं - ८ वीं शताब्दी माना जाता है। इसके अतिरिक्त हरिभद्र, कुमारस्वामी, देवसेन, पद्मनन्दि, नेमिचन्द्र, पद्मसिंह (१०५६) श्रौर हेमचन्द्र आदि अनेक जनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में (६६०) अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। जिससे उक्त सीमा का निर्धारण विचारणीय है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की उत्तर कालीन अवस्था का समय ५०० ई० से १००० ई० तक भाषा विज्ञानी प्रकट करते हैं और उसे अपभ्रंश का नाम दिया गया है। किन्तु यह भी चिन्तनीय है; क्योंकि वर्तमान में अपभ्रंश भाषा का साहित्य ८ वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक का रचना हुआ उपलब्ध होता है। अतएव अपभ्रंश का रचना काल ५०० ई० से १३०० ई० तक मानना ही चाहिये। कारण कि उत्तरवर्ती साहित्य में हिन्दी का विकसित रूप भी देखने में आता है और १३वीं शताब्दी तक की रचनाओं में उतनी प्रौढ़ता तो नहीं है। किन्तु रचना शैथिल्य भी नहीं पाया जाता आठवीं शताब्दी से १३वीं, १४ वीं तक अपभ्रंश के साहित्य की प्रचुरता रही है।

### प्रान्तीय भाषाओं का विकास

द्वितीयश्रेणी की प्राकृत भाषाओं से भिन्न-भिन्न प्रादेशिक अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति मानी जाती है और वर्तमान प्रान्तीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है। शौरसेनी अपभ्रंश से वज्र भाषा, खड़ी बोली राजस्थानी, पंजाबी और गुजराती भाषाओं का सम्बन्ध है। किन्तु इनमें से शौरसेनी के 'नागर अपभ्रंश' से राजस्थानी और गुजराती का सम्बन्ध विशेषरूपसे स्वीकृत किया जाता है। 'मागध अपभ्रंश' से भोजपुरी, उड़िया, बंगाली, आसामी, मैथिली और मगही का विकास हुआ माना जाता है। सिन्धी भाषा का विकास ब्राह्मण अपभ्रंश से हुआ कहा जाता है महाराष्ट्री से मराठी के विकास का सम्बन्ध अब विद्वान नहीं मानते। इन प्रान्तीय भाषाओं के विकास के पूर्वकाल में ये सब भाषाएँ अपनी अपनी भिन्न-भिन्न अपभ्रंशों से प्रभावित हुई दिखलाई देती हैं और उत्तरकालीन अपभ्रंश का साहित्य भी प्रान्तीय भाषाओं से प्रभावित हुआ जान पड़ता है। उसमें प्रचुरता से तत्सम देशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। आज जिसे हम पुरानी हिन्दी कह कर पुकारते हैं वही वर्तमान हिन्दी का पूर्व रूप है। इससे यह स्पष्ट है कि वे पुरातन रचनाएँ हिन्दी की जनक हैं। अथवा हिन्दी के विकास में उन का योगदान महत्वपूर्ण है।

### देशी भाषा की सहता

अपभ्रंश देशी भाषा कहलाती थी। संस्कृत भाषा को शुद्ध मानने वाले वैयाकरण भी देशी भाषा को भ्रष्ट-अपभ्रष्ट या विगड़ी हुई भाषा कहते थे। स्वयंभू, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, लक्ष्मण, लाखू, वाग्भट्ट, पादलिप्त आदि कवियों ने भी अपभ्रंश को देशी भाषा बतलाया है।<sup>१</sup> और विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता में देशी वचनों को मिष्ट प्रकट किया है—

१ (क) देशी भासा उभय तडुज्जल, कवि दुक्कर घण सह सिलायल । —स्वयंभू पद्य चरित ।

(ख) देस देसि भाषा लिवि ठाणइं, कइ बायालंकार विहाणइं । —पुष्पदन्त महापुराण ५, ६-१०

(ग) वायरण देसि सहृथ गाढ, छंदालंकार विलास पोढ ।

स-समय-पर समय वियार सहिय, अचसद् वाय दूरेण रहिय ॥

—पद्मकीर्ति पासणाह चरित

(घ) ण समाणमि छंदु ण बंधभेउ, ण उ हीणाहिउ मत्ता समेउ ।

ण उ सक्कअ पाउअ देसभास, णउ सददु वण्णु जाणमि समास ॥

लक्ष्मण पेमिणाहचरित पीठिका

सकय वाणी बहुश्र [न] भावड, पाडअ रस को मम्म न पावड ।

देसिल वअना सव जन मिट्टा, तं ते सन जंपिज अरवहट्टा ॥

अर्थात् संस्कृत वाणी बहुश्र को अच्छी नहीं लगती, प्राकृत रस का मर्म नहीं प्राप्त करती । देशी वचन सबसे मीठे होते हैं । इसीलिए मैं अपभ्रंश में कथा कहता हूँ ।

पादलिप्त ने अपनी तरंगवती कथा देशी भाषा में बनाई थी\* । ग्रन्थ कारों ने अपभ्रंश भाषा में जो ग्रंथ बनाये, उन्होंने उन ग्रंथों की भाषा देशी बतलाई है । वही देशी भाषा अपभ्रंश है । वैयाकरण जिस भाषा को अपभ्रंश प्रकट करते हैं उसमें ग्रंथ रचना करने वाले ग्रंथकार उसे देशी भाषा कहते हैं ।

वास्तव में अपभ्रंश या देशी भाषा में स्वभावतः माधुर्य तो है ही, पद लालित्य की भी कमी नहीं, पद सरल सरस तथा सुबोध हैं इसी से उस काल में देशी भाषा जनसाधारण के गौरव को प्राप्त कर सकी । पर संस्कृत में वैसी धामता नहीं, क्योंकि वह साम्प्रदायिकता से ऊँचे नहीं उठ सकी । यद्यपि जैन और बौद्धों का विशाल साहित्य भी संस्कृत में रचा गया; परन्तु उसकी विशेष महत्ता ब्राह्मण साहित्य में ही रही, वह साम्प्रदायिक संकीर्ण दृष्टिकोण से निकलकर जन साधारण का गौरव प्राप्त नहीं कर सकी ।

पर अपभ्रंश दृष्टिकोण के चक्रव्यूह से अलग रहती हुई अपनी निदा और बुराई को सुनती हुई भी जनसाधारण के कण्ठ को विभूषित करती रही, राज्य सभाओं में भी आदर पा सकी और विद्वानों के कण्ठ का भूषण बनी रही । इसी से उसका लोकध्यापी महत्व रहा है । जब वह अपने मध्याह्न काल में बहु-मूल्य प्रबन्धकाव्यों में गुम्फित हो रही थी, तब उसकी तेजस्विता, वाच्य विन्यास और पद गाम्भीर्य अर्थके प्रतिपादक थे, उनमें महानता और सरसता आदि सदगुण स्वभावतः अद्भुत हो रहे थे । धर्म भाषा और साहित्य के विकास में राज्याश्रय का मिलना अपना खान महत्व रखता है । इनके विकास और समृद्ध होने में राज्याश्रय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । बिना राज्याश्रय के उक्त भाषा अथवा धर्म पनप नहीं सके । इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन धर्मों और भाषाओं को उचित राज्याश्रय मिला वे लोक में समुन्नत और विकास पाते गये । लोक में वे आगे बढ़ने में समर्थ हो सके । अपभ्रंश भाषा के विकास में भी राज्याश्रय की आवश्यकता हुई ।

## राज्याश्रय

अपभ्रंश भाषा का उपलब्ध साहित्य विभिन्न देशों और विभिन्न समयों में रचा गया है । अपभ्रंश के विकास में अनेक राजवंशों और देशों के राजाओं का सहयोग मिला है । इसी से वह अपना विकास कर सकी । मान्यनेट (बरात), गुजरात, मालवा, भारवाड़, राजस्थान, बंगाल, दिल्ली और उत्तर प्रदेश में अपभ्रंश साहित्य रचा गया ।

(३) देग भास लवलण ण तक्कप्रो, मुणमि णेव अायमहि गुएअओ ।

पय समित्ति विरिया विनेगया, मंधि खंहु चायरण भागया ॥

—तामू जिनदत्तवरिन सधि १

पालिसएण रइया विरवरओ तहव देसिवपणेहि ।

णामेण तरंगवई बहा विचित्ता य विडत्ता य ॥

—पादलिप्त, तरंगवणी

२. देशी टा० शैली की शत सणशुभारचरित की भूमिका, पृ० नं० १८ ।



यद्यपि स्वयंभू से पूर्ववर्ती अनेक कवि हो गये हैं किन्तु उनका साहित्य अभी उपलब्ध ही नहीं है। कविवर चउमुह (चतुर्मुख) का भी साहित्य उपलब्ध नहीं है। अतएव वर्तमान में स्वयंभू को ही आद्य कवि माना जाने लगा है।

मान्यखेट के सभी राष्ट्रकूट राजागण जैन नहीं थे, किन्तु वैष्णव धर्मानुयायी भी थे, हां, अमोघवर्ष अवश्य जैन हो गया था। उनके राज्य में जैनधर्म को कोई आंच नहीं आई थी; क्योंकि उन राजाओं के राजमन्त्री प्रायः जैनधर्मावलम्बी थे। अमोघवर्ष जिनसेनाचार्य का शिष्य था, जैनधर्म पर उसकी बड़ी आस्था थी, इतना ही नहीं, वह विवेकपूर्वक अपने राज्य का परित्याग कर तपस्वी बन गया था। उनके राज्यों में जैन मुनियों और विद्वानों को आश्रय मिला हुआ था, इसासे वे ग्रंथ रचनादि कार्य में प्रवृत्त हो सके।

राष्ट्रकूट राजा ध्रुव (वि० सं० ८३७-८५१) के अमात्य रयडा धनंजयने महाकवि स्वयंभू को आश्रय दिया था, और उनके पुत्र धवलासिय ने त्रिभुवनस्वयंभू को। पउमचरिउ 'और रिट्टुगेमिचरिउकी रचना उन्हीं के अनुरोध से हुई थी। इसी तरह कृष्ण तृतीय (वि० सं० ९९६-१०२५) के मंत्री भरत और उनके पुत्र नन्न ने महाकवि पुष्पदन्त को आश्रय दिया था। मंत्री भरत की प्रेरणा से ही महापुराण की रचना हुई थी। उस समय वरार जैन वैश्यों का केन्द्र था, और वरार गुजरात मालवा आदि प्रदेशों का वाणिज्य भी प्रायः उन्हीं के हाथ में था। यद्यपि जैन लोग भारत के प्रायः सभा देशों में व्यापार के निमित्त आया जाया करते थे। (व्यापार और तीर्थयात्रा का जैनियों में खूब प्रचार रहा) है। उन्होंने संस्कृत की अपेक्षा देशी भाषा को अधिक प्रश्रय दिया था और उन्हीं के सहयोग से अपभ्रंश राष्ट्रीय भाषा के रूप में पल्लवित हो सकी थी।

दशवीं शताब्दी के बाद जब राष्ट्रकूटों का पतन हो गया, तब गुजरात केन्द्र बन गया। ११ वीं शताब्दी में गुजरात के सोलंकी राजाओं ने भी अपभ्रंश साहित्य के विकास में पर्याप्त सहायता की और ग्यारहवीं शताब्दी में गुजरात के सोलंकी राजाओं ने भी अपभ्रंश साहित्य के विकास में पर्याप्त सहायता प्रदान की। वहाँ जैनधर्म का विकास भी हुआ और राजा कुमारपाल ने तो स्वयं आचार्य हेमचन्द्र के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जैनधर्म स्वीकृत किया था। उनके राज्य में ही हेमचन्द्र ने 'अपभ्रंश व्याकरण, और देशीनाममाला की रचना की। सोलंकी राजा कर्णदेव के समय में सं० ११२३ में कवि श्रीचन्द ने रयणकरण्डसावयायार' और कथाकोश की रचना की थी।

चालुक्य वंशी राजा वह्निगदेव के पुत्र कृष्ण नरेन्द्र के राज्यकाल में गोध्रा में अमरकीर्ति ने नेमिणाह चरिउ (१२४४) और षट कमेपिदेश की रचना सं० (१२४७) में की थी। मालवा में राजा भोज (जयसिंह) के राज्य में नयनन्दी ने सं० ११०० में सुदंशण चरिउ और सयलविहिविहाणकव्व की रचना की। साथ ही परमारवंशी राजा देवपाल के समय में कवि दामोदर ने 'रोमिणाहचरिउ' की रचना सं० १२८७ में की।

बंगाल में पालवंश के राज्यकाल में अपभ्रंश को उचित सम्मान मिला। बंगाल दीर्घकाल तक बौद्धों का केन्द्र रहा। पालवंश के राजा स्वयं बौद्धधर्मानुयायी थे। अतएव बौद्धतांत्रिकों के अपभ्रंश साहित्य के निर्माण में उनका पूरा सहयोग रहा। पालों के बाद बंगाल में सेनवंश का राज्य रहा, उनसे अपभ्रंश को कोई सहयोग नहीं मिला; क्योंकि वे ब्राह्मण धर्मानुयायी थे।

दिल्ली के तोमरवंशीय राजा अनंगपाल तृतीय के राज्यकाल में भी अपभ्रंश ग्रंथों की रचना हुई। अनंगपाल के मंत्री नट्टलसाहुकी प्रेरणा से सं० ११८९ में कवि श्रीधरने 'पासणाहचरिउ' की रचना

की थी। मुसलमानी शासनकाल में—मुगल बादशाह बाबर के समय दिल्ली में कवि महिदु या महाचन्द्र ने सं० १५८७ में 'सतिशाहचरित' की और मुबारिक शाह के राज्यकाल में उनके मंत्री साह हेमराज के अनुरोध से म० यगःकीर्ति ने सं० १४९७ में पांडवपुराण की तथा सं० १५०० में हरिवंश पुराण की रचना की। ग्वालियर के तोमर वंशी राजाओं के राज्य काल में भी जैनधर्म और जैन साहित्य के निर्माण में अच्छा प्रोत्साहन मिला। राजा डूंगरसिंह और कीर्तिसिंह (पिता-पुत्र) दोनों ही जैनधर्म पर पूर्ण आस्था रखते थे। ग्वालियर के किले में जैनमूर्तियों के निर्माण में इन्होंने पर्याप्त धन खर्च किया था। इनके शासन काल (वि० सं० १४८१ से १५३६ तक) में कवि रङ्गू ने लगभग २५ अपभ्रंश 'ग्रंथों की रचना की थी। उस काल में वहाँ जैनधर्म का खूब प्रसार रहा।

चन्द्रवाड आदि के चौहानवंशी नरेशों के राज्य काल में, यद्यपि ये नरेश जैनधर्म के अनुयायी नहीं थे, किन्तु; उनका जैनधर्म के प्रति कोई अन्याय न था, प्रत्युत जैनधर्म के प्रति उनका सदा सद्भाव बना रहा, कारण कि उनके मन्त्रीगण और राजप्रेषी जैनधर्म के अनुयायी थे। उनका जैन साहित्य की रचना और मन्दिरों के निर्माण में पूरा सहयोग रहा है। इसी समय कवि लक्ष्मण ने 'अणुवयरयणपईव' और धनपाल ने 'वाहुवलीचरित' की रचना की।

दृटावा के समीप करहल के चौहानवंशी राजा भोजराज के समय उनके मन्त्री गोलालारीय साह अमरसिंह की प्रेरणा से कवि असवाल ने सं० १४७९ में 'पादर्वनाथ चरित' की रचना की थी। इस तरह राज्याश्रय को पाकर अपभ्रंश साहित्य का विकास हुआ। आगे चलकर इस भाषा की धारा देशभाषा का आश्रय लेकर हिन्दी के रूप में विकास पाती रही, और नाथ-सिद्धों की वारिणियों में, कबीर आदि सन्तों के पद-साथी आदि में और जैन कवियों की रचनाओं में उज्जीवित होती रही। इस तरह इस अपभ्रंश भाषा का विकास बराबर होता रहा, पश्चात् वही हिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित होगई। हिन्दी भाषा के कवियों ने अपभ्रंश की सरणी का अनुसरण करते हुए अपनी कृतियों को उपयोगी बनाने का प्रयत्न भी किया है। इसीलिए आज अनेक विद्वान् इस अपभ्रंश भाषा के साहित्य को पुरानी हिन्दी या हिन्दी का साहित्य मानने लगे हैं। यद्यपि अब अपभ्रंश भाषा में साहित्य रचना नहीं हो रही है, परन्तु अपभ्रंश के अध्ययन के बिना हिन्दी का विकास भी पूर्णता को नहीं पा सकता। अतः आज अपभ्रंश भाषा के विविष्ट अध्ययन की पूर्ण आवश्यकता है।

### अपभ्रंश भाषा का उपलब्ध साहित्य और उसका वर्गीकरण

अपभ्रंश भाषा के उपलब्ध साहित्य पर जब हम विचार करते हैं तब हमें इसकी विशेषताओं का परिज्ञान सहज ही हो जाता है। इस साहित्य में कथन की क्रमबद्धता, छन्दविस्तार, घटना-वाहुल्य, सत्पात्रों का चुनाव, आदि गुण इसकी महत्ता के द्योतक हैं। रसात्मकता, भाषा में श्रोज और भाव्युर्गुण इस के आकर्षण के कारण रहे हैं। इसी से यह जन साधारण द्वारा अपनायी गई जान पड़ती है। अपभ्रंश साहित्य का मनन करने से हिन्दी भाषा के विकास का अच्छा इतिवृत्त संकलित किया जा सकता है। यह साहित्य प्रबन्ध या महाकाव्य, गण्डकाव्य, रूपककाव्य, मुक्तककाव्य, सन्धिककाव्य, कथाकाव्य और रासाकाव्य आदि के रूप में मिलता है। वर्तमान में न अपभ्रंश का कोई स्वतन्त्र गद्य ग्रंथ उपलब्ध है और न कोई नाटक ही। पर संस्कृत के नाटकों में अपभ्रंश भाषा के गद्य पद्य दोनों के दर्शन अवश्य होते हैं। कुवलय-माला में भी अपभ्रंश गद्य मिलता है। अपभ्रंश भाषा के दो निम्नलिखित भी उपलब्ध हैं।<sup>१</sup>

१. देवी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा० ६, अङ्क ४, पृष्ठ ५ में रायबहादुर हीरालाल का इन्कृष्यन। यह लेख विषम की १२वीं गतावली का यत्नाया जाता है। दूसरा लेख बम्बई म्यूजियम में सुरक्षित है।

### प्रबन्धकाव्य

विश्व साहित्य में संभवतः सबसे प्रथम भारतवर्ष में ही काव्य-ग्रन्थ लिखे गये। इस देश में प्रबन्ध काव्य लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इससे पहले पुराणादि ग्रन्थ ही लिखे जाते थे। ये पुराण प्रबन्ध-काव्यात्मक रचना हैं। प्रबन्धकाव्यों में इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार वर्णन, भावाभिव्यंजना और संवाद ये चार अवयव होते हैं। कथा में पूर्वापर क्रमवद्धता आवश्यक है इसके बिना कोई काव्य प्रबन्धकाव्य नहीं कहला सकता। अपभ्रंश भाषा में प्रबन्ध काव्य बहुसंख्या में लिखे गए उपलब्ध हैं, उनमें पूर्वापर क्रम-वद्धता के साथ कथा के मार्मिक स्थलों की परख होना जरूरी है, इससे प्रबन्धकाव्य की रचना में सफलता मिलती है। जैन अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों में वस्तुव्यापार वर्णन तो सुन्दर है ही; किन्तु संवाद इतने प्रभावक और आकर्षक होते हैं कि उनसे इन प्रबन्ध काव्यों के निर्माताओं की सहृदयता का सहज ही आभास मिल जाता है। इन प्रबन्धकाव्यों का विषय प्रायः राम और कृष्ण की कथा ही रहा है।

संस्कृत प्रबन्धकाव्यों में नायक के चरित-चित्रण के अतिरिक्त उपाकाल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, संध्या, रजनी, नदी, पर्वत, समुद्र, ऋतु, युद्ध और यात्रा आदि दृश्यों का वर्णन सालंकार किया गया है<sup>१</sup>। ऐसा करते हुए भी कवियों ने उनमें अनेक चमत्कारों को भी दिखलाया है। ये सब कथन अल्प या बहुत मात्रा में सभी भाषाओं के प्रबन्धकाव्यों में उपलब्ध होते हैं। हाँ, प्राकृत प्रबन्धकाव्यों में कुछ नई प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। उनमें अनेक स्थलों पर ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र अंकित मिलते हैं। अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों में ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं जो जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

संस्कृत भाषा में हमें दो प्रकार के काव्य मिलते हैं। उनमें कुछ काव्य ऐसे हैं जिनमें कथा का विस्तार, घटनावाहुल्य और उसके साथ ही साथ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन प्रचुरता से किया गया है और कुछ ऐसे भी हैं जिनमें कथा बहुत ही संक्षिप्त है, किन्तु प्राकृतिक वर्णनों के विस्तार में प्रचुर काव्यत्व दृष्टि गोचर होता है। प्राकृत में भी इन दोनों शैलियों के दर्शन होते हैं। यदि सेतु-बन्ध में रामकथा का विस्तार है, तो गउडवहो में गौड राजा के वध का कथन अति संक्षिप्त (३-४ पद्यों) में ही दिया गया है और अन्य काव्योचित वर्णनों का पर्याप्त रूप में स्थल-स्थल पर समावेश है।

अपभ्रंश के महाकाव्यों में भी हमें वर्ण्य विषय का पर्याप्त विस्तार मिलता है। कथा-पात्रों के अलौकिक चमत्कारों, भवान्तरों की कथाओं और पौराणिक आख्यानों के कारण कथा का विस्तार अधिक बढ़ गया है, जिससे कथा-सूत्र के समझने में कठिनाई हो जाती है। अनेक कथाओं और अवान्तर उप कथाओं में उलभे हुए अनेक स्थलों में यद्यपि सुन्दरता के दर्शन होते हैं, फिर भी उन में कवित्व प्रचुर परिमाण में प्रकट नहीं हो सका है और कविता में विषय की अपेक्षा कवित्व का विस्तार कम ही हुआ है।

१. सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोपध्वान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसगराः ॥

संभोगविप्रलम्भी च मुनि स्वर्गपुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥

वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपांगाग्रमी इह ।

साहित्यदर्पण ६ परि० से ३२२-३२४

## महाकाव्य

साहित्यकारों ने 'सर्गबन्धो महाकाव्य'—'इस लक्षणानुसार महाकाव्य का विभाजन अनेक सर्गों में किया है। कथा का सर्गबद्ध होना आवश्यक है, सर्गों की संख्या का भी वहाँ निर्देश किया गया है। संस्कृत महाकाव्यों में कथा अनेक आश्वसों (सर्गों) में विभक्त मिलती है; किन्तु प्राकृत में कुछ काव्य ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें पद्य-कथा को आश्वसों में विभक्त नहीं किया गया। 'गउडवहो' में विभिन्न विषयों और घटनाओं को कुलकों और महाकुलकों में बाँधा गया है। 'लोलावडकहा' आदि कुछ काव्य सर्गों या आश्वसों में विभक्त नहीं हैं। इस तरह प्राकृत महाकाव्यों में आश्वसों और सर्गोंका लोप होगा। प्राकृत काव्यों की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रभाव संस्कृत महाकाव्यों पर भी पड़ा है।

अपभ्रंश महाकाव्य में कथा वस्तु अनेक सन्धियों में विभक्त होती है और प्रत्येक सन्धि अनेक कडवकों के मेल से बनती है। सन्धियों की संख्या का वहाँ कोई नियम नहीं है। धवल कवि के 'हरिवंश' में १२२ सन्धियाँ हैं और पुष्पदन्त के महापुराण में १०२ सन्धियाँ दी हुई हैं। अपभ्रंशभाषा के महाकाव्यों में यद्यपि वर्णनीय विषय को संस्कृत महाकाव्यों के अनुसार ही दिया है, किन्तु वे काव्योचित मर्यादा का पूर्ण रूप से पालन करने में असमर्थ रहे हैं। इन महाकाव्यों में अपभ्रंश की कुछ परम्परागत रूढ़ियों का भी पालन होता रहा है। अपभ्रंश के प्रायः सभी महाकाव्य सन्धियों में विभक्त हैं। किन्तु स्वयंभू के दोनों महाकाव्य काण्डों में विभक्त होकर भी सन्धियों में रखे गए हैं। यह पद्धति बहुत पुरानी है। संस्कृत भाषा के काव्यों और ग्रन्थों में इसका प्रचलन था, आचार्य अकलंकदेव ने अपने तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रन्थ को अध्यायों में विभक्त करके भी उन्हें आह्निकों में विभाजित किया है। महाभारत में यह क्रम अध्यायों में पर्वों या सर्गों के रूप में मिलता है, और रामायण में काव्यों को सर्गों में विभाजित कर दिया गया है। एक एक अध्याय में अनेक आह्निक मिलते हैं।

कविराज विद्वनाथ ने साहित्यदर्पण में भ्रमवश यह लिख दिया कि—अपभ्रंश महाकाव्यों में सर्गों की जगह कडवक या कडवक होते हैं\*। पर ऐसा नहीं है। अपभ्रंश महाकाव्यों में संधि या सर्ग अनेक कडवकों के समूह से बनती है। कडवकों का प्रयोग वहाँ पद के रूप में हुआ है। १५ से ३० कडवकों या इससे अधिक की एक संधि होती है। इसी कारण सन्धियों का आकार छोटा या बड़ा देखने को मिलता है। अपभ्रंश काव्यों में प्रत्येक कडवक के प्रारम्भ में और अन्त में एक घत्ता रहता है। इस नियम का निर्वाह कुछ काव्यों में पूर्ण रूप से मिलता है और कुछ में कम। अपभ्रंश काव्यों की कडवक-योजना का प्रभाव हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यों पर पड़ा है। रामचरित मानस और पद्मावत आदि में कुछ चौपाइयाँ रखकर दोहा या कहीं कहीं हरिगीतिका छन्द रचवा गया है। कवि लक्ष्मण का 'रोमिणाहचरित' रड्ढा छन्द में रचा गया है और सुदंशरचरित पद्धडिया छन्द के अतिरिक्त विविध छन्दों से विभूषित है। अब्दुलरहमान के सन्देशरासक में कडवकबद्धता नहीं है। पुष्पदन्त के काव्यों में नाना छन्दों का प्रयोग हुआ है। पर वे सब कडवकबद्ध ही हैं। 'संस्कृत के कुछ महाकाव्यों में मंगलाचरण और वस्तुनिर्देश के बिना भी काव्यारंभ देखा जाता है, यह परम्परा परवर्ती काव्यों में नहीं है। अपभ्रंश भाषा के प्रायः सभी काव्य मंगलाचरण और वस्तु निर्देश आदि की परम्परा को लिये हुए हैं, इसी का हिन्दी के काव्यों में अनुसरण किया गया है।

१. सर्गबन्धो महाकाव्य—साहित्यदर्पण ६ परि० ३१५।

२. अपभ्रंशनिबन्धैःस्मिन्सर्गाः कुट्टकानिधियाः।

सपापभ्रंश योग्यानि छन्दानि विविधान्यपि ॥ —साहित्यदर्पण ६-३२०

## अपभ्रंश काव्यों में रोमांचकता

कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश काव्यों में रोमांचकता को रूढिपरक बतलाकर उनके औचित्य को निरर्थक सिद्ध किया है। डा० शम्भूनाथसिंह ने अपने 'हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास' नाम के ग्रन्थ में रोमांचक शैली के महाकाव्यों के कुछ नाम गिनाये हैं और उन्होंने उन पर विचार करते हुए उनकी कुछ परम्परागत रूढियों को दिखाने का प्रयत्न किया है :

- (१) भविसयत्तकहा—धनपाल ।
- (२) सुदंसराचरिउ—नयनन्दि सं० ११०० ।
- (३) विलासवइकहा—साधारण कवि ११२३ ।
- (४) करकंडुचरिउ—कनकामर ।
- (५) पज्जुण्णकहा—सिद्ध तथा सिंह ।
- (६) जिणदत्तचरिउ—कविलक्ष्मण वि० सं० १२७५ ।
- (७) राणकुमारचरिउ—माणिक्यराज सं० १५७५ ।
- (८) सिद्धचक्कमाहप्प (श्रीपाल कथा)—रइधु ।

डा० साहब की मान्यता है कि—

(१) वस्तुतः ये कथाएँ लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं के आधार पर लिखी गई हैं। जिनमें कवियों ने कुछ धार्मिक बातें जोड़कर कथात्मक काव्य या चरित काव्य बनाने का प्रयत्न किया है।

(२) इन काव्यों में युद्ध और प्रेम का वर्णन पौराणिक शैली के काव्यों की अपेक्षा अधिक है, और विकसनशील महाकाव्यों में रोमांचक तत्त्व अधिक होते हैं। जैनों ने धार्मिक आवरण में रोमांचक काव्य लिखे हैं।

(४) इन काव्यों में अतिशयोक्ति पूर्ण बातें अधिक हैं। इनमें साहसपूर्ण कार्य, वीहड़ यात्राएँ, उजाड़नगर, भयंकर वन में अकेले जाना, मत्त गज से युद्ध, उग्र अश्व को वश में करना, यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरादि से युद्ध, समुद्रयात्रा और जहाज टूटने आदि का वर्णन मिलता है। इससे कथा में रोमांचकता का गुण बढ़ जाता है और पाठक की जिज्ञासा की तृप्ति होती है। यह कथा-आख्यायिका का गुण है, जिसे इन काव्यों में अपना लिया गया है। इस विषय में मेरा विचार इस प्रकार है :—

डा० साहब की उक्त मान्यतानुसार इन जैन काव्यों को रोमांचक मान भी लिया जाय, तो भी इनसे रागवृद्धि और अनैतिकता को कोई सहारा नहीं मिलता; क्योंकि जैन कवियों का लक्ष्य 'विशुद्धि' रहा है। इन अपभ्रंश काव्यों में शृंगारादि सभी रसों का वर्णन है। किन्तु ग्रन्थकारों ने शृंगार को वैराग्य में और वीर रस को शान्तरस में परिवर्तित किया है, और नायक के विशुद्ध चरित को दर्शाने का उपक्रम किया है। अन्य रोमांचक काव्यों में जैसी रागवर्द्धक कथाओं, लोक-गीतों, यात्रा और वन-गमनादि की घटनाओं को अतिरंजित रूप में उल्लिखित किया गया है, साथ ही शृंगारादि रसों का वर्णन भी रागोत्पादक हुआ है, जो मानव जीवन के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध नहीं होता, वैसा वर्णन इन जैन अपभ्रंश काव्यों में नहीं मिलता। अतः उन्हें अन्य रोमांचक काव्यों की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता। यहाँ सुदंसराचरिउ की मौलिकता और विशेषता पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

## सुदंसणचरित्र

नयनन्दि के 'सुदंसणचरित्र' में सतर्कता खूब बरती गई है। उसमें 'भविसयत्त कहा' और 'जिनदत्त चरित्र' जैसी लौकिक तथा आश्चर्यजनक घटनाओं को स्थान नहीं दिया गया। ग्रंथ में एक व्यंत्तर का धाड़ी वाहन राजा से युद्ध करने और राजा को सुदर्शन की शरण में पहुंचाने का उल्लेख अवश्य है, जो सुदर्शन के शील और पुण्य का परिचायक है। इतने मात्र से उस पर वैसी रोमांचकता नहीं लादी जा सकती। वह खंड काव्य होकर भी महाकाव्य की कोटिका ग्रन्थ है। ग्रन्थ में रामोकार मंत्र के फल का वर्णन किया है। उसमें सेठ का एक मात्र ध्येय आत्म-विकास करना, और अभयारानी आदि की कुत्सित वृत्तियों से अपने को संरक्षित कर तथा ब्रह्मचर्यव्रत में निष्ठ रहकर पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त करना रहा है।

सुदर्शन के स्वभाव में अपनी विशेषता है, वह धीर, उदात्त और प्रगान्त नायक है, वह अपनी प्रतिज्ञा पर अडोल रहता है, उसे संसार का कोई भी प्रलोभन पथभ्रष्ट करने में समर्थ नहीं हो सका। कंचन और कामिनी के राग से विरले ही अपने को अलग रख पाते हैं, बड़े-बड़े तपस्वी भी भ्रष्ट हो जाते हैं।

कवि ने इसका मौलिक विवेचन किया है। उससे उक्त काव्य की आत्मा चमक उठी है। इस कारण उसे भविसयत्तकहा के समान रोमांचक काव्य नहीं कहा जा सकता। सुदर्शन ने अपने चरित्र की विशुद्धता से मानवता के कलंक को धो दिया है। अतएव मैं ही इसे विशुद्ध काव्य नहीं कहता; नयनन्दि ने स्वयं भी उसे निर्दोष काव्य माना है जैसा कि उनके निम्न पद्य से स्पष्ट है :—

रामो सीय-विश्रोय-सोय-विदुरं संपत्तु रामायणे।

जादं पंडव-धाथरदृ सददं गोतं-कलीभारहे ॥

डेडा कोलियचोररज्जुणिरदा आहासिदा सुदये।

एणे एकं पि सुदंसणस्स चरिदे दोसं समुब्भासिदं ॥

उन्होंने काव्य का आदर्श व्यक्त करते हुए लिखा है कि रामायण में राम और सीता के वियोग और शोक जन्य व्याकुलता के दर्शन होते हैं, और महाभारत में पांडवों और धार्तराष्ट्रों (कीरवों) के परस्पर कलह और दारकाट के दृश्य अंकित मिलते हैं तथा लोक-शास्त्र में भी कौलिक, चौर-व्याध आदि की कहानियाँ सुनने में आती हैं किन्तु इस सुदर्शनचरित्र में ऐसा एक भी दोष नहीं कहा गया है।

इस ग्रंथ को कथन शैली, वाक्य-विन्यास, सुन्दर सुभाषित और विविध छन्दों में वस्तु वर्णन, पाठक के हृदय को आकर्षित करते ही है।

डा० हरिवंश कोछड़ ने भी अपभ्रंश साहित्य में युद्ध प्रसंगादि की घटनाओं को अनावश्यक माना है।

इस सब कथन पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन अपभ्रंश काव्यों के सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों द्वारा अब तक जो भी लिखा गया है वह सब एकांगी है। जैन विद्वानों का कर्तव्य है कि वे निष्पक्ष दृष्टि से इस पर विचार करें और रोमांचक काव्यों की परिभाषा का विस्तारण कर उसके औचित्य-अनौचित्य पर प्रकाश डालें और अपभ्रंश साहित्य की महत्ता को लोक में प्रतिष्ठित करें।

## सन्धि-काव्य

एक ही सन्धि में विभक्त होने वाले काव्यों को एक सन्धि काव्य कहा जाता है। अपभ्रंश के लण्ड सन्धि काव्यों की परम्परा केवल श्वेताम्बर सम्प्रदाय में पाई जाती है। किन्तु ये सब परवर्ती काल की रचनाएँ हैं। इनमें भी जीवन चरित की परम्परा उपलब्ध होती है। उपलब्ध सन्धिकार्य सं० १२८७ से १४५० तक के रचे हुए हैं; संभव है इसके बाद भी कुछ रचे गए हों, पर वे अपभ्रंश भाषा के न होकर हिन्दी या राजस्थानी भाषा में ही लिखे गए जान पड़ते हैं। ये सन्धिकार्य पाटन आदि के जैन शास्त्रभण्डारों से उपलब्ध हुए हैं। उदाहरणार्थ जिनप्रभसूरि ने अनाथ सन्धि सं० १२९७ में, जीवानुसंधी ३१८ पद्यों में और मयरा-रेहा-सन्धि १२९७ में बनाई है। वरदत्त ने वज्रवामिसन्धि, रत्नप्रभ ने अन्तरंगसन्धि, तथा सं० १२९८ में जिनप्रभ सूरि के शिष्य ने नर्मदासुंदरीसंधि की रचना की है।<sup>१</sup>

अपभ्रंश के सन्धि-काव्यों के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए राजस्थानी पत्रिका में प्रकाशित श्री अग्ररचन्द नाहटा का 'अपभ्रंश भाषा के सन्धि-काव्य और उनकी परम्परा' नाम का लेख पढ़ें।

## कथा साहित्य

भारतीय वाङ्मय में कथा, पुराण और चरित ग्रन्थों का उल्लिखनीय बाहुल्य है। प्रायः सभी सम्प्रदायों के विद्वानों ने विविध भाषाओं में पुराणों, चरितों और काव्य, चम्पू आदि विविध ग्रंथों का निर्माण किया है। जहाँ जैनतर विद्वानों ने अपभ्रंश को गौण कर संस्कृत आदि अन्य भाषाओं में कथा-साहित्य की सृष्टि की है, वहाँ जैन विद्वानों ने प्राकृत और संस्कृत के साथ अपभ्रंश भाषा में भी कथा, चरित और पुराण ग्रन्थ निवद्ध किये हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने भारत की विविध प्रान्तीय भाषाओं में—मराठी, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी आदि में भी पुष्कल कथा-साहित्य रचा है।

कथाएँ कई प्रकार की होती हैं; परन्तु उनके दो भेद मुख्य हैं—लौकिक और धार्मिक (आध्यात्मिक)। इन दोनों में सभी कथाओं का समावेश हो जाता है, धार्मिक कथाओं में तो आध्यात्मिकता की पुष्ट रहती है और लौकिक कथाओं में पशु-पक्षियों, राजनीति, लोकनीति, हाव-भाव, शृंगार आदि रागोत्पादक और लौकिक मनोरंजक आशयानों का सम्मिश्रण रहता है। इनमें आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत धार्मिक कथाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध आन्तरिक जीवन-घटनाओं के साथ रहता है, इनमें व्रतों का सद्नुष्ठान करने वाले भव्य श्रावकों की धार्मिक मर्यादा के साथ नैतिक जीवनचर्या का भी अच्छा चित्रण पाया जाता है; साथ ही उनके भारी संकट उपस्थित होने पर धीरता से विजय प्राप्त करने, अपने पुरुषार्थ को सुदृढ़ रूप में कायम रखने तथा धार्मिक श्रद्धा में अडोल (निश्चल) रहने का स्पष्ट निर्देश पाया जाता है। कितनी ही कथाओं में जीवनोपयोगी आवश्यक तत्त्व का संकलन यथेष्ट रूप में पाया जाता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन सफल बनाने के लिए आवश्यक होता है। असल में सत्-पुरुषों का उच्चतर जीवन दूसरों के लिए आदर्शरूप होता है, उस पर चलने से जीवन में विकास और नैतिक चरित्र में वृद्धि होती है, एवं स्वयं का जीवन आदर्श बनता है। इससे पाठक सहज ही में कथाओं की उपयोगिता और महत्ता का अनुभव कर सकते हैं।

१. देखो, पाटन भंडार सूची, जो गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बड़ोदा से प्रकाशित हुई है।

प्राकृत भाषा में अनेक कथाग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें वसुदेवहिण्डी गद्य और कुवलयमालाकथा तो गद्य-पद्य रूप में प्रसिद्ध ही हैं। कुवलयमाला में कहीं-कहीं अपभ्रंशभाषा के गद्यके भी दर्शन होते हैं पर बहुत ही कम। हाँ अपभ्रंशभाषा का पद्यात्मक कथासाहित्य प्रचुरता से उपलब्ध होता है; परन्तु कोई गद्यात्मक स्वतन्त्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ।

### कथाग्रन्थों के निर्माण का उद्देश्य

जैनाचार्यों अथवा जैन विद्वानों द्वारा कथा ग्रंथों के बनाए जाने का उद्देश्य केवल यह प्रतीत होता है कि जनता असंयम से वचे और व्रतादि के अनुष्ठान द्वारा शरीर और आत्मा की शुद्धि की और अग्रसर हो। कथाओं में दुर्व्यसनों और अन्याय, अत्याचारों के बुरे परिणामों को दिखाने का अभिप्राय केवल उनसे अपनी रक्षा करना, और जीवन को उच्च बनाना है। व्रताचरण-जन्य पुण्य-फल को दिखाने का प्रयोजन यह है कि जनता अपना जीवन अधिक से अधिक संयत और पवित्र बनावे। असघात, प्रमादकारक, अनिष्ट, अनुपसेव्य, तथा अल्पफल बहु-विघातरूप अभक्ष्य वस्तुओं के व्यवहार से अपने को निरन्तर दूर रखे। ऐसा करने से ही मानव अपने जीवन को सफल बना सकता है। जैन विद्वानों का यह दृष्टिकोण कितना उच्च और लोकोपयोगी है।

अपभ्रंश के जैन कथा ग्रन्थों में अनेक कवियों ने व्रतों का अनुष्ठान अथवा आचरण करने वाले भव्य श्रावकों के जीवन-परिचय के साथ व्रत का स्वरूप, विधान और फल-प्राप्ति का रोचक वर्णन किया है, साथ ही व्रत का पूरा अनुष्ठान करने के पश्चात् व्रत के उद्यापन करने की विधि, तथा उद्यापन की सामर्थ्य न होने पर दुगुना व्रत करने की आवश्यकता और उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। उद्यापन करते समय उस भव्य-श्रावक की कर्तव्यनिष्ठा, धार्मिक श्रद्धा, सार्धमि-वत्सलता, निर्दोष व्रताचरण की क्षमता और उदारता का अच्छा चित्रण किया गया है और उससे जैनियों को उन समयों में होने वाली प्रवृत्तियों, लोकसेवायंत्र, आहार, औषध, ज्ञान और अभय रूप चार दानों की प्रवृत्ति, तपस्वी-संयमी जनों की वैषावृत्त्य तथा दीन दुखियों की समय समय पर की जाने वाली सहायता का उल्लेख पाया जाता है। इस तरह यह कथा-साहित्य और पौराणिक चरितग्रन्थ ऐतिहासिक व्यक्तियों के पुरातन आख्यानों, व्रताचरणों अथवा ऊँच-नीच व्यवहारों की एक कसौटी है। यद्यपि उनमें वस्तुस्थिति को आलंकारिक रूप से बहुत कुछ बढ़ा बढ़ाकर भी लिखा गया है; तो भी उनमें केवल कवि की कल्पना ही नहीं; कितनी ही ऐतिहासिक आख्यायिकायें (सच्ची घटनायें) भी मौजूद हैं जो समय समय पर वास्तविक रूप से घटित हुई हैं। अतः उनके ऐतिहासिक तथ्यों को यों ही नहीं भुलाया जा सकता। जो ऐतिहासिक विद्वान इन कथाग्रन्थों और पुराणों को कोरी गप्प या असत्य कल्पनाओं का गढ़ कहते हैं वे वस्तुस्थिति का मूल्य आँकने में असमर्थ रहते हैं। अतः उनकी यह मान्यता समुचित नहीं कही जा सकती।

प्राकृत भाषा में अनेक कथाग्रन्थ लिखे गये हैं। वसुदेव हिण्डी प्राकृत गद्य कथा-ग्रन्थ हैं। कुवलय-माला गद्य-पद्य कथा-ग्रन्थ हैं। समराइच्चकहा हरिभद्र की सुन्दर कृति है। कथारयणकोप में अनेक कथाएँ दी हुई हैं। इस तरह प्राकृत का कथा-साहित्य भी विपुल सामग्री को लिए हुए है, जिनमें अनेक कथाएँ लौकिक हैं तथा लोकगीतों से निर्मित हुई हैं।

अपभ्रंश भाषा में कथा-साहित्य नव गुरू दृष्टा, यह निश्चित नहीं है किन्तु विक्रम की ८ वीं-९ वीं शताब्दी में रचे हुए अपभ्रंश कथा-साहित्य के उल्लेख जरूर उपलब्ध होते हैं, यद्यपि उस समय



का रचा हुआ कथा-साहित्य अभी उपलब्ध नहीं हुआ। महाकवि चण्डमुह (चतुर्मुख) और स्वयंभू की रची हुई पंचमी-कथाएँ थीं अवश्य और अन्य कथाग्रन्थ भी रचे गए होंगे। परन्तु वे अप्राप्य हो रहे हैं। अपभ्रंश में दो तरह की कथाएँ उपलब्ध होती हैं—बड़ी और छोटी; पर वे सब पद्य में हैं, गद्य में कोई कथा मेरे देखने में नहीं आई। वे उसमें न रची गई हों, ऐसा तो ज्ञात नहीं होता किन्तु वे रचनाएँ विरल होने से संभवतः विनष्ट हो गई हैं।

प्रस्तुत प्रशस्तिसंग्रह में ४० के लगभग अपभ्रंश कथाग्रन्थों की प्रशस्तियाँ दी गई हैं। उनमें कई कथाग्रन्थों के कर्ता अभी अज्ञात हैं। शास्त्रभण्डारों में अन्वेषण करने पर इस तरह की अन्य कवियों द्वारा रचित कथाएँ और भी मिलेंगी, ऐसी संभावना है। क्योंकि अभी तक समस्त जैन ग्रन्थालय देने नहीं गए हैं। उनके देखे जाने पर अपभ्रंश के कथा-साहित्य पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा। अपभ्रंश की अनेक कथाओं के आवार पर संस्कृत में और हिन्दी में रचा हुआ विपुल कथा-साहित्य उपलब्ध होता है।

### दोहा साहित्य या मुवतककाव्य

जैसे संस्कृत साहित्य में ही 'अनुष्टुप् छंद' प्रसिद्ध रहा है वैसे ही अपभ्रंश में दोहा छंद है। इस छंद को अपभ्रंश की देन कहा जा सकता है। दोहा छंद का लक्षण प्राकृत पिङ्गल में इस प्रकार है—

तेरह मत्ता पढम पत्र पुणु एयारह देह।

पुणु तेरह एयारहइं दोहा-लक्खणु एह ॥७८॥

जिसके प्रथम चरण में तेरह मात्रा, फिर दूसरे चरण में ग्यारह मात्रा, अनन्तर ३-४ चरणों में क्रमशः तेरह मात्रा और ग्यारह मात्रा हों वह दोहा छंद कहलाता है।

जब इसी छंद को लय में गाया जाता है, तब चरणों की अंतिम मात्रा पर जोर दिया जाता है, इस अपेक्षा से हेमचन्द्राचार्य ने दोहे में चौदह और बारह मात्राओं का भी उल्लेख किया है जो ठीक है। दोहे को दोषक—दोहक भी कहते हैं। क्वचित् दोहे का नाम 'दुविहा' भी पाया जाता है। 'दुविहा' का संस्कृत रूपांतर 'द्विधा है'। दोहा छंद की प्रत्येक पंक्ति दो भागों में (१३-११ मात्रा रूप में) विभक्त होने से यह छंद मात्रिक अर्धसम जाति का है और इसके लिए 'दुविहा' यह रुढ़ अन्वर्थ संज्ञा है। दोहा छंद सरल होने के साथ-साथ व्याकरण के नियमों से भी कम बंधा है, यही कारण है कि दोहा-साहित्य का अपभ्रंश में बाहुल्य है। हेमचंद्र आदि लक्षण-शास्त्रियों ने जो अपने व्याकरण ग्रंथों में अपभ्रंश के उदाहरणों के लिए प्रायः दोहा उद्धृत किये हैं यह भी बाहुल्य का परिचायक है। आगे चलकर इस दोहा छंद को उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में अपनाया गया है। दोहा छंद के माध्यम से गुजराती, ब्रज, राजस्थानी भाषाओं में ढाल—रासो आदि की रचना खूब हुई और होती रहती है। राजस्थानी में लौकिक गीत, ख्यालों के बोल, नोटकी चौबोलों के बोल, कहावतें और चारणों का साहित्य प्रायः इसी भाषा छंद में कुछ मात्राएँ जोड़कर प्रचुर मात्रा में पाया जाता और सुना जाता है इससे यह छंद सर्वाधिक लोकप्रिय और सरल रहा है। मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त अपभ्रंश के सुलोचनाचरिड, बाहुबलिचरिड, संदेशरासक, कीर्तिलता आदि खंडकाव्यों में यशःकीर्ति भट्टारक के पाण्डवपुराण और अन्यान्य पवन्य काव्यों में भी दोहा छंद का प्रयोग प्रचुरता से उपलब्ध है। हिन्दी भाषा

देखो विरहांक का वृत्त जाति समुच्चय 'दो पाया भण्णइ दुविहड'।

—H. D. वेलणकर ने 'विरहांक' का समय ईसा की ६ वीं शताब्दी बताया है।

के प्रसिद्ध कविगण तुलसी, कवीर, रहीम, बनारसीदास, भूधरदास, भगवतीदास, बुधंजन, वृन्द, महाचन्द्र, विहारी आदि ने दोहा छंद में अनेक भावपूर्ण रचनाएँ और सुभाषित प्रस्तुत किए हैं।

हमें कालिदास के विक्रमोद्योगीय नाटक में, जिसका काल विक्रम की ५ वीं शताब्दी कहा जाता है अपभ्रंश भाषा के अनेक दोहे उपलब्ध मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि दोहा साहित्य उस समय रचा जाने लगा था। बौद्ध सिद्ध सरहण्या और कण्ठ्या आदि के दोहाकोश में जिसका रचना काल ईसा की १० वीं शती से पूर्व है अनेक दोहे गम्भीर अर्थ के प्रतिपादक हैं। दोहाकोश के दोहों की रचना कितनी उत्तम हुई है यह देखिए—

जाव ए आप जाणिएज्जइ ताव ए सिस्स करेइ ।

अंधा अंधकडाव तिम विणिए वि क्वय पडेइ ॥

—इसमें बतलाया है कि 'जब तक आप अपने को नहीं जानते तबतक शिष्य मत बनाइये', यदि अंधा दूसरे अंधे को निकालने का प्रयत्न करे तो दोनों ही कुंये में पड़ेंगे।

जहि मए पवण ए संचरइ रवि ससि एाहि पवेस ।

तहि वड, चित्त विसामकरु सरहं कहिउ उवएस ॥४॥

सरह उपदेश करते हैं कि—'जहाँ पर मन और पवन भी संचार नहीं करते, रवि और शशि का भी प्रवेश नहीं है, हे मूढ़ चित्त, तू वहाँ पर विधाम कर।

दोहों में दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—एक भावात्मक शृंगार, वीर और करुण आदि रसों से आप्लावित मुक्तक पद्य और दूसरा संतों की आध्यात्मिक वाणी रूप मुक्तक पद्य। प्रथम प्रकार के दोहा हेमचन्द्र के व्याकरण आदि में उपलब्ध हैं, शृंगार त्रिरह आदि के दोहा जहाँ रागोत्पादक हैं वहाँ नैतिक पतन में भी निमित्त हैं। यहाँ यह जानना जरूरी है कि जैनतर कवियों का लक्ष्य जहाँ रागोत्पादक रहा है, वहाँ जैन कवियों का उद्देश्य नैतिकता को प्रोत्साहन देने के साथ मानव जीवन को उन्नत बनाने का रहा है अतः दूसरे प्रकार के दोहा मुक्तक काव्यों के रूप में जो इन्द्रु के परमात्मप्रकाश और योगसार ग्रंथ, रामसिंह का दोहापाहड़, सुप्रभाचार्य का वाराण्यसार, लक्ष्मीचंद्र का दोहानुपेक्षा और सावयधम्मदोहा, जल्हग, धांगा, महाचन्द्र, शालिभद्र का दूहामातृका, पद्मसिंह मुनि की ७१ दोहात्मक रचनाएँ अध्यात्मरस से परिपूर्ण हैं।

'जो इन्द्रु' ने परमात्म-प्रकाश ग्रंथ के दोहों में अत्यन्त सरस अध्यात्म रस की पावन सरिता के प्रवाह को प्रवाहित किया है, इसी तरह रामसिंह ने दोहापाहड़ में और लक्ष्मीचन्द्र आदि आध्यात्मिक जैन संतों ने अध्यात्म रस की धारा को बहाया है।

### रूपक-काव्य

#### कुमारपाल-प्रतिबोध

अपभ्रंश भाषा में भी संस्कृत भाषा के समान रूपक-काव्यों की परम्परा पाई जाती है। परन्तु अपभ्रंश भाषा में तेरहवीं शताब्दी से पूर्व की कोई रचना भेरे देखने में नहीं आई। सोमप्रभाचार्य का

१. मई जाणियई मिमलोधणी णिसिमरु कोइ हरेइ ।

जाव पु णव तडि सामलो धाराह वरिसेइ ॥

( 'जब तक नई विजली से युक्त श्यामलं मेघ बरसने लगा, तब तब मैंने यही, समझा था कि भेरी मृगलोचनी प्रिया को शायद कोई निशाचर हरण किये जा रहा है ।')

'कुमारपाल-प्रतिबोध' प्राकृत-प्रधान रचना है और जिसका रचनाकाल संवत् १२४१ है। परन्तु उसमें कुछ अंश अपभ्रंश भाषा के भी उपलब्ध होते हैं। उसका एक अंश 'जीव मनःकरण संलाप कथा' नाम का भी है। जो उक्त ग्रंथ में पृ० ४२२ से ४३७ तक पाया जाता है। यह एक धार्मिक कथा-बद्ध रूपक खण्ड-काव्य है। इसमें जीव, मन और इन्द्रियों के संलाप की कथा दी गई है। इतना ही नहीं इसमें एक रूपक के अन्तर्गत दूसरे रूपक को भी जोड़ दिया गया है। ऐसा होने पर भी उक्त अंश की रोचकता में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इस रूपक-काव्य में मन और इन्द्रियों के वार्तालाप में जगह-जगह कुछ सुभाषित भी दिए हुए हैं, जिनसे उक्त काव्य-ग्रंथ की सरसता और भी अधिक बढ़ गई है।

जं पुग्गु तुहु जंपेसि जड़ तं असरिसु पडिहाइ ।

मण निल्लवखण कि सहइ, नेवरु उट्टह पाइ ॥

अर्थात् हे मूर्ख ! तुम तो कहते हो कि वह तुम्हारे योग्य नहीं प्रतीत होता, हे निर्लक्षण मन । क्या ऊँट के पैर में नूपुर शोभा देते हैं ।

काया नगरी में लावण्य रूप लक्ष्मी का निवास है। उस नगरी के चारों ओर आयुर्कर्म का भारी प्राकार है, उसमें सुख-दुःख क्षुधा-तृषा हर्ष-शोकादि रूप अनेक प्रकार की नदियाँ एवं मार्ग हैं। उस काया नगरी में जीवात्मा नामक राजा अपनी बुद्धि नाम की पत्नी के साथ राज्य करता है। उसका प्रधान मंत्री मन है और स्पर्शनादि पाँचों इन्द्रियाँ प्रधान राजपुरुष हैं। एक दिन सभा में परस्पर उनमें विवाद उत्पन्न हो गया, तब मन ने जीवों के दुःखों का मूल कारण अज्ञान को बतलाया; किन्तु राजा ने उसी मन को दुःखों का मूल कारण बतलाते हुए उसकी तीव्र भर्त्सना की। विवाद बढ़ता ही चला गया। उन पाँचों प्रधान राजपुरुषों की निरंकुशता और अहं मन्यता की भी आलोचना हुई। प्रधान मंत्री मन ने इन्द्रियों को दोषी बतलाते हुए कहा कि जब एक-एक इन्द्रिय की निरंकुशता से व्यक्ति का विनाश हो जाता है तब जिसकी पाँचों ही इन्द्रियाँ निरंकुश हों, फिर उसकी क्षेम-कुशल कैसे हो सकती है? जिन्हें जन्म कुलादि का विचार किये बिना ही भृत्य बना लिया जाता है तो वे दुःख ही देते हैं। उनके कुलादि का विचार होने पर इन्द्रियों ने कहा—हे प्रभु ! चित्त-वृत्ति नामकी अटवी में महामोह नामका एक राजा है, उसकी महामूढा नामक पत्नी के दो पुत्र हैं, उनमें एक का नाम रागकेशरी है, जो राजस-चित्त-पुर का स्वामी है और दूसरा द्वेष-गजेंद्र नामका है, जो तामस-चित्तपुर का अधिपति है, उसका मिथ्या-दर्शन नामका प्रधान मंत्री है, क्रोध लोभ, मत्सर, काम मद आदि उसके सुभट हैं। एक बार उसके प्रधान मंत्री मिथ्यादर्शन ने आकर कहा कि हे राजन् ! बड़ा आश्चर्य है कि आपके प्रजाजनों को चारित्र-धर्म नामक राजा का सन्तोष नामक चर, विवेकगिरि पर स्थित जैनपुर में ले जाता है। तब मोह राजा ने सहायता के लिए इन्द्रियों को नियुक्त किया। इस तरह कवि ने एक रूपक के अन्तर्गत दूसरे रूपक का कथन जोड़ते हुए उसे और भी अधिक सरस बनाने की चेष्टा की है।

इस प्रकार मन द्वारा इन्द्रियों को दोषी बतलाने पर इन्द्रियों ने भी अपने दोष का परिहार करते हुए मन को दोषी बतलाया और कहा कि जीव में जो राग द्वेष प्रकट होते हैं वह सब मोह का ही माहात्म्य

१. इय विषय पल्लकओ, इहु एक्केवकुंइदिउ जगहइ जगु सयलु ।

जसु पंचवि एयइ कयवहुवेयइ, खिल्लहि पहु तसु कउ कुसलु ॥ २६॥

है। क्योंकि मन के निराध करने पर हमारा (इन्द्रियों का) व्यापार रुक जाता है<sup>१</sup>। इस तरह ग्रंथ में क्रम से कभी इन्द्रियों को, कभी कर्मों को और कभी कामवासना को दुःख का कारण बतलाया गया है। जब वाद-विवाद बढ़ कर अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया, तब आत्मा अपनी स्वानुभूति से उन्हें शांत रहने का आदेश देता है अन्त में मानव जीवन की दुर्लभता का प्रतिपादन करते हुए तथा जीव दया और व्रतों के अनुष्ठान का उपदेश देते हुए कथानक समाप्त किया गया है।

### मयराजपराजय

‘मयराजपराजय’ अपभ्रंश भाषा का एक छोटा सा रूपक काव्य है, जो दो संवियों में समाप्त हुआ है। इसके कर्ता कवि हरदेव हैं। हरदेव ने अपने को चंगदेव का तृतीय पुत्र, और अपने दो ज्येष्ठ भाइयों के नाम किकर और कण्ह (कृष्ण) बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त ग्रंथ में कवि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है। ग्रंथ में पदद्विधा छन्द के अतिरिक्त रड्ढा छन्द का भी प्रयोग किया गया है, जो इस ग्रंथ की अपनी विशेषता है। इसमें कामदेव राजा, अपने मोह मंत्री, अहंकार और अज्ञान आदि सेनापतियों के साथ भवनगर में राज्य करता है। चारित्रपुर के राजा जिनराज उसके शत्रु हैं; क्योंकि वे मुक्ति रूपी कन्या से अपना पाणिग्रहण करना चाहते हैं। कामदेव ने राग-द्वेष नामके दूतों द्वारा जिनराज के पास यह सन्देश भेजा कि आप या तो मुक्ति कन्या से विवाह करने का अपना विचार छोड़ दें और अपने दर्शन-ज्ञान चारित्र रूप सुभटों को मुझे सौंप दें, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाय। जिनराज ने कामदेव से युद्ध करना स्वीकार किया और अन्त में कामदेव को पराजित कर अपना मनोरथ पूर्ण किया। ग्रंथ की दूसरी सन्धि का ७ वां कडवक द्रष्टव्य है जिसमें कामदेव से युद्ध करने वाले सुभटों के वचन अंकित हैं।

वज्रघात को सिरिण पडिच्छइ, असिधारापहेण को गच्छइ।  
को जमकरणु जंतु आसंघइ, को भुवदंडइ सायर लंघइ।  
को जममहिसिगि उप्पाडइ, विष्फुरंतु को दिग्गमिण तोडइ।  
को पंचारणु सुत्तउ खवलइ, कालकुट्टु को कवलहि कवलइ।  
आसीविसमुहि को कर छोहइ, घगघगंत को हुववहि सोवइ।  
लोहपिडु को तत्तु घवकइ, को जिणसंभुह संगरि थक्कुइ।  
गिण घरमज्झि करहि बहुधिडिम, महिलहं अगइ तोरो वडिडिम।

ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया, किन्तु आमेर भंडार की यह प्रति वि० सं० १५७६ की लिखी हुई है, जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उससे पूर्व की रचना है, कितने पूर्व की यह अभी विचारणीय है। पर भाषा साहित्यादि की दृष्टि से प्रस्तुत रचना १४ वीं-१५ वीं शताब्दी की जान पड़ती है।

तीसरी कृति ‘मनकरहा रास’ है, जिसके कर्ता कवि पाहल हैं। रचना सुन्दर और शिक्षाप्रद है, इसमें ८ कडवक दिये हुए हैं, जिन में पाँचों इन्द्रियों की निरंकुशता से होने वाले दुर्गति के दुःखों का उद्-भावन करते हुए मन और इन्द्रियों को बश में करने और तपश्चरणा-द्वारा कर्मों की क्षण करने का सुन्दर उपदेश दिया गया है। ग्रंथ में रचनाकाल दिया हुआ नहीं है। यह रचना भी सं० १५७६ के गुटके परसे संगृ-

१. जं तमु फुरेइ रागो दोसो वा तं मणस्स माहंपं ।

विरमइ मणम्मि रुद्धे जग्हा अग्हाण वावारी ॥४७॥

हीत की गई है जिससे स्पष्ट है कि ग्रंथ इससे पूर्व रचा गया होगा<sup>१</sup>। इसकी भाषा देखने से प्रतीत होता है कि इसका निर्माण वि० की १४-१५ वीं शताब्दी में हुआ होगा।

चौथी कृति 'मदन-जुद्ध' है। जिसके कर्ता कवि वृत्तिराज या 'बल्ह' हैं। ग्रन्थ में इक्ष्वाकुकुल-मंडन नाभिपुत्र ऋषभदेव के गुणों का कीर्तन करते हुए, उन्होंने कामदेव को कैसे जीता, इसका विस्तार से कथन किया गया है। ग्रन्थ में उसका रचनाकाल वि० सं० १५८६ आश्विन शुक्ला एकम शनिवार दिया हुआ है<sup>२</sup>।

संस्कृत और अपभ्रंश के रूपक-काव्यों के समान हिन्दी भाषा में भी अनेक रूपक-काव्य लिखे गये हैं। जिनमें से एक का परिचय अनेकान्त में दिया गया है<sup>३</sup> और शेष का परिचय अभी अप्रकाशित है। जैसे पंचेन्द्रिय सम्वाद सूवा वत्तीसी आदि।

### रास साहित्य

रासक स्वर-ताल नृत्य और लय के साथ गाई जाने वाली एक कला है। रास वह है जिसमें संगीत की रसानुभूति हो, अथवा जिसकी मधुर सुरीली तान और गंभीर नृत्य कला दर्शक के मन को आनन्द-विभोर कर दें। इस कला में गान और नृत्यकला को और विशेष ध्यान दिया जाता था। प्राचीन काल में स्त्रियां लास्यनृत्य करती थीं, पर उसमें देश-भेद के कारण विविधता दृष्टिगोचर होती थी। उससे जनता का मनोरंजन और उसके प्रति आकर्षण भी होता था। यह संगीत कला का ही एक भेद-ज्ञात होता है।

रास-परम्परा का पुरातन उल्लेख भरत के नाट्यशास्त्र में पाया जाता है। अतः इसे केवल अपभ्रंश युग की देन कहना उचित नहीं है जब अपभ्रंश में साहित्यिक रचनाएं नहीं होती थीं तब भी नृत्य और गान के रूप में रास प्रचलित थे। भरत ने नाट्यशास्त्र में रासक को एक उपरूपक माना है और उसके तालरासक, दण्डरासक और मण्डलरासक ये तीन भेद बतलाये हैं<sup>४</sup>।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी काव्यानुशासन में रासक को गेय काव्य माना है<sup>५</sup>। हेमचन्द्र ने 'अनेकार्थ-संग्रहकोष' में रास का अर्थ—'क्रीडासु गोदुहाम् भाषा शृङ्खलि के' दिया है। जिसका अर्थ 'ग्वालों की क्रीड़ा' तथा भाषा में शृङ्खलाबद्ध रचना होता है।

१. देखो, हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, अप्रकाशित रचना।

२. राइ विक्रम तणों संबत् नव्वासीय पनरहसइ सरद रति आसु वखाणु ।

तिथि पडिवा सुकल पख, सनीचरवार करणकखत्त जाणु ॥

मदनजुक्त प्रशस्ति

३. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (अप्रकाशित) और रूपक-काव्य-परम्परा अनेकान्त वर्ष १४

४. (क) 'तालरासकनाम स्यात् तत् त्रिधा रासकं स्मृतम् ।

.....दंडरासकं तु तथा मंडलरासकम् ॥

(ख) अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारती' में रासक को गेयरूपक का एक भेदमाना है। गेयरूपक में ताल और लयका विशेष स्थान होता है और इसमें अधिक से अधिक ६४ युगल भाग ले सकते हैं।

अनेकनर्तकी योज्यं चित्रताललयान्वितम् ।

आचतुःषष्टि युगलाद्रासकं मसृणोद्धतम् ॥

५. (क) गेयडोम्बिकाभाणप्रस्थानशिङ्गभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासकगोष्ठीश्रीगदितरांगकाव्यादि ।

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में रासक का लक्षण हेमचन्द्र के लक्षणसे भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है किन्तु उसके नृत्यगीत वाले पहलू को पूर्ण रूप माना है\* ।

वाग्भट्ट ने भी हेमचन्द्र का अनुसरण करते हुए उसे गेय रूप में स्वीकार किया है\* । हां विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में रासक के लक्षण पर विचार करते हुए पात्र, वृत्ति आदि की पूर्ण रूप में व्याख्या करने का प्रयत्न किया\* है ।

महाकवि स्वयंभू ने अपने छन्द ग्रन्थ में 'रास' का लक्षण बतलाते हुए उसे जन-मन अभिराम बतलाया है, । घत्ता, छड्डुणिया, पदड्डिया तथा ऐसे ही अन्य सुन्दर छन्दों से युक्त रासावन्ध काव्य जन-मनअभिराम होता है\* । इसके बाद ही कवि ने २१ मात्रावाले रासा छन्द का लक्षण भी दिया है । स्वयंभू के इस छन्दलक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में रासावन्ध छन्द प्रचलित था । उस रासक या रासा छन्द के लक्षण पर विचार करने से अब्दुलरहमान का 'सन्देश रासक, अपभ्रंश भाषा का सुन्दर काव्य-ग्रन्थ कहा जा सकता है\* । अन्य अनेक रास यद्यपि इस कोटि के नहीं हैं परन्तु वे जीवन परिचयात्मक रास भी अपनी महत्ता कम नहीं रखते ।

कवि शारङ्गधर के द्वारा संगीत में दी हुई रास-सम्बन्धी कथा भी इस के मूलरूप पर बहुत कुछ प्रकाश डालती है । इस कथा में बतलाया गया है कि शिव नेताण्डव नृत्य किया और पार्वती ने लास्यं नृत्य । पार्वती ने उसे वासासुर की पुत्री उषा को सिखलाया, जो कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को विवाही गई थी । उषा ने द्वारावती की गोपियों को और गोपियों ने सौराष्ट्र देश की नव-युवतियों को सिखलाया, और वहां से वह समस्त भूमंडल में विस्तृत हुआ ।

अज की रासलौला तो लोकप्रसिद्ध है ही । यह प्राचीन परम्परा अपभ्रंश भाषा के विकास काल में उच्च स्तर पर थी । विक्रम की १० वीं से १३ वीं शताब्दी तक इसमें अनेक रास रचे गये हैं और बाद में राजस्थानी हिन्दी और गुजराती मिश्रित अनेक रास रचनाएं देखने में आती हैं । विक्रम की १५ वीं शताब्दी में भ० सकल कीर्ति के लघुभाता एवं शिष्य अकेले ब्रह्म जिनदास के रचे हुए ४४ रासे मिलते हैं ।

१. षोडश द्वादशाष्टी वा यस्मिन् त्यन्ति नायिका ।

पिडीवन्वादि विन्यासे रासकं तदुदाहृतम् ॥

पिडनात् तु भवेत् पिडी गुम्फनाच्छ्रयाना भवेत् ।

भेदनाद् भेदको जातो लता जालापनोदतः ॥

कामिनीभिर्गुर्वो भर्तृश्चेष्टितं येत्सन्त्यते ।

रामाइ वसन्तमासाद्य स गेयो नाट्यरासकः ॥

नाट्य दर्पण औरियण्टन इन्स्टीट्यूट बड़ीदा १९२६ भा० पृ० २-१४

२. डोम्बिकाभापप्रस्थानमाणिकाप्रेरणशिङ्गकरामाक्रीडहल्लीसकथोगदितरासक

गोष्ठी प्रभृतीनि गेयानि । काव्यानुशासन २, पृ० १८

३. साहित्यदर्पण पृ० १०४-१०५ ।

४. घत्ता-छड्डुणिया-वाहि पदड्डिआहि सुप्रणरूपेहि ।

रासावंधो कथे जण-मण-अहिराममो होइ ॥ ८-४६

५. एकवीसमत्ता णिहणउ उद्दामगिर,

चडदसाइ विस्सामहो भगण वि रइउ थिर

रासावंधु समिद्ध एउ अहिराम धरू ॥ ८-५०

### रास परम्परा का उद्देश्य

किसी व्यवित विशेष, या देवी देवता की आराधना, और साधु या किसी सेठ की जीवन-गाथा को अंकित करने में, अथवा किसी विरहिणी नारी के सन्देश को उसके विरही पति तक पहुँचाने के लिए अथवा आत्म-सम्बोधन के लिए रासा साहित्य की सृष्टि की गई है।

### अपभ्रंश का प्राचीन 'चर्चरी' रास

उपलब्ध रास-रचनाओं में उद्योतनसूरि का चर्चरी रास सबसे पुराना है<sup>१</sup>। यह कुवलय-मालाकहा के प्रारम्भ में निबद्ध है। इसकी रचना सम्राट् वत्सराज के समय जालौर (जावालिपुर) के आदिनाथ के मन्दिर में बैठ कर शक संवत् ७०० (वि० सं० ८३५) में की गई थी। इसमें बतलाया गया है कि—मनुष्य सचेत होकर काम करे, अन्यथा मृत्यु के घेर लेने पर कुछ भी नहीं हो सकेगा<sup>२</sup>। इस रास में चार ध्रुवकों की परिपाटी है, जिनमें एक ध्रुवक—जहाँ कामोन्मादक रस का जनक है वहाँ दूसरा विषय वासना से परान्मुख करने वाला है, तीसरा ध्रुवक अशुचि मल-मूत्रादि से संयुक्त घृणित अस्थिपंजर को दिखाकर ज्ञान और विवेक की ओर ले जाता है तो चौथा ध्रुवक वैराग्य की ओर आकृष्ट करता है। इस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन कवियों की रास-रचना का मूल उद्देश्य राग से हटाकर जनसाधारण को ज्ञान-वैराग्य की ओर आकर्षित कर हित के मार्ग में संलग्न करना रहा है।

उद्योतनसूरि की इस कृति में अनेक रसों का संमिश्रण है। इसमें भगवान् महावीर के गणधर सुधर्म स्वामी की एक जीवन घटना को अंकित किया गया है—'वे एक दिन अकेले ही एक ऐसे वन में गए जहाँ ५०० भयंकर डाकुओं का समूह रहता था। वहाँ उन्होंने 'चर्चरीरास' युक्त, एक गान गाया और ऐसा नृत्य किया कि डाकू दल ने सदा के लिए डाकेजनी छोड़कर आत्म-बोध प्राप्त किया<sup>३</sup>। इससे इस रास की महत्ता ज्ञात होती है।

उपमिति भव-प्रपंचा कथा के अन्तर्गत 'रिपुदारणरास' नाम का एक रास है। जिसकी रचना कवि सिद्धार्थि ने वि० सं० ९६२ में की थी। यह कृति संस्कृत भाषा के ५ ध्रुवक पदों में रची गई है। उसका नाम सार्थक है और वह गान, नृत्य, लय आदि से समन्वित हैं। इसमें वृहद् देश के सार्व-भौम राजा तपन द्वारा सिद्धार्थपुर के मिथ्यावादी और अहंकारी उद्दण्ड राजा रिपुदारण को तांत्रिक योगी से दण्ड दिलाने या उसे वश में कर उसके विनाश करने का उल्लेख किया गया है। रिपुदारण की

१ देखो, कुवलयमाला कथा पृ० ४

२ संवुज्झह कि ण बुज्झह एत्ति ए वि मा किञ्चि मुज्झह ।

कीरउ जं करियव्वयं पुण ढुक्कइ तं करियव्वयं ॥

कुवलयमाला पृ० ४

३ 'जहा तेण केवलिणा अरण्णं पविसिऊण पंच-चोर-सयाइ रास-णच्चणच्छलेण महामोहग्गहगहियाइ अविखविऊण इमाए चच्चरीए संवोहियाइ ।' × × × एवं च जहा काम-णिव्वेओ तथा वोह-लोहमाण-मायादीणं कुतित्तियाणं च । समकालं चिय सव्व-भाव-वियाणएण गुरुणा सव्वणुणा तथा तथा गायतेण ताइ चोराणं पंच वि सयाइ संभरिय-पुव्व-जम्म-वुत्तंताइ पडिक्कण-समण-लिंगाइ तथा कयं जहा संजमं पडिक्कणाइ ति ।'

उद्दण्डता का उल्लेख उक्त रास के—‘यो हि गर्वमविवेक भरेण करिष्यते’ वाक्य से ज्ञात होता है’ इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में अन्य कोई प्राचीन रास देखने में नहीं आया ।

रासक-रचनाओं में कई रचनाएँ उपदेशक भावना के साथ सम्बोधक भावना से श्रोत-श्रोत हैं । इन रास-रचनाओं से ज्ञात होता है कि पुरातन काल में जो रास या रासक रचनाएँ रची जाती थीं, वे सारगर्भित होती थीं । किन्तु बाद में ज्यों-ज्यों उनका विस्तार होता गया त्यों-त्यों उन रचनाओं की सार-परकता भी कम होती गई ।

रास या रासक रचनाएँ जैन सम्प्रदाय के अतिरिक्त हिन्दू सम्प्रदाय में भी पाई जाती हैं । परन्तु जैनियों में इसका रिवाज बहुत पुराना है । वीर कवि के विक्रम संवत् १०७६ में रचित ‘जम्बूसामिचरित’ नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उनके पिता कविवर देवदत्त ने अपभ्रंश भाषा में ‘अम्बादेवी चर्चरो रास’ नामक ग्रन्थ बनाया था ।<sup>१</sup> जिसका रचनाकाल संवत् १०५० के लगभग है । यह रास ताल, स्वर, लय और नृत्य के साथ गाया जाता था । यह रचना अभी अनुपलब्ध है ।

दिग्म्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में रासो की रचनाएँ अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती भाषाओं में चारसौ-पांचसौ होंगी, उनमें दिग्म्बर रासा-ग्रन्थों की संख्या २०० के लगभग है । दिग्म्बर सम्प्रदाय का रासा साहित्य अभी अप्रकाशित है । उसके प्रकाश में आने पर अनेक ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश पड़ सकेगा ।

जैनेतर कवियों ने भी रास ग्रन्थ बनाये हैं । उनमें ‘पृथ्वीराज रासो’, ‘बोसलदेव रासो’, ‘खुमान रासो’ और ‘सन्देश रासो’ आदि के नाम प्रसिद्ध हैं । इनमें सबसे पुराना पृथ्वीराज रासो बतलाया जाता है, परन्तु उसका वर्तमानरूप बहुत-कुछ अस्त-व्यस्त है, तो भी वह अपभ्रंश भाषा के बहुत नजदीक है । हाँ, उसकी कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ जहर खटकने वाली हैं । उनका उपलब्ध इतिहास के साथ ठीक मेल नहीं बैठता । अतः वह आज भी चर्चा का विषय बना हुआ है । मुसलमान कवि ‘अब्दुलरहमान’ का सन्देश रासक उल्लेखनीय है । यह रचना सिंधी सीरीज बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है । हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय बम्बई से डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी और त्रिपाठी के सम्पादन में इसका हिन्दी अनुवाद सहित एक नया संस्करण अभी प्रकाशित हुआ है । उसमें उसकी कई ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला गया है ।

रासक रचनाओं के प्रकार

रास या रासो रचनाएँ तीन प्रकार की दृष्टिगोचर होती हैं । पहली राग परक अर्थात् शृङ्गार तथा विरहसूचक, दूसरी अध्यात्मरस से युक्त या उपदेशपरक और तीसरी जीवन-चरित सम्बन्धी । इनमें अब्दुलरहमान की कृति संदेश राम प्रथम प्रकार की रचना है । इसमें एक विरहिणी नायिका का विरह-सूचक-सन्देश विरही पति के पास पहुंचाने का वर्णन किया गया है । जैसा कि उस ग्रन्थ के निम्न दोहों से स्पष्ट है ।

जसु पवसंत एण पवसिआ मुइअ विओह एण जामु ।

लज्जिज्जइ संदेशडड, दिती पहिय पियामु ॥३७॥

हे पथिक ! जिसके प्रवास करते हुए प्रवास नहीं किया और न जिसके वियोग से मरी ही, उस प्रिय को सन्देश देती हुई लज्जित हो रही हूँ ।

१. देवी, उपमितभयप्रपंच कथा प्रस्ताव ४ श्लोक ४३७ से ४४२ ।

२. चचवरि बंधि विरइड सरगु गाइज्जइ संतिउ वारजमु ।

णच्चिज्जइ जिण पय सेवयहि, किउ रासउ अंवादेवयहि ॥



आगे नायिका उस पथिक से कहती है कि—‘सन्देश बहुत विस्तृत है परन्तु मुझ नहींकहा से जाता। जो कनगुरिया की मुंदरी (अंगूठी) थी वह बांह में समा जाती है’। इससे उसके विरह-सम्बन्धी परितापका अन्दाज लगाया जा सकता है।

दूसरी रचनाएँ अध्यात्मरस संयुक्त हैं, जिनमें राग से विराग उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। उनमें आत्म-सम्बोधजनक उपदेश की प्रधानता है। जैसा कि कुवलयमाला के उक्त ‘चर्चरी रास’ में अङ्कित है। देवभक्ति रूप रचनाएँ भी जहाँ देव में अनुरागवर्षक हैं वहाँ देह-भोगों से विराग की भी संसूचक हैं। इसी से उनकी गणना अलग नहीं की है। आध्यात्मिक रचनाओं में कवि विनयचन्द्र का चूनडी-रास, निर्भरपंचमीकहा रास तथा पण्डित योगदेव का ‘सुव्रतानुप्रेक्षारास’ और जल्हिंगका अनुप्रेक्षा रास आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। कवि लक्ष्मीचन्द्र का दोहा अनुप्रेक्षारास भी महत्वपूर्ण कृति है, जो संवेग-निर्वेद भाव की संसूचक है। इन रचनाओं में संसार और शरीर के स्वरूप का निर्देश करते हुए वैराग्य की अनुपम छटा को जागृत किया गया है, और कर्मास्रव तथा कर्मबन्ध से छुड़ाने का यत्न किया गया है। साथ ही बारह भावनाओं द्वारा वस्तुतत्त्व का विवेक कराते हुए आत्मा को वैराग्य की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

तीसरी प्रकार की रासक रचनाओं में किसी व्यक्ति विशेष राजा, देवी, देवता या सामान्य पुरुष का जीवन-परिचय अंकित किया हुआ मिलता है। ऐसे अनेक रास लिखे गये हैं, जैसे जंबूसामिरास, बाहुवलीरास, सुकमालसामिरास, पृथ्वीराज रासो और अम्बादेवीरास आदि। ये सब रास ग्रन्थ एक प्रकार के चरित रास हैं। एक व्यक्ति विशेष के जीवन की मुख्यता से लिखे गए हैं। परन्तु उनमें से जैन चरित रासो में जीवन-घटनाओं के परिचय के साथ सांसारिक देह-भोगों से विरहित दिखलाते हुए आत्म-साधना की ओर ले जाने का स्पष्ट प्रयास किया गया है।

### छन्द ग्रन्थ

अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों, मुक्तक-काव्यों और चरितात्मक, स्तुत्यात्मक तथा रास आदि ग्रन्थों में अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत में वर्णवृत्तों का और अपभ्रंश में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। पर वहाँ वर्ण-वृत्तों का सर्वथा अभाव भी नहीं है। अपभ्रंश कवियों ने संस्कृत के उन्हीं छन्दों को ग्रहण किया है, जिसमें उन्हें विशेष प्रकार की गति मिली है और इसीसे उन्होंने संस्कृत वर्ण-वृत्तों में अपनी कुछ इच्छानुसार सुधार या परिवर्तन और परिवर्धन कर उन्हें गान तथा लय के अनुकूल बना लिया है। छन्दों में अन्यानुप्रास की परम्परा अपभ्रंश कवियों की देन है। इससे पद्य की ज्ञेयरूपता अधिक वृद्धि को प्राप्त हुई। अपभ्रंश के कवियों ने अन्यानुप्रासका प्रयोग प्रत्येक चरण के अन्त में तो किया ही है; किन्तु उसका प्रयोग कहीं-कहीं मध्य में भी हुआ है। तुकान्त या तुक का प्रयोग लय को उत्पन्न करना या उसे गति प्रदान करना है। अथवा ऐसी शब्द योजना का नाम ही तुक है। प्राकृत कवियों ने प्रायः मातृक-छन्दों का ही प्रयोग किया है उनमें तुक का प्रयोग नहीं पाया जाता। हिन्दी के तुलसीदास आदि कवियों की रचनाओं में चौपाई या दोहा छन्द ही आता है किन्तु अपभ्रंश कवियों की कड़वक शैली में सभी वर्ण और मात्रिक-छन्दों को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इतना ही नहीं किन्तु संस्कृत के वर्ण वृत्तों से उन्होंने एक ही छन्द में नवीनता उत्पन्न कर अनेक नूतन छन्दों की सृष्टि भी की है। संस्कृत के

१. संदेशडड सवित्थरउ, पर मइ कहणु न जाइ ।

जो कालंगुलि मूदडउ, सो बाहडी समाइ ॥ संदेश रासक

मालिनी छन्द में प्रत्येक पंक्ति में = श्रौर ७ अक्षरों के वाद यति के क्रम से १५ अक्षर होते हैं। उसे अपभ्रंस भाषा के कवि ने प्रत्येक पंक्ति को दो भागों में विभाजित कर यति के स्थान पर तथा पंक्ति की समाप्ति पर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग कर छन्द को नवीन रूप में ढाल दिया है यथा—

“विविहर रस विसाले, रोष कोऊ हृदाले । ललिय वयण माले, अत्य संदोह साले ।

भुवण-विदिद गामे, सब्द-दोसो वसामे । इह खलु कह कोसे, मुन्दरे दिष्ण तोसे ॥”

वनयण मिर मूलं सज्जणाम्पद मूले । पसरइ अविरोलं भागहाणं मुरोणं ।

सिरि गुविय जिण्णदो, देह वायं वण्णदो । वसु ह्य जुइ जुत्तो, मालिणी छंदु बुत्तो ॥ सुदं० ३-४ ।

दो छन्दों को मिलाकर अनेक नये छन्द भी बनाये गए हैं, जैसे छप्पय कुंडलिया, चान्द्रायन श्रौर वस्तु आदि ।

अपभ्रंस भाषा के काव्यों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है उनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—

पञ्चमटिका, पादाकुलिक, अलिल्लाह, रड्डा, प्लवंगम, भुजंग प्रयात, कामिनी, तोटक, दोधक, रागिणी, घत्ता, दोहा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, बंसस्य, आरणाल, तुमर, दुबई, मदननावतार, चन्द्रलेखा, कुन्जलयमालिनी, मोत्तियदाम, उपजाइ विलासिनी, शालिभंजिका, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, प्रियंवद, अनंत-कोकिला, रयोद्धता, मंदारदाम, श्रावली, नागकन्या, पृथिवी, विद्युन्माला, अशोकमालिनी श्रौर निसैणी आदि ।

इससे यह सहज ही जात होता है कि अपभ्रंस कवि छन्दों की विशेषताओं से परिचित थे, इसी से वे अपने प्रयोगों में विविध छन्दों का प्रयोग कर सके। कवि नयनन्दी ने अपने 'सकल विधि-विधान काव्य' में ६२ मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। इससे प्रमाणित होता है कि नयनन्दी छन्द-शास्त्र के महान वेत्ता थे ।

कवि श्रीचन्द ने 'रघुणकरण्ड सावयायार' की १२वीं संधि के तीसरे कडवक में कुछ अपभ्रंस छन्दों का नामोल्लेख किया है ।

शिरयाल, श्रावली, चर्चरोरास, रासक, ध्रुवक, खडय, उपखडय, घत्ता, वस्तु, अशस्तु, अडिल, पदटिया, दोहा, उपदोहा, हेना, गाहा, उपगाहा, आदि छन्दों के नाम दिये हैं ।

इसी तरह कवि लक्ष्मण ने अपने 'जिनदत्तचरित' की चार संधियों में वर्णयुक्त श्रौर मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

विलासिणी, मदननावतार, चित्तगया, मोत्तियदाम, पिगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, मंडय, जंभटिया, भुजंगप्यवाउ, सोमराजी, रागिणी, पमारिणी, पोमिणी, चच्चर, पंचचामर, एरान, निभंगिणी, रमणीलता, चित्तिया, भमरपय, मोगण, भमरपुर, मुन्दरी श्रौर लक्ष्मिणी आदि ।

अपभ्रंस में अनेक छन्द ग्रंथ भी निरने गये होंगे। परन्तु वे आज उपलब्ध नहीं हैं। केवल न्ययंभू का छन्द ग्रंथ प्राप्त है यह अपभ्रंस को महत्वपूर्ण देन है। परन्तु वह अन्तरालों में प्रकाशित होने के कारण लोगों के पठन-पाठन में बृत्त रूप आ सका है, अतएव बहुत से लोग उसकी महत्ता में धनभिन्न ही हैं। इस ग्रंथ की

१. संदर्भरमाल पायविर्वाह, चच्चरि रागय रागहि मतिर्वाह ।

पश्य पश्यत् त्राद विनेर्वाह, घटिन मटिल पदटिया धर्वाह ।

दोहन उररोहय धवर्भर्वाह, दुबई हेना नाटु व गार्हा ।

भुवन संट उपखडय पत्ताहि, मम-विद्यनड मनेहि विविताहि ॥ रघुनररंढसावयायार

एक अपूर्ण प्रति रामनगर में सं० १५२७ की लिखी हुई प्रो० एच० डी० वेल्कर महोदय को प्राप्त हुई थी और उन्होंने उसे सम्पादित कर प्रकाशित कराया<sup>१</sup>। इस छन्द ग्रंथ के पहले तीन अध्यायों में प्राकृत के वर्णवृत्तों का और अन्त के ५ अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का कथन किया गया है। और छन्दों के अनेक उदाहरण भी पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से तथा स्वोपज्ञ ग्रन्थों से भी दिये गये हैं। इस ग्रंथ का प्रारम्भिक अंश नहीं है, और न परिचयात्मक अन्तिम प्रशस्ति ही है। हां, ग्रंथ के अन्तिम अध्याय में गाहा, अडिल्ला, पद्धडिया आदि छन्दों के जिनदेव की स्तुतिपरक स्वोपज्ञ उद्धरण भी दिए हुए हैं<sup>२</sup>। छन्द ग्रंथ के सातवें अध्याय का जो २७वां पद्य घत्ता छन्द के उदाहरण में दिया गया है वह 'पउमचरिउ' की पांचवीं संधि का पहला पद्य है<sup>३</sup>। ६-४२ का 'वम्महतिलअ' का जो उद्धरण है वह राम कथा की ६५वीं संधि का प्रथमपद्य है<sup>४</sup>। इसी तरह ६-७४ में 'रणावली' का जो उदाहरण दिया है वह पउमचरिउ की ७७वीं संधि के १३वें कडवक का अन्तिम पद्य है<sup>५</sup>। और छठे अध्याय का ७१वां पद्य पउमचरिउ की ७७वीं संधि का प्रारम्भिक पद्य है<sup>६</sup>। इनसे स्पष्ट है कि कवि ने अपने ग्रंथ के भी उद्धरण दिए हैं<sup>७</sup>। और अन्य कवियों के ग्रंथों पर से उद्धरण देकर कवि ने अपने छन्द नैपुण्य को सूचित किया है।

कविवर जयकीर्ति ने छन्दोनुशासन में स्वयंभूदेव के मत का उल्लेख करते हुए नन्दिनी छन्द "ती औ तथा पद्यनिधिर्जती जरी। स्वयंभूदेवेश मते तु नन्दिनी।" वाक्य के साथ दिया है जिससे जयकीर्ति के सामने स्वयंभू का छन्द ग्रंथ रहा है। जयकीर्ति कन्नड़ प्रान्त के निवासी दिगम्बर विद्वान् थे। इनका समय विक्रम की दशवीं शताब्दी या उससे पूर्व होना चाहिए; क्योंकि दशवीं शती के कवि असग ने इनका उल्लेख किया है। इनके छन्दोऽनुशासन की प्रति सं० ११६२ की लिखी हुई जैसलमेर के भंडार में मिली है।<sup>८</sup> इससे यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वयंभू का उक्त छन्द ग्रंथ ७वीं शताब्दी की रचना है। स्वयंभू

१. देखो, रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे जनरल सन् १६३५ पृ० १८-५८।  
और बोम्बे यूनिवर्सिटी जनरल जिल्द ५ नं० ३ नवम्बर १६३६।"
२. "तुम्ह पअ कमल मूले अम्हं जिण दुःख भावत विआइं।  
डुह डुरुल्लियाइं जिणवर जं जाणसु तं करेज्जासु ॥३८  
जिणणामें छिदे वि मोहजालु, उप्पज्जइ देवल समिसालु।  
जिण णामें कम्मइं णिह्लेवि, मोक्खग्गे पइसिअ सुह-लहेवि ॥"४४
३. "अक्खइ गउत्तमसामि, तिहुअण लद्ध पसंसहो।  
सुण सेणिय उप्पत्ति, रक्खस-वाणर-वंसहो ॥"
४. "हणुवंतरणे परिवेढ्ढिज्जइं णिसियरेहिं।  
णं गयणयले वाल दिवायरु जलहरेहिं ॥
५. "सुरवर डामरु रावणु दट्ठु ज्ञासु जग कंपइ।  
अण्णुकहिं महु चुक्कइ एवणाइ सिहिजंपइ ॥"
६. "भाइ विओएं जिह जिह करइ विहीसणु सोउ।  
तिह तिह दुक्खेण सहिरि वाल वाणर लोउ ॥
७. इस ग्रंथ का विशेष परिचय जैन साहित्य और इतिहास में पृष्ठ २०५ से २०७ तक देखें।
८. संवत् ११६२ आषाढ़ सुदि १० शनी लिखितम्।

का यह छन्द ग्रंथ हिन्दी अनुवाद के साथ सम्पादित होकर प्रकट होना चाहिए, जिससे छन्द शास्त्र के रसिक जन लाभ उठा सकें ।

### अपभ्रंश व्याकरण

अपभ्रंश भाषा के जो व्याकरण दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे अधिक प्राचीन नहीं हैं । प्राचीन समय में अपभ्रंश भाषा में व्याकरण अवश्य लिखे गए होंगे, किन्तु वे वर्तमान में उपलब्ध नहीं है । स्वयंभूदेव के पञ्चम-चरित के ५ वें पद्य में यह बतलाया है कि—अपभ्रंश वाला मदनोन्मत्त हाथो तव तक ही स्वच्छन्दता से विचरता है जब तक कि उस पर स्वयंभू-व्याकरणरूप अंकुश नहीं पड़ता । त्रिभुवनस्वयंभू के इस उल्लेख से कि स्वयंभूदेव ने अपभ्रंश का व्याकरण भी बनाया था, परन्तु खेद है कि वह इस समय उपलब्ध नहीं होता । उसीके छठे पद्य में स्वयंभू को पंचानन (सिंह) की उपमा दी गई है । जिसकी सच्छन्दरूप विकट दाढ़ें, जो छन्द और अलंकाररूप नखों से दुःप्रेक्ष्य है और व्याकरणरूप जिसकी केसर (अयाल) है\* । इससे भी उनके व्याकरण ग्रन्थ होने की सूचना मिलती है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि स्वयंभू ने छंद और अलंकार के ग्रन्थ भी बनाये थे । जिनमें छन्द ग्रन्थ तो उपलब्ध भी है । शेष नहीं ।

अपभ्रंश के प्रचलित व्याकरणों में हेमचन्द्र का व्याकरण सबसे अच्छा है । इस व्याकरण का अध्ययन करने से यह विदित है कि उसमें कई भाषाओं का मिश्रण है । प्राकृत और शौरसेनी इन दो भाषाओं का मिश्रण तो ग्रन्थकर्ता ने स्वयं ही स्वीकार किया है जैसाकि उनके निम्न वाक्यों से प्रकट है\*—  
“प्रायो ग्रहणाद्यस्यापभ्रंशो विशेषो वक्षते तस्यापि वचित् प्राकृत शौरसेनी वच्च कार्यं भवति ।” हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के स्वपरिवर्तन में काफी स्वतंत्रता दी है किन्तु परमात्मप्रकाश के कर्ता जो इन्दु ने यह स्वतंत्रता नहीं दी है । व्यंजनों के परिवर्तन में (४-३६६ सूत्र में) असंयुक्त 'क-ख, त-थ, प-फ, के स्थान में क्रम से 'ग-घ, द-ध, व-भ' होते हैं । किन्तु उसका निर्वाह उनके द्वारा उद्धृत उदाहरणों में नहीं हो सका है फिर भी यह व्याकरण अपनी विशेषता रखता ही है ।

### नाटकों में अपभ्रंश का प्रयोग

विक्रम की द्वितीय शताब्दी के विद्वान अश्वघोष के 'सारिपुत्र प्रकरण नाटक में 'मक्कट हो' रूप उल्लिखित मिलता है जो 'मर्कटस्य' का अपभ्रंश रूप माना जा सकता है । चतुर्थ शताब्दी के भास के 'पंचरात्र, नाटक में ग्वालियों के संवाद में मागधी का प्रयोग होने से उसे भी मागधी अपभ्रंश कहा जा सकता है । जैसे पद्मंडलु पृथ्वी...शतमण्डलः सूर्यः ।

डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'श्रो' विभक्ति का अपभ्रंश की विभक्ति में परिवर्तित होने का समय ईसा की तृतीय शताब्दी अनुमानित किया है\* ।

१. तावच्चि सच्छंदो भमइ भवभंस-मच्च (त्त) मायगो ।

जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो तच्छिरे पडइ ।५।

२. सच्छंद-विषउ-दाडो, छंदो (दा) लंकार-गहर-दुष्पिच्छो ।

वायरण-केसर-उड्डो सयंभु-पंचाणणो जयउ ।६।

३. देतो, हेमचंद्र का प्राकृतव्याकरण ४।३२६ सूत्र ।

४. इण्डो प्रायं एण्ड हिन्दी पृष्ठ ६६

मुद्रा राक्षस के (लगभग चतुर्थ शताब्दी) दूसरे अंक में माधुर ने जिस बोली का प्रयोग किया वह मागधी होते हुए भी उकार बहुला होने के कारण मागधी अपभ्रंश कहा जा सकता है। यद्यपि टीकाकारों ने उसे 'ठक्की' बतलाया है, किन्तु उसका शुद्ध रूप 'ठक्की' जान पड़ता है।

कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक (ई० स० चतुर्थ शताब्दी) के चतुर्थ अंक में सोलह पद्य अपभ्रंश भाषा के दिये हुए हैं जिनमें के एक दो पद्य विभिन्न छन्दों के निम्न प्रकार हैं:—

मइँ जाणियइँ मिअलोअणी गिसिअरु कोइ हरेइ ।

जाव गुण एव तडि सामलो धाराहर वरिसेइ ।

अर्थात् 'जब तक नईं विजली से युक्त श्यामलमेघ बरसने लगा, तब तक मैंने यही समझा था कि मेरी मृगलोचनी (प्रिया) को शायद कोई निशाचर हरण किये जा रहा है।'

'रे-रे हंसा किं गोविज्जइ, गइ अणुसारें मइँ लक्खिज्जइ ।

कइँ पइँ सिखिउ ए गइ-लालस, सापइँ दिठ्ठी जहण-भरालस ॥'

अपभ्रंश के इन पद्यों से यह स्पष्ट जाना जाता है कि ईसा की चतुर्थ शताब्दी के समय अपभ्रंश में विभिन्न छन्दों में पद्य रचना होने लगी थी। यह बात और भी ध्यान में रखने लायक है कि प्राकृत भाषा में प्रायः तुकान्त छन्दों का प्रयोग नहीं मिलता, जबकि अपभ्रंश भाषा में इसकी बहुलता है, ध्वनि और पद-गठन भी इसी ओर संकेत करते हैं।

देशी भाषायें ही अपने शुद्ध अशुद्ध पदों के साथ अपभ्रंश में परिणित हुई हैं। उनका शुद्ध प्रतिष्ठित रूप प्राकृत कहलाता था और अपभृष्ट रूप अपभ्रंश। देशी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी अपभ्रंश में मिल जाता है—वह विरूप नहीं जान पड़ता, इसीसे कविजनों ने देशी भाषा को अपभ्रंश बतलाया है।

### अपभ्रंश-साहित्य-सूची

अंबदेव सूरी	—	समरारास (रचना सं० १३७१) (मुद्रित)
अब्दुल रहमान	—	संदेश रासक (मुद्रित)
अभयगण	—	सुभद्राचरित (२० सं० १३६१)
अभयदेवसूरी	—	जयतिहुअणस्तोत्र (२० च० १११६) (मुद्रित)
अमरकीर्तिगणी	—	नेमिनाथचरित (२० च० १२४४) षट्क्रमोपदेश (२० च० १२४७) पुरंदरविहारण कहा, महावीरचरित जसहरचरित, भाणपईव (अनुपलब्ध)
आसवाल	—	पासनाहचरित (२० च० १४७६)
उद्योतनसूरि	—	कुवलयमाला (वि० सं० ८३५) (मुद्रित)
कण्ठपा आदि चौरासी बौद्ध सिद्धों की दोहा कोष आदि रचनाएं प्रकाशित		
कनककीर्ति		नन्दीश्वर जयमाला
कनकामर		करकंडुचरित (मुद्रित)
गुणभद्र भट्टारक		(वि० की १५वीं १६वीं शताब्दी) अणंतवयकहा, सवणवारसिविहारणकहा, पक्खवइ कहा, राहपंचमी कहा, चंदायणकहा, चंदणछट्ठी कहा, राय उतारी दुद्धारसकहा, गिद्धुहसप्तमी कहा, मउडसत्तमी कहा, पुप्फंजलिवय कहा,

१. डा० कीथकृत संस्कृत ड्रामा पृ० ८६, १४१, १६६, पंजाब का वह प्रदेश 'ठक्क' ही कहलाता है।

रयणत्तयविहाराण कथा, दहलवखणवय कथा, लद्विविहाराण कथा, सोलहकारण वयविहि, सुयंघदहमीकथा । (भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित) हो रही है पञ्चमचरित्र, रिट्टुगोमिचरित्र, पंचमी कथा (अनुपलब्ध)

चउमूंह (चतुर्मुख)		अनुप्रेक्षारास
जयदेव	—	उपदेस रसायन (सं० ११३२-१२१०)
जल्हण	✓	चर्चरी (रास)
जिनदत्तसूरि	—	स्थूलभद्रपाग (सं० १२५७ के आस-पास) मुद्रित
जिनदत्तसूरि	—	अनाथसंधि, अंतरंगरास, अंतरंगविवाह ।
जिनपद्मसूरि	—	आत्मसम्बोधनकुलक
जिगप्रमसूरि	—	मोहराजविजय
जिनप्रभसूरि	—	वज्रस्वामिचरित्र (सं० १३१६)
जिनप्रभसूरि	—	सुभाषितकुलक
जिनमद्र	—	शुद्धिरसायण
जिनवरदेव	✓	संभवनाथचरित्र, वरांगचरित्र (२० सं० १५०७), पार्श्वपुराण
तेजपाल		पञ्चमचरित्र, रिट्टुगोमिचरित्र पंचमीकथा (विक्रम ६वीं शताब्दी का अन्त)
त्रिभुवनस्वयंभू		रोमिणाहचरित्र (२० सं० १२८७)
दामोदर		सिरिपालचरित्र, रोमिणाहचरित्र, चंदप्पहचरित्र
दामोदर		पासणाहचरित्र (लिपि० सं० १४६४)
देवचन्द		वरांगचरित्र, दान्तिनाथपुराण, अंबादेवीरास (अनुपलब्ध) रचनाकाल सं० १०५० के लगभग
देवदत्त		रोहिणीवयकथा
देवनन्दि		उपदेशकुलक
देवसूरि	—	सुलोयणाचरित्र
देवसेन		गयमुकमालरास (सं० १३००) के लगभग
देरहड	—	भविसदत्तपंचमीकथा (वि० की १०वीं शताब्दी)
घनपाल		बाहुवलीचरित्र (२० सं० १४५४)
घनपाल		जंबूस्वामि रास (२० सं० १२६६)
घमंसूरि	—	हरिवंस पुराण (संभवतः विक्रमी ११वीं शताब्दी
पवलकवि		पञ्चमसिरिचरित्र (मुद्रित)
पाहिल	—	सुदंशणचरित्र, सयलविहिविहाराणकव्व (२० सं० ११०० के आस-पास)
नयनन्दी		सिद्धकवकविहि, जिएरत्तिविहाराण कथा (लिपि० सं० १५१२ से पूर्ववर्ती)
नरसेन		रविवज्जकथा, अनन्तवयकथा
नेमचन्द		पासणाहचरित्र (वि० सं० ६६६)
पद्मकीर्ति		महापुराण, (वि० सं० १०१६-१०२२) नागकुमारचरित्र, जसहरचरित्र मुद्रित
पुष्पदंत		

पूर्णभद्रमुनि	सुकमालचरिउ
प्रज्ञातिलक	कछ्खलीरास (सं० १३६२)
वालचन्द्रमुनि	निरय-दुह-सत्तमीकहा
बूचिराज (बल्ह)	मयराजुज्झ (वि० सं० १५८६)
भगवतीदास	मृगांककलेखाचरिउ, (१७००), मउडसत्तमीकहा, सुयंध दसमी कहा ।
महर्णासिंह	त्रिशत् जिनचउवीसी
महाचन्द	शान्तिनाथपुराण (२० सं० १५८७)
महेश्वरसूरि	संयममंजरी
मारिकचन्द	अमरसेनचरिउ (सं० १५७७) रागकुमारचरिउ (सं० १५७६)
यशःकीर्ति	चंदप्पहचरिउ (संभवतः १२वीं १३वीं शताब्दी)
यशःकीर्ति	पाण्डवपुराण (२० सं० १४६७) हरिवंसपुराण (२० सं० १५००) जिनरत्तिवि- हाण कहा रविवउकहा (आदित्यवय कहा)
योगीन्द्रदेव	परमप्पयासु, जोयसार
रइधू	पउमचरिउ (बलहद्वचरिउ) हरवंसपुराण, आदिपुराण, (अनुपलब्ध) पात्त- पुराण, सम्मत्तगुणनिधान, मेहेसरचरिउ, जीवंधरचरिउ, जसहरचरिउ, पुण्णा- सवकहाकोस, धनकुमारचरिउ, सुकोसलचरिउ, सम्मइ जिनचरिउ, सिद्धचक्क वयविहि, वृत्तसार, सिद्धान्तार्थसार आत्मसम्बोहकव्व, अण्णथर्मीकहा, सम्मत्त- कउमदी, (करकंडुचरिउ, सुदंसराचरिउ, अनुपलब्ध) दशलक्षण जयमाला, पोड- सकारण जयमाला, सोहंथुदि, मुद्रित अनेकांत वर्ष १३ कि० ४) सम्यक्त्व भावना तेरापंथीमंदिर जयपुर गु० नं० २५७१)
राजशेखरसूरि	नेमिनाथफाग (सं० १३७१)
रामसेनमुनि	दोहापाहुड़ (वि० १० वीं शताब्दी)
रत्नप्रभसूरि	अंतरंगसंधि (सं० १३६२)
लक्ष्मण (लाखू)	जिरादत्तचरिउ, (सं० १२७५) अणुवयरयणपईव (सं० १३१३)
लक्ष्मण	नेमिनाथचरिउ (आसाइयपुरी)
लक्ष्मीचन्द	दोहाणुप्रेक्षारास (अनेकान्त वर्ष १२ किरण ६ पृ० २०२)
विजयासिंह	अजितनाथपुराण (१५०५)
विजयसेनसूरि	रेवंतगिरिरास (वि० सं० १२८८) मुद्रित
विद्यापति	कीर्तिलता मुद्रित
विनयचन्द	चूनडीरास, निर्भरपंचमीकहारास कल्याणकरास लिपि० सं० १४४५ दुद्धा- रसकहा
विनयचन्द्रसूरि	नेमिनाथचउपई (सं० १२५७)
विमलकीर्ति	सोखवइविहाणकहा, सुयंधदसमी कहा
वीरकवि	जंवूस्वामीचरिउ (२० सं० १०७६)
वीरकवि	राणसारकीपाथडी

विद्युपधोघर		पासपुराण (२० सं० ११८६), वड्डमाणचरित (२० सं० ११६०), चंदम्पहचरित (अनुपलब्ध)
शालिभद्रसूरि	—	पंचपंडवचरितरास (सं० १४१०)
शालिभद्रसूरि	—	भरतवाहुवलीरास (सं० १२४१) मुद्रित
मुनकीर्ति	—	शान्तिनाथचरित
श्रीचन्द्र		कहाकोमु, रयणकरंडसावयायार (२० सं० ११२०)
श्रीघर		सुकमालचरित (२० सं० १२०८)
श्रीघर		भविसदत्त पंचमीकहा (२० सं० १२३०)
श्रुतकीर्ति		हरिवंस पुराण (सं० १५५२) परमेशीप्रकाशसार, धर्मपरीक्षा, जोगसार (१५५२)
सहणपाल	—	सम्यक्त्व कौमुदी
सागरदत्तसूरि	—	जवूस्वामीचरित्र (सं० १०६०)
सापारण ब्रह्म		कोकिला पंचमीकहा, मुकुट सत्तमी, दुधारसी कथा, आदित्यवारकथा, तीन चउवीसीकथा पुष्पांजलिचयकहा, निर्दुहसत्तमी कथा निज्भरपंचमी कहा, अनुप्रेक्षा (सं० १५०८ से पूर्व)
सिद्धकवि		पज्जुण्णचरित, खंडित
सिंहकवि		" पूर्ण (उद्धारित, संभवतः १२वीं १३वीं शताब्दी)
मुप्रभाचार्य	—	मुप्पयदोहा (वैराग्यसार)
सोमप्रभसूरि	—	कुमारपाल प्रतिबोध (सं० १२४१) मुद्रित
स्वयंभू		पउमचरित, हरिवंसपुराण, पंचमीकहा, स्वयंभू व्याकरण (अनुपलब्ध)
हरिदंब (अग्रवाल)		अगत्यमीकहा
हरिदंब (हल्ल या जयमित्र)		वड्डमाणकव्व, मल्लिनाथकव्व
हरिदेव		मदन पराजय संभवतः वि० की १५वीं शताब्दी
हरिभद्र	—	सनत्कुमारचरित (सं० १२१६)
हरिभद्र	—	रोमिकुमारचरित मुद्रित
हरिवेण		धम्मपरिकला (सं० १०४४)
हेमचन्द्र	—	हेमशब्दानुशासन देवीनाममाला मुद्रित

### ग्रन्थ और ग्रन्थकार

पहली और दूसरी प्रशस्तियां क्रमशः 'पउमचरित और रिट्टुणोमिचरित' की हैं। उनके कर्ता कवि स्वयंभू व त्रिभुवन स्वयंभू हैं। स्वयंभू की रामकथा पउमचरित या रामायण बहुत ही सुन्दर कृति है। इसमें ६० सन्धियां हैं, जो पांच काण्डों में विभक्त हैं। विद्याधर काण्ड में २०, अयोध्याकाण्ड में २२, मुन्दर काण्ड में १४, श्रीर उत्तर काण्ड में १३ सन्धियां हैं। जिनमें स्वयंभूदेव रचित ८३ सन्धियां हैं, शेष उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रची गई हैं। ग्रन्थ में प्रारम्भिक पीठिका के अनन्तर जम्बूद्वीप की स्थिति, कुलकरो की उत्पत्ति, अयोध्या में ऋषभदेव की उत्पत्ति तथा जीवन-परिचय; लंका में देवताओं और विद्याधरों के वंश का वर्णन, अयोध्या में राजा दशरथ और राम-लक्ष्मण आदि की उत्पत्ति, बाल्यावस्था, जनक पुत्री सीता से



विवाह, राम-लक्ष्मण-सीता का वनवास, संवूकमरण, सीताहरण, रावण से राम-लक्ष्मण का युद्ध, सुग्रीव आदि से राम का मिलाप, लक्ष्मण के शक्ति का लगना, और उपचार आदि । विभीषण का राम से मिलना, रावणमरण, लंका-विजय, विभीषण को राज्य प्राप्ति, राम-सीता-मिलाप, अयोध्या को प्रस्थान, भरतदीक्षा व तपश्चरण, सीता का लोकापवाद से निर्वासन, लव-कुश उत्पत्ति, सीता की अग्नि परीक्षा, दीक्षा और तपश्चरण, लक्ष्मण मरण, राम का शोकाकुल होना, और प्रबुद्ध होने पर दीक्षा लेकर तपश्चरण करके केवल्य प्राप्ति, और निर्वाण लाभ, आदि का सविस्तार कथन दिया हुआ है ।

इस ग्रन्थ में रामकथा का वही रूप दिया हुआ है, जो विमलसूरि के पञ्चमचरित में और रविषेण के पञ्चचरित में पाया जाता है । ग्रन्थ में रामकथा के उन सभी अंगों की चर्चा की गई है जिनका कथन एक महाकाव्य में आवश्यक होता है । इस दृष्टि से पञ्चमचरित को महाकाव्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ग्रन्थ में कोई दुरुहता नहीं है, वह सरल और काव्य-सौन्दर्य की अनुपम छटा को लिए हुए है । समूचा वर्णन काव्यात्मक-सौन्दर्य और सरसता से ओत-प्रोत है, पढ़ने के साथ ही मन रमने लगता है ।

कविता की शैली जहाँ कथा-सूत्र को लेकर आगे बढ़ती है और वहाँ वह सरलता और स्वाभाविकता का निर्वाह करती है । किन्तु जहाँ कवि प्रकृति का चित्रण करने लगता है । वहाँ एक से एक अलंकृत संविधान का आश्रय कर ऊँची उड़ानें भरता है । गोदावरी की उपमा दृष्टव्य है—गोदावरी नदी वसुधाक्षी नायिका की वंकित फेनावली के बलय से अलंकृत दाहिनी बांह ही हो । जिसे उसने वक्षस्थल पर मुक्ताहार धारण करने वाले पति के गले में डाल रक्खा है ।<sup>१</sup>

कवि को कुछ पंक्तियाँ वसुधा की रोम-राजि सदृश जान पड़ती हैं ।<sup>२</sup>

युद्ध में लक्ष्मण के शक्ति लगने पर अयोध्या के अन्तः पुर में स्त्रियों का विलाप कितना करुण है 'दुःखानुर होकर सभी रोने लगे, मानों सर्वत्र शोक ही भर दिया हो । भृत्यजन हाथ उठा उठाकर रोने लगे, मानों कमलवन हिम पवन से विक्षिप्त हो उठा हो । राम की माता सामान्य नारी के समान रोने लगी, सुन्दरी उर्मिला हतप्रभ रोने लगी, सुमित्रा व्याकुल हो उठी, रोती हुई सुमित्रा ने सभी जनों को रुला दिया—कवि कहता है कि कारुण्यपूर्ण काव्य-कथा से किसके आंसू नहीं आ जाते<sup>३</sup> । भरत और राम का

१. "फेणावन्नि वंकियवलयालंकिय, णं महि बहु अहें तणिया ।

जण-णिहि भत्तार हो मोत्तिय-हार हो, बांह पसारिय दाहिणिया ॥

२. "कत्यवि णाणा विह रुक्खराइ, णं महिकुल बहु अहि रोम-राइ ॥"

—पञ्चमचरित

३. "दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ, णं चप्पवि चप्पवि भरिउ सोउ ।

रोवइ भिच्च-यणु समुद्धक्षु, णं कमल-संडु हिम-पवण घत्थु ।

रोवइ अवरा इव राम जणणि, केवकय दाइय तरु-सूल-खणणि ।

रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय, रोवइ सुमित्त सोमिस्सि-माय ।

हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गओसि, किह सत्तिएँ वच्छ धल्लें हओसि ।

हा पुत्तु ! मरंतुम जो हओसि, दइवेण केण विच्छो इओसि ।

घत्ता—रोवतिएँ लक्खण-मायरिएँ समल लोउ रोमा वियउ ।

कारुणइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अंसु मुआवियउ ॥" १३

—पञ्चमचरित ६६, १३

विलाप किसे अश्रु विगलित नहीं करता । इसी तरह रावण की मृत्यु होने पर विभीषण और मन्दोदरी के विलाप का वर्णन केवल पाठकों के नेत्रों को ही सिक्त नहीं करता; प्रत्युत रावण-मन्दोदरी और विभीषण के उदात्त भावों का स्मरण कराता है<sup>२</sup> । इसी तरह अंजना मुन्दरी के वियोग में पवनजय का विलाप-चित्रण भी संसार को विचलित किये बिना नहीं रहता ।

ग्रन्थ में ऋतुओं का कथन तो नैसर्गिक है ही, किन्तु प्रकृति के सौंदर्य का विवेचन भी अपूर्व हुआ है । नारी-चित्रण में राष्ट्र-कूट नारी का चित्रण बड़ा ही सुन्दर है ।

कवि ने राम और सीता के रूप में पुरुष और नारी का रमणीय और स्वाभाविक चित्रण किया है । पुरुष और नारी के सम्बन्धों का जैसा उदात्त और याथातथ्य चित्रण सीता की अग्नि परीक्षा के समय हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । ग्रंथ में सीता के अमित धैर्य, साहस और उदात्त गुणों का वर्णन नारी की महत्ता का द्योतक है, उसके सतीत्व की आभा ने नारी के कलंक को धो दिया है ।

ग्रन्थ का कथा भाग कितना चित्ताकर्षक है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है । सहस्रार्जुन को जल क्रीड़ा का वर्णन अद्वितीय है<sup>३</sup> । युद्ध के वर्णन करने में भी कवि ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है जिसे पढ़ते ही सैनिकों के प्रयाण की पग-ध्वनि कानों में गूँजने लगती है और शब्द योजना तो उनके उत्साह की संवर्द्धक है ही<sup>४</sup> ।

ग्रंथ में वीर, शृङ्गार, कर्ण और शांत रसों का मुख्य रूप से कथन है । वीर रस के साथ शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति अपभ्रम काव्यों में ही दृष्टिगोचर होती है । अलंकारों में उपमा और श्लेष का प्रयोग किया गया है ।

दूसरी प्रयास्ति 'रिट्ठण्णेमिचरिड' (हरिवंश पुराण) की है । जिसमें ११२ सन्धियां और १६३७ कड़वक हैं । इनमें ७७ संधियां स्वयंभू द्वारा रची गई हैं । शेष १३ संधियां स्वयंभू के पुत्र त्रिभुवनस्वयंभू की बनाई हुई हैं; किन्तु अंतिम कुछ संधियां खंडित हो जाने के कारण भट्टारक यशः कीतिने अपने गुरु गुरा-कीर्ति के सहाय से गोपाचल के समीप स्थित कुमार नगर के परिणयार चैत्यालय में उनका समुद्धार किया था और परिणामस्वरूप उन्होंने उक्त स्थानों में अपना नाम भी अंकित कर दिया । ग्रंथ में चार काण्ड हैं यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर कांड ।

प्रथम कांड में १३ संधियां हैं । जिनमें कृष्ण जन्म, बाल-लीला विवाह-कथा, प्रद्युम्न आदि की कथाएं और भगवान् नेमिनाथ के जन्म की कथा दी हुई है । ये समुद्र विजय के पुत्र और कृष्ण के चचेरे भाई थे । दूसरे कांड में १६ संधियां हैं, जिनमें कौरव-पांडवों के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा आदि का कथन,

१. देखो पउमचरिड संधि ६७।३-४ । संधि ६६, १०-१२ ।

२. देखो पउमचरिड ७६, ४-११, ७६-२-३

३. देखो संधि १४, ६ ।

४. कवि जम युद्ध, सण्णद्ध कोह । कवि गुमित्त-पुत्त, मुक्कलत्त-चत्त-मोह ।

कवि णीसरत्तिवीर । भूधरध्व तुंग धीर ।

सायरव्व भप्पमाण, कुंजरव्व दिण्णणान ।

केसरिध्व उद्धकेस, चत्त सव्व-जीवियास ।

कवि मामि-भत्ति-यंत, मच्छिराग्गि-पज्जलंत ।

कवि माह्वे भ्रमंग, कुं मुमं पसाहि भंग ।

परस्पर का वैमनस्य, युधिष्ठिर का जुआ खेलना और पराजित होना, द्रोपदी का चीर हरण, तथा पांडवों के बारह वर्ष के वनवास आदि का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय कांड में ६० संधियां हैं कौरव-पांडवों के युद्ध वर्णन में पांडवों की विजय और कौरवों की पराजय आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है और उत्तर कांड की २० संधियों में कृष्ण की रानियों के भवांतर, गजकुमारका निर्वाण, द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारिका-दाह, कृष्ण-निधन, बलभद्र-शोक, हलधर दीक्षा, जरत्कुमार का राज्य लाभ, पांडवों का गृह-वास, मोह-परित्याग, दीक्षा, तपश्चरण और उपसर्ग सहन, तथा उनके भवांतर आदि का कथन, भगवान नेमिनाथ के निर्वाण के बाद ७३वीं संधि के पश्चात् दिया हुआ है। रिट्ठेणेमिचरिउ की संधि पुष्पिकाओं में स्वयंभू को धवलइया का आश्रित, और त्रिभुवन स्वयंभू को वन्दइया का आश्रित बतलाया है।

मत्स देश के राजा विराट का साला कीचक जिस समय सबके सामने द्रोपदी का अपमान करता है। कवि कल्पना द्वारा उसे मूर्तिमान बना देता है।

यम दूत की तरह कीचक ने द्रोपदी का केश-पाश पकड़कर खींचा और उसे लात मारी। यह देख कर राजा युधिष्ठिर मूर्च्छित हो गए। भीम रोप के मारे वृक्ष की ओर देखने लगे किस तरह मारें। किन्तु युधिष्ठिर ने पैर के अंगूठे से उन्हें मना कर दिया। उधर पुर की नारियां व्याकुल हो कहने लगीं कि इस दग्ध शरीर को धिक्कार है इसने ऐसा जघन्य कार्य क्यों किया? कुलीन नारियों का तो अब मरण ही हो गया, जहां राजा ही दुराचार करता हो वहां सामान्य जन क्या करेंगे?

सो तेरा विलवखी हूवएण, अणुलगमें जिह जम दूयएण ।  
विहुरे हि धरेवि चलरोहिं हय, पेक्खंतहं रायहं मुच्छ गय ।  
मणि रोस पवट्टिय वल्लभ हो, किर देइ दिट्ठ तरु पल्लव हो ।  
मरु मारमि मच्छु स-मेहुणउं, पट्टवमि कयंत हो पाहुणउं ।  
तो तव-सुएण आरुट्टएण, विणिवारिउ चलरांगुट्टएण ।  
ओसारिउ विओयरु सण्णियउ, पुर-वर एरिउ आदण्णियउ ।  
धि धि दट्ठ सरीरें काइं किउ, कुल-जायहं-जायहं मरणयिउ ।  
जहि पहु दुच्चारिउ समायरइ, नहि जण तम्मण्णु काइं करइ ।

—संधि २८-७

इसी संधि के १५वें कडवक में द्रोपदी के अपमान से क्रुद्ध भीम का और कीचक का परस्पर वाहु युद्ध (कुशती) का वर्णन भी सजीव हुआ है—

रण में कुशल भीम और कीचक दोनों एक दूसरे से भिड़ गए। दोनों ही हजारों युवा हाथियों के समान बल वाले थे। दोनों ही पर्वत के बड़े शिखर के समान लम्बे थे। दोनों ही मेघ के समान गर्जना वाले थे। दोनों ने ही अपने-अपने ओंठ काट रखे थे, उनके मुख क्रोध से तमतमा रहे थे। नेत्र गुंजा (चिरमटी घुंधची) के समान लाल हो गये थे। दोनों के वक्षस्थल आकाश के समान विशाल और दोनों के भुजदंड परिधि के समान प्रचंड थे।

३ 'तो भिडिवि परोधप रण कुशल, विण्णि वि णयणाय सहस्स-वल ।  
विण्णि वि गिरि तुंग-सिग सिहर, विण्णि वि जल हरख गहिर गिर ।  
वि णिणवि दट्ठोट्ट रुट्ट वयण, विण्णिवि गुंजाहल सम-णयण ।  
विण्णिवि गहयल गिरु-वच्छ थल, विण्णिवि परिहोवम-भुज-जुयल ।

इस तरह कवि ने शरीर की असारता का दिग्दर्शन करते हुए लिखा है कि मानव का यह शरीर कितना धिनावना और शिराओं-स्नायुओं से बंधा हुआ अस्थियों का एक ढांचा या पोट्टल मात्र है। जो माया और मद रूपी कचरे से सड़ रहा है, मल पुंज है, कृमि-कीटों से भरा हुआ है, पवित्र गंध वाले पदार्थ भी इससे दुर्गन्धित हो जाते हैं, मांस और रुधिर से पूर्ण चर्मवृक्ष से घिरा हुआ है—चमड़े की चादर से ढका हुआ है, दुर्गन्धकारक है, आंतों की यह पोटली और पक्षियों का भोजन है, कलुपता से भरपूर इस शरीर का कोई भी अंग चंगा नहीं है। चमड़ी उतार देने पर यह दुष्प्रेक्ष्य हो जाता है, जल विन्दु तथा सुर धनु के समान अस्थिर और विनश्वर है। ऐसे घृणित शरीर से कौन ज्ञानी राग करेगा ? यह विचार ही ज्ञानी के लिए वैराग्यवद्धक है।<sup>१</sup>

### कवि परिचय

स्वयंभू कुल से ब्राह्मण थे परन्तु जैनधर्म पर आस्था हो जाने के कारण उनकी उस पर पूरी निष्ठा एवं भक्ति थी। कवि के पिता का नाम मास्तदेव और माता का नाम पद्मिनी था।<sup>२</sup> स्वयं कवि ने अपने छन्द ग्रंथों में मास्तदेव का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि वे कवि के पिता ही हों। पुत्र द्वारा पिता की कृति का उल्लिखित होना आश्चर्य की बात नहीं है।

कवि की तीन पत्नियां थीं। आदित्य देवी जिसने अयोध्या कांड लिपि किया था।<sup>३</sup> दूसरी आमि-अम्बा, (अमृताम्बा) जिसने पउमचरित के विद्याघरकांड की २० संधियाँ लिखवाई थीं और तीसरी सु-अम्बा, जिसके पवित्र गर्भ से 'त्रिभुवन स्वयंभू' जैसा प्रतिभा सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो अपने पिता समान ही विद्वान् और कवि था।<sup>४</sup> इसके सिवाय अन्य पुत्रादिक का कोई उल्लेख नहीं मिलता। कविवर का शरीर दुबला-पतला और उन्नत था। उनकी नाक चपटी और दांत विरल थे।<sup>५</sup>

कवि स्वयंभू कोशल देश के निवासी थे। जिन्हें उत्तरीय भारत के आक्रमण के समय राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का मंत्री रयडा धनंजय मान्यखेट ले गया था। राजा ध्रुव का राज्य काल वि० सं० ८३७ से ८५१ तक रहा है।<sup>६</sup> पउमचरित में स्वयंभू देव ने अपने को धनंजय के आश्रित बतलाया है और रिट्ठणे-मिचरित में धवलइया के आश्रित। और त्रिभुवन स्वयंभू ने अपने को वंदइया के आश्रित।

धनंजय, धवलइया और वंदइया ये तीनों ही पिता पुत्र आदि के रूप में सम्बद्ध जान पड़ते हैं। उनका कवि के ग्रंथ निर्माण में सहायक रहना श्रुत भक्ति का परिचायक है।

### समय-विचार

कवि ने ग्रन्थ में अपना कोई समय नहीं दिया है। परन्तु पउमचरित के कर्ता रविपेरा का स्मरण जरूर

१. देखो, रिट्ठणेमिचरित ५४-११।

२. पउमिणि जणणि गढम संभूमं, मारयएव—रूप-अणुरएँ।

—पउमचरित प्रसस्ति

३. आइच्चु एवि पहिमोवमार्ये आइच्चन्वियाए।

वीर अउम्भा-कंउं सयंभू घरिणीय लेहुवियं ॥ सधि ४२

४. सव्वे वि सुम्मा पंजर सुम्मव्व पहिच्चवखराई सिनवंति।

कइरा अस्त सुम्पो सुम्भव्व-सुइ-गढम संभूमो ॥

५. अइ तणएण पईहेर गत्तें टिच्चरणसो पविरस दत्तें।

—पउम० प्रसस्ति

६. हिन्दी काव्य-धारा पृ० २३

किया है। आचार्य रविषेण ने पद्मचरित को वीर निर्वाण सं० १२०३ वि० सं० ७३३ में बनाकर समाप्त किया है। अतः स्वयंभू वि० सं० ७३३ के बाद किसी समय हुए हैं। श्रद्धेय प्रेमी जी ने लिखा है कि— स्वयंभू ने 'रिट्ठरोमिचरिउ' में हरिवंश पुराण के कर्ता पुत्राट संधीय जिनसेन का उल्लेख नहीं, किया हो सकता है कि उक्त उल्लेख किसी कारण से छूट गया हो, या उन्हें लिखना स्वयं याद न रहा हो। रिट्ठरोमिचरिउ का ध्यान से समीक्षण करने पर या अन्य सामग्री से अनुसंधान करने पर यह स्पष्ट जरूर हो जाएगा कि ग्रन्थ कर्ता ने उसकी रचना में उसका उपयोग किया या नहीं। भ० यशः कीर्तिके उद्धार काल से पूर्वकी कोई प्रति १५वीं शताब्दी की लिखी हुई कहीं मिल जाय तो उक्त समस्या का हल शीघ्र हो सकता है।

स्वयंभू के पुत्र चिभुवन स्वयंभू ने 'रिट्ठरोमिचरिउ' की १०४वीं संधि में प्राकृत संस्कृत और अपभ्रंश के जो ७० के लगभग पूर्ववर्ती कवियों के नाम गिनाये हैं। उनमें जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्य का भी नामोल्लेख किया है। उनका उल्लेख निम्न प्रकार है—

देविल, पंचाल, गयन्द, ईश्वर, णील, कंठाभरण, मोहाकलस (मोहकलश) लोलुय (लोलुक) वन्धुदत्त, हरिदत्त, दोल्ल, वाण पिंगल, कलमियंक, कुलचन्द्र, मदनोदर, गौड, श्री संघात, महाकवितुंग, चारुदत्त, रुड्ड, (रुद्रट) रंज्ज, कविल अहिमान, गुणानुराग, दुग्गह, ईसान, इंद्रक, वस्त्रादन, णारायण, महट्ट, सीहप्प, कीर्तिरण, पल्लवकित्ति, गुणिद्ध, गणेश, भासड, पिसुण, गोविन्द, वेयाल, (वेताल) विसयड, णाग, पण्डणत्त, सुग्गीव, पतंजलि, वरसेन, मल्लिसेण, मधुकर, चतुरानन (चउमुख) सँघसेन, वंकुय, वद्धमान, सिद्धसेन, जीव या जीवदेव, दयावरिद, मेधाल, विलालिय पुण्डरीक, वसुदेव, भीउय कुण्डरीक, दृढमत्ति, गृहत्थि, भावक्ष, यक्ष, द्रोण पराभद्र, श्रीदत्त, धर्मसेन, जिनसेन, दिनकर, णाग, धर्म, गुणभद्र, कुशल, स्वयंभूदेव, शीलभद्र, वीरवंदक, सर्वनन्दि, कलिकाभद्र, णागदेव और भवन्दि ।<sup>१</sup>

१. पह दइ सन्नभाव कइ देविल पंचाल गइंधया ।
- ईसर णील कंठाभरण मोहाकलस इंधया ॥
- लोलुय वंधुयत्त हरियत्त दोल्ल वाणाय पिंगला ।
- दढहड कलमियंक मयणोउर गयउड विक्क दुज्जला ॥
- सिरि संघाय तुंग महकइ परसेय चारु दत्तया ।
- वाडा संगु अक्खवहि वंधण रुड्डरज्ज इंदया ॥
- वत्थायण वि यह हरि कुटि गुण सुटुव्वि मइढया ।
- णारायण महट्ट सीहप्प कित्ति रणं दियट्ठया ॥
- कविल गुणानुराय दुग्गह दीसानहिमाण अंचया ।
- जिणयत्त(त्ता) कलंक करविस पल्लव कित्तिडि गुणिद्धया ।
- मण मोहावरुद्ध धम्मीयणार गणेश भासडा ॥
- पिसुण सुयउ मणेह गोविंदकइ वेयांलविसयडा ।
- णवि णागह पंडणत्त सुग्गीव पंडंजलिय वरसेणया ॥
- करि कण्णय कण्णा संदीस मणोहर मल्लिसेणया ।
- महुयर मूलहट्ट चउराणण महकइसंघसेणया ॥
- वेकुय वद्धमाण संघायरियाहिय सिद्धसेणया ।
- जीददयावरिद मेधाल विलालिय पुंडरीया ॥

इन कवियों में जैन जैनतर प्राकृत-संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के कवि शामिल हैं। जैसे गोविंद, मल्लिपेण, चतुरानन, संघसेन, वर्द्धमान, सिद्धसेन, श्रीदत्त, धर्मसेन, जिनसेन, जिनदत्त, गुणभद्र, स्वयंभूदेव, सर्वनन्दि, नागदेव और भवनन्दि आदि जैन कवि प्रतीत होते हैं। संभव है, इनमें और भी चार-पाँच नाम हों। क्योंकि उनका ग्रंथ परिचादि के बिना ठीक परिज्ञान नहीं होता। इससे यह भी स्पष्ट है कि उनसे पूर्व अनेक कवि अपभ्रंश के भी हो गए थे।

इनमें उल्लिखित गुणभद्राचार्य राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय के शिक्षक थे। गुणभद्र का समय विक्रम की १०वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। हो सकता है कि स्वयंभू गुणभद्र के समय नहीं रहे हों; किन्तु त्रिभुवन स्वयंभू तो मौजूद थे। इसीसे उन्होंने उनका नामोल्लेख किया है। जिनसेन ने अपना हरिवंशपुराण शक सं० ७०५ वि० सं० ८४० में बनाकर समाप्त किया है। स्वयंभू ने अपना ग्रन्थ जब बनाया उस समय गुणभद्र नहीं होंगे। किन्तु हरिवंशपुराण के कर्ता के समय तक वे अवश्य रहे होंगे। अतः रिद्वेषोमिचरित के रचयिता स्वयंभूदेव के समय की पूर्वार्ध वि० सं० ८०० और उत्तरार्ध वि० सं० ९०० मानने में कोई बाधा नहीं जान पड़ती। इस कारण स्वयंभू विक्रम की ९वीं शताब्दी के विद्वान होने चाहियें। यदि रयडा-धनंजय वाली बात स्वीकृत की जाय, तो राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का राज्यकाल वि० सं० ८३७ से ८५१ तक रहा है। इससे भी स्वयंभूदेव का समय विक्रम की ९वीं शताब्दी का मध्यकाल सुनिश्चित होता है। इससे वे पुत्राटसंघीय जिनसेन के प्रायः समकालीन जान पड़ते हैं।

कन्नड़ कवि जयकीर्ति ने 'छन्दो-नुशासन' नामक ग्रंथ बनाया है जिसकी हस्तलिखित प्राति सं० ११६२ की जैसलमेर के शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। यह ग्रन्थ एच० डी० बेलकर द्वारा सम्पादित हो चुका है। इस ग्रन्थ में कवि ने स्वयंभू छन्द के 'नन्दिनी' छन्द का उल्लेख किया है। कवि जयकीर्ति का समय विक्रम की दशवीं शताब्दी का पूर्वार्ध या नौवीं शताब्दी का उपान्त्य समय होना चाहिए। क्योंकि दशवीं शताब्दी के कवि असग ने जयकीर्ति का उल्लेख किया है। इस कथन से भी स्वयंभू का समय ९वीं शताब्दी होना चाहिये।

तीसरी और सत्रहवीं प्रशस्तियाँ क्रम से 'सुदसणचरित' और 'सयल विहिविहाणकव्व' नामक ग्रंथों की हैं जिनके कर्ता कवि नयनन्दी हैं। सुदर्शनचरित अपभ्रंश भाषा का एक खण्ड काव्य है, जो महाकाव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है। जहाँ उसका चरित भाग रोचक और आकर्षक है वहाँ वह सालंकार-काव्य-कला की दृष्टि से उच्चकोटि का है कवि ने उसे सरस और निर्दोष बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। ग्रंथकार ने स्वयं लिखा है कि रामायण में राम और सीता का वियोग तथा शोकजन्य व्याकुलता के दर्शन होते हैं, और महाभारत में पाण्डव तथा धृतराष्ट्रादि कौरवों के परस्पर कलह एवं भारकाट के दृश्य अंकित

समुवसुएण खेणाए सरभोजय कुडरीगया ।

दिडमइ गहरिय पडुडोवकरुणभाववत्त जवत्तया ॥

दोणय पणभट्टमि सिरिदत्त वम्म-जिणणेण दक्कया ।

दिण्णयर णाय-धम्म गूणभट्टहि य मुणि सयल वंदया ॥

कुसल रायंभूदेव जइमोलहइ गुरु वीरुवदया ।

सुंदर सब्बणादि माहुव बहुय णिदया ॥

निरिक्कित्तकालहइ सिहइ य णागदेव भवणदिया ।

—हरिवंशपुराण १०४वीं सधि, पृ०, ३०१ नारयणा प्रति

मिलते हैं। तथा लोकशास्त्र में भी कौलिक, चोर, व्याधे आदि की कहानियां सुनने में आती हैं; किन्तु इस सुदर्शनचरित में ऐसा एक भी दोष नहीं है। जैसा कि उसके निम्न वाक्य से प्रकट है :—

रामो सीय-विश्रोय-सोय-विहरं संपत्तु रामायणे,  
जादं पाण्डव-धायरट्ट सददं गौत्तं कली-भारहे ।  
डेडा-कोलिय-चोर-रज्जु-णिरदा आहासिदा सुदये,  
णो एकं पि सुदंसाणस्स चरिदे दोसं समुत्भासिदं ॥

कवि ने काव्य के आदर्श को व्यक्त करते हुए लिखा है कि रस और अलंकार से युक्त कवि की कविता में जो रस मिलता है वह न तरुणियों के विद्रुम समान रक्त अधरों में, न आम्रफल में, न ईश्वर में, न अमृत में, न हाला (मदिरा) में, न चन्दन में और न चन्द्रमा में ही मिलता है<sup>१</sup>।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सुदर्शन के निष्कलंक चरित की गरिमा ने उसे और भी पावन एवं पठनीय बना दिया है। ग्रन्थ में १२ सन्धियां हैं जिनमें सुदर्शन के जीवन परिचय को अंकित किया गया है। परन्तु इस कहाकाव्य में कवि की कथन शैली, रस और अलंकारों की पुट, सरस कविता, शान्ति और वैराग्य रस तथा प्रसंगवश कला का अभिव्यंजन, नायिका के भेद, ऋतुओं का वर्णन और उनके वेष-भूषा आदि का चित्रण, विविध छन्दों की भरमार, लोकोपयोगी सुभाषित<sup>२</sup> और यथास्थान धर्मोपदेशादि का विवेचन इस काव्य-ग्रन्थ की अपनी विशेषता के निर्देशक हैं और कवि की आन्तरिक भद्रता के द्योतक हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में पंचनमस्कार मंत्र का फल प्राप्त करने वाले सेठ सुदर्शन के चरित्र का चित्रण किया गया है। चरितनायक यद्यपि वरिष्ठ श्रेष्ठी हैं, तो भी उसका चरित्र अत्यन्त निर्मल तथा मेखवत् निश्चल है उसका रूप लावण्य इतना चित्तकर्षक था कि उसके बाहर निकलते ही युवतियों का समूह उसे देखने के लिए उत्कंठित होकर मकानों की छतों, द्वारों तथा झरोखों में इकट्ठा हो जाता था; वह कामदेव का कमनीय रूप जो था। साथ ही वह गुणज्ञ और अपनी प्रतिज्ञा के सम्यक्पालन में अत्यन्त दृढ़ था। धर्माचरण करने में तत्पर था, सबसे मिष्टभाषी और मानव जीवन की महत्ता से परिचित था और था विषय-विकारों से विहीन।

ग्रंथ का कथा भाग बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक है और वह इस प्रकार है—

अंग देश के चम्पापुर नगर में, जहां राजा धाड़ीवाहन राज्य करता था, वहां वैभव सम्पन्न ऋषभदास सेठ का एक गोपालक (ग्वाला) था जो गंगा में गायों को पार करते समय पानी के वेग से डूब कर मर गया था और मरते समय पंच नमस्कार मंत्र की आराधना के फलस्वरूप उसी सेठ के यहां पुत्र हुआ था। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। सुदर्शन को उसके पिता ने सब प्रकार से सुशिक्षित एवं चतुर

१. णो संजादं तरुणिअहरे विद्दुमारत्तसोहे ।

णो साहारे भमिय भमरे णेव पुंडिच्छु डंडे ॥

णो पीयूसे हले खिहिणे चन्दणे णेव चन्दे ।

सालंकारे सुकइ भणिदे जं रसं होदि कव्वे ॥

२. करे कंकणु किं आरिसे दीसए ? हाथ कंगन को आरसी क्या ?

एकें हत्यें ताल किं वज्जइ । ताली क्या एक हाथ से वजती है ?

किं मारवि पंचमुगाइज्जइ । ताड़न से क्या पांचवां स्वर गाया जाता है ।

—सुदक्ष्णचरिउ

बना दिया और उसका विवाह सागरदत्त सेठ की पुत्री मनोरमा से कर दिया। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह अपने कार्य का विधिवत् संचालन करने लगा। सुदर्शन के रूप की चारों ओर चर्चा थी, उसके रूपवान शरीर को देखकर उस नगर के राजा घाड़ीवाहन की रानी अभया उस पर आसक्त हो जाती है और उसे प्राप्त करने की अभिलाषा से अपनी चतुर पंडिता दासी को सेठ सुदर्शन के यहां भेजती है पंडिता दासी रानी की प्रतिज्ञा सुनकर रानी को पातिव्रत धर्म का अर्घ्य उपदेश करती है और सुदर्शन की चरित्र-निष्ठा की ओर भी संकेत करती है, किन्तु अभया अपने विचारों से निश्चल रहती है और पण्डिता को उक्त कार्य की पूर्ति के लिए खासतौर से प्रेरित करती है। पंडिता सुदर्शन के पास कई बार जाती है और निराश होकर लौट आती है, पर एक बार वह दासी किसी कपट-कला द्वारा सुदर्शन को राजमहल में पहुंचा देती है। सुदर्शन के राजमहल में पहुंच जाने पर भी अभया अपने कार्य में असफल रह जाती है—उसकी मनोकामना पूरी नहीं हो पाती। इससे उसके चित्त में असह्य वेदना होती है और वह उससे अपने अपमान का बदला लेने पर उतारू हो जाती है, वह अपनी कुटिलता का माया-जाल फैलाकर अपना मुकामल शरीर अपने ही नखों से रघिर-प्लावित कर डालती है और चिल्लाने लगती है कि दोड़ो लोगो मुझे बचाओ, सुदर्शन ने मेरे सतीत्व का अपहरण किया है, राजकर्मचारी सुदर्शन को पकड़ लेते हैं और राजा अज्ञानता-वश क्रोधित हो रानी के कहे अनुसार सुदर्शन को मूली पर चढ़ाने का आदेश दे देता है, पर सुदर्शन अपने धीलव्रत की निष्ठा से विजयी होता है—एक देव प्रकट होकर उसकी रक्षा करता है। राजा घाड़ीवाहन का उस व्यन्तर से युद्ध होता है और राजा पराजित होकर तथा सुदर्शन की शरण में पहुंचता है। राजा घटना के रहस्य का ठीक हाल जानकर अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता है और सुदर्शन को राज्य देकर विरक्त होना चाहता है, परन्तु सुदर्शन संसार-भोगों से स्वयं ही विरक्त है, वह दिगम्बर दीक्षा लेकर तपश्चर्या द्वारा कर्मसमूह का विनाशकर मुक्त हो जाता है। सुदर्शन का तपस्वी जीवन बड़ा ही सुन्दर रहा है उसे कवि व्यक्त करने में सफल हुआ है। अभयारानी और पंडिता दासी भी आत्मघात कर मर जाती हैं और वे अपने कर्मानुसार कुगति में जाती हैं। इस तरह इस ग्रंथ में पंच नमस्कार मंत्र के फल की महत्ता अर्द्धित की गई है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना अवन्ति देश स्थित धारा नगरी के जिनवर विहार में राजा गोज के राज्यकाल में सं० ११०० में की है।

ग्रंथकर्ता ने ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए जो परम्परा दी है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व की वस्तु है। कुन्दकुन्दाचार्य के वंश में पद्मनदी, विष्णुनन्दी, विद्व-नन्दी, वृषभनन्दी, रामनन्दी, त्रैलोक्यनन्दी, माणिक्यनन्दी का नामोल्लेख किया है, इन्हीं माणिक्यनन्दी के प्रथम विद्या शिष्य नयनन्दी हैं।

दूसरी कृति 'सयल-विही-विहार' नाम का महाकाव्य है, जो ५८ संधियों में समाप्त हुआ है। परन्तु मोद है कि वह अपूर्ण उपलब्ध हुआ है; क्योंकि उसमें १६ संधियां नहीं हैं, वे ग्रन्थ से कैसे घृष्टित हुई इसके जानने का भी कोई साधन नहीं है। प्रारंभ की दो तीन संधियों में ग्रंथ के श्रवतरण आदि पर प्रकाश डालते हुए १२ वीं से १५ वीं संधि तक मिथ्यात्व के काल मिथ्यात्व और लोक-मिथ्यात्व आदि अनेक मिथ्यात्वों का स्वरूप निदिष्ट करते हुए क्रियावादि और अक्रियावादि भेदों का विवेचन किया है। परन्तु मोद है कि १५वीं संधि के पश्चात् ३२ वीं संधि तक १६ संधियां आमेर भण्डार प्रति में नहीं हैं। हो सकता है कि वे लिपिकर्ता को न मिली हों।



कवि ने इस ग्रंथ में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है उनमें से कुछ छन्दों के नाम मय पत्र नम्वर के निम्न प्रकार हैं—

१. विलासनी, (३२) २. भुजंगप्रिया, (२६) ३. मंजरी, (३०) ४. वंशस्थल, (४४) ५. चन्द्रलेखा (५२) ६. सिंधुरगति, (५८) ७. दोधकं, (७४) ८. मौक्तिकमाला, (७७) ९. सर्गिणी, (८३) १०. पादाकुला, (९६) ११. मदनलीला, (९८) १२. द्विपदी, (९८) १३. विद्युन्माला, (९९) १४. रासाकुलक, (१०२) १५. कुवलयमालिनी, (१०२) १६. तुरंगगति मदन, (१०३) १७. समानिका, (११८) १८. रथोद्धता, (११९) १९. प्रमाणिका, (१७५) २०. नाग कन्या, (१७६) २१. संगीतगंधर्व, (२००) २२. शृंगार, (२००) २३. बालभुजंग ललित, (२०१) २४. अजनिका, (२५०) आदि

इनके अतिरिक्त दोहा, घत्ता, गाहा, दुपदी, पट्टडिया, चौपाई, मदनावतार भुजंगप्रयात आदि अनेक छन्दों का एक से अधिक बार प्रयोग हुआ है। अतएव छन्दशास्त्र की दृष्टि से भी ग्रन्थ अध्ययन, मनन और प्रकाशन के योग्य है। ग्रन्थकी भाषा प्रौढ़ और कविके अपभ्रंश भाषाके साधिकारको सूचित करती है।

कवि ने ग्रन्थ के सन्धि-वाक्य भी पद्य में निबद्ध किये हैं। यथा—

मुग्गिवर रायरांदि सण्णिवद्धे पसिद्धे, सयल विहिविहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे।

समवसरणसंसि सेणिए संपवेसो, भण्णिउ जण मणुज्जो एस संधी तिइज्जो ॥३॥

ग्रंथ की ३२ वीं सन्धि में मद्य-मांस-मधु के दोष उदंवरादि पंचफलों के त्याग का विधान और फल बतलाया है। ३३ वीं सन्धि में पंच अणुव्रतों की विशेषताओं का उल्लेख है और उनमें प्रसिद्ध पुरुषों के आख्यान भी यथा स्थान दिए गए हैं शेष सन्धियों में भी इसी तरह का कथन किया गया है। ५६ वीं संधि के अन्त में सल्लेखना (समाधिमरण) का स्पष्ट उल्लेख है और विधि में आचार्य समन्त भद्र के कथन-क्रम को अपनाया गया है। इस तरह ग्रन्थ में गृहस्थोपयोगी व्रतों का सुन्दर विधान किया गया है।

ग्रन्थ की दूसरी संधि में अंबाइय और कंचीपुर का उल्लेख किया है। अनन्तर बल्लभराज का भी उल्लेख किया है, जिसने दुर्लभ जिन प्रतिमाओं का निर्माण कराया था और जहां पर रामनन्दी, जयकीर्ति और महाकीर्ति प्रधान थे<sup>१</sup>। आगे कवि ने रामनन्दी को आचार्य प्रकट किया है। और रामनन्दी के शिष्य बालचन्द्र ने नयनन्दी से कहा कि सकलविधिविधान काव्य अविशेषित है। कवि ने उसे कुछ दिनों के बाद बनाना प्रारम्भ किया था; क्योंकि किसी कारण विशेष से कवि का चित्त उद्विग्न था, चित्त की अस्थिरता में ऐसे महाकाव्य का निर्माण कैसे सम्भव हो सकता है? उद्विग्नता दूर होनेपर ही प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान् है, कवि ने ग्रन्थ बनाने में प्रेरक मुनि हरिसिंह का उल्लेख करते हुए अपने से पूर्ववर्ती जैन जैनेत्तर और कुछ सम सामयिक विद्वानों का भी नामो-ल्लेख किया है—वररुचि, वामन, कालिदास, कौतूहल, वाण, मयूर जिनसेन वादरायण, श्रीहर्ष, राजशेखर, जसचन्द्र, जयराम, जयदेव, पादलिप्त पिंगल, वीरसेन, सिंहनन्दी, सिंहभद्र, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलंक,

१. अंबाइय कंचीपुर विरत्त, जहि भमइ भव्य भत्तिहि पसत्त।

जहि बल्लभराए बल्लहेण, कराविउ कित्तण दुल्लहेण।

जिणि पडिमा लंकिउ गच्छुमाणु, रां केण वियंभिउ सुरविमाणु।

जहि रामणंदि गुणमणि-णिहाणु, जयकित्ति महाकित्ति वि पहाणु।

—सयलविहिविहाण काव्य सन्धि २

रुद्र गोविन्द, दण्डो, भामह, माघ, भरत, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र प्रभाचन्द्र, और श्रीकुमार जिन्हें सरस्वतीकुमार भी कहते थे।

इन कवियों में जिनसेन, जयराम, वीरसेन, सिंहनन्दी, सिंहभद्र, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलंक, गोविंद, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र और श्रीकुमार ये १५ कवि जैन हैं। वे जिनसेन से पुष्पदन्त तक सभी कवि ग्रंथ कर्ता से पूर्ववर्ती हैं और शेष सप्त सामयिक। इनमें जयराम वही प्रतीत होते हैं जो प्राकृत धर्मपरीक्षा के कर्ता थे और जिनका उल्लेख बुधहरिपेण ने सं० १०४४ में रचीजाने वाली धर्मपरीक्षा में किया। श्रीचन्द्र प्रभाचन्द्र श्रीकुमार और हरिसिंह मुनि सप्त समयवर्ती हैं।

इस तरह कवि ने ग्रंथ में बहुमूल्य सामग्री संकलित की है, कथनशैली चित्ताकर्षक है। संसार की असारता और मनुष्य की उन्नति अवनति का हृदयग्राही वर्णन किया है और बतलाया है कि जब एक ही दिन में सूर्य जैसे पराक्रमी को भी उदय, उपरिगमन और पतन इन तीन अवस्थाओं का अनुभव करना पड़ता है, तब अन्य का क्या कहना। यौवन, घनादि सब अस्थिर हैं।

यथा—उययं चडणं पडणं तिण्णि वि ठाणाइं इक्क दिण्हंमि ।

सूरस्स य एसगई अण्णस्स य केत्तियं थामं ।

कवि नयनन्दी अपने समय के उच्चकोटि के कवि थे, और अपभ्रंश के छन्दों के मर्मज्ञ के। ग्रंथ की महत्ता का अन्दाज उसके अध्ययन से लगता है।

कवि ने ग्रंथ-प्रशस्ति में लिखा है कि वराड या वराट देश में प्रसिद्ध कीर्ति, लक्ष्मी और सरस्वती से मनोहर वाट ग्राम के महान महल शिखर में जिरिण्णद विराजमान हैं जिनकी कांति से चन्द्र-सूर्य भी लज्जित हो गए हैं। जहाँ पर जिनागम का उत्सव सम्पन्न होता था और वही पर वीरसेन जिनसेन ने धवला और जयधवला टीकाओं का निर्माण किया था, वहाँ ही पुंडरीक कवि धनंजय हुए थे।

## कवि-परिचय

प्रस्तुत कवि नयनन्दी कुन्दकुन्दान्वय की परम्परा के विद्वान् थे। त्रैलोक्यनन्दि के प्रशिष्य और मारिण्णयनन्दि के प्रथम विद्या शिष्य थे, मारिण्णयनन्दि दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्हीं से नयनन्दि ने अध्ययन किया था। इनके दीक्षा गुरु कौन थे और वह कहाँ के निवासी थे, इनका जीवन-परिचय क्या है? इसे कवि ने ही नहीं दिया है। परन्तु कवि काव्य-शास्त्र में निष्णात थे, साथ ही संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के विशिष्ट विद्वान् थे। छन्द शास्त्र के भी परिजानी थे। कवि ने धारा नगरी में ही अध्ययन किया था और वहीं रहते हुए परमारवंशी राजा जयसिंह के राज्य में वि० सं० ११०० में सुदर्शन चरित की

१. वर वराडदेशे पसिद्धए, कित्ति-लच्छि सरसइ-मणोहरे ।

वाडगामि महि महिल सेहरे, जहि जिण्णद-हर पइ-पराजिया ।

चंद-सूर णेह जंत लज्जिया, तहि जिणागमुच्छव अल्लेवहि ।

वीरसेण-जिणसेण देवहि, णामधवल जयधवल सय ।

महावध तिण्णि सिद्धंत सिव-पहा, विरइळ्ण भवियहं सुहाविया ।

सिद्ध-रमणि-हाराव दाविया पुंडरीउ जहि कवि धणंजउ ।

—सकल विधि विधान प्रशस्ति

रचना की थी। उसके बाद किसी समय सकलविधिविधान की रचना की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ ५८ संधियों का था किन्तु उसके मध्य की १६ सन्धियाँ अनुपलब्ध हैं। कवि ने अन्य किन ग्रन्थों की रचना की, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। इन्होंने विविध देशों में भ्रमण कर जैनधर्म का भी प्रचार किया था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख सुदंशरा चरित में किया है, जिसे उस ग्रंथ का परिचय देते समय दे दिया है।

चौथी प्रशस्ति 'पार्श्व पुराण' की है, जिसके कर्ता कवि पद्मकीर्ति हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में १८ संधियाँ हैं। संधियों में कडवकों की संख्या निश्चित नहीं है, उदाहरणार्थ चौथी-पाँचवीं संधि में बारह-बारह कडवक हैं। तो चउदहवीं संधि में ३० कडवक दिये हैं। जिनमें जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अङ्कित किया गया है। वे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) से ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए हैं। और ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनकी ऐतिहासिकता को ऐतिहासिक विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। ग्रन्थ में अन्य सब कथन परम्परा के अनुकूल ही किया गया है।

हां, कवित्व की दृष्टि से छठी, दशवीं और ग्यारहवीं संधियाँ उल्लेखनीय हैं। छठी संधि में ग्रीष्म काल और उसमें होने वाली जलक्रीड़ा, वर्षा काल और हेमन्त आदि का सुन्दर वर्णन दिया हुआ है। दसवीं संधि में सूर्यास्त, रजनी और चन्द्रोदय आदि का कथन दृष्टव्य है। ग्यारहवीं संधि में युद्धादि का वर्णन भी चित्तार्थक हुआ है। भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ देखने में आता है और जो स्वाभाविक है। मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त भुजंगप्रयात, स्रग्विणी आदि वर्णिक छन्द भी प्रयुक्त हुये हैं। ११वीं संधि के प्रत्येक कडवक के प्रारम्भ में पहले एक दुवई और फिर उसके बाद दोहय या दोहे का प्रयोग भी किया गया है<sup>१</sup>। एक व्यक्ति विशेष के परिचय की मुख्यता इसे खण्ड-काव्य कहा जाता है। पर उसमें महाकाव्यत्व की क्षमता भी दृष्टिगत होती है।

कवि ने इस ग्रन्थ को वि० सं० ६६६ में कार्तिक की अमावस्या के दिन बनाकर समस्त किया है<sup>२</sup>।

ग्रंथकर्ता ने अपनी गुरु परम्परा निम्न रूप से व्यक्त की है। भूमण्डल में प्रसिद्ध माथुरगच्छ के विद्वान चन्द्रसेन नाम के ऋषि हुए। उनके शिष्य, महायती कामजयी माधवसेन हुए। उनके शिष्य जिनसेन हुए, और उनके शिष्य उक्त पद्मकीर्ति या पद्मसेन हैं। जिन्होंने इस ग्रन्थ को 'भमिया पुहमी' जिनालय में बैठकर बनाया था। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। ग्रन्थ की श्लोक संख्या २३२३ बतलाई गई है।

५वीं प्रशस्ति 'धर्म परोक्षा' की है जिसके कर्ता कवि हरिषेण हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ११ संधियाँ और २३८ कडवक हैं। जिसे कवि ने बुध सिद्धसेन के प्रसाद से बनाया था। ग्रन्थ में मनोवेग और पवनवेग का रोचक सम्वाद दिया हुआ है। ग्रंथ का कथानक मनोरंजक है, और वह पौराणिक कथानकों के अविश्वसनीय असम्बद्ध चरित्र चित्रण से भरा हुआ है और उन आख्यानों को असंगत बतलाते हुए जैनधर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की गई है; किन्तु उनमें स्मृत-पुराण-ग्रन्थों के मूल वाक्यों का कोई उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ की

१. चडि वि महारहि भउ सहिउ, वइरिपमाण ममंडु ।

अहि मुह चल्लिउ परवलहो सण्णज्जे वि णरेडु ॥११-१

२. णवसय णउ वा णुइये कत्तिवमासे अमावसी दिवसे ।

लिहिंयं पासपुराणं कइणा इह पउम णामेण ॥

भाषा अपभ्रंश हैं। कवि ने संसार की असारता का सुन्दर वर्णन किया है<sup>१</sup> और बतलाया है कि—संसार असार है, कोई कभी दुख नहीं चाहता, सभी सुख चाहते हैं। संसार में घन धान्यादि कोई भी वस्तु इस जीवन के साथ नहीं जाती, कुटुम्बीजन स्मशान भूमि तक अवश्य जाते हैं, किन्तु धर्म अघर्म जीव के साथ परलोक में भी जाते हैं, दुःख सुख भी साथ जाते हैं। ऐसा विचारकर मानसिक संताप को दूर कर, जिससे शुभ गति मिले ऐसा, प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति में कवि ने अपने से पूर्वर्ती ३ कवियों—चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदन्त का नामोल्लेख किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ काष्ठासंध के आचार्य अमितगति की धर्मपरीक्षा से, जो वि० सं० १०७० में संस्कृत में रची गई है, उससे यह ग्रन्थ २६ वर्ष पूर्व बना है। डा० एन० उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है<sup>२</sup>।

### कवि परिचय

कविवर हरिपेण मेवाड़ देग में स्थित चित्रकूट (चित्तीड़) के निवासी थे। इनका वंश धक्कड़ या धकंट था, जो उस समय प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित था। इस वंश में अनेक कवि हुए हैं। इनके पिता का नाम गोवर्द्धन और माता का नाम गुणवती था, यह किसी कारणवश चित्रकूट को छोड़कर (अचलपुर) में रहने लगे थे। और वहाँ उन्होंने अपने से पूर्व बनी हुई जयराम की प्राकृत गाथा वद्ध धर्म परीक्षा को देख कर वि० सं० १०४४ में पद्मडिया छन्द में धर्मपरीक्षा नाम का ग्रन्थ बनाया था<sup>३</sup>।

छठवीं प्रशस्ति 'जंबू स्वामी चरित' की है। जिसके कर्ता कवि वीर हैं। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'शृंगार वीर महाकाव्य' है<sup>४</sup>। कवि ने इस नाम को ग्रन्थ की प्रत्येक संधि-मुष्पिकाओं में व्यक्त किया है और ग्रंथ को महाकाव्य भी सूचित किया है। ग्रन्थ में ११ संधियाँ अथवा अध्याय हैं। जिनमें 'जंबूस्वामी के चरित का चित्रण किया है। चरित्र चित्रण करते हुए कवि ने महाकाव्यों में विहित रस और अलंकारों का सरस वर्णन करके ग्रन्थ को अत्यन्त आकर्षक और पठनीय बना दिया है। कथा पात्र भी उत्तम हैं, जिनके जीवन-परिचय से ग्रन्थ की उपयोगिता की अभिवृद्धि हुई है। शृंगार रस, वीर रस और शान्त रस का यत्र-तत्र विवेचन दिया हुआ है। कहीं कहीं शृंगारमूलक वीर रस है। ग्रंथ में अलंकारों का चयन दो प्रकार का पाया जाता है एक चमत्कारिक, दूसरा स्वाभाविक। प्रथम का उदाहरण निम्न प्रकार है।

१. भणित ताम संसार असारए, कौवि ण कासु वि दुह—गर पारए ।

सुय मणुएँ सह अत्यु ण गच्छइ, समणु मसाणु जार मणु मच्छइ ।

धम्माहम्मु णवरु अणुलग्गए, गच्छइ जीवहु सुह-नुह संगव ।

इय जाणे वि ताम दाणुत्तए, चित्तिं नइ सुपत्ते भइ मत्तए ।

इट्ठकेठ णिय-भणि भाइज्जइ । सुह-गह-गमणु जेण पाविज्जइ ।

२. देखो हरिपेण की धम्मपरिवत्ता, एतत्स आफ भंडारकर भोरियंठल रिसचं इंटीट्ठूट पूना

भा० २३ पु० १७२-६०८

३. विक्कम णिय परिवत्तिय कालए, गणए यरिस सहस चउत्ताए ।

इउ उप्पणु भवियजण सुहयए डंभराहिय धम्मासय सायए ॥

—धर्मपरीक्षा पूना वाली प्रति ।

४. इय जंबूसामिचरिए शिंगारवीरे महाकव्वे महाकइ देवयत्त सुय 'वीर' विरइये मामि उप्पत्ती कुमार-विजय नाम चउदवी संधी समत्ते ।

‘भारह-रण-भूमिव स-रहभीस’, हरिअज्जुण<sup>३</sup> राउलसिहंडिदीस ।  
 गुरु<sup>३</sup> आसस्थाम कलिगचार, गयगज्जिर<sup>४</sup> ससर महीससार ॥  
 लंकाणयरी व स-रावणीय<sup>५</sup>, चंदरणपहि<sup>६</sup> चार कलहावणीय ।  
 सपलास<sup>७</sup> सकंचरण अक्खघट्ट, स विहीसण<sup>८</sup> कइकुल फल रसट्ट ॥

इन पद्यों में विध्याटवी का वर्णन करते हुए श्लेष प्रयोग से दो अर्थ ध्वनित होते हैं—स रह—रथ सहित और एक भयानक-जीव हरि—कृष्ण और सिंह, अर्जुन और वृक्ष, नहुल और नकुल जीव, शिखंडि और मयूर आदि ।

स्वाभाविक विवेचन के लिए पांचवीं संधि से शृंगार मूलक वीर रस का उदाहरण निम्न प्रकार है—केरलनरेश मृगांक की पुत्री विलासवती को रत्नशेखर विद्याधर से संरक्षित करने के लिए जंबू कुमार अकेले ही युद्ध करने जाते हैं । युद्ध वर्णन में कवि ने वीर के स्थायीभाव ‘उत्साह’ का अच्छा चित्रण किया है । पीछे मगध के शासक श्रेणिक या विम्बसार की सेना भी सजवज के साथ युद्धस्थल में पहुँच जाती है, किन्तु जम्बू कुमार अपनी निर्भय प्रकृति और असाधारण धैर्य के साथ युद्ध करने को प्रोत्तेजन देने वाली वीरोक्तियाँ भी कहते हैं तथा अनेक उदात्त भावनाओं के साथ सैनिकों की पत्नियाँ भी युद्ध में जाने के लिए उन्हें प्रेरित करती हैं । युद्ध का वर्णन कवि के शब्दों में यों पढ़िए ।

‘अक्क मियंक सक्क कंपावणु, हा मुय सीयहे कारणे रावणु ।  
 दलियदप्प दप्पिय मइमोहरणु, कवणु अणत्थु पत्तु दोज्जोहरणु ।  
 तुज्झु रा दोसु वइव किउ धावइ, अणउ करंतु महावइ पावइ ।  
 जिह जिह दंड करंविउ जंपइ, तिह तिह खेयर रोसहिं कंपइ ।  
 घट्ट कंठ सिरजालु पलित्तउ, चंडगंड पासेय पसित्तउ ।  
 दट्टाहरु गुंजज्जलुलोयणु, पुरुदुरंतणासउड भयावणु ।  
 पेक्खेवि पडु सरोसु सण्णामहि, वुत्तु वओहरु मंतिहिं तामहि ।  
 अहो अहा हूयहूय सासस गिर, जंपइ चावि उट्टण्ड गम्भिउ किर ।  
 अण्णहो जीहएह कहो वग्गए, खयर वि सरिस एरेस हो अग्गए ।

१. रथसमन्विता भीसा भयानका, विध्याटवीपक्षे सरभैरवटापदैर्भयानका ।
२. वासुदेवादयः दृश्याः, विध्याटव्यां हरिः सिंहः, अर्जुनो वृक्षविशेषः वकुलः प्रसिद्धः शिखंडी मयूरः ।
३. भारतरण-भूमौ गुरुः द्रोणाचार्यः तत्पुत्रः अश्वत्थामा, कलिगा कलिग देशाधिपतिः राजा एतेषां चारा श्रेष्ठाः विध्याटव्यां गुरुः महान्, अश्वत्थः पिप्पलः आमः आद्रः कलिगवत्यचारः वृक्ष विशेषः ।
४. भारतरणभूमौ गजगजित ससरबाण समन्विताः महीसाः राजानः तैः साराः भवन्ति, विध्याटव्यां तु गजगजितः ससरा सरोवरसमन्विताः महीससारा महिषा सारा यस्यां ।
५. रावण सहिता पक्षे रयणवृक्ष सहिता ।
६. लंकानगरी चन्द्रनखा चारेण चेष्टा विशेषेण कलहकारिणी पक्षे चन्दनवृक्षविशेषः मनोज्ञलघुहस्तिभिर्युक्ता ।
७. पलासैः राक्षसैः युक्ता सकांचन अक्षयकुमारो रावणपुत्र तेन युक्ता, पक्षे पलासवृक्ष सकांचन मदनवृक्ष अक्ष विभीतिक वृक्षा ते तक्का यत्र ।
८. लंकानगरी विभीषणेन कपीनां वानराणां कुलैः समन्विता, फलानि रसाह्यानि यत्र-नानाभयानकानां वानराणां संघातैः फलरसद्वया च ।

भराई कुमारू एहु रइ लुद्धउ, वसण महणएवि तुम्महि छुद्धउ ।

रोसन्ते रिउहि यच्छु वि ण मुणइ, कज्जाकज्ज वलावलु ण मुणइ ।' ~

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा बहुत प्रांजल, सुबोध, सरस और गम्भीर ग्रंथ की प्रतिपादक है और इसमें पुष्पदन्तादि महाकवियों के काव्य-ग्रन्थों की भाषा के समान ही प्रौढ़ता और अर्थगौरव की छद्दा यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है ।

जम्बूस्वामी अन्तिम केवली हैं । इसे दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय निर्विवाद रूप से मानते हैं और भगवान महावीर के निर्वाण से जम्बूस्वामी के निर्वाण तक की परम्परा भी उभय सम्प्रदायों में प्रायः एक-सी है, किन्तु उसके बाद दोनों में मतभेद पाया जाता है' । जम्बूस्वामी अपने समय के ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं । वे काम के असाधारण विजेता थे । उनके लोकोत्तर जीवन की पावन भांकी ही चरित्र-निष्ठा का एक महान् आदर्श रूप जगत को प्रदान करती है । इनके पवित्रतम उपदेश को पाकर ही विद्युच्चर जैसा महान् चोर भी अपने चोरकर्मों का परित्याग कर अपने पाँच सौ योद्धाओं के साथ महान् तपस्वियों में अग्रणीय तपस्वी हो जाता है और व्यंतरादि कृत महान् उपसर्गों को रुसंध साम्यभाव से सहकर सहिष्णुता का एक महान् आदर्श उपस्थित करता है ।

उस समय मगध देश का शासक राजा श्रेणिक था, जिसे विम्बसार भी कहते हैं । उसकी राजधानी 'रायगिह' (राजगृह) कहलाती थी, जिसे वर्तमान में लोग राजगिर के नामसे पुकारते हैं । ग्रन्थकर्ता ने मगधदेश और राजगृह का वर्णन करते हुए, और वहाँ के राजा श्रेणिक का परिचय देते हुए, उसके प्रतापदि का जो संक्षिप्त वर्णन किया है, उसके तीन पद्य यहाँ दिये जाते हैं—

‘चंड भुजदंड खंडिय पयंडमंडलियमंडली वि सड्डे ।

धारा खंडण भोयव्व जयसिरी वसइ जस्स खगके ॥१॥

रे रे पलाह कायर मुहइ पेक्खइ न संगरे सामी ।

इय जस्स पयावच्चोसणाए विहडंति वडरिणो दूरे ॥२॥

जस्स रविखय गोमडलस्स पुरुमुत्तमस्स पद्दाए ।

के केसवा न आया समरे गय पहरणा रिउणो ॥३॥

अर्थात् जिनके प्रचंड भुजदंड के द्वारा प्रचंड मांडलिक राजाओं का समूह खंडित हो गया है, (जिसने अपनी भुजाओं के बल से मांडलिक राजाओं को जीत लिया है) और धारा-खंडन के भय से ही मानो जयश्री जिसके खड्गाङ्क में बसती है ।

राजा श्रेणिक संग्राम में युद्ध से संश्रस्त कायर पुरुषों का मुल नहीं देखते, रे, रे कायर पुरुषो ! भाग जाओ—इस प्रकार जिसके प्रताप वर्णन से ही शत्रु दूर भाग जाते हैं । गोमण्डल (गायों का समूह) जिस तरह पुरुषोत्तम विष्णु के द्वारा रक्षित रहता है । उसी तरह यह पृथ्वीमंडल भी पुरुषों में उत्तम राजा श्रेणिक के द्वारा रक्षित रहता है, राजा श्रेणिक के समक्ष युद्ध में ऐसे कौन शत्रु-सुभट हैं, जो मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए, अथवा जिन्होंने केसाव (विष्णु) के आगे आयुध रहित होकर आत्म समर्पण नहीं किया ।'

१. दिगम्बर जैन परम्परा में जम्बूस्वामी के पश्चात् विष्णु, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु थे पाँच श्रुत केवली माने जाते हैं, किन्तु श्वेताम्बरी परम्परा में प्रभव, धार्यम्भव, यगोमद्र, धार्यसंभूतिविजय, और भद्रबाहु इन पाँच श्रुतकेवलियों का नामोल्लेख पाया जाता है । इनमें भद्रबाहु को छोड़कर चार नाम एक दूसरे से मिलितुल्य भिन्न हैं ।

ग्रन्थ का कथा भाग बहुत ही सुन्दर, सरस और मनोरंजक है और कवि ने उसे काव्योचित सभी गुणों का ध्यान रखते हुए उसे पठनीय बनाने का यत्न किया है उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

### कथासार

जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में मगध नामका देश है उसमें श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन राजा श्रेणिक अपनी सभा में बैठे हुए थे कि वनमाली ने चलकर विपुलाचल पर्वत पर महावीर स्वामी के समवसरण आने की सूचना दी। श्रेणिक सुनकर हर्षित हुआ और उसने सेना आदि वैभव के साथ भगवान का दर्शन करने के लिए प्रयाण किया। श्रेणिक ने समवसरण में पहुंचने से पूर्व ही अपने समस्त वैभव को छोड़ कर पैदल समवसरण में प्रवेश किया और वर्द्धमान भगवान को प्रणाम कर धर्मोपदेश सुना। इसी समय एक तेजस्वी देव आकाश मार्ग से आता हुआ दिखाई दिया। राजा श्रेणिक द्वारा इस देव के विषय में पूछे जाने पर गौतम स्वामी ने बतलाया कि इसका नाम त्रिशुन्माली है और यह अपनी चार देवांगनाओं के साथ यहाँ वन्दना करने के लिए आया है। यह आज से ७वें दिन स्वर्ग से चयकर मध्यलोक में उत्पन्न होकर उसी मनुष्य भव से मोक्ष प्राप्त करेगा। राजा श्रेणिक ने इस देव के विषय में विशेष जानने की अभिलाषा व्यक्त की, तब गौतम स्वामी ने कहा कि—'इस देश में वर्द्धमान नाम का एक नगर है। उसमें वेदघोष करने वाले, यज्ञ में पशुबलि देनेवाले, सोमपान करने वाले, परस्पर कटु वचनों का व्यवहार करने वाले, अनेक ब्राह्मण रहते थे। उनमें अत्यन्त गुणज एक ब्राह्मण-दम्पति श्रुतकण्ठ आर्यवसु रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमशर्मा था। उनसे दो पुत्र हुए थे। भवदत्त और भवदेव। जब दोनों की आयु क्रमशः १८ और १२ वर्ष हुई, तब आर्यवसु पूर्वोपाजित पापकर्म के फल-स्वरूप कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया और जीवन से निराश होकर चिता बनाकर अग्नि में जल मरा। सोमशर्मा भी अपने प्रिय विरह से दुःखित होकर चिता में प्रवेश कर परलोकवासिनी हो गई। कुछ दिन बीतने के पश्चात् उस नगर में 'सुधर्म' मुनिका आगमन हुआ। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया, भवदत्त ने धर्म का स्वरूप शान्त भाव से सुना, भवदत्त का मन संसार में अनुरक्त नहीं होता था, अतः उसने आरम्भ परिग्रह से रहित दिगम्बर मुनि बनने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की। और वह दिगम्बर मुनि हो गया। और द्वादश-वर्ष पर्यन्त तपश्चरणा करने के पश्चात् भवदत्त एक वार संघ के साथ अपने ग्राम के समीप पहुंचा। और अपने कनिष्ठ भ्राता भवदेव को संघ में दीक्षित करने के लिए उक्त वर्द्धमानग्राम में आया। उस समय भवदेव का दुर्मर्षण और नागदेवी की पुत्री नागवसु से विवाह हो रहा था। भाई के आगमन का समाचार पाकर भवदेव उससे मिलने आया, और स्नेहपूर्ण मिलन के पश्चात् उसे भोजन के लिये घर में ले जाना चाहता था परन्तु भवदत्त भवदेव को अपने संघ में ले गया और वहाँ मुनिवर से साधु दीक्षा देने को कहा। भवदेव असमंजस में पड़ गया, क्योंकि उसे विवाह कार्य सम्पन्न करके विषय-सुखों का आकर्षण जो था, किन्तु भाई की उस सदिच्छा का अपमान करने का उसे साहस न हुआ। और उपायान्तर न देख प्रव्रज्या (दीक्षा) लेकर भाई के मनोरथ को पूर्ण किया, और मुनि होने के पश्चात् १२ वर्ष तक संघ के साथ देश-विदेशों में भ्रमण करता रहा। एक दिन अपने ग्राम के पास से निकला। उसे विषय-चाह ने आकर्षित किया और वह अपनी स्त्री का स्मरण करता हुआ एक जिनालय में पहुंचा, वहाँ उसने एक अर्जिका को देखा, उससे उन्होंने अपनी स्त्री के विषय में कुशल वार्ता पूछी। अर्जिका ने मुनि के चित्त को चलायमान देखकर उन्हें धर्म में स्थिर किया और कहा कि वह आपकी पत्नी मैं ही हूँ। आपके दीक्षा समाचार मिलने पर मैं

भी दीक्षित हो गई थी। भवदेव पुनः छेदोपस्थापना पूर्वक संयम का अनुष्ठान करने लगा। अन्त में दोनों भाई मरकर सनत्कुमार नामक स्वर्ग में देव हुए और सात सागर की आयु तक वहाँ वास किया।

भवदत्त स्वर्ग से चयकर पुण्डरीकिनी नगरी में वज्रदन्त राजा के घर सागरचन्द्र नाम का और भवदेव वीतशोका नगरी के राजा महापद्म चक्रवर्ती की वनमाला रानी के शिवकुमार नाम का पुत्र हुआ। शिवकुमार का १०५ कन्याओं से विवाह हुआ, करोड़ों उनके अंगरक्षक थे, जो उन्हें बाहर नहीं जाने देते थे। पुण्डरीकिनी नगरी में चारण मुनियों से अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर सागरचन्द्र ने देह-भोगों से विरक्त हो मुनिदीक्षा ले ली। त्रयोदश प्रकार के चारित्र्य का अनुष्ठान करते हुए वे भाई को सम्बोधित करने वीतशोका नगरी में पधारे। शिवकुमार ने अपने महलों के ऊपर से मुनियों को देखा, उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया, उसके मन में देह-भोगों से विरक्तता का भाव उत्पन्न हुआ, उससे राजप्रासाद में कोलाहल मच गया। और उसने अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। पिता ने बहुत समझाया और कहा कि घर में ही तप और व्रतों का अनुष्ठान हो सकता है, दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं, पिता के अनुरोध-वश कुमार ने तक्षणीजनों के मध्य में रहते हुए भी विरक्त भाव से नव प्रकार से ब्रह्मचर्यव्रत का अनुष्ठान किया। और दूसरों से भिक्षा लेकर तप का आचरण किया। और आयु के अन्त में वह विन्ध्युन्माली नाम का देव हुआ। वहाँ दस सागर की आयु तक चार देवांगनाओं के साथ सुख भोगता रहा। अब वही विन्ध्युन्माली यहाँ आया था जो सातवें दिन मनुष्य रूप से अवतरित होगा। राजा श्रेणिक ने विन्ध्युन्माली की उन चार देवांगनाओं के विषय में पूछा। तब गौतम स्वामी ने बताया कि चंपा नगरी में सूरसेन नामक सेठ की चार स्त्रियाँ थी जिनके नाम थे जयभद्रा, सुभद्रा और यशोमती। वह सेठ पूर्वसंचित पाप के उदय से कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर मर गया, उसकी चारों स्त्रियाँ अजिकाएँ हो गईं और तप के प्रभाव से वे स्वर्ग में विन्ध्युन्माली की चार देवियाँ हुईं।

पश्चात् राजा श्रेणिक ने विन्ध्युच्चर के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। तब गौतम स्वामी ने कहा कि मगध देश में हस्तिनापुर नामक नगर के राजा विसन्वर और श्रीसेना रानी का पुत्र विन्ध्युच्चर नाम का था। वह सब विद्याओं और कलाओं में पारंगत था एक चोर विद्या ही ऐसी रह गई थी जिसे उसने न सीखा था। राजा ने विन्ध्युच्चर को बहुत समझाया, पर उसने चोरी करना नहीं छोड़ा। वह अपने पिता के घर में ही पहुँच कर चोरी कर लेता था और राजा को सुपुप्त करके उसके कटिहार आदि आभूषण उतार लेता था। और विद्यावल से चोरी किया करता था। अब वह अपने राज्य को छोड़कर राजगृह नगर में आ गया, और वहाँ कामलता नामक वेश्या के साथ रमण करता हुआ समय व्यतीत करने लगा। गौतम गणधर ने बतलाया कि उक्त विन्ध्युन्माली देव राजगृह नगर में अर्हंदास नाम श्रेष्ठिका पुत्र होगा जो उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा।

यह कथन हो ही रहा था कि इतने में एक यक्ष वहाँ आकर नृत्य करने लगा। राजा श्रेणिक ने उस यक्ष के नृत्य करने का कारण पूछा। तब गौतम स्वामी ने बतलाया कि यह यक्ष अर्हंदास सेठ का लघु भ्राता था। यह सप्तव्यसन में रत था। एक दिन जुए में सब द्रव्य हार गया और उस द्रव्य को न दे सकने के कारण दूसरे जुआरियों ने उसे मार-मारकर अधमरा कर दिया। सेठ अर्हंदास ने उसे अन्त समय नमस्कार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभाव से वह मर कर यक्ष हुआ। यक्ष सुनकर हर्ष से नृत्य कर रहा है कि उसके भाई सेठ अर्हंदास के अन्तिम केवली का जन्म होगा।



### ग्रन्थ-निर्माण में प्रेरक

इस ग्रन्थ की रचना में किनकी प्रेरणा को पाकर कवि प्रवृत्त हुआ है, उसका परिचय ग्रन्थकार ने निम्न रूप से दिया है :—

मालव देश में धक्कड़ या धर्कट<sup>१</sup> वंश के तिलक महासूदन के पुत्र तक्खडु श्रेष्ठी रहते थे। यह ग्रन्थकार के पिता महाकवि देवदत्त के परम मित्र थे। इन्होंने ही वीर कवि से जंबू स्वामीचरित के निर्माण करने की प्रेरणा की थी और तक्खडु श्रेष्ठी के कनिष्ठ भ्राता भरत ने उसे अधिक संक्षिप्त और अधिक रूप से न कहकर सामान्य कथा वस्तु को ही कहने का आग्रह अथवा अनुरोध किया था और तक्खडु श्रेष्ठी ने भरत के कथन का सर्थन किया था और इस तरह ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ बनाने का उद्यम किया।

### ग्रन्थकार

इस ग्रन्थ के कर्ता महाकवि वीर हैं, जो विनयशील विद्वान और कवि थे। इनकी चार स्त्रियाँ थीं। जिनवती, पोमावती, लीलावती और जयादेवी तथा नेमचन्द्र नाम का एक पुत्र भी था<sup>२</sup>। महाकवि वीर विद्वान और कवि होने के साथ-साथ गुणग्राही न्याय-प्रिय और समुदार व्यक्ति थे। उनकी गुणग्राहकता का स्पष्ट उल्लेख ग्रन्थ की चतुर्थ सन्धि के प्रारम्भ में पाये जाने वाले निम्न पद्य से मिलता है :—

अगुणा रा मुण्ति गुणं गुणिणो न सहंति परगुरो दट्ठुं ।

वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कइ वीर-त्तारिच्छा ॥

अर्थात्—“अगुणा अथवा निर्गुणा पुरुष गुणों को नहीं जानता और गुणीजन दूसरे के गुणों को भी नहीं देखते—उन्हें सहन भी नहीं कर सकते, परन्तु वीर-कवि के सदृश कवि विरले हैं, जो दूसरे गुणों को समादर की दृष्टि से देखते हैं।”

कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए लिखा है कि—“सुकवित्त करणमगावावडेण” १-३। इसमें कवि ने अपने को काव्य बनाने के अयोग्य बतलाया है। फिर भी कवि ने अपनी सामर्थ्यानुसार काव्य को सरस और सालंकार बनाने का यत्न किया है और कवि उसमें सफल हुआ है।

### कवि का वंश और माता-पिता

कविवर वीर के पिता गुडखेड देश के निवासी थे और इनका वंश अथवा गोत्र ‘लालवागड’ था।

१. यह वंश १०वीं, ११वीं और १२वीं शताब्दियों में खूब प्रसिद्ध रहा। इस वंश में दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही संप्रदायों की मान्यता वाले लोग थे। दिगम्बर सम्प्रदाय के कई दिगम्बर विद्वान् ग्रन्थकार इस वंश में हुए हैं जैसे भविष्यदत्त पंचमीकथा के कर्ता कवि घनपाल, और धर्मपरीक्षा के कर्ता हरिपेण ने अपनी धर्मपरीक्षा वि० सं० १०४४ में बनाकर समाप्त की थी। अतः यह धर्कट या धक्कड़ वंश इससे भी प्राचीन जान पड़ता है। देलवाडा के वि० सं० १२८७ के तेजपाल वाले शिलालेख में भी धर्कट या धक्कड़ जाति का उल्लेख है।

२. जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पुणो बीया ।

लीलावइत्ति तइया पच्छिम भज्जा जयादेवी ॥८॥

पढमकलत्तं गरुहो संताण कयत्त विडवि पा रोहो ।

विणयगुणमणिणिहाणो तणओ तह जेमिचन्दोत्ति ॥९॥

यह वंश काष्ठासंघ की एक शाखा है<sup>१</sup>। इस वंश में अनेक दिगम्बराचार्य और भट्टारक हुए हैं, जैसे जयसेन, गुराणकारसेन, और महासेन<sup>२</sup> तथा सं० ११४५ के दूवकुण्ड वाले शिलालेख में उल्लिखित देवसेन आदि। इससे इस वंश की प्रतिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। इनके पिता का नाम देवदत्त था। यह 'महा-कवि' विशेषण से भूषित थे और सम्पत्त्वादि गुणों से अलङ्कृत थे। और उन्हें सरस्वति देवी का वर प्राप्त था। उन्होंने पद्वडिया छन्द में 'वरंग-चरित' का उद्धार किया था। और कविगुणों को अनुरंजित करने वाली वीर कथा, तथा 'अम्बादेवीचर्चरीरास' नाम की रचना बनाई थी, जो ताल और लय के साथ गाई जाती थी, और जिन चरणों के समीप नृत्य किया जाता था। जैसा कि कवि के निम्न वाक्यों से प्रकट है :—

“सिरिलाडवग्नुतहिविमलजमु, कइदेवयत्तुनिव्वुह्यकमु  
वहुभावाहि जे वरंगचरिउ, पद्वडिया वंधे उद्धरिउ।  
कविगुण-रस-रंजिय विउससह, वित्थारिउ मुह्यवीरकहा  
तच्चरिय वंधि विरइउ सरमु, गाइज्जइ संतिउ तारुजमु  
नच्चिज्जइ जिणपयसेवयाहि किउ रासउ अम्बादेवयाहि।  
सम्मत्त महाभरधुरधरहो, तहो सरसइदेवि लद्धवरहो ॥”

कविवर देवदत्त की ये सब कृतियां इस समय अनुपलब्ध हैं, यदि किसी शास्त्र भण्डार में इनके अस्तित्व का पता चल जाय, तो उससे कई ऐतिहासिक गुत्थियों के सुलभने की आशा है कविवर देवदत्त की ये सब कृतियां सम्भवतः १०५० या इसके आस-पास रची गई होंगीं, क्योंकि उनके पुत्र वीर कवि सं० १०७६ के ग्रन्थ में उनका उल्लेख कर रहे हैं। अतः इनकी खोज का प्रयत्न होना चाहिए, सम्भव है प्रयत्न करने पर किसी शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हो जाय। वीर कवि की माता का नाम 'सन्तु' अथवा 'सन्तुव' था, जो शीलगुण से अलङ्कृत थी। इनके तीन लघु सहोदर और थे जो बड़े ही बुद्धिमान् थे और जिनके नाम 'सीहल्ल' लक्खणंका, और जसई थे, जैसा कि प्रशस्ति के निम्न पद्यों से प्रकट है :—

जस्स कइ-देवयत्तो जणयो सच्चरियलद्धमाहूप्पो।  
मुहसीलमुद्धवंसो जणणी सिरि संतुआ भणिया ॥ ६ ॥  
जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ ससहोयरा तिण्णि।  
सीहल्ल लक्खणंका जसइ णामेत्ति विक्खाया ॥ ७ ॥

चूंकि कविवर वीर का बहुतसा समय राज्यकार्य, धर्म, अर्थ और काम की गोष्ठी में व्यतीत होता था, इसलिए इन्हें इस जम्बूस्वामी चरित नामक ग्रन्थ के निर्माण करने में पूरा एक वर्ष<sup>३</sup>का समय लग गया

१. काष्ठासंघो मुवि ह्यातो जानन्ति न्भुरासुराः ।  
तत्र गच्छाश्चत्वारो राजन्ते विश्रुता क्षिता ॥  
धीनन्दितदसंज्ञश्च माधुरावागडाभिः ।  
साह वागड इत्येते विख्याता क्षितिमण्डले ॥

—पट्टावली भ० सुरेन्द्रकीर्ति

२. देखो, महासेन प्रदुम्नचरित प्रशस्ति जैन ग्रंथ प्रगस्ति संघह प्रथम भाग वीरसेवा मन्दिर से प्रकाशित ।
३. बहुरायकज्जघम्मत्यकाम गोठ्ठी विहत्तसमयस्य ।  
वीरस्स चरियकरणे इवको संबच्छरो जग्गो ॥ —जंबू० च० प्र०

था। कवि 'वीर' केवल कवि ही नहीं थे, बल्कि भक्तिरस के भी प्रेमी थे इन्होंने 'मेघवन'<sup>१</sup> में पत्थर का एक विशाल जिनमन्दिर बनवाया था और उसी मेघवन पट्ट में वर्द्धमान जिनकी विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी की थी<sup>२</sup>। कवि ने प्रशस्ति में मन्दिर-निर्माण और प्रतिमा-प्रतिष्ठा के संवत्तादि का कोई उल्लेख नहीं किया। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि जम्बू-स्वामि-चरित ग्रंथ की रचना से पूर्व ही उक्त दोनों कार्य सम्पन्न हो चुके थे।

### पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख

ग्रन्थ में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न विद्वान कवियों का उल्लेख किया है, शान्ति कवि<sup>३</sup> होते हुए भी वादीन्द्र थे और जयकवि<sup>४</sup> जिनका पूरा नाम जयदेव मालूम होता है, जिनकी वाणी अदृष्ट अपूर्व अर्थ में स्फुरित होती है।

यह जयकवि वही मालूम होते हैं, जिनका उल्लेख जयकीर्ति ने अपने छन्दोनुशासन में किया है<sup>५</sup>। इनके सिवाय, स्वयंभूदेव, पुष्पदन्त और देवदत्त का भी उल्लेख किया है<sup>६</sup>।

### ग्रन्थ का रचनाकाल

भगवान महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रम काल की उत्पत्ति होती है और विक्रम-काल के १०७६ वर्ष व्यतीत होने पर माघ शुक्ला दशमी के दिन इस जम्बूस्वामी चरित्र का आचार्य परम्परा से सुने हुए बहुलार्थक प्रशस्त पदों में संकलित कर उद्धार किया गया है जैसा कि ग्रन्थप्रशस्ति के निम्न पद्य से प्रकट है:—

१ प्रयत्न करने पर भी 'मेघवन' का कोई विशेष परिचय उपलब्ध नहीं हो सका।

२ सो जयउ कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण।

पाहाणमयं भवणं विइह्हेसेण मेहवणे ॥१०॥

इत्थेवदिणे मेहवणपट्टणे वड्ढमाणे जिणपडिमा।

तेणा वि महाकइणा वीरेण पयट्टिया पवरा ॥४॥

जम्बूस्वामी-चरित प्र०

३ संति कई वाई विहु वणुक्करिसेसु फुरियविण्णाणो।

रस-सिद्धि संचयत्यो विरलो वाई कई एक्को ॥४॥

४ विजयन्तु जए कइणो जाणंवाणं अइठ्ठ पुव्वत्थे।

उज्जोइय धरणियलो साहइ वट्ठिव्व णिव्ववडई ॥४॥

जम्बूस्वामी-चरित प्रशस्ति

५ माण्डव्य-पिंगल-जनाश्रय-सेतवाख्य,

श्रीपूज्यपाद-जयदेव बुधादिकानाम्।

छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान्

छन्दोनुशासनमिदं जयकीर्तिनोक्तम् ॥

—जैसलमेर-भण्डार ग्रन्थसूची

६ संते सयंभू एए वे एक्को कइत्ति विन्नि पुणु भणिया।

जायम्मि पुष्पग्रंते तिण्णि तहा देवयत्तम्मि ॥

—देखो, जम्बूस्वामिचरित, संधि ५ का आदिभाग।

वरिसाणा सयचउक्के सत्तरिजुते जिरोंदवीरस्स ।  
 गिण्वाणा उववण्णा विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥  
 विक्कमणिवकालाओ छाहत्तर दससएमु वरिसाणां ।  
 माहम्मि सुद्धपक्खे दसमी दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥  
 सुणियं आयरिय परंपराए वीरेण वीरणिद्धिट्ठं ।  
 वहलत्थ पसत्थपयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥

इस प्रकार यह ग्रन्थ जीवन-परिचय के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों के उल्लेखों और उनके सामान्य परिचयों से परिपूर्ण है। इसमें भगवान महावीर और उनके समकालीन व्यक्तियों का परिचय उपलब्ध होता है, जो इतिहासज्ञों और अन्वेषण-कर्त्ताओं के लिए बड़ा ही उपयोगी होगा।

### ग्रन्थ का लिपि समय

यह ग्रन्थ-प्रति भट्टारक महेन्द्र कीर्ति अम्बेर या आमेर (जयपुर) के शास्त्रमंडार की है, जो पहले किसी समय जयपुर राज्य को राजधानी थी। इस प्रति की लेखक-प्रशस्ति के तीन ही पद्य उपलब्ध हैं; क्योंकि ७६वें पत्र से आगे का ७७ वां पत्र उपलब्ध नहीं है; उन पद्यों में से प्रथम व द्वितीय पद्य में प्रतिलिपि स्थान का नाम-निर्देश करते हुए 'भुंभुना' के उत्तुंग जिन-मंदिरों का भी उल्लेख किया है और तृतीय पद्य में उसका लिपि समय विक्रम संवत् १५१६ भगसिर शुक्ला त्रयोदशी बतलाया है, जिससे यह प्रति पांच सौ वर्ष के लगभग पुरानी जान पड़ती है। इस ग्रन्थ प्रति पर एक छोटा सा टिप्पण भी उपलब्ध है जिसमें उसका मध्यभाग कुछ छूटा हुआ है\*।

सातवीं और आठवीं प्रशस्तियां 'कथाकोप और रयणकरण्डसावयायार (रत्नकरण्डश्रावकाचार) की हैं, जिनके रचयिता कवि श्रीचन्द्र हैं। इन्होंने अपने को 'मुनि' 'पंडित' और 'कवि' विशेषणों के साथ उल्लेखित किया है। इनकी दोनों कृतियों के नाम ऊपर दिये गये हैं। उनमें प्रथम कृति कथा कोप है, जिसमें विविध व्रतों के अनुष्ठान द्वारा फल प्राप्त करने वालों की कथाओं का रोचक ढंग से संकलन किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में मंगल और प्रतिज्ञा वाक्य के अनंतर ग्रंथकार कहते हैं कि मैंने इस ग्रंथ में वही कहा है जिसे गणधरने राजा श्रेणिक या विम्बसार से कहा था, अथवा शिवकोटि मुनीन्द्र ने भगवती आराधना में जिस तरह उदाहरणस्वरूप अनेक कथाओं के संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किए हैं। उसी तरह गुरुक्रम से और सरस्वती के प्रसाद से मैं भी अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। भूलाराधना में स्वर्ग और अपवर्ग के मुख साधन का—अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयका—गाथाओं में जो अर्थ प्ररूपित किया गया है, उसी अर्थ को मैं कथाओं द्वारा व्यवत करूँगा; क्योंकि सम्बन्ध विहीन कथन गुणवानों को रस प्रदान नहीं

१ मन्वे वयं पुण्यपुरी बभाति, सा भुंभुणोति प्रकटो वभूव ।  
 प्रोत्तुंगतन्मंडन-वैत्यगेहाः सोपानवद्दुस्यति नाकलोके ॥१॥  
 पुरस्तराराम जलप्रकृपा हर्म्याणि तनास्ति रतीव रम्याः ।  
 दुस्यन्ति लोका घनपुण्यमात्रो ददातिदानस्य विशालसाक्षा ॥२॥  
 श्री विप्रमाकौन गते रातान्दे पडेक पंचक मुमाप्रंशीपे ।  
 तयोऽशीया तिथिसर्वशुद्धाः श्री जंबूवामीति च पुस्तकोऽयं ॥३॥

करता, अतएव गाथाओं का प्रकट अर्थ कहता हूँ तुम सुनो<sup>१</sup> । ग्रन्थकार ने देह-भोगों की असारता को व्यक्त करते हुए ऐन्द्रिक सुखों को सुखाभास बतलाया है । साथ ही धन, यौवन और शारीरिक सौंदर्य वगैरह को अनित्य बतलाकर मन को विषय-वासना के आकर्षण से हटने का सुन्दर एवं शिक्षाप्रद उपदेश दिया है और जिन्होंने उनको जीतकर आत्म-साधना की है उनकी कथा वस्तु ही प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय है ।

अणहिलपुर में प्रसिद्ध प्राग्वाट कुल में समुत्पन्न सज्जनोत्तम सज्जन नाम का एक श्रावक था, जो धर्मात्मा था और मूलराजनृपेन्द्रकी गोष्ठी में बैठता था । अपने समय में वह धर्म का एक आधार था, उसका कृष्ण नाम का एक पुत्र था, जो धर्म कर्म में निरत, जन शिरोमणी और दानादिद्वारा चतुर्विध संघ का संपोषक था । उसकी 'रागू' नामक साध्वी पत्नी से तीन पुत्र और चार पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं । इसी कृष्ण श्रावक की प्रेरणा से कवि ने उक्त कथाकोप बनाया था । प्रस्तुत ग्रंथ विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था ।

कवि श्रीचन्द्र ने अपना यह कथा ग्रन्थ मूलराज नरेश के राज्य काल में समाप्त किताथा । इतिहास से ज्ञात होता है कि मूलराज सोलंकी ने सं० ९६८ में चावडा वंशीय अपने मामा सामंतसिंह (भूयड़) को मार कर राज्य छीन लिया<sup>२</sup> और स्वयं गृजरात की राजधानी पाटन (अणहिलवाड़े) की गद्दी पर बैठ गया, इसने वि० संवत् १०१७ से १०५२ तक राज्य किया है<sup>३</sup> । मध्य में इसने धरणीवराह पर भी चढाई की थी, तब उसने राष्ट्रकूट राजा धवल की शरण ली, ऐसा धवल के वि० सं० १०५३ के शिलालेख से स्पष्ट है<sup>४</sup> । मूलराज सोलंकी राजा भीमदेव का पुत्र था, उसके तीन पुत्र थे, मूलराज क्षेमराज और करण । इनमें मूलराज का देहान्त अपने पिता भीमदेव के जीवन काल में ही हो गया था और अन्तिम समय में क्षेमराज को राज्य देना चाहा; परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया, तब उसने लघु पुत्र करण को राज्य देकर सरस्वती नदी

१. गणहरहो पयासिउ जिणवइणा,

सेणियहो आसि जिह गणवइणा ॥

सिवकोडि मुण्णिदि जेमजए, कह कोसु कहिउ पंचम समए ।

तिह गुरु कमेण अहमविकहमि, नियवुद्धि विसेसु नेव रहमि ।

महु देवि सरासइ सम्मुहिया, संभवउ समत्थु लोय महिया ।

आमण्णहो मूलाराहणहें, सग्गापवग्गासुसाहणहें ।

गाहं सरियाउ सुसोहणउ, वहु कहउ अत्थि रंजिय जणउ ।

धम्मत्थकाम मोक्खासयउ, गाहासु जासु संठियउ तउ ।

ताणत्थं भण्णिऊणपुरउ, पुणु कहमि कहाउ कयायरउ ।

घत्ता—संबंध विहूणु सन्वुवि जाणरसु न देइ गुणवन्त हें ।

तेणिय गाहाउ पयडिवि ताउ कहम कहाउ सुणंत हें ।

२. यं मूलादुद मूल यद गुरु बलः श्रीमूलराजोनृपो,

दर्पान्धो धरणी वराहन्टपति यद्व द्वि (द् द्वि) पः पादपम् ।

आयातं भुवि कांदि शीकमभिको यस्तं शरण्यो दधौ,

दंष्ट्रायामिवरूढ महिमा को लो मही मण्डलम् ॥

—एपि ग्राफिया इंडिका जि० १ पृ० २१

३. देखो, राजपूताने का इतिहास दूसरा संस्करण भा० १, पृ० २४१

४. देखो, राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द दूसरा सं० पृ० १६२

के तट पर स्थित मंडूकेद्वार में तपस्चरण करने लगा। अतः श्रीचन्द्र ने अपना यह कथाकोष वि० सं० १०५२ में उसको एक दो वर्ष पूर्व ही बनाया होगा। जिससे ग्रंथ का विषय स्पष्ट हो गया है।

आठवीं प्रशस्ति 'रत्नकरण्डश्रावकाचार की है' जो स्वामी समन्तभद्र के रत्नकरण्डक नामक उपासकाध्ययन रूप गंभीर कृति का व्याख्यान मात्र है। कवि ने इस आधार ग्रंथ को २१ संधियों में विभाजित किया है। जिसकी आनुमानिक श्लोक संख्या चार हजार चार सौ अट्ठाईस बतलाई गई है। कथन को पृष्ठ करने के लिए अनेक उदाहरण और कथाओं को प्रस्तुत किया गया है।

प्रशस्ति में हरिनन्दि मुनीन्द्र, समन्तभद्र, अकलंक, कुलभूषण पाद पूज्य (पूज्यपाद) विद्यानन्दि, अनन्तवीर्य, वरपेण, महामति वीरसेन, जिनसेन, विहंगसेन, गुणभद्र, सोमराज, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुट्टदंत श्रीहर्ष, और कालिदास नाम के पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख किया गया है।

इस श्रावकाचार को कवि ने संवत् ११२३ में कर्ण नरेन्द्र के राज्यकाल में श्रीवालपुर में पूर्ण किया था। यह कर्ण देव वही कर्णदेव जात होते हैं जो राजा भीमदेव के लघु पुत्र थे और जिनका राज्य काल 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के कर्ता मेरुत्तुंग के अनुसार सं० ११२० से ११५० तक उन्नीसवर्ष आठ महीना और इक्कीस दिन माना जाता है। इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त कवि को अन्य रचनाएँ अन्वेषणीय हैं।

**कवि परिचय**

कवि श्रीचन्द्र कुंदकुंदाभव्य देशीगण के आचार्य सहस्रकीर्ति के प्रशिष्य थे और सहस्रकीर्ति के (देवचंद्र, वासवमुनि, उदयकीर्ति, शुभचंद्र और वीरचंद्र इन) पांच शिष्यों में से यह वीरचंद्र अंतिम शिष्य थे। इन पांचों का समय भी प्रायः सहस्रकीर्ति के सम सामयिक होना चाहिए। सहस्रकीर्ति के गुरु का नाम श्रुतिकीर्ति और श्रुतिकीर्ति के शिष्य श्रीकीर्ति थे। इनका समय विक्रम की ११वीं शताब्दी के मध्य भाग से लेकर बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

एवीं प्रशस्ति 'रत्नकरण्डसावयाधार' (रत्नकरण्डश्रावकाचार) की है जिसका परिचय सातवीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

एवीं प्रशस्ति 'सुकमाल चरित' की है, जिसके कर्ता कवि विद्युध श्रीधर हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में छह संधियाँ और २२४ कड़वक हैं, जिनमें सुकमाल स्वामी का जीवन-परिचय दिया हुआ है। कवि ने सुकमाल के पूर्वजन्म का वृत्तान्त देते हुए लिखा है कि वे पहले जन्म में कौशाम्बी के राजा के राजमंत्री पुत्र थे और उनका नाम वायुभूति था, उन्होंने रोप में आकर अपनी भाभी के मुख में लात मारी थी, जिससे कुपित हो उसने निदान किया था कि मैं तेरी इस टांग को खाऊंगी। अनन्तर अनेक पर्यायों धारण कर जैनधर्म के प्रभाव से उज्जनी में सेठ-पुत्र हुए थे, वे बाल्यावस्था से ही अत्यन्त मुकुमार थे, अतएव उनका नाम सुकमाल रक्खा गया। पिता पुत्र का मुख देखते ही दीक्षित हो गया और आत्म-साधना में लग गया। माता ने बड़े यत्न से पुत्र का सालन-पालन किया और उसे गुन्दर महलों में रख कर सांसारिक भोगोपभोगों में अनुरक्त किया। उसकी ३२ गुन्दर स्त्रियाँ थीं, जब उसकी धायु अल्प रह गई, तब उसके मामा ने, जो साधु थे, महल के पीछे जिन मंदिर में चातुर्मास किया और अन्त में स्तोत्र पाठ को सुनते ही सुकमाल का मन देह-भोगादि से विरक्त हो गया और वह एक रस्मी के सहारे महल से नीचे उतरा और जिन मंदिर में जाकर मुनिराज को नमस्कार कर प्रार्थना की कि भगवन् आत्म-कल्याण का मार्ग बनाइये। उन्होंने कहा कि तेरी धायु तीन दिन की होगी रह गई है। अतः शीघ्र ही आत्म-साधना में तत्पर हो। सुकमान ने जिनदीक्षा लेकर और प्रायोपगमन संन्यास लेकर बठीर तपस्चरण किया। वे शरीर से जितने सुकमाल थे, उपसर्ग-

परीपहों के जीतने में वे उतने ही कठोर थे। वन में समाधिस्थ थे, एक श्यालनी ने अपने बच्चे सहित आकर उसके दाहिने पैर को खाना शुरू किया और बच्चेने बायें पैर को, उन्होंने उस अमित कष्ट को शांतिसे वारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए सहन किया और सर्वार्थसिद्धि में देव हुए। ग्रंथ का चरित भाग बड़ा ही सुन्दर है।

कवि ने यह ग्रंथ बलडइ (अहमदाबाद) गुजरात नगर के राजा गोविन्दचन्द्र के काल में साहूजी के सुपुत्र पुरवाड कुलभूपण कुमार की प्रेरणा से बनाया है। राजा गोविन्दचन्द्र कौन थे और उन्होंने कितने वर्ष राज्य किया है, यह अभी अज्ञात है। हां, कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि के शुरु में संस्कृत पद्यों में कुमार की मंगल कामना की है और बतलाया है कि वे जिनेन्द्रभक्त थे, संसार के देह-भोगों से विरक्त थे, उन्हें दान देने का ही एक व्यसन था और विद्वानों में प्रीति थी, इस तरह वह जितेन्द्रियकुमार जयवन्त रहें और प्रस्तुत ग्रन्थ कवि ने उक्त कुमार के ही नामांकित किया है। कवि ने ग्रन्थमें नारी के स्वरूप-चित्रण में परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है। कथन-शैली रोचक और प्रवाह युक्त है।

कवि श्रीधर ने ग्रन्थ प्रशस्ति में अपना कोई परिचय प्रस्तुत नहीं किया, जिससे उनकी गुरु परम्परा का उल्लेख किया जा सके। किन्तु कवि ने लिखा है कि बलडइग्राम के जिनमंदिर में पौमसेण (पद्मसेन) नाम के मुनि अनेक शास्त्रों का व्याख्यान करते थे। श्रीधर ने इस ग्रन्थ को वि० सं० १२०८ (सन् ११५१) में मगशिर कृष्ण तृतीया के दिन समाप्त किया है।

१० वीं प्रशस्ति 'हरिवंस पुराण' की है, जिसके कर्ता कवि धवल हैं। इस ग्रन्थ में जैनियों के २२ वें तीर्थंकर यदुवंशी भगवान नेमिनाथ की जीवन-गाथा अंकित की गई है, साथ ही महाभारत के पात्र कौरव और पाण्डव एवं श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों का भी जीवन चरित्र १२२ संघियों में दिया हुआ है। जिससे महाभारत काल का ऐतिहासिक परिचय सहज ही मिल जाता है। ग्रंथ की रचना प्रधानतः अपभ्रंश भाषा के 'पञ्चमटिका' और अलिलह' छन्द में हुई है। तथापि उसमें पद्धड़िया, सोरठा, घत्ता, जाति, नाशिनी, विलासिनी और सोमराजी आदि छन्दों का भी स्पष्ट प्रयोग हुआ है। काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ के कितने ही वर्णन सजीव हैं। रसों में शृंगार, वीर, करुण और शान्त रसों के अभिव्यंजक अनेक स्थल दिए हुए हैं। श्रीकृष्ण और कंस के युद्ध का वर्णन भी सजीव हुआ है।

‘महा चंड चित्ता भडा छिण्ण गत्ता, धनुवाणहत्था सकुंता समत्था ।

पहारंति सूरणा भज्जंति धीरा, सरोसा सतोसा सहासा सत्रासा ॥—संघि ६०, ४

प्रचण्ड चित्तवाले योद्धाओं के गात्र टूक-टूक हो रहे हैं, और धनुषबाण हाथ में लिए हुए भाला चलाने में समर्थ सूर प्रहार कर रहे हैं, परन्तु क्रोध, सन्तोष, हास्य और आशा से युक्त धीर वीर योद्धा विचलित नहीं हो रहे हैं। युद्ध की भीषणता से युद्ध स्थल विषम हो रहा है; सैनिकों की मारो मारो की ध्वनि से आकाश गूँज रहा है—रथ वाला रथवाले की ओर, अश्व वाला अश्व वाले की ओर, और गज-गज की ओर दौड़ रहा, धानुष्क वाला धानुष्क वाले की ओर झपट रहा है, वाद्य जोर से शब्द कर रहे हैं,

१. भक्तिर्यस्य जिनेन्द्रवाद युगले धर्मो मतिः सर्वदा ।

वैराग्यं भव-भोगबन्धविषये वाञ्छाजिनेशागमे ॥

सद्दाने व्यसने गुरो विनयिता प्रीतिर्बुधाः विद्यते,

स श्रीमान्जयताज्जितेन्द्रियरिपुः श्रीमत्कुमाराभिधः ॥

घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी चिचाड़ रहे हैं'। इस तरह युद्ध का सारा वर्णन ही सजीव है।

संसार की नश्वरता का वर्णन भी दृष्टव्य है।

'सबल राज्य तत्क्षण नष्ट हो जाता है, अत्यधिक धन से क्या किया जाय। राज्य भी घनादि से हीन, और वचे खुचे जनसमूह अत्यधिक दीनतापूर्ण वर्तन करते हुए देखे जाते हैं। सुखी वान्धव पुत्र, कलत्र, मित्र सदा किसके धने रहते हैं, जैसे उत्पन्न होते हैं वैसे ही मेघ वर्षा से जल के बुलबुलों के समान विनष्ट हो जाते हैं और फिर चारों दिशाओं में अपने अपने निवास स्थान को चले जाते हैं। जिस तरह पक्षी रात्रि में एक जगह इकट्ठे हो जाते हैं और फिर चारों दिशाओं में अपने-अपने निवास स्थान को चले जाते हैं, अथवा जिस प्रकार बहुत से पक्षिक (नदी पार करते हुए) नौका पर मिल जाते हैं, फिर अपने अभीष्ट स्थान को चले जाते हैं। इसी तरह इष्ट प्रियजनों का समागम योड़े समय के लिए होता है। कभी घन आता और कभी दारिद्र्य, स्वप्न समान भोग आते और नष्ट हो जाते हैं, फिर भी अज्ञानी जन इनका गर्व करते हैं, जिस यौवन के साथ जरा (बुढ़ापे) का सम्बन्ध है उससे किसको सन्तोष हो सकता है ? ७ (—संघि ६१—७)

ग्रन्थकार का जहां लौकिक वर्णन सजीव है, वहां वीर रस का शान्त रस में परिणत हो जाना भी चित्ताकर्षक है ग्रंथ पठनीय और प्रकाशन के योग्य है। इसकी प्रतियां कारंजा जयपुर और दिल्ली के पंचायती मंदिर में है, परन्तु दिल्ली की प्रति अपूर्ण है।

ग्रंथ की आद्य प्रशस्ति में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख निम्न प्रकार किया है<sup>१</sup>।

कवि चक्रवर्ती घोरसेन सम्यक्त्व युक्त प्रमाण ग्रन्थ विशेष के कर्ता, देवन्दी (जैनेन्द्र व्याकरण कर्ता) वज्रसूरी प्रमाण ग्रन्थ के कर्ता, महासेन का सुलोचना ग्रन्थ, रविपेरा का पद्यचरित, जिनसेन का हरिवंश पुराण, जटिल मुनि का वरांगचरित, दिनकरसेन का अर्नगचरित, पद्मसेन का पार्श्वनाथ चरित अंबसेन की अमृताराधना, धनदत्त का चन्द्रप्रभचरित, अनेक चरित ग्रन्थों के रचयिता विष्णुसेन, सिंहनन्दि की अनुप्रेक्षा, नरदेव का रावकार मंत्र, सिद्धसेन का भविक विनोद, रामनन्दि के अनेक कथानक, जिनरक्षित (जिनपालित)—धवलदि ग्रन्थ प्रह्लापक, असग का वीरचरित, गोविन्दकवि (श्वे०) का सनत्कुमारचरित, शालिभद्र का जीवउद्योत, चतुर्मुख, द्रोण, सेतु महाकवि का पद्मचरित, आदि विद्वानों और उनकी कृतियों का उल्लेख किया है। इनमें पद्मसेन (पद्यकीर्ति) और असग कवि दोनों का उल्लेख ग्रन्थ कर्ता के समय को बताने में किञ्चित् सहकारी होते हैं असग कवि का समय सं० ६१० है और पद्मसेन का समय वि० सं० ६६६ है जिससे स्पष्ट है कि धवल कवि का समय सं० ६६६ से पश्चात् वर्ती है। पद्यकीर्ति की एकमात्र कृति पार्श्वनाथ पुराण उपलब्ध है। इन दोनों की रचनाओं का उल्लेख होने से प्रस्तुत धवल कवि का समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी का पूर्वकाल या मध्यकाल हो सकता है। यद्यपि असग कवि का महावीर

१. .... हणु हणु मास मास पमणंतिहि ।

दलिय घरति रेणुणहि घायउ, लहु पिस लुद्धलुद्धउ घायउ ॥

× × ×

रहवउ रहहु गयहु गउ धाविउ, धाणुवकहु धाणुवकु परायउ ।

तुरउ तुरंग कुलग विहत्थउ, मसिववसरहु लगुमय चत्तउ ।

वज्जोहि गहिरे तूर हमहिपहि, गुलुगुलंठ गयवर बहु दीसहि ॥

—संघि ८६—१०

२. देखो, हरिवंश पुराण प्रशस्ति ।



चरित मूलरूप में प्रकाशित नहीं हुआ, और न पद्मसेन का पार्श्वपुराण ही प्रकाशित हो सका है। अतः ये दोनों रचनाएं अपने मूलरूप में प्रकाशित होनी चाहिए।

११वीं, १२वीं और १३वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'छक्कम्मोवएस', 'पुरंदर विहाणकहा' और 'रोमिणाहचरिउ' की हैं। जिनके कर्ता कवि अमरकीर्ति हैं। प्रस्तुत पटकर्मोपदेश में १४ संधियां और २१५ कडवक हैं, जो २०५० श्लोक प्रमाण संख्या को लिए हुए हैं। कवि ने इस ग्रंथ में गृहस्थों के षट्कर्मों का—देव पूजा गुरु-सेवा, स्वाध्याय (शास्त्राभ्यास) संयम (इन्द्रियदमन) और पट्-काय (जीव रक्षा) इच्छा निरोध रूप तप, तथा दानरूप षट्-कर्मों का—कथन दिया हुआ है। और उसे विविध कथाओं के सरस विवेचन द्वारा वस्तु तत्त्व को स्पष्ट किया गया है। दूसरी से नौवीं संधि तक देव-पूजा का सुन्दर विवेचन दिया गया है, और उसे नूतन कथा रूप दृष्टान्तों के द्वारा सुगम तथा ग्राह्य बना दिया गया है। दशवीं संधि में जिन पूजा पुरंदर विधि कथा दी गई है और उसकी विधि बतलाकर उच्चापन विधि को भी अङ्कित किया है। शेष ११ वीं से लेकर १४वीं संधि तक शेष कर्मों का विवेचन दिया हुआ है।

ग्रंथ में कवि ने इससे पूर्ववर्ती अपनी निम्न रचनाओं का उल्लेख किया है। रोमिणाहचरिउ, महावीरचरिउ, जसहरचरिउ, धर्मचरित टिप्पण, सुभापितरत्ननिधि, धर्मोपदेश चूड़ामणि, और भाणपईव (ध्यान प्रदीप)।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना गोध्रा<sup>१</sup> में चालुक्य वंशी राजा वंदिगदेव के पुत्र कण्ह या कृष्ण नरेन्द्र के राज्य में संवत् १२४७ के भाद्रपद महीने के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन समाप्त की थी।

दूसरी प्रशस्ति 'पुरंदरविधान कथा' की है, जो पटकर्मोपदेश का ही एक अंश है। इस कथा को भी कवि ने अम्वाप्रसाद के निमित्त से बनाया है। प्रस्तुत कथा में पुरंदरव्रत का विधान बतलाया गया है। यह व्रत किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष में किया जा सकता है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी तक प्रोषधोपवास करना चाहिए। इस व्रत का फल मनोरथ प्राप्ति, दारिद्र्य विनाश, धन प्राप्ति और व्यसनादि का परित्याग है।

तीसरी कृति 'नेमिनाथ-चरित' है ग्रंथ में २५ सन्धियां हैं जिनकी श्लोक संख्या छह हजार आठ सौ पच्चाणवे है। इसमें जैनियों के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का, जो श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे, जीवन परिचय दिया गया है। इस ग्रंथ को कवि ने संवत् १२४४ में भाद्रपद शुक्लाचतुर्दशी को समाप्त किया था। यह प्रति सं० १५१२ की लिखी हुई है और सोनागिर भट्टारकीय शास्त्र भंडार में सुरक्षित है।

भट्टारक अमरकीर्ति काष्ठासंधान्तर्गत उत्तर माधुर संघ के विद्वान मुनि चन्द्रकीर्ति के शिष्य एवं अनुज थे। इनकी माता का नाम 'चंचिणी' और पिता का नाम 'गुणपाल' था। इनकी गुरु परम्परा में अमितगति द्वितीय हुए, जिनका रचना काल सं० १०५० से १०७० है, उनके शिष्य शान्तिपेण हुये, शान्तिपेण के अमरसेन, अमरसेन के श्रीपेण और श्रीपेण के चन्द्रकीर्ति, जिनका समय सं० १२१६ के लगभग है और अमरकीर्ति का संवत् १२४४ से १२४७।

ग्रंथकर्ता ने अपने ग्रंथों की प्रशस्तियों में 'महीयडु' देश के गोध्रा नगर में चालुक्य वंशीय कण्ह या कृष्ण का राज्य बतलाया है। उस समय गुजरात में चालुक्य अथवा सोलंकी वंश का राज्य था, जिसकी राजधानी अनहिलवाड़ा थी; परन्तु इतिहास में वंदिगदेव और उनके पुत्र कृष्ण नरेन्द्र का कोई उल्लेख मेरे

१. गोध्रा गुजरात का एक छोटा-सा नगर है, जो वड़ीदा से गिरनार जी जाते समय रास्ते में मिलता है।

यहाँ पहले दिगम्बर मन्दिर था अब नहीं है।

देखने में नहीं आया। उस समय अनहिलवाड़ा के सिंहासन पर भीम द्वितीय का राज्य शासन था इनके बाद वधेल वंश की शाखा ने अपना राज्य प्रतिष्ठित किया है। इनका राज्य सं० १२३६ से १२३६ तक बतनाया जाता है। संवत् १२२० से १२३६ तक कुमारपाल, अजयपाल और मूलराज द्वितीय वहाँ के शासक रहे हैं। भीम द्वितीय के शासन समय से पूर्व ही चालुक्य वंश की एक शाखा महीकांठा प्रदेश में प्रतिष्ठित होगी, जिसकी राजधानी गोध्रा थी। इस सम्बन्ध में और भी अन्वेषण करने की आवश्यकता है जिससे यह पता चल सके कि इस वंश की प्रतिष्ठा गोध्रा में कब हुई। ये तीनों ही ग्रन्थ अप्रकाशित हैं, उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयत्न होना चाहिए। और कवि के अन्य ग्रन्थों की खोज करना जरूरी है।

१२वीं प्रशस्ति 'पुरंदरविहाण कहा' की है, जिसका परिचय ११ वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१३वीं और १६वीं प्रशस्तियाँ 'जिनदत्तचरित' और 'अणुवयरयणपईव' की हैं। जिनके कर्ता कवि लाखू या लक्ष्मण हैं। प्रस्तुत जिनदत्तचरित्र में छह संधियाँ हैं और जो चार हजार श्लोकों में निबद्ध हैं। जिसमें जीवदेव और जीव्यशा श्रेष्ठी के सुपुत्र जिनदत्त का चरित अद्भुत है। कवि की यह रचना एक सुन्दर काव्य है। इसमें आदर्श प्रेम को व्यक्त किया गया है। कवि काव्य-शास्त्र में निष्णात विद्वान् था। ग्रंथ का यमकालंकार युक्त आदि मंगलपद्य कवि के पाण्डित्य का सूचक है।

सप्य-सर-कलहंस हो, हियकलहंस हो, कलहंस हो सेयंसवहा।

भणमि भुवण कलहंस हो, राविवि जिण हो जिययत्त कहा ॥

अर्थात्—'मोक्ष रूपी सरोवर के मनोह्र हंस, कलह के अंश को हरने वाले, करिशावक (हाथी के बच्चे) के समान उन्नत स्कंध और भुवन में मनोह्र हंस, आदित्य के समान जिनदेव की वंदना कर जिनदत्त की कथा कहता हूँ।'

ग्रंथ कर्ता ने इस ग्रंथ में विविध छन्दों का उपयोग किया है। ग्रंथ की पहली चार संधियों में कवि ने मात्रिक और वर्णाद्वय दोनों प्रकार के निम्न छन्दों का प्रयोग किया है—विलासिणी, मदनावतार, चित्तंगया, मोत्तियदाम, पिंगल, विचिन्तमणोहरा, आरणाज, वस्तु, खंड्य, जंभेट्टिया, भुजंगप्याउ, सोमराजी, सगिणी, पमाणिया, पोमणी, चच्चर, पंचचामर, राराच, तिभंगिणिया, रमणीलता, समाणिया, चित्तया भमरपय, मोणय, और ललिता आदि। इन छन्दों के अवलोकन से यह स्पष्ट पता चलता है कि अपभ्रंश कवि छन्द विशेषज्ञ होते थे।

प्रस्तुत चरित्र में मगध राज्यान्तर्गत वसन्तपुर नगर के राजा शशिशेखर और उसकी रानी मयना सुन्दरी के कथनके अनन्तर उस नगरके श्रेष्ठी जीवदेव और जीव्यशाके पुत्र जिनदत्त का चरित्र अद्भुत किया गया है। वह क्रमशः बाल्यावस्था से युवावस्था को प्राप्त कर अपने रूप-सौंदर्य से युवति-जनों के मन को मुग्ध करता है—और अङ्ग देश में स्थित चम्पानगर के सेठ की सुन्दर कन्या विमलमती से उसका विवाह हो जाता है। विवाह के पश्चात् दोनों वसन्तपुर आकर सुख से रहते हैं।

जिनदत्त जुआरियों के चंगुल में फँसकर ग्यारह करोड़ रुपया हार गया। इससे उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने अपनी धर्मपत्नी की हीरा-माणिक आदि जवाहरातों से अद्भुत कंचुली को नौ करोड़ रुपये में जुआरियों को बेच दिया। जिनदत्त ने धन कमाने का बहाना बनाकर माता-पिता से चम्पापुर जाने की आज्ञा ले ली। और कुछ दिन बाद धर्मपत्नी को अकेली छोड़ जिनदत्त दशपुर (मन्दसौर) आ गया।

समय विलरामपुर में सेठ विल्हण के पौत्र और जिनधर के पुत्र श्रीधर निवास करते थे। इन्होंने कविवर को मकान आदि की सुविधा प्रदान की। यह कविवर के परम मित्र बन गए। साहू विल्हण का वंश प्राग्वाट या पुरवाड था, और श्रीधर उस वंशरूपी कमलों को विकसित करनेवाले सूर्य थे। और इस तरह कवि वर उनके प्रेम और सहयोग से वहां सुखपूर्वक रहने लगे। वहां कुछ समय बिताने के पश्चात् वे चौहानवंशी राजा अभयपाल की राजधानी 'रायवहिय' रपरी या रायभा में आकर रहे और वहां अभयपाल के प्रधान मंत्री कृष्णादित्य की प्रेरणा से सं० १३१३ में 'अणुवय रयणपईत्र' की रचना की। कवि ने अपने इतने लम्बे जीवन में अन्य कितनी रचनाएं रचीं, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। अन्वेषण करने पर कवि की अन्य रचनाओं का भी पता चल सकेगा।

तुगारिक को नियुक्त किया था। नगर व्यापारियों से रिक्त हो गया था। अतएव जगह-जगह से बड़े-बड़े व्यापारियों को बुलाया गया था। खुरासान से भी लोग बसने को आये थे। प्रस्तुत ग्रंथकर्ता और उनका परिवार भागकर विलरामपुर जिला एटा में आये। वहां के निवासी सेठ विल्हण के पौत्र और जिनधर के पुत्र श्रीधर सेठ ने इन्हें ठहरने के लिए मकान दिया। कवि ने जिनदत्तचरित्र में त्रिभुवनगिरि के विनष्ट होने का उल्लेख सं० १२७५ में किया है किन्तु त्रिभुवनगिरि के विनाश का समय 1196 A. D. (वि० सं० १२५३ है। इससे स्पष्ट है कि कवि सं० १२५३ में वहां से भागे थे।

—देखो, आकिलाजिकलसर्वे रिपोर्ट भा० २०

श्वेताम्बरीय खरतरगच्छ की प्रधान गुर्वावली में भी त्रिभुवनगिरि का उल्लेख है और जिनदत्तसूरि द्वारा कुमारपाल राजा को सम्बोधित करने तथा वहां के शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है। घटना को सं० १२०३ से पूर्व की बतलाया है। साथ ही सं० १२०३ में अजमेर में फाल्गुन सुदी ६ के दिन दीक्षित जिनचन्द्रसूरि सं० १२१४ में त्रिभुवनगिरि पधारें और वहां उनके द्वारा शान्तिनाथ मन्दिर में सुवर्णदण्ड, कलश और ध्वजारोपणादि कार्यों का उल्लेख किया है, गणिनी हेमदेवी को प्रवर्तिनी पद प्रदान करने का भी निर्देश है। (ततस्त्रिभुवनगिरी, प्रतिबोधितस्तत्र कुमारपालो नाम राजा। कुतस्तत्र प्रचुरतर यतिजन विहारः। प्रतिष्ठितो भगवान् शान्तिनाथ देवः। ततः सः (जिनदत्तसूरि सं० १२०३ अजयमेरी फाल्गुन सुदी ६ जिनचन्द्रसूरि दीक्षा)। —(खतरगच्छ युग प्रधान गुर्वावली पृ० १६-२०) सं० १२१४ श्री जिनचन्द्रसूरिभिस्त्रिभुवनगिरौ श्री शान्तिनाथ शिखरे सज्जनमनोमन्दिर प्रमोदारोपणामिव सौवर्णदण्ड कलश ध्वजारोपणं महता विस्तरेण कृत्वा हेमदेवी गणिन्या प्रवर्तिनी पदं दत्त्वा.....।

—खरतर गच्छयुगप्रधान गुर्वावली पृ० २०

ये सब उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्त्यनीय हैं। क्योंकि गुर्वावली के अनुसार कुमारपाल का वहां राजा होना सं० १२०३ से पूर्ववर्ती है। अतः उसके सम्बोधन की घटना सं० १२०३ से पहले की है।

इसके पश्चात् भी त्रिभुवनगिरि सम्पन्न हो गया जान पड़ता है। संभव है वहां पुनः उस वंश का शासन हो गया हो। विक्रम की १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में या १४ वीं के पूर्वार्ध में उसकी समृद्धि पुनः हो गई थी और वहां अनेक जैनमुनि और विद्वान निवास करने लगे थे। माथुरसंघ के विद्वान उदयमुनि के प्रशिष्य और भ० बालचन्द्र मुनि के शिष्य विनयचन्द्र ने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल नरेश के विहार में बैठकर चून्ड़ी रास बनाया था और उसकी स्वोपज्ञ टीका भी रची थी। उन्होंने उसी नगर की तलहटी में बैठकर 'निर्भर पंचमी कथारास' का भी निर्माण किया था। इससे स्पष्ट है कि मुसलमान शासकों के समय में भी जैन विद्वान अपने साहित्य की श्री वृद्धि करते रहे हैं।

१४ वीं प्रयासि 'सुलोचनाचरित' की है, जिसके कर्ता गरिणदेवसेन हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की २८ सन्धियों में भरत चक्रवर्ती के सेनापति जयकुमार की धर्मपत्नी सुलोचना का, जो हस्तिनापुर के राजा अकम्पन और सुप्रमा देवी की सुपुत्री थी, चरित अंकित किया गया है। सुलोचना अनुपम सुन्दरी थी, इसके स्वयंवर में अनेक देसों के बड़े-बड़े राजागण आए थे। सुलोचना को देखकर वे मुग्ध हो गए। उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और उसकी प्राप्ति की प्रबल इच्छा करने लगे। स्वयंवर में सुलोचना ने जयकुमार की चुना। परिणाम स्वरूप चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो उठा, और उसने इसमें अपना अपमान समझा। अपने अपमान का बदला लेने के लिए अर्ककीर्ति और जय में युद्ध होता है और अन्त में जय की विजय होती है।

उस युद्ध का वर्णन कवि के शब्दों में निम्न प्रकार है—

भडो को वि खगोण खगं खलंतो, रणो सम्मुहे सम्मुहो ग्राहणंतो ।  
 भडो को वि वागोण वागो दलंतो, समुद्राइ उदुद्धरो एं कयंतो ॥  
 भडो को वि कौंतेण कौंत सरंतो, करे गाड चक्को अरी सं पहुंतो ।  
 भडो को वि खंडेहि खंडी कयंगो, लडतं ए मुक्को सगा जो अहंगो ॥  
 भडो को वि संगाम भूमि घुलंतो, विवण्णोह गिद्धवली गीयअंतो ।  
 भडो को वि घाएण शिव्वट्टि सीसो, असिवावरेई अरीसाण भीसो ॥  
 भडो को वि रत्तप्पवाहे तरंतो, फुरंतप्पएणं तडि सिग्घ पत्तो ।  
 भडो को वि मुक्का उहे वन्न इत्ता, रहे दिण्णयाउ विवण्णोह इत्ता ॥  
 भडो को वि इत्थी विसारोहिं भिण्णो, भडो कोवि कंडोट्टु छिण्णो शिसण्णो ॥

धत्ता—तहि अक्खरि शिय सेण्णु पेच्छिवि सर जज्जरियउ ।

धावइ भुपतोलंतु जउ वकु मच्छर भरियउ ॥ ६—१२

युद्ध के समय सुलोचना ने जो कुछ विचार किया था, उसे अंधकार ने गूँथने का प्रयत्न किया है। सुलोचना को जिन मन्दिर में बैठे हुए जब यह मालूम हुआ कि महंतादिक पुत्र, बल और तेज सम्पन्न पांच सौ सैनिक सत्रु पक्ष ने मार डाले हैं, जो तेरी रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे। तब वह अपनी आत्म-निंदा करती हुई विचार करती है कि यह संग्राम मेरे कारण ही हुआ है जो बहुत से सैनिकों का विनाशक है। अतः मुझे ऐसे जीवन से कोई प्रयोजन नहीं। यदि युद्ध में मेघेश्वर (जयकुमार) की जय हो और मैं उन्हें जीवित देख लूँगी तभी शरीर के निमित्त आहार करूँगी। इससे स्पष्ट है कि उस समय सुलोचना ने अपने पति की जीवन-कामना के लिए आहार का भी परित्याग कर दिया था। इससे उसके पातिव्रत्य का उच्चा-दर्श सामने आता है। यथा—

इमं जपिञ्जलं पडतं जयेणं, तुमं एह कण्णा मनोहार वण्णा ।  
 सुरवखेह गूणं पुरेणेह अणं, तउ जोइ लक्खा अणेया असंखा ।  
 सुसत्या वरिण्णा महं दिक्ख दिण्णा, रद्धा चाए चिधा जो मयंधा ।  
 महंताय पुत्ता बला-तेय जुत्ता, सया पंच संखा हया वैरि-मक्खा ।  
 पुरीए शिहाएणं वरं तुंग गेहं, फुरंतीह एलीं मणीलं करालं ।  
 पिया तत्थ रम्मो वरे चित्त कम्मे, अरंभीय चित्ता सुउ हल्लवत्ता ।  
 शियं सोययंती इणं चित्तवती, अहं पाव-यम्मा अलज्जा अयम्मा ।

साथ ही कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को छंद अलङ्कार और व्याकरण शास्त्र से अनभिज्ञ, तर्कशास्त्र को नहीं सुनने वाला और साहित्य का नाम भी जिसके कर्णगोचर नहीं हुआ, इतना तक व्यक्त किया है और लिखा है कि ऐसा कवि सिंह सरस्वती देवी के प्रसाद को प्राप्त कर सत्कवियों में अग्रणी मान्य तथा मनस्वी प्रिय हुआ है<sup>५</sup> ।

### गुरु परम्परा

कविवर सिंह के गुरु मुनि पुङ्गव भट्टारक अमृतचन्द्र थे, जो तप, तेजरूपी दिवाकर, और व्रत नियम तथा शील के रत्नाकर (समुद्र) थे । तर्क रूपी लहरों से जिन्होंने परमत को भङ्कोलित कर दिया था—डगमगा दिया था—जो उत्तम व्याकरण रूप पदों के प्रसारक थे, जिनके ब्रह्मचर्य के तेज के आगे काम देव दूर से ही वंकित (खंडित) होने की आशंका से मानो छिप गया था—वह उनके समीप नहीं आ सकता था—इससे उनके पूर्ण ब्रह्मचर्य निष्ठ होने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है<sup>६</sup> ।

प्रस्तुत भट्टारक अमृतचंद्र उन आचार्य अमृतचंद्र से भिन्न हैं, जो आचार्य कुंदकुन्द के समयसारादि प्राभृतत्रय के टीकाकार और पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि ग्रंथों के रचयिता थे । वे लोक में 'ठक्कुर' उपनाम से प्रसिद्ध थे । इनकी समस्त रचनाओं का जैन समाज में बड़ा समादर है । यह विक्रम की दशवीं शताब्दी के विद्वान थे । उनकी गुरु परम्परा यद्यपि अज्ञात है । परन्तु पट्टावली में उनका समय सं० ९६२ दिया हुआ है, वह प्रायः ठीक जान पड़ता है<sup>७</sup> ।

किन्तु उक्त भट्टारक अमृतचंद्र के गुरु माधवचंद्र थे, जो प्रत्यक्ष धर्म, उपशम, दम, क्षमा के धारक और इन्द्रिय तथा कपायों के विजेता थे और जो उस समय 'मलधारी देव' के नाम से प्रसिद्ध थे, और यम तथा नियम से सम्बद्ध थे । 'मलधारी' एक उपाधि थी जो उस समय के किसी-किसी साधु सम्प्रदाय में प्रचलित थी । इस उपाधि के धारक अनेक विद्वान् आचार्य हो गए हैं । वस्तुतः यह उपाधि उन मुनि पुंगवों को प्राप्त होती थी, जो दुर्धर परिपहों, विविध घोर उपसर्गों और शीत-उष्ण तथा वर्षा की बाधा सहते हुए भी कभी कष्ट का अनुभव नहीं करते थे । और पसीने से तर-वतर शरीर होने पर धूलि के कणों के संसर्ग से मलिन शरीर को साफ न करने तथा पानी से धोने या नहाने जैसी घोर बाधा को भी हंसते हुए सह लेते थे । ऐसे ऋषि पुंगव ही उक्त उपाधि से अलंकृत किए जाते थे ।

५. 'छन्दोऽलंकृति-लक्षणं न पठितं नाऽश्रावि तर्कामो,  
जातं हंत न कर्ण गोचरचरं साहित्यनामाऽपि च ।  
सिंहः सत्कविरग्रणीः समभवत् प्राप्य प्रसादं परं,  
वाग्देव्याः सुकवित्वजातयशसा मान्यो मनस्विप्रियः ॥'

६. तासु सीसु तव-तेय-दिवायरु, वय-तव-णियम-शील-रयणायरु ।  
तवक-लहरि-भङ्कोलिय-परमउ, वर वायरण पवर पसरिय पउ ।  
जासु भुवण दूरंतरु वंकिवि, दिद पच्छणु मयणु आसंकिवि ।  
अभयचंद नामेण भडारउ, सो विहरंतु पत्तु बुह सारउ ॥

—पञ्जुणचरिउ प्रशस्ति

७. देखो, 'अमृतचंद्र का समय' शीर्षक मेरा लेख, अनेकांत वर्ष ८ किरण ४-५ ।

## रचना समय

यद्यपि ग्रन्थ में रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, फिर भी अन्य प्रमाणों के आधार पर ग्रन्थ का रचना समय बतलाने का प्रयत्न किया जाता है। ग्रंथ प्रशस्ति में 'वम्हण्णवाड' नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस समय वहाँ रणधोरी या रणधोर का पुत्र बल्लाल था जो अर्णोराजका क्षय करने के लिए कालस्वरूप था और जिसका मांडलिक भृत्य अथवा सामन्त गुहिलवंशीय क्षत्रीय भुल्लण उस समय वम्हण्णवाडका शासक था<sup>१</sup>। परन्तु इस उल्लेख पर से उक्त राजाओं का राज्यकाल ज्ञात नहीं होता। अतः उसे अन्य साधनों से जानने का प्रयत्न किया जाता है।

मंत्री तेजपाल के आबू के लूणवसति गत सं० १२८७ के लेख में मालवा के राजा बल्लाल को यशोधवल के द्वारा मारे जाने का उल्लेख है<sup>२</sup>। यह यशोधवल विक्रमासिंह का भतीजा था और उसके कैद हो जाने के बाद गद्दी पर बैठा था। यह कुमारपाल का मांडलिक सामन्त अथवा भृत्य था, मेरे इस कथन की पुष्टि अचलेश्वर मंदिर के शिलालेख गत निम्न पद्य से भी होती है—

“तस्मान्मही.....विदितान्यकलत्रपात्र, स्पर्गो यशोधवल इत्यवलम्बते स्म।  
यो गुर्जरक्षितिपतिप्रतिपक्षमाजौ, बल्लालमालभत मालवमेदिनीद्रम् ॥”

यशोधवल का वि० सं० १२०२ (११४५ A.D.) का एक शिलालेख अजरी गाँव से मिला है जिसमें 'प्रमारवंशोद्भवमहामण्डलेश्वरश्रीयशोधवलराज्ये' वाक्य द्वारा यशोधवल को परमारवंश का मण्डलेश्वर सूचित किया है। यशोधवल रामदेव का पुत्र था, इसकी रानी का नाम सौभाग्यदेवी था। इसके दो पुत्र थे, जिनमें एक का नाम धारावर्ष और दूसरे का नाम प्रह्लाददेव था। इनमें यशोधवल के बाद राज्य का उत्तराधिकारी धारावर्ष था। वह बहुत ही वीर और प्रतापी था, इसकी प्रशंसा वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति के ३६वें पद्य में पाई जाती है<sup>३</sup> ? धारावर्ष का सं० १२२० का एक लेख 'कायद्रा' गाँव के बाहर, काशी, विद्देश्वर के मंदिर से प्राप्त हुआ है<sup>४</sup>। यद्यपि इसकी मृत्यु का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिला, फिर भी उसकी मृत्यु उक्त सं० १२२० के समय तक या उसके अन्तर्गत जानना चाहिये।

जब कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा, तब मालवा का राजा बल्लाल, चन्द्रावती का परमाल विक्रमासिंह और सपादलक्ष (सांभर) का चौहान अर्णोराज ये तीनों राजा परस्पर में मिल गये और इन्होंने कुमारपाल के विरुद्ध जबरदस्त प्रतिक्रिया की; परन्तु उनका यह सब प्रयत्न निष्फल हुआ। कुमारपाल ने

१. सरि-सर-पंदण-वण-संछण्णउ, मठ-विहार-जिण-भवणरवण्णउ ।

वम्हण्णवाडउ णामं पट्टणु, अरिणरणह-सोपदलवट्टणु ।

जो भुंजइ अरिणखयकालहो, रणधोरियहो सुधहो बल्लालहो ।

जानु भिच्चु दुज्जण-मणसल्लणु, खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भुल्लणु ॥ —प्रद्युम्नचरित प्रशस्ति ।

२. यदचोलुवयकुमारपालनूपतिः प्रत्यथितामागतं ।

मस्वा मस्वरमेव मालवपति बल्लालमालव्यवान् ॥

३. शत्रु श्रेणीगलविदलनीनिद्रनिस्त्रिशधारे, धारावर्षः समर्जनि सुतस्तस्य विद्वप्रशस्यः ।

श्रीधोकात्प्रधनवमुधा निश्चले यत्र जाता, द्योतन्नेत्रोत्पलजलकणः कोंकणाधीनपत्न्यः ॥३६॥

४. देखो, भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ पृ० ७६-७७ ।

विक्रमसिंह का राज्य उसके भतीजे यशोधवल को दे दिया, जिसने वल्लाल को मारा था, और इस तरह मालवा को गुजरात में मिलाने का प्रयत्न किया गया।

वल्लाल की मृत्यु का उल्लेख अनेक प्रशस्तियों में मिलता है। बड़नगर से प्राप्त कुमारपाल प्रशस्ति के १५ श्लोकों में वल्लाल की हार और कुमारपाल की विजय का उल्लेख किया गया है और लिखा है कि कुमारपाल ने वल्लाल का मस्तक महल के द्वार पर लटका दिया था। चूंकि कुमारपाल का राज्यकाल वि० सं० ११६६ से वि० सं० १२२६ तक पाया जाता है और इस बड़नगर प्रशस्ति का काल सन् ११५१ (वि० सं० १२०८) है। अतः वल्लाल की मृत्यु ११५१ A. D. (वि० सं० १२०७) से पूर्व हुई है।

ऊपर के इस कथन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि कुमारपाल, यशोधवल, वल्लाल और अर्णोराज ये सब राजा समकालीन हैं। अतः ग्रंथ-प्रशस्ति गत कथन को दृष्टि में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत प्रद्युम्नचरित की रचना वि० सं० १२०८ से पूर्व हो चुकी थी। अतः इस ग्रंथ का रचनाकाल विक्रम की १३वीं शताब्दी का पूर्वार्ध होना चाहिये।

प्रद्युम्नचरित की अधिकांश प्रतियों में अन्तिम प्रशस्ति ही दी हुई नहीं है और जिन प्रतियों में प्राप्त थी उनमें वह त्रुटित एवं खण्डित अवस्था में प्राप्त हुई थी; किंतु यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि भ० महेन्द्रकीर्ति आमेर के शास्त्रभण्डार की कई प्रतियों में यह प्रशस्ति पूर्णरूप से उपलब्ध है। उक्त भण्डार में इस ग्रंथ की छह प्रतियाँ पाई जाती हैं। जो विविध समयों में लिखी गई हैं। उनमें से सं० १५७७ की प्रति पर से उक्त ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति इस संग्रह में दी गई है।

१६ वीं प्रशस्ति 'पासनाह चरित' की है। जिसके कर्ता कवि देवचन्द्र हैं। इस ग्रन्थ की अभी तक एक ही खंडित प्रति प्राप्त है, जिसमें ७, ७६ और ८१ वां ये तीन पत्र नहीं हैं। ग्रन्थ में ११ संवियाँ हैं जिनमें २०२ कडवकों में कवि ने पार्श्वनाथ के चरित को बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया है। साथ में पूर्व भवांतरों का कथन भी अंकित किया है। कवि ने दोषक छन्द में भगवान पार्श्वनाथ की ध्यान-मुद्रा को निम्न वाक्यों में चित्रित किया है. उससे पाठक ग्रन्थ की भाषा शैली से भी परिचित हो सकेंगे।

‘तत्थ सिलायले थककु जिण्णदो, संतु महंतु तिलोय हो वंदो ।  
पंच-महव्वय-उद्दय कंधो, निम्ममु चत्त चउव्विह वंधो ।  
जीव दयावरु संग विमुक्को, रां दहलक्खणु धम्मु गुरुक्को ।  
जम्म-जरा मरणुज्झिय दप्पो, वारस भेय तवस्स महप्पो ।  
मोह-तमंध-पयाव-पयंगो, खंति लया रुहणो गिरि तुंगो ।  
संजम-सील-विहसिय देहो, कम्म-कसाय हुआसण मेहो ।  
पुप्फंधणु वर तोमर धंसो, मोक्ख-महासरि-कीलण हंसो ।  
इन्दिय - सप्पहं विसहर मंतो, अप्पसरुव-समाहि-सरंतो ।  
केवलनाण - पयासण-कंखू, घाण पुरम्म निवेसिय चक्खू ।  
णिज्जिय सासु पलविय वाहो, णिच्चल देह विसज्जिय-वाहो ।  
कंचणसेलु जहां थिर चित्तो, दोषक छंद इमो बुह वुत्तो ।’

१. Epigraphica Indica V. L VIII P. 200.

२. देखो, सन् ११५१ की लिखित बड़नगर प्रशस्ति।

इसमें वतलाया गया है कि भगवान् पार्श्वनाथ एक शिला पर ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। वे सन्त महन्त त्रिलोककवर्ती जीवों के द्वारा वन्दनीय हैं, पंच महाव्रतों के धारक हैं, निर्ममत्व हैं, और प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग रूप चार प्रकार के वन्य से रहित हैं, दयालु और संग (परिग्रह) से मुक्त हैं। दशलक्षराघर्म के धारक हैं। जन्म, जरा और मरण के दर्प से रहित हैं। तप के द्वादश भेदों के अनुष्ठाता हैं। मोहरूपी ग्रंथकार को दूर करने के लिए सूर्य समान हैं। क्षमा रूपी लता के आरोहणार्थ वे गिरि के समान उन्नत हैं। जिनका शरीर संयम और शील से विभूषित है, जो कर्म रूप कपाय हुताशन के लिए मेघ हैं। कामदेव के उत्कृष्ट बाण को नष्ट करने वाले तथा मोक्ष रूप महासरोवर में क्रीड़ा करने वाले हंस हैं। इन्द्रिय रूपी विषधर सर्पों को रोकने के लिए मंत्र हैं। आत्म-समाधि में चलने वाले हैं। केवलज्ञान को प्रकाशित करने वाले सूर्य हैं, नासाय दृष्टि हैं, श्वास को जीतने वाले हैं, जिनके बाहु लम्बायमान हैं और व्याधियों से रहित जिनका निश्चल शरीर है। जो सुमेरु पर्वत के समान स्थिर चित्त है।" यह पार्श्वनाथ की उस ध्यान-समाधि का परिचायक है जो कर्माविरण की नाशक है।

कवि ने अपना यह खण्ड काव्य गुंदिज्ज नगर के पार्श्वनाथ मंदिर में बनाकर समाप्त किया है। गुंदिज्ज नगर दक्षिण में ही कहीं अवस्थित होगा। कवि देवचन्द्र मूलसंध देशी गच्छ के विद्वान् वासवचन्द्र के शिष्य थे। ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में गुरुपरम्परा का निम्न प्रकार उल्लेख है—श्रीकीर्ति, देवकीर्ति, मौनीदेव, माधवचन्द्र, अभयनन्दी, वासवचन्द्र और देवचन्द्र।

ग्रन्थ में रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, जिससे यह वतलाना कठिन है कि ग्रंथ कब बना है। क्योंकि तद्विषयक सामग्री सामने नहीं है। ग्रंथ की यह प्रति सं० १४६८ के दुर्मति नाम संवत्सर के पूस महीने के कृष्ण पक्ष में अलाउद्दीन के राज्य काल में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के पदाधिकारी भट्टारक प्रतापकीर्ति के समय में देवगिरि महादुर्ग में अग्रवाल श्रावक पण्डित गांगदेव के पुत्र पाक्षराज के द्वारा लिखाई गई है।

अब तक मुझे वासवचन्द्र नाम के दो विद्वानों का पता चला है, जिनमें एक का उल्लेख खजुराहा के सं० १०११ वैशाखसुदी ७ सोमवार के दिन उत्कीर्ण किये गये जिननाथ मंदिर के शिलालेख में दिया हुआ है जो वहाँ के राजा धंग के राज्यकाल में खोदा गया था\*।

दूसरे वासवचन्द्र का उल्लेख थवण बेलगोल के शिलालेख नं० ५५ में पाया जाता है जो शक सं० १०२२ (वि० सं० ११५७) का है। उस लेख के २५ वें पद्य में वासवचन्द्र मुनीन्द्र स्याद्वादविद्या के विद्वान् थे, कर्कश तर्क करने में उनकी बुद्धि चलती थी। उन्होंने चालुक्य राजा की राजधानी में बालसरस्वति की उपाधि प्राप्त की थी\*। इनमें द्वितीय वासवचन्द्र देवचन्द्र के गुरु हो सकते हैं। यदि यही वासवचन्द्र देवचन्द्र के गुरु हों तो इनका समय विक्रम की १२ वीं शताब्दी हो सकता है।

१७वीं प्रशस्ति 'सयलविहिविहाणकव्य' की है, जिसके कर्ता कविनयनन्दी है, जिनका परिचय तीसरी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१८वीं प्रशस्ति 'अणुवय-रयण-पईव' की है जिसका परिचय १३ वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

1. See Epigraphica Indica VOLT Page 136.

२. वासवचन्द्र मुनीन्द्रो रन्द्र स्याद्वादतर्क-कर्कश-धिपणः।

चालुक्य कटकमध्ये बालसरस्वति रिति प्रसिद्धिः प्राप्तः ॥

—थवण बेलगोल शिलालेख २५



१६वीं प्रशस्ति 'बाहुवलीचरित' की है, जिसके कर्ता कवि धनपाल हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में अठारह संधियाँ हैं। कवि कथा सम्बन्ध के वाद सज्जन दुर्जन का स्मरण करता हुआ कहता है कि 'नीम को यदि दूध से सिंचन किया जाय तो भी वह अपनी कटुकता का परित्याग नहीं करती। ईख को यदि शस्त्र से काटा जाय तो भी वह अपनी मधुरता नहीं छोड़ती। उसी तरह सज्जन-दुर्जन भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। सूर्य तपता है और चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है'। ग्रन्थ में आदि ब्रह्मा ऋषभदेव के पुत्र बाहुवली का, जो सम्राट् भरत के कनिष्ठ भ्राता और प्रथम कामदेव थे, चरित्र दिया हुआ है। बाहुवली का शरीर जहाँ उन्नत और सुन्दर था वहाँ वह बल पौरुष से भी सम्पन्न था। वे इन्द्रिय विजयी और उग्र तपस्वी थे। वे स्वाभिमानपूर्वक जीना जानते थे, परंतु पराधीन जीवन को मृत्यु से कम नहीं मानते थे। उन्होंने भरत सम्राट् से जल-मल्ल और दृष्टि युद्ध में विजय प्राप्त की थी, परिणाम स्वरूप भाई का मन अपमान से विक्षुब्ध हो गया और बदला लेने की भावना से उन्होंने अपने भाई पर चक्र चलाया; किन्तु देवोपनीत अस्त्र 'वंश-घात' नहीं करते। इससे चक्र बाहुवली की प्रदक्षिणा देकर वापिस लौट गया—वह उन्हें कोई नुकसान न पहुंचा सका। बाहुवली ने रणभूमि में भाई को कंधे पर से नीचे उतारा और विजयी होने पर भी उन्हें संसार-दशा का बड़ा विचित्र अनुभव हुआ।

वे सोचने लगे कि भाई को परिग्रह की चाहने अंधा कर दिया है और अहंकार ने उनके विवेक को भी दूर भगा दिया है। पर देखो, दुनिया में किसका अभिमान स्थिर रहा है? अहंकार की चेष्टा का दण्ड ही तो अपमान है। तुम्हें राज्य की इच्छा है तो लो इसे सम्हालो और जो उस गद्दी पर बैठे उसे अपने कदमों में भुका लो, उस राज्य सत्ता को धिक्कार है, जो न्याय अन्याय का विवेक भुला देती है। भाई-भाई के प्रेम को नष्ट कर देती है और इन्सान को हैवान बना देती है। अब मैं इस राज्य का त्याग कर आत्म-साधना का अनुष्ठान करना चाहता हूँ और सबके देखते-देखते ही वे तपोवन को चले गये, जहाँ दिगम्बर मुद्रा द्वारा एक वर्ष तक कायोत्सर्ग में स्थित रहकर उस कठोर तपश्चर्या द्वारा आत्म-साधना की, पूर्ण ज्ञानी वन स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त हुए।

ग्रंथ में अनेक स्थल काव्यमय और अलंकृत मिलते हैं। कवि ने अपने से पूर्ववर्ती अनेक कवियों और उनकी रचनाओं का भी उल्लेख किया है।

कवि ने इस ग्रन्थ का नाम 'कामचरित' कामदेवचरित भी प्रकट किया है और उसे गुणों का सागर बतलाया है। ग्रन्थ में यद्यपि छंदों की बहुलता नहीं है। फिर भी ११वीं संधि में दोहों का उल्लेख अवश्य हुआ है। ग्रन्थ रचना उस समय की है जब हिंदी भाषा का विकास हो रहा था। कवि ने इसे वि० सं० १४५४ में वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को स्वाति नक्षत्र में स्थित सिद्धि योग में सोमवार के दिन, जबकि चंद्रमा तुलारासी पर स्थित था, पूर्ण किया है।

### ग्रन्थ निर्माण में प्रेरक

प्रस्तुत ग्रंथ चंद्रवाड नगर के प्रसिद्ध राज श्रेष्ठी और राजमंत्री, जो जायस या जैसवाल वंश के भूषण थे, सांहूवासाधर की प्रेरणा से की है और उक्त ग्रंथ उन्हीं के नामांकित किया है। वासाधर के पिता

१. णिबु को वि जइ खीरहि सिचइ, तो वि ण सो कुडुवत्तणु मुंचइ ।

उच्छु को वि जह सत्थे खंडइ, तो वि ण सो महुरत्तणु छंडइ ।

दुज्जण सुअण सहावें तप्परु, सूरुतवइ ससहरु सीयरकरु ॥

—बाहुवलिचरित

का नाम सोमदेव था, जो संभरी नरेंद्र कर्णदेव के मंत्री थे। कवि ने साहु वासाधर को सम्यक्त्वो, जिन चरणों के भक्त जिनधर्म के पालन में तत्पर, दयालु, बहु-लोकमित्र, मिथ्यात्व रहित और विशुद्ध चित्त वाला बतलाया है। साथ ही आवश्यक दैनिक पट्कर्मों में प्रवीण, राजनीति में चतुर और अष्टमूल गुणों के पालन में तत्पर प्रकट किया है। इनकी पत्नी का नाम उभयश्री था, जो पतिव्रता और शीलव्रत का पालन करने वाली तथा चतुर्विध संघ के लिए कल्पनिधि थी। इनके आठ पुत्र थे, जसपाल, जयपाल, रत-पाल, चंद्रपाल, विहराज, पुण्यपाल, वाहङ्ग और रूपदेव। ये सभी पुत्र अपने पिता के समान ही सुयोग्य चतुर और धर्मात्मा थे। इन आठ पुत्रों के साथ साहु वासाधर अपने धर्म का साधन करते थे।

इस ग्रंथ में कवि ने अपने से पूर्व होने वाले कुछ खास विद्वानों का और उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतियों के नामोल्लेख के साथ उल्लेख किया है। जैसे कवि चक्रवर्ती घोरसेन, जैनेन्द्र व्याकरणकर्ता देवन्दी (पूज्यपाद) श्री वज्रसूरि और उनके द्वारा रचित पट्टदशान प्रमाण ग्रंथ, महासेन मुलोचनाचरित, रविपेण-पद्मचरित, जिनसेन हरिवंशपुराण, मुनिजटिल वरांगचरित, दिनकरसेन कंदर्पचरित, पद्मसेन-पार्श्वनाथचरित, अमृ-ताराधना गणि अम्बसेन, चंद्रप्रभचरित, धनदत्तचरित, कवि विष्णुसेन, मुनिसिंहन्दि-अनुप्रेक्षा, शवकार मंत्र-नरदेव, कवि असग-वीरचरित, सिद्धसेन, कवि गोविंद, जयधवल, शालिभद्र, चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभू, पुष्पदंत, और सेदु कवि का उल्लेख किया गया है।

### कवि परिचय

कवि धनपाल गुजरात देश के मध्य में 'पल्हणपुर' या पालनपुर के निवासी थे। वहाँ वीसलदेव राज्य करते थे, जो पृथ्वी के मण्डन और सकल उपमाओं से युक्त थे। उसी नगर में निर्दोष पुरवाड वंश में, जिसमें अग्रणीत पूर्व पुरुष हो चुके हैं, 'भोंवड' नाम के एक राजश्रेष्ठी थे, जो जिन भक्त और दया गुण

१. पालनपुर (पल्हणपुर) Palanpur झाबू राज्य के परमारवंशी धारावर्य सं० १२२० (११६३ ई०) से १२७६ ई० सन् १२१६ तक झाबू का राजा धारावर्य था, जिसके कई लेख मिल चुके हैं। उसके कनिष्ठ भ्राता यशोधवल के पुत्र प्रह्लादन देव (पात्रनसी) ने अपने नाम पर बसाया था। यह बड़ा वीर योद्धा था और विद्वान भी था। इसी से इसे कवियों ने पालनपुर या पल्हणपुर लिखा है। यह गुजरात देश की राजधानी थी। यहाँ अनेक राजाओं ने शासन किया है। झाबू के शिलालेखों में परमार वंश की उत्पत्ति और माहात्म्य का वर्णन है और प्रह्लादनदेव की प्रशंसा भी उल्लेख है। जिस समय कुमारपाल शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा को गया, तब प्रह्लादन देव भी साथ में था। पुरातन-प्रबंध संग्रह पृ० ४३)

प्रह्लादन देव की प्रशंसा प्रसिद्ध कवि सोमेश्वर ने कीर्तिकौमुदी में और तेजपाल मंत्री द्वारा बनवाए हुए लूणवसही की प्रशंस्त में की है। यह प्रशंस्त वि० सं० १२८७ में झाबू पर देलवाड़ा गांव के नेमिनाथ मंदिर में लगाई गई थी। मेवाड़ के ग्रहिल वंशी राजा सामंतसिंह और गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल की लड़ाई में, जिसमें वह घायल हो गया था प्रह्लादन ने बड़ी वीरता से सड़कर गुजरात की रक्षा की थी।

प्रस्तुत पालनपुर में दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के लोग रहते थे। धनपाल के पितामह तो वहाँ के राज्य श्रेष्ठी थे। श्वेताम्बर समाज का तो यह प्रमुख केन्द्र ही था। यहाँ उनके अनेक ग्रंथ लिपि-किये गए। जिनदत्त सूरि भी वहाँ रहे हैं।

से युक्त थे। यह कवि धनपाल के पितामह थे, इनके पुत्र 'सुहृदप्रभ' श्रेष्ठी थे, जो धनपाल के पिता थे। कवि की माता का नाम 'सुहृदा देवी' था इनके दो भाई और भी थे, जिनका नाम संतोष और हरिराज था। इनके गुरु प्रभाचंद्र थे, जो अपने बहुत से शिष्यों के साथ देशाटन करते हुए उसी पल्हणपुर में आये थे, धनपाल ने उन्हें प्रणाम किया, और मुनि ने आशीर्वाद दिया कि तुम मेरे प्रसाद से विचक्षण होगे। मस्तक पर हाथ रखकर बोले कि मैं तुम्हें मंत्र देता हूँ। तुम मेरे मुख से निकले हुए अक्षरों को याद करो। आचार्य प्रभाचंद्र के वचन सुनकर धनपाल का मन आनन्दित हुआ, और उसने विनय से उनके चरणों की वन्दना की, और आलस्य रहित होकर गुरु के आगे शास्त्राभ्यास किया, और सुकवित्व भी पा लिया। पश्चात् प्रभाचंद्र गयी खंभात धारनगर और देवगिरि (दौलतावाद) होते हुए योगिनी पुर आये। देहली निवासियों ने उस समय एक महोत्सव किया और भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्ट पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। भट्टारक प्रभाचंद्र ने मुहम्मदशाह तुगलक के मन को अनुरजित किया था और विद्या द्वारा वादियों का मनोरथ भग्न किया था<sup>१</sup>। मुहम्मदशाह ने वि० सं० १३८१ से १४०८ तक राज्य किया है।

भट्टारक प्रभाचंद्र का भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का समर्थन भगवती आराधना की पंजिका टीका की उस लेखक प्रशस्ति से भी होता है जिसे संवत् १४१६ में इन्हीं प्रभाचंद्र के शिष्य ब्रह्मनाथूराम ने अपने पढ़ने के लिए दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुगलक के शासनकाल में लिखवाया था, उसमें भ० रत्नकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का स्पष्ट उल्लेख है<sup>२</sup>। फीरोजशाह तुगलक ने सं० १४०८ से १४४५ तक राज्य किया है। इससे स्पष्ट है कि भ० प्रभाचंद्र सं० १४१६ से कुछ समय पूर्व भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित हुये थे और सकल उपमाओं से युक्त थे।

कविवर धनपाल गुरु आज्ञा से सौरिपुर तीर्थ के प्रसिद्ध भगवान नेमिनाथ जिनकी वन्दना करने के लिये गए थे। मार्ग में इन्होंने चन्द्रवाड<sup>३</sup> नाम का नगर देखा, जो जन धन से परिपूर्ण और उत्तुंग जिनालयों से विभूषित था, वहां साहु वासाधर का वनवाया हुआ जिनालय भी देखा और वहां के श्री अरहनाथ जिनकी वन्दना कर अपनी गर्हा तथा निदा की और अपने जन्म-जरा और मरण का नाश होने की कामना व्यक्त की। इस नगर में कितने ही ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं जिन्होंने जैनधर्म का अनुष्ठान करते हुए वहां के राज्य मंत्री रह कर प्रजा का पालन किया है। कवि का समय पन्द्रहवीं शताब्दी है।

२०वीं प्रशस्ति (चंद्रप्पहचरिउ) नाम के ग्रन्थ की है, जिनके कर्ता कवि यशःकीर्ति हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्यारह संधियाँ हैं जिनमें जैनियों के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवन परिचय अंकित किया गया है। ग्रन्थ का चरित भाग उड़ा ही सुन्दर और प्राञ्जल है। इसका अध्ययन करने से जैन तीर्थंकर की आत्म-साधना की रूपरेखा का जहां परिज्ञान होता है वहां आत्म-साधना के सुन्दर उपाय की भी जानकारी हो जाती है।

१. तं हि भव्वं हि सुमहोच्छव विहियउ; सिरि रयणकिर्ति पट्टे णिहिउ।

महमंदसाहि मणुरजियउ, विज्जहि वाइयं मणु भंजियउ।

—वाहुवल्लि चरिउ प्रशस्ति

२. संवत् १४१६ वर्षे चैत्र सुदि पञ्चम्यां सोमवासरे सकलराज शिरोमुकुटमाणिक्यमरीचिपिजरीकृत चरण कमल पादपीठस्य श्रीपेरोजसाहेः सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्रीदिल्यां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वती गच्छे वलात्कारगणे भट्टारक श्रीरत्नकीर्ति देव पट्टोदयाद्रितरुणतरणित्वमुर्वीकुर्वाणरणः (णः) भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेव शिष्याणां ब्रह्मनाथूराम। इत्याराधना पंजिकायां ग्रंथ आत्मपठनार्थं लिखापितम्।

—आरो० पंजि० प्रश० व्यावर भवन प्र०

३. देखो, चन्द्रवाड का इतिहास नाम का मेरा लेख, अनेकान्त वर्षे ८।

कवि ने अपना सभी कथन काव्य-शैली से किया है, किन्तु साध्य-चरित भाग को सरल शब्दों में रखने का प्रयत्न किया गया है। इसमें विविध छन्दों की भरमार नहीं है। कवि ने इस ग्रन्थ को 'हुंबड' कुलभूपण कुमारसिंह के सुपुत्र सिद्धपाल के अनुरोध से बनाया था, वे उन्मत्त ग्राम के निवासी थे। अतएव ग्रन्थ सिद्धपाल के ही नामांकित किया गया है।

### समय विचार

ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ में रचनाकाल नहीं दिया; किन्तु आद्य प्रदस्ति में निम्न विद्वानों का उल्लेखमात्र किया है। साथ ही, आचार्य समन्तभद्र के मुनि जीवन के समय घटने वाली और आठवें तीर्थकर के स्तोत्र की सामर्थ्य से चन्द्रप्रभ की मूर्ति के प्रकट होने की घटना का उल्लेख करते हुए अकलंक, पूज्यपाद, जिन्सेन और सिद्धसेन नाम के अपने से पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख किया है। जिससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि प्रस्तुत ग्रंथ भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति की कृति नहीं है। ग्रन्थका भाषा साहित्य भी पाण्डवपुराण के कर्ता यशःकीर्ति से गम्भीर प्रौढ़ और प्रभावक है। कुछ विद्वान इस उक्त यशःकीर्ति को और पाण्डवपुराण के कर्ता यशःकीर्ति, दोनों को एक बतलाते हैं, परन्तु वे इसका कोई प्रमाण नहीं देते हैं।

साथ ही, दोनों ग्रन्थों की सन्धि-पुष्पिकाओं में भी भारी अन्तर है। भट्टारक यशःकीर्ति अपने प्रत्येक ग्रन्थ की सन्धि-पुष्पिका में 'सिरि गुणकीर्ति सिस्स मुणिए जसकित्ति विरइए' वाक्य के साथ उल्लेखित करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि उक्त कृति भ० गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति की रची हुई है। किन्तु चन्द्रप्रभ चरित्र के कर्ता ने अपने ग्रन्थ की किसी भी संधि में गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति का कोई उल्लेख नहीं किया है। जिससे प्रस्तुत यशःकीर्ति पाण्डवपुराणादि के कर्ता भ० यशःकीर्ति से भिन्न हो जाते हैं। जैसा कि ग्रन्थ के निम्न संधि वाक्य से प्रकट है :—“इय सिरि चंदप्पहचरिए महाकव्वे महाकइ जसकित्ति विरइए महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे चंदप्पहसामिणिव्वाण गमण वण्णएणाम एयारहमो-संधी परिच्छेद समत्तो।”

गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति ने कहीं भी अपने को महाकवि सूचित नहीं किया है; किन्तु चन्द्रप्रभ चरित्र के कर्ता ने अपने को 'महाकवि' भी प्रकट किया है।

अतः ऊपर के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता इनसे भिन्न और पूर्ववर्ती हैं। इनका समय सम्भवतः ११वीं-१२वीं शताब्दी ज्ञात होता है। ग्रंथ अभी अप्रकाशित है और उसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

२१वीं, २२वीं, २३वीं और २४वीं प्रदस्तियाँ क्रम से 'पाण्डवपुराण' हरिवंश पुराण, जिनरात्रिकहा, और रविवचकथा की हैं। जिनके कर्ता भ० यशः कीर्ति हैं।

पाण्डवपुराण में ३४ संधियाँ हैं जिनमें भगवान् नेमिनाथ की जीवन-गाथा के साथ युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, और कौरवों के परिचय से युक्त कौरवों से होने वाले युद्ध में विजय, नेमिनाथ, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की तपस्वरथा तथा निर्वाण प्राप्ति, नकुल, सहदेव का सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करना और बलदेव का श्वं स्वर्ग में जाने का उल्लेख किया है। कवि यशः कीर्ति विहार करते हुए नवगांव नाम के नगर में आए, जो दिल्ली के निकट था, वहाँ उन्होंने इसकी रचना वि० सं० १४६७ में समाप्त की है। ग्रंथ में नारी का वर्णन परम्परागत उपमानों से अलंकृत है, किन्तु शारीरिक सौंदर्य का अच्छा वर्णन किया गया है—“जाहे गियंतिहे रइवि उक्खिज्जइ”—जिसे देखकर रति भी खीज उठती है। इतना ही नहीं किन्तु उसके सौंदर्य से इन्द्राणी भी खिन्न हो जाती है—“लायण्णं वासवपिय जूरइ” कवि ने जहाँ धरीर के

वाह्य सौंदर्य का कथन किया है वहां उसके अन्तर प्रभाव की भी सूचना की है। छन्दों में पद्धडिया के अति-रिक्त आरणांल, दुवई, खंडय, हेला, जंभोट्टिया, रचिता, मलयविलासिया, आवली, चतुष्पदी, सुन्दरी, वंशस्थ, गाहा, दोहा और वस्तु छन्द का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है<sup>१</sup>। कवि ने यह ग्रन्थ शाहू हेमराज के अनुरोध से बनाया है जो दिल्ली के बादशाह मुबारिक शाह के मंत्री थे। इन्होंने दिल्ली में एक चैत्यालय भी बनवाया था<sup>२</sup>, जिसकी प्रतिष्ठा सं० १४६७ से पूर्व हो चुकी थी; क्योंकि सं० १४६७ में निर्मित ग्रंथ में उसका उल्लेख किया है। ग्रंथ की संघियों के संस्कृत पद्यों में ग्रन्थ निर्माण में प्रेरक हेमराज की मंगल कामना की गई है और यह ग्रन्थ उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में हेमराज के परिवार का विस्तृत परिचय दिया हुआ है।

२२वीं प्रशस्ति 'हरिवंशपुराण' की है जिसमें १३ संघियां और २६७ कडवक हैं जो चार हजार श्लोकों के प्रमाण को लिए हुए हैं। इनमें कवि ने भगवान् नेमिनाथ और उनके समय में होने वाले कौरव पाण्डव युद्ध और विजय का संक्षिप्त परिचय दिया गया है अर्थात् महाभारत कालीन जैन मान्यता सम्मत पौराणिक आख्यान दिया हुआ है। ग्रन्थ में काव्यमय अनेक स्थल अलंकृत शैली से वर्णित हैं। उसमें नारी के वाह्य रूप का ही चित्रण नहीं किया गया, किन्तु उसके हृदय-रसों प्रभाव को भी अङ्कित किया है। कवि ने ग्रंथ को यद्यपि पद्धडिया छन्द में रचने की घोषणा की है, किन्तु आरणांल, दुवई, खंडय, जंभोट्टिया, वस्तु-बंध और हेला आदि छन्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र किया गया है। ऐतिहासिक कथनों की प्रधानता है, परन्तु सभी वर्णन सामान्य कोटि के हैं उनमें तीव्रता की अभिव्यक्ति नहीं है। यह ग्रन्थ हिसार निवासो अग्रवाल वंशी गर्गगोत्री साहु दिवड्डा के अनुरोध से बनाया गया था, साहु दिवड्डा परमेशी आराधक, इन्द्रिय-विषय-विरक्त, सप्तव्यसनरहित, अष्टमूलगुणाधारक तत्त्वार्थश्रद्धानी, अष्ट अंग परिपालक, ग्यारह प्रतिमा आराधक, और वारहव्रतों का अनुष्ठापक था, उसके दान-मान की कवि यश-कीर्ति ने खूब प्रशंसा की<sup>३</sup> है। उसी के अनुरोधवश यह ग्रन्थ वि० सं० १५०० में भाद्रपद शुक्ला एकादशी के दिन 'इंदरि' इन्द्रपुर या इन्द्रपुरी (दिल्ली) में जलालखाँ के राज्य में समाप्त हुआ है।

२३वीं प्रशस्ति 'जिनरात्रिकथा' की है, जिसमें शिवरात्रि कथा की तरह भगवान महावीर ने जिस रात्रि में अवशिष्ट अघाति कर्म का विनाश कर पावापुर से मुक्ति पद प्राप्त किया था उसी का वर्णन प्रस्तुत कथा में किया गया है। उस दिन और रात्रि में व्रत करना, तथा तदनुसार आचार का पालन करते हुए आत्म-साधना द्वारा आत्म-शोधन करना कवि की रचना का प्रमुख उद्देश्य है।

२४वीं प्रशस्ति रविव्रत कथा की है, जिसमें रविवार के व्रत से लाभ और हानि का वर्णन करते हुए, रविव्रत के अनुष्ठापक और उसकी निन्दा करने वाले दोनों व्यक्तियों की अच्छी बुरी परिणतियों से निष्पन्न फल का निर्देश करते हुए व्रत की सार्थकता, और उसकी विधि आदि का सुन्दर विवेचन किया गया है।

१. भं भणण भणण भल्लरि वि सद्द, टं टं करंत करि वीर वंठ !  
कंसाल ताल सद्दइ करंति, मिहुणइ इव विहडिडि पुणु मिलंति ।  
डम डम डम डमरु सद्दियाइं, बहु ढोल निसाणइ वज्जियाइं ।

२. जेण करावउ जिण-चेयालउ, पुण्णहेउ चिर-रय-पक्खालिउ ।  
धय-तोरण-कलसेहिं अलंकिउ, जसु गुरुत्ति हरिजणु वि संकिउ ।

३. दाणेण जासु कित्ति पर उवयारसु संपया जत्स ।

णिय पुत्त कलत्त सहिउ णंदउ दिवढाव्य इह भुवणे ॥

## कवि परिचय

भट्टारक यशः कीर्ति काष्ठासङ्घ माथुरगच्छ और पुष्करगण के भट्टारक गुणकीर्ति (तपश्चरण से जिनका शरीर क्षीण हो गया था) के लघु भ्राता और पट्टधर थे<sup>१</sup>। यह उस समय के सुयोग्य विद्वान् और कवि थे, तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने सं० १४८६ में त्रिवुध शोधर के संस्कृत भविष्यदत्त चरित्र और अपभ्रंश भाषा का 'सुकमालचरित' ये दोनों ग्रन्थ लिखवाये थे<sup>२</sup>। इन्होंने अनेक मूर्तियों को प्रतिष्ठा भी कराई थी। ग्वालियर के भ० मंदिर में इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां विराजमान हैं। यह ग्वालियर के शासक तोमर वंशीय राजा डूंगरसिंह के समय में हुए हैं जिसने सं० १४८१ से सं० १५१० तक राज्य किया है। यह जैनधर्म का श्रद्धालु था। इसने उस समय सैकड़ों मूर्तियां ग्वालियर के किले में उत्कीर्ण कराई थी, जिनकी खुदाई का कार्य ३३ वर्ष पर्यन्त चला था। इनके महाकवि रङ्घू जैसे शिष्य थे। रङ्घू ने अपने 'सम्मद् जिनचरित' नामक ग्रन्थ-प्रस्तावित में यशःकीर्ति का निम्न शब्दों में गुण-गान किया है—

"ताहि कमागधतव तवियंगो, रिचुब्भासिय-पवयण-संगो ।  
भव्व-कमल-संवोह-पयंगो, वंदिवि सिरि जसकित्ति असंगो ।  
तस्स पसाएँ कव्वु पयासमि, चिरभवि विहिउ असुर रिण्णसासमि ॥"

भट्टारक यशः कीर्ति को महाकवि स्वयम्भू देव का 'हरिवंश पुराण' (रिट्ठेणेमिचरिउ) जोर्ण-शीर्ण दशा में प्राप्त हुआ था और जो खंडित भी हो गया था, जिसका उन्होंने ग्वालियर के कुमार नगर के जैन मंदिर में व्याख्यान करने लिए उद्धार किया था<sup>३</sup> और इसमें अपना नाम भी अङ्कित कर दिया था यह कवि रङ्घू के तो गुरु थे ही, इनकी और इनके शिष्यों की प्रेरणा से कवि रङ्घू ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी है।

१. तहो सोमु सिद्धु गुण कित्तिणामु, तव तावें जायु सरीस खामु ।

तहो बंधवु जस मुणि सोमु जाउ, मायरिउ पणासिय दोमु-राउ ।

—हरिवंशपुराण प्रश०

२. "सं० १४८६ वर्षे अश्वविजदि १३ सोमदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरेन्द्रसिंह देव विजयराज्य प्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भ्राचार्य श्रीभावसेनदेवास्तत्पट्टे श्रीसहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्री गुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्येण श्रीयशः कीर्तिदेवेन निजज्ञानावरणी कर्म क्षयाय इदं सुकमालचरितं लिखापितं कायस्थ याजन पुत्र धनू लेखनीयं ।"

"सं० १४८६ वर्षे भ्रापाङ्ग बदि ७ गुरुदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरसी (सि) ह राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भ्राचार्य श्री सहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ्राचार्य गुणकीर्ति देवास्तच्छिष्य श्रीयशः कीर्तिदेवास्तेन निज ज्ञानावरणी कर्मक्षयाय इदं भविष्यदत्त पंचमीकयालिखापितम् ।"

३. तं जसत्ति-मृगिहि उदरघिउ, णिए वि सत्तु हरिवंसच्छरिउ ।

णिय-गुरु-सिरि-गुण-कित्ति-पसाएँ, किउ परिपुण्णु मणहो धणुराएँ ।

सरह सण्णेदं (?) सेठि भाएँसे, कुमरि-णयरि भाविउ सविसेसे ।

गोवगिरिहे समीवे विसालए, पणियारहे विणवर-चेयासए ।

सावयजणहो पुरउ वक्काणिउ, दिट्टुमिच्छत्तु मोहु अक्कमाणिउ ।

—हरिवंश पुराण प्रशस्ति नरामया प्रति

२५वीं प्रशस्ति 'पासराहचरित' की है, जिसके कर्ता कवि श्रीधर हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ एक खण्ड काव्य है। ग्रन्थ में १२ सन्धियाँ हैं जिनकी श्लोक संख्या ढाई हजार से ऊपर है। ग्रन्थ में जैनियों के तेवीसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अंकित किया गया है। कथानक वही है जो अन्य प्राकृत-संस्कृत के ग्रंथों में उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने दिल्ली नगर का अच्छा परिचय दिया है। उस समय दिल्ली जोयसिपुर, योगिनीपुर के नाम से विख्यात थी, जन-धन से सम्पन्न, उत्तुंग साल (कोट) गोपुर, विशालपरिखा, रणमंडपों, सुन्दर मन्दिरों, समद गज-घटाओं, गतिशील तुरंगों, ध्वजाओं से अलंकृत थी, तथा स्त्रियों की नूपुर ध्वनि को सुन्दर नाचते हुए मयूरों और विशालहृद् मार्गों से विभूषित थी। और वह हरियाना देश में थी।

कवि ने ग्रंथ की समाप्ति-सूचक सन्धि-पुष्पिका गद्य में न देकर स्वयंभू और नयनन्दी कवि के समान पद्य में दी है<sup>१</sup>।

श्रीधर ने इस ग्रन्थ की रचना दिल्ली में उस समय की, जब वहाँ तोमरवंशी क्षत्रिय अनंगपाल तृतीय का राज्य शासन चल रहा था। यह अनंगपाल अपने दो पूर्वजों से भिन्न था। बड़ा प्रतापी एवं वीर था। इसने हम्मीर वीर की सहायता की थी। ये हम्मीर वीर अन्य कोई नहीं, ग्वालियर के परिहार वंश की द्वितीय शाखा के हम्मीरदेव जान पड़ते हैं, जिन्होंने सं० १२१२ से १२२४ तक ग्वालियर में राज्य किया है। पर अनंगपाल से इनका क्या सम्बन्ध था, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। उस समय दिल्ली वैभव सम्पन्न थी, उसमें विविध जाति और धर्म वाले लोग बसते थे।

### ग्रंथ रचना में प्रेरक

साहु नट्टल के पिता का नाम 'आल्हरा' था। इनका वंश अग्रवाल था, और वह सदा धर्म-कर्म में सावधान रहते थे। इनकी माता का नाम 'भेमडिय' था, जो शीलरूपी सत् आभूषणों से अलंकृत थी, और वांधवजनों को सुख प्रदान करती थी। साहु नट्टल के दो ज्येष्ठ भाई और भी थे, राघव और सोढल। इनमें राघव बड़ा ही सुन्दर एवं रूपवान् था। उसे देखकर कामिनियों का चित्त द्रवित हो जाता था। और सोढल विद्वानों को आनन्ददायक, गुरु भक्त तथा अरहंतदेव की स्तुति करने वाला था, जिसका शरीर विनय रूपी आभूषणों से अलंकृत था, तथा बड़ा बुद्धिमान और धीर-वीर था। नट्टलसाहु इन सबमें लघु पुण्यात्मा सुन्दर और जनवल्लभ था। कुलरूपी कमलों का आकार और पापरूपी पांशु (रज) का नाशक, तीर्थंकर का प्रतिष्ठापक, बन्दीजनों को दान देने वाला, परदोषों के प्रकाशन से विरक्त, रत्नत्रय से विभूषित, और चतुर्विध संघ को दान देने में सदा तत्पर रहता था। उस समय दिल्ली के जैनियों में वह प्रमुख था, व्यसनादि-रहित हो श्रावक के व्रतों का अनुष्ठान करता था। साहु नट्टल केवल धर्मात्मा ही नहीं थे, किन्तु उच्चकोटि के कुशल व्यापारी भी थे। उस समय उनका व्यापार अंग-बंग, कलिङ्ग, कर्नाटक, नेपाल, भोट, पांचाल, चेदि, गौड़, ठक्क, (पंजाब), केरल, मरहट्ट, भादानक, मगध, गुर्जर, सोरठ और हरियाना आदि देशों और नगरों में चल रहा था। यह व्यापारी ही नहीं थे; किन्तु राजनीति के चतुर पंडित भी थे। कुटुम्बीजन तो नगर सेठ थे, और आप स्वयं तोमरवंशी अनंगपाल (तृतीय) के आमात्य थे। आपने

१. इस सिरि पासचरित्तं, रइये बुहसिरिहरेण गुण भरियं ।

अणुमणियं मणोज्जं, णट्टल नामेण भव्वेण ॥१॥

विजयंत विमाणाओ वामादेवीइ णंदणो जाओ ।

कणयप्पहु चविऊणं पढमो संधी परिसमत्तो ॥२॥

कवि श्रीधर से, जो हरियाणा देश से यमुना नदी को पार कर उस समय दिल्ली में आये थे, ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा की थी, तब कवि ने इस सरस खण्ड-काव्य की रचना वि० सं० ११८६ अग्रहन वदी अष्टमी रविवार के दिन समाप्त की थी।

नट्टलसाहू ने उस समय दिल्ली में आदिनाथ का एक प्रसिद्ध जिन मन्दिर भी बनवाया था, जो अत्यन्त सुन्दर था। जैसा कि ग्रंथ के निम्न वाक्यों से प्रकट है :—

“कारावेवि गाहेयहो रिणकेउ, पविइण्णु पंचवण्णं सुकेउ।

पई पुण्णु पइट्ट पविरइयजेम, पासहो चरित्तु जइ पुण्णवि तेम ॥”

आदिनाथ के इस मन्दिर की उन्होंने प्रतिष्ठा विधि भी की थी, उस प्रतिष्ठोत्सव का उल्लेख उक्त ग्रंथ की पांचवीं सन्धि के वाद दिये हुए निम्न पद्य से प्रकट है :—

येनाराध्य विशुध्य धीरमतिना देवाधिदेवं जिनं,

सत्पुण्यं समुपाजितं निजगुणैः संतोषिता वांघवाः।

जैनं चैत्यमकारि सुन्दर तरं जैनी प्रतिष्ठां तथा,

स श्रीमान्विदितः सदैव जयतात्पृथ्वीतले नट्टलः ॥

इस तरह कवि ने साहू नट्टल की मंगल कामना की है।

### कवि परिचय

प्रस्तुत कवि श्रीधर हरियाणा देश के निवासी थे, और अग्रवाल कुल में उत्पन्न हुए थे। आपके पिता का नाम 'गोल्ह' था और माता का नाम 'बील्हादेवी' था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा और जीवनादि घटना का कोई उल्लेख नहीं किया। ग्रंथ की आद्य प्रगति में अपनी एक अन्य रचना 'चंदप्पहचरित' (चन्द्रप्रभचरित) का उल्लेख किया है, परन्तु वह अभी तक अनुपलब्ध है। कवि की अन्य क्या-क्या कृतियाँ हैं, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। परन्तु कवि की तीसरी रचना 'वर्धमानचरित' है। जो संवत् ११६० में रचा गया था, जिसकी अपूर्ण प्रगति परिगिष्ट नं० ३ में दी गई है। देखिये परिचय परिगिष्ट नं० ३। कवि का समय विक्रम की १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। कवि की उक्त कृति अभी तक अप्रकाशित है, उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न होना चाहिये।

२६वीं और १०४वीं प्रगति 'सेणियचरित' या 'बड्डमाराणकव' और 'मल्लिणाह कव' नामक ग्रन्थों की है, जिनके कर्ता कविहल्ल या हरिइंद अथवा हरिचन्द हैं।

प्रथम ग्रन्थ में ११ संघियाँ हैं, जिनमें जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान भगवान का जीवन-परिचय अद्भुत किया गया है। साथ ही, उनके समय में होने वाले मगध के गिगुनाग वंशी सम्राट् विम्बसार या श्रेणिक की जीवन गाथा भी दी हुई है। यह राजा बड़ा प्रतापी था और राजनीति में कुशल था। इसके सेनापति श्रेष्ठि पुत्र जंबूकुमार ने केरल के राजा मृगांक पर विजय कर उसकी पुत्री विलासवती से श्रेणिक का विवाह सम्पन्न कराया था। इसकी पट्टमहिषी चेलना वैशाली गणतंत्र के अध्यक्ष राजा चेटक की सुपुत्री थी। जो जिनघर्म पालिका और पतिव्रता थी। उक्त राजा श्रेणिक पहले बुद्ध धर्म का अनुयायी था किन्तु वह चेलना के सहयोग से दिग्म्वर जैनधर्म का भक्त और महावीर का प्रमुख श्रोता हो गया था। ग्रन्थ की भाषा

१. पहले मेरे लेख में इसे पाश्चिमाय का मन्दिर लिखा गया था, पर वह पाश्चिमाय का मन्दिर नहीं था किन्तु आदिनाथ का मन्दिर था, जिसे श्रुपदेव का मन्दिर भी कहते थे। उस समय वहाँ जैनियों के धीर मन्दिर भी बने हुए थे।



शिवनंदि भट्टारक की आम्नायके थे। जिनधर्मरत, श्रावकधर्म प्रतिपालक, दयावंत और चतुर्विधि संघके संपोषक थे। मुनि पद्मनंदि ने शिवनंदी को दीक्षा दी थी। दीक्षा से पूर्व इनका नाम सुरजन साहु था, जो संसार से विरक्त और निरंतर बारह भावनाओं का चिन्तन करते थे। उन्होंने दीक्षित होने के बाद कठोर तपश्चरण किया, मासोपवास किये, और निरन्तर धर्मध्यान में लीन रहते थे। प्रशस्ति में साहु सुरजन के परिवार का भी परिचय दिया हुआ है। कवि तेजपाल ने इस ग्रंथ को वि० सं० १५१५ में कार्तिक कृष्णापंचमी के दिन समाप्त किया था।

### कवि-परिचय

कवि मूलसंध के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति और विशालकीर्ति की आम्नाय का था। वासवपुर नामक गांव में वरसावडह वंश में जाल्हड नाम के एक साहु थे। उनके पुत्र का नाम सूजड साहु था, वे दयावंत और जिनधर्म में अनुरक्त रहते थे। उनके चार पुत्र थे, रणमल, बल्लाल, ईसरू और पौल्हणु ये चारों ही भाई खंडेलवाल कुल के भूषण थे। प्रस्तुत रणमल साहु के पुत्र ताल्हड साहु हुए। उनका पुत्र कवि तेजपाल था, जिसने उक्त तीनों खण्ड काव्य-ग्रन्थों की रचनाएं की हैं। ये तीन ही ग्रंथ अप्रकाशित हैं, उन्हें प्रकाश में लाना चाहिए।

३०वीं प्रशस्ति 'सुकमाल चरिउ' की है। जिसके कर्ता मुनि पूर्णभद्र हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में छह परिच्छेद या सन्धियाँ हैं जिनमें अवन्ती नगरी के सुकमाल श्रेष्ठी का जीवन-परिचय अंकित है। जिससे मालूम होता है कि उनका शरीर कितना सुकोमल था; परन्तु वे परिषहों और निस्पृह थे। उनकी उपसर्ग जन्य पीड़ा का ध्यान आते ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु परीषह जयी उस साधु की सहिष्णुता पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता, जब गीदड़ी और उसके बच्चों द्वारा शरीर के खाये जाने पर भी उन्होंने पीड़ा का अनुभव नहीं किया, प्रत्युत सम परिणामों द्वारा नश्वर काया का परित्याग किया। ऐसे परीषह जयी योगी के चरणों में मस्तक अनायास भुक ही जाता है। कवि ने इस ग्रंथ की रचना कब की यह ग्रंथ-प्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नहीं होता।

### कवि-परिचय

कवि ने अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार बतलाई है। वे गुजरात देश के नागर मण्डल नामक नगर के निवासी थे। वहाँ वीरसूरि नाम के एक महामुनि थे। उनके शिष्य मुनिभद्र, मुनिभद्र के शिष्य कुमुमभद्र कुमुमभद्र के शिष्य गुणभद्र, और गुणभद्र के शिष्य पूर्णभद्र। परन्तु प्रशस्ति में कर्ता ने अपने संध गण गच्छादिक का कहीं कोई उल्लेख ही नहीं किया, जिससे उनकी गुरु परम्परा और समय पर प्रकाश डाला जाता। आमेर शास्त्र भंडार की प्रति में लिपि प्रशस्ति नहीं है। किन्तु दिल्ली के पंचायती मंदिर की यह प्रति सं० १६३२ की लिखी हुई है। जिसकी पत्र संख्या ४३ है। इससे ग्रंथ रचना बहुत पहले हुई है। कितने पूर्व हुई यह अभी विचारणीय है।

नेमिणाह चरिउ के कर्ता कवि दामोदर ने अपने गुरु का नाम पूर्णभद्र लिखा है, वह ग्रंथ सं० १२८७ में रचा गया है। यदि ये पूर्णभद्र गुणभद्र के ही शिष्य हों; तो ऐसी स्थिति में प्रस्तुत ग्रंथ का रचना काल विक्रम की १३वीं शताब्दी का मध्यभाग हो सकता है। और यदि वे पूर्णभद्र, गुणभद्र के शिष्य नहीं हैं तब, उनका समय अन्वेषणीय है।

३१वीं प्रशस्ति 'नेमिणाह चरिउ' की है, जिसका परिचय ग्यारहवीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

३२ वीं प्रशस्ति 'रोमिराह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि लक्ष्मण है। ग्रन्थ में ४ संधियां या परिच्छेद और ८३ कडवक हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या १३५० के लगभग है। ग्रन्थ में चरित और धार्मिक उपदेश की प्रधानता होते हुए वह अनेक सुन्दर स्थलों से अलंकृत हैं। ग्रन्थ की प्रथम सन्धि में जिन और सरस्वती के स्तवन के साथ मानव जन्म की दुर्लभता का निर्देश करते हुए सज्जन-दुर्जन का स्मरण किया है और फिर कवि ने अपनी अल्पज्ञता को प्रदर्शित किया है। भगवद् देश और राजगृह नगर के कथन के पश्चात् राजा श्रेणिक अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए गणधर से नेमिनाथ का चरित वर्णन करने के लिए कहता है। वराडक देश में स्थित वारावती या द्वारावती नगरी में जनार्दन नाम का राजा राज्य करता था, वहीं शौरीपुर नरेश समुद्रविजय अपनी शिवदेवी के साथ रहते थे। जरासन्ध के भय से यादव गण शौरीपुर छोड़कर द्वारिका में रहने लगे। वहीं उनके तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ था। यह कृष्ण के चचेरे भाई थे। बालक का जन्मादि संस्कार इन्द्रादि देवों ने किया था। दूसरी संधि में नेमिनाथ की युवावस्था, वसंत वर्णन और जलक्रीड़ा आदि के प्रसंगों का कथन दिया हुआ है। कृष्ण की नेमिनाथ के पराक्रम से ईर्ष्या होने लगती है और वह उन्हें विरक्त करना चाहते हैं। भूनागड़ के राजा की पुत्री राजमती से नेमिनाथ का विवाह निश्चित होता है। वारात सज-धज कर भूनागड़ के सन्निकट पहुंचती है, नेमिनाथ बहुत से राजपुत्रों के साथ रथ में बैठे हुए आस-पास की प्राकृतिक सुपमा का निरीक्षण करते हुए जा रहे थे। उस समय उनकी दृष्टि एक ओर गई तो उन्होंने देखा बहुत से पशु एक बाड़े में बन्द हैं वे वहाँ से निकलना चाहते हैं किन्तु वहाँ से निकलने का कोई मार्ग नहीं है। नेमिनाथ ने सारथी से रथ रोकने को कहा और पूछा कि ये पशु यहाँ क्यों रोके गए हैं। नेमिनाथ को सारथि से यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि वारात में आने वाले राजाओं के आतिथ्य के लिए इन पशुओं का बध किया जायगा, इससे उनके दयालु हृदय को बड़ी ठेस लगी, वे बोले—यदि मेरे विवाह के निमित्त इतने पशुओं का जीवन संकट में है, तो धिक्कार है मेरे उस विवाह को, अब मैं विवाह नहीं करूंगा। पशुओं को छुड़वाकर तुरन्त ही रथ से उतर कर मुकट और कंकण को फेंक वन की ओर चल दिए। इस समाचार से वारात में कोहराम मच गया। उधर भूनागड़ के अन्तःपुर में जब राजकुमारी को यह ज्ञात हुआ, तो वह मूर्छा खाकर गिर पड़ी। बहुत से लोगों ने नेमिनाथ को लौटाने का प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ। वे पास में स्थित ऊर्जयन्त गिरि पर चढ़ गए और सहस्राश्रवण में वस्त्रालंकार आदि परिधान का परित्याग कर दिगम्बर मुद्राधर आत्मध्यान में लीन हो गए। तीसरी संधि में वियोग का वर्णन है। राजमती ने भी तपस्चरण द्वारा आत्म-साधना की। अन्तिम संधि में नेमिनाथ का पूर्ण ज्ञानी हो धर्मोपदेश और निर्वाण प्राप्ति का कथन दिया हुआ है। इस तरह ग्रंथ का चरित विभाग बड़ा ही सुन्दर तथा संक्षिप्त है और कवि ने उक्त घटना को सजीव रूप में चित्रित करने का उपक्रम किया है।

कवि ने संसार की विवशता का सुन्दर अंकन करते हुए कहा है—जिस मनुष्य के घर में अन्न भरा हुआ है उसे भोजन के प्रति अग्रिचि है। जिसमें भोजन करने की शक्ति है, उसके पास शस्य (धान्य) नहीं। जिसमें दान का उत्साह है उसके पास धन नहीं, जिसके पास धन है, उसे अति लोभ है। जिसमें काम का प्रभुत्व है उसके भायाँ नहीं, जिसके पास स्त्री है उसका काम शान्त है। जैसा कि ग्रन्थ की निम्न पंक्तियों से प्रकट है—

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोजसत्ति तसु ससु एण होइ।

जसु दाएण छाहु तसु दविरुणु एत्थि, जसु दविरुणु तामु उइ लोहु अत्थि।

जसु भयणु राउ तसि एत्थि भाम, जसु भाम तामु उच्चदवण काम। —रोमिराहा चरिउ ३-२

ग्रंथकर्ता ने स्थान-स्थान पर अनेक सुन्दर सुभाषितों और सूक्तियों को उद्धृत किया है वे निम्न प्रकार हैं—

- किं जीयइं धम्म विवज्जिएण—‘धर्म रहित जीने से क्या प्रयोजन है ।  
 किं सुडइं संगरि कायरेण—युद्ध में कायर सुभटों से क्या ?  
 किं वयण असच्चा भासणेण, भूठ वचन बोलने से क्या प्रयोजन है ?  
 किं पुत्तइं गोत्त विणासणेण, कुल का नाश करने वाले पुत्र से क्या ?  
 किं फुल्लइं गंध विवज्जिएण, गन्ध रहित फूल से क्या ?

ग्रन्थ में कड़वकों के प्रारम्भ में हेला, दुवई, वस्तु बंध आदि छंदों का प्रयोग किया है । किन्तु ग्रंथ में छन्दों की बहुलता नहीं है ।

कवि ने इस ग्रंथ को १० महीने में समाप्त किया है । ग्रंथ की सबसे पुरानी प्रति सं० १५१० की लिखी हुई प्राप्त हुई है । इससे इसका रचना काल सं० १५१० के बाद का नहीं हो सकता, किन्तु पूर्ववर्ती है यह अन्वेषणीय है । सम्भवतः यह कृति १२ वीं या १३ वीं शताब्दी की होनी चाहिए ।

### कवि परिचय

लक्ष्मणदेव का वंश पुरवाड़ था और पिता का नाम था रयणदेव या रत्नदेव । इनकी जन्मभूमि मालव देशान्तर्गत गोनन्द नामक नगर में थी । यह नगर उस समय जैनधर्म और विद्या का केन्द्र था वहाँ अनेक उत्तुंग जिन मन्दिर तथा मेरु जिनालय भी था । कवि अत्यन्त धार्मिक, धन सम्पन्न और रूपवान था वहाँ पहले कवि ने किसी व्याकरण ग्रंथ की रचना की थी, जो विद्वानों के कण्ठ का आभरण रूप था । परन्तु कौन सा व्याकरण ग्रन्थ था, और उसका क्या नाम था, यह प्रयत्न करने पर भी ज्ञात नहीं हो सका । हो सकता है कि वह अपभ्रंश का व्याकरण हो या संस्कृतका हो । गोनन्द नगरके अस्तित्वका भी मुझे पता नहीं चला । पर इतना जरूर मालूम होता है कि यह नगरी मालव देश में थी, और उज्जैन तथा भेलसा के मध्यवर्ती किसी स्थान पर होनी चाहिए । संभव है वर्तमान में उसके नाम पर कोई अन्य नगर बस गया हो । कवि वहाँ रहेकर जिन-वाणी के रस का पान किया करते थे । इनके भाई का नाम ‘अम्बदेव’ था, जो कवि थे, उन्होंने भी किसी ग्रन्थ की रचना की थी, पर वह भी अनुपलब्ध है । मालव प्रांत के किसी शास्त्र-भंडार में इसकी तलाश होनी चाहिए ।

३३ वीं ३४ वीं प्रशस्तियां क्रमशः अमरसेनचरित और नागकुमार चरित की हैं, जिनके कर्ता कवि मारिण्वरराज हैं ।

प्रथम ग्रन्थ अमरसेनचरित में ७ परिच्छेद या सन्धियां हैं जिनमें अमरसेन की जीवन गाथा दी हुई है राजा अमरसेन ने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया था । वह धर्मनिष्ठ और संयमी था, वह देह भोगों से उदास हो आत्म-साधना के लिए उद्यत हुआ, उसने वस्त्राभूषण का परित्याग कर दिगम्बर दीक्षा ले ली, और शरीर से भी निष्पृह हो अत्यन्त भीषण तपश्चरण किया । आत्म-शोधन की दृष्टि से अनेक यातनाओं को साम्यभाव से सहा । उनकी कठोर साधना का स्मरण आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । यह १६वीं शताब्दी का अच्छा खण्ड-काव्य है । अमेर शास्त्र भंडार की इस प्रति का प्रथम पत्र त्रुटित है । इसकी अपभ्रंश भाषा होते हुए भी हिन्दी भाषा के विकास के अत्यधिक नजदीक है ।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना 'रोहतक नगर' में की है, जहाँ के पार्वनाथ मंदिर में दो विद्वान निवास करते थे। उनका नाम गरवउ और जसमलु था, जो गुराँ के निधान थे। उनका लघुबान्धव शांतिदास था, जो ग्रन्थ के अर्थ का जानकार था। इस चरित ग्रन्थ का निर्माण कराने वाले चौधरी देवराज थे। जिनका कुल अग्रवाल और गोत्र था सिघल या सिगल। और वे चौधरी पद से अलंकृत थे। उनके पिता का नाम साह महारा था। यह ग्रन्थ देवराज चौधरी की प्रेरणा से बनाया गया है, अतएव उन्हीं के नामांकित किया गया है। प्रशस्ति में देवराज के कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना विक्रम संवत् १५७६ की चैत्र शुक्ला पंचमी गनिवार के दिन कृतिका नक्षत्र के शुभयोग में की है। और आमेर भंडार की यह प्रति सं० १५७७ कार्तिक वदी चतुर्थी की लिपि की हुई है, जो मुनपत में लिखी गई थी।

३४ वीं ग्रन्थ प्रशस्ति—नागकुमारचरित की है, जिसमें दो सन्धियां हैं, जिनकी श्लोक संख्या ३३०० के लगभग हैं जिनमें नागकुमार का पावन चरित अंकित किया गया है। चरित वही है जिसे पुष्प-दन्तादि कवियों ने लिखा है, उसमें कोई खास वैशिष्ट्य नहीं पाया जाता। ग्रन्थ की भाषा सरल और हिन्दी के विकास को लिये हुए है। इस खण्ड काव्य के भी प्रारंभ के दो पत्र नहीं हैं, जिससे प्रति खंडित हो गई है और उससे आद्य प्रशस्ति का कुछ ऐतिहासिक भाग भी च्युटित हो गया है। कवि ने यह ग्रंथ साहू जयसी के पुत्र साहू टोडरमल की प्रेरणा से बनाया है। साहू टोडरमल का वंश इश्वाकु था और कुल जायस-वाल<sup>१</sup>। वह दान-पूजा आदि धार्मिक कार्यों में संलग्न रहता था<sup>२</sup> और प्रकृतितः दयालु था। अतएव वह

१. रोहतक पंजाब का एक नगर है। वर्तमान में भी उसका वही नाम है। वहाँ आज भी जैनियों की अच्छी संख्या है।

२. जायस या यादव वंश का इतिवृत्त अति प्राचीन है। परन्तु उसके सम्बन्ध में कोई अन्वेषण नहीं हुआ। इस जाति का विकास जैसा से कहा जाता है। भले ही लोग जैसा से जैसवालों की कल्पना करें, किन्तु ग्रंथ प्रशस्तियों में इन्हें यादव वंशी लिखा मिलता है। जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये लोग यदुवंशियों की सन्तान थे। उसी यदु या यादव शब्द का अपभ्रंस रूप जादव या जायस बन गया जान पड़ता है। यदु वंश एक क्षत्रिय वंश है, यदु वंशियों का विशाल राज्य रहा है। शीरीपुर से लेकर मथुरा और उसके आस-पास के प्रदेश उनके द्वारा शासित रहे हैं। यादव वंशी जरासंध के भय से शीरीपुर को छोड़ कर वारावती (द्वारावती या द्वारिका) में बस गए थे। जैनियों के २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ और उनके चचेरे भाई श्रीकृष्ण का जन्म उसी यादव कुल में हुआ था। जायस वंश में अनेक प्रतिष्ठित और राज्य मान्य व्यक्ति हो गये हैं, जो तोमर और चौहान वंशी राजाओं के राजमंत्री रहे हैं। ग्वालियर के तोमर वंशी राजा बोरमिह के प्रधान मंत्री जायस वंशी सेठ कुदाराज थे। जो राजनीति के साथ धर्मनिष्ठ और राज्य के संवर्द्धन संरक्षण की कला में कुशल थे। इन्होंने पद्मनाभ नामक कायस्थ विद्वान् से, जो जैनधर्म का श्रद्धालु था, 'यशोधरचरित्र' ग्रन्थ का निर्माण कराया था। चन्द्रबाड और रपरी के चौहानवंशी राजाओं के राज्य मंत्री भी जायसवाल थावक रहे हैं। वर्तमान में यद्यपि उनका प्रभाव क्षीण हो गया है। फिर भी मंदिर, मूर्तियों और जैनग्रन्थों के निर्माण में उनका बहुत कुछ योग रहा है। दूबकुण्ड (ग्वालियर) के भग्न मंदिर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि विंशम संवत् ११४५ में कच्छप वंशी महाराज विक्रमसिंह के राज्यकाल में मुनि विजयकीर्ति के उपदेश से जैसवाल वंशी पाहड़, कूकेक, सूपंट, देवधर और मही-चन्द्र आदि चतुर थावकों ने ७५० फीट लम्बे और ४०० वर्गफीट चौड़े मठान्तर क्षेत्र में इस विशाल

उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रंथ की कुछ संधियों में कतिपय संस्कृत पद्य भी पाये जाते हैं; जिनमें साहू टोडर का खुला यशोगान किया गया है। उसे कर्ण के समान दानी, विद्वज्जनों का संपोषक, रूपलावण्य से युक्त और विवेकी बतलाया है।

कवि ने इस ग्रंथ की चौथी संधि के आदि में साहू टोडरमल का जयघोष करते हुए लिखा है कि वह राज्य सभा में मान्य था, अखण्य प्रतापी स्वजनों का विकासी और भ्रात-पुत्रों से अलंकृत था, जैसा कि निम्न पद्य से प्रकट है—

‘नृपति सदसिमान्यो योह्यखण्डप्रतापः, स्वजनजनविकासी सप्ततत्त्वावभासी।

विमलगुण-निकेतो भ्रातृ पुत्रो समेतः, स जयति शिवकामः साधुटोडरुत्ति नामा ॥”

कवि ने इस ग्रंथ को पूरा कर जब साहू टोडरमल के हाथ में दिया, तब उसने उसे अपने शीश पर रखकर कवि माणिक्यराज का खूब आदर सत्कार किया, उसने कवि को सुन्दर वस्त्रों के अतिरिक्त कंकण, कुंडल और मुद्रिका आदि आभूषणों से भी अलंकृत किया था। उस समय गुणी जनों का आदर होता था। किन्तु आज गुणीजनों का निरादर करने वाले तो बहुत हैं किन्तु गुण-ग्राहक बहुत ही कम हैं। क्योंकि स्वार्थतत्परता और अहंकार ने उसका स्थान ले लिया है। अपने स्वार्थ अथवा कार्य की पूर्ति न होने पर उनके प्रति अनादर की भावना जागृत हो जाती है। ‘गुण न हिरानो किन्तु गुण-ग्राहक हिरानो की नीति के अनुसार खेद है कि आज टोडरमल जैसे गुण ग्राहक धर्मात्मा श्रावकों की संख्या विरल है—वे थोड़े हैं। कवि ने इस ग्रंथ की रचना विक्रम संवत् १५७६ फाल्गुन शुक्ला ६वीं के दिन पूर्ण की है।

### कवि-परिचय

कवि माणिक्य राज जैसवाल कुलरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए ‘तरणि’ (सूर्य) थे। इनके पिता का नाम बुधसूरा था और माता का नाम ‘दीवा’ था। कवि ने अमरसेन चरित में अपनी गुरु परम्परा निम्न प्रकार दी है—क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दी। ये सब भट्टारक मूल-संध के अनुयायी थे। कवि के गुरु पद्मनन्दी थे। वे बड़े तपस्वी शील की खानि, निर्भ्रन्थ, दयालु और अमृत-वाणी थे। इस ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में पद्मनन्दि के एक शिष्य का और उल्लेख किया गया है। जिनका नाम देवनन्दी था, और जो श्रावक की एकादश प्रतिमाओं के संपालक, राग-द्वेष के विनाशक, शुभध्यान में अनुरक्त और उपशम भावी था। कवि ने अपने गुरु का अभिवंदन किया है।

३५वीं प्रशस्ति से लेकर ४६वीं प्रशस्ति तक १५ प्रशस्तियाँ, और ६६वीं और १०६वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः निम्न ग्रन्थों की हैं, जिनके कर्ता कवि रङ्घू हैं। सम्मइजिनचरिउ, सुकोशलचरिउ पासणाहचरिउ,

मन्दिर का निर्माण कराया था। और उसके पूजन, संरक्षण एवं जीर्णोद्धार आदि के लिए उक्त कच्छप वंशी विक्रमसिंह ने भूमिदान दिया था। (See Epigraphica India Vol 11 p. 237-240) किन्तु बाद में मराठा सरदादर अमरसिंह ने धर्मन्धि होकर इस जैन संस्कृति के स्तम्भरूप मन्दिर को भग्न कर दिया था। वि० सं० ११६० में जैसवाल वंशी साहू नेमचन्द्र ने कवि श्रीधर अग्रवाल से ‘वर्धमान चरित’ नाम का ग्रन्थ बनवाया था। कवि लक्ष्मण जैसवाल ने जिनदत्त चरित्र की रचना सं० १२७५ में और अणुवइ रयण पईव की रचना सं० १३१३ में की थी। आज भी इस जाति में सम्पन्न और विद्वान् व्यक्ति पाये जाते हैं। इहीं सब कार्यों से इस जाति की महत्ता का भाव होता है।

२. “जइसवाल कुल सम्पन्नः दान-पूय-परायणः।

जगसी नन्दनः श्रीमान् टोडरमल्ल चिरं जियः ॥”

पञ्चमचरित्र, मेहेसरचरित्र, सम्मत्तगुणनिहाण, रिट्टुणेमिचरित्र, धणकुमारचरित्र, जसहरचरित्र, अण्णथमी कहा, अण्णसम्बोहकव्व, सिद्धंतत्थसार, वित्तसार, पुण्णासवकहा, जीवंधरचरित्र, सिरिपालचरित्र और सम्यत्तकज्जमदी ।

इनमें पहला ग्रन्थ 'सम्मइ जिनचरित्र' है। जिसमें जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जीवन-परिचय दिया हुआ है। यद्यपि उसमें कवि असग के महावीर चरित से कोई वैशिष्ट्य नहीं दिखाई देता; किन्तु फिर भी अपभ्रंश भाषा का यह चरित ग्रन्थ पढडिया आदि छन्दों में रचा गया है। ग्रन्थ १० संधियों और २४६ कडवकों में पूरा हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ हिसार निवासी अग्रवाल कुलावतंश' गोयल गोत्रीय साहु सहजपाल के पुत्र और संघाधिप साहु सहदेव के लघु भ्राता साहु तोसउ की प्रेरणा से बनाया

१. 'अग्रवाल' यह शब्द एक क्षत्रिय जाति का सूचक है। जिसका विकास अग्रोहा या अग्रोदक जनपद से हुआ है। यह स्थान हिसार जिले में है। अग्रोहा एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था। यहाँ एक टीला ६० फुट ऊँचा था, जिसकी लुदाई सन् १६३६ या ४० में हुई थी। उससे प्राचीन नगर के अवशेष, और प्राचीन सिक्कों आदि का ढेर प्राप्त हुआ था। २६ फुट से नीचे प्राचीन आहत मुद्रा का नमूना, चार यूनानी सिक्के और ५१ चौखूटे ताँबे के सिक्के भी मिले हैं। ताँबे के सिक्कों में सामने की ओर 'वृषभ' और पीछे की ओर 'सिंह' या चंद्र वृक्ष की मूर्ति है। सिक्कों के पीछे ब्राह्मी अक्षरों में—'अग्रोद के अग्रव जनपदस' सिलालेख भी अंकित है, जिसका अर्थ 'अग्रोदक से अग्रव जनपद का सिक्का' होता है। अग्रोहे का नाम अग्रोदक भी रहा है। उक्त सिक्कों पर अंकित वृषभ, सिंह या चंद्र वृक्ष की मूर्ति जैन मान्यता की ओर संकेत करती हैं। (देवो, एपिग्राफिका इंडिका जि० २ पृ० २४४। इंडियन एण्टीक्वेरी भाग १५ के पृ० ३४३ पर अग्रोदक बंस्यों का वर्णन दिया है।

कहा जाता है कि अग्रोहा में अग्रसेन नाम के एक क्षत्रिय राजा थे। उन्हीं की सन्तान परम्परा अग्रवाल कहलाते हैं। अग्रवाल शब्द के अनेक अर्थ हैं। किन्तु यहाँ उन अर्थों की विवक्षा नहीं है, यहाँ अग्रदेश के रहने वाले अर्थ ही विवक्षित है। अग्रवालों के १८ गोत्र बतलाये जाते हैं। जिनमें गर्ग, गोयल, मित्तल जिन्दल, सिंहल आदि नाम हैं। अग्रवालों में दों धर्मों के मनाने वाले पाये जाते हैं। जैन अग्रवाल और वैष्णव अग्रवाल। श्री लोहाचार्य के उपदेश से उस समय जो जैनधर्म में दीक्षित हो गए थे, वे जैन अग्रवाल कहलाये और शेष वैष्णव; परन्तु दोनों में रोटी-बेटी व्यवहार होता है, रीति-रिवाजों में कुछ समानता होते हुये भी उनमें अपने-अपने धर्मपरक प्रवृत्ति पाई जाती है, हाँ सभी अहिंसा धर्म के मानने वाले हैं। उपजातियों का इतिवृत्त १०वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं मिलता, हो सकता है कि कुछ उपजातियाँ पूर्ववर्ती रही हों। अग्रवालों की जैन परम्परा के उल्लेख १२वीं शताब्दी तक के मेरे देखने में आए हैं। यह जाति खूब सम्पन्न रही है। ये लोग धर्मज्ञ, आचारनिष्ठ, दयालु और जन-धन से सम्पन्न तथा राज्यमान्य रहे हैं। तोमर बंधी राजा अन्नंगपाल तृतीय के राजश्रेष्ठी और आमात्य अग्रवाल कुलावतंश साहु नटल ने दिल्ली में आदिनाथ का एक विशाल सुन्दरतम मंदिर बनवाया था, जिसका उल्लेख कवि श्यीयर अग्रवाल द्वारा रचे गये 'पाश्चपुराण मे, जो संवत् ११८६ में दिल्ली में उक्त नटल साहु के द्वारा बनवाया गया था और जिसकी सं० ११७७ की लिखित प्रति आमेर मंडार मे सुरक्षित है। और अनेक मन्दिरों का निर्माण, तथा ग्रन्थों का निर्माण, और उनकी प्रतिलिपि करवाकर साधुओं, भट्टारकों आदि को प्रदान करने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इससे इस जाति की सम्पन्नता, धर्मनिष्ठा और परोपकारवृत्ति का परिचय मिलता है। हाँ, इनमें शासक वृत्ति अधिक पाई जाती है।

गया था। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्ति में साहू तोसउके वंश का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। जिसमें उनके परिवार द्वारा सम्पन्न होने वाले धार्मिक-कार्यों का परिचय दिया गया है। प्रशस्ति में तात्कालिक-ऐतिहासिक उल्लेख भी अंकित किए गए हैं।

कवि ने साहू तोसउ का उल्लेख करते हुए, उन्हें जिनेन्द्र-चरणों का भक्त पंचेन्द्रियों के भोगों से विरक्त, दान देने में तत्पर, पाप से शंकित—भयभीत और सदा तत्त्वचिंतन में निरत बतलाया है। और लिखा है कि उसकी लक्ष्मी दुखी जनों के भरण-पोषण में काम आती थी। वाणी श्रुत का अवधारण करती थी। मस्तक जिनेन्द्र को नमस्कार करने में प्रवृत्त होता था। वह शुभमती था, तथा सम्भाषण में उसके कोई दोष न होता था। चित्त तत्त्वों के विचार में रहता था और दोनों हाथ जिन-पूजा-विधि से संतुष्ट रहते थे। ऐसा वह तोसउ साहू लोक में आनंद को प्राप्त हो, जैसा कि दूसरी और तीसरी संधि के प्रारम्भ के निम्न पद्यों से स्पष्ट है—

जो रिणच्चं जिण-पाय-कंज भसलो जो रिणच्च दाणो रदो ।  
जो पंचेदिय-भोय-भाव-विरदो जो चित्तए संहिदो ।  
जो संसार-महोहि-पातन-भिदो जो पावदो संकिदो ।  
एसो रांदउ तोसउ गुणजुदो सतत्थ वेई चिरं ॥२॥  
लच्छी जस्स दुही जणाण भरणे वाणी सुयं धारणे ।  
सीसं सन्नई कारणे सुभमई दोसं ण संभासणे ।  
चित्तं तत्त्व-वियारणे करजुयं पूया-विहि सं ददं ।  
सोऽयं तोसउ साहू एत्थ धवलो सं रांदओ भूयले ॥३॥

प्रशस्ति में हिसार निवासी अग्रवाल कुलावतंश खेल्हा नामक ब्रह्मचारी द्वारा निर्मित चन्द्रप्रभ भगवान की विशाल मूर्ति का उल्लेख किया गया है, जिसे उन्होंने उक्त दुर्ग में निर्माण कराया था। ब्रह्मचारी खेल्हा श्री सम्पन्न थे, वस्तुस्वरूप को समझते थे और देह-भोगों से विरक्त थे।

सम्मइ जिन चरिउ के निर्माण में ब्रह्मचारी खेल्हा का खास सहयोग रहा है, यह साहू तोसउ के पुत्र थे। इन्होंने कवि से उक्त ग्रन्थ रचने की स्वयं प्रेरणा नहीं की, किन्तु भट्टारक यशःकीर्ति से अनुरोध करवाया था, सम्भवतः उन्हें यह सन्देह था कि कवि मेरे निवेदन पर ग्रन्थ न बनावें, इसी से उन्होंने कवि को यशःकीर्ति से प्रेरित करवाया था। कवि भट्टारक यशःकीर्ति के आदेश को कभी नहीं टाल सकते थे। अस्तु ब्रह्मचारी खेल्हा की भावना सफल हुई और कवि ने ग्रंथ निर्माण करना स्वीकृत कर लिया। इससे ब्रह्मचारी खेल्हा को हर्ष होना स्वाभाविक है। खेल्हा ने उस समय अपनी त्यागवृत्ति का क्षेत्र बढ़ा लिया था और ग्यारह प्रतिमा धारी उत्कृष्ट श्रावक के रूप में आत्म-साधना करने लगे थे।

हिसार के अग्रवाल वंशी साहू नरपति के पुत्र साहू वील्हा, जो जैनधर्मी और पाप रहित तथा दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुगलक द्वारा सम्मानित थे।

संधाधिप सहजपाल ने, जो सहदेव का पुत्र था, जिनेन्द्र मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। साहू सहजपाल के पुत्र ने गिरनार की यात्रा का संघ भी चलाया था, और उसका सब व्यय भार स्वयं वहन किया था। ये सब ऐतिहासिक उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। और अग्रवालों के लिए गौरवपूर्ण हैं।

कवि ने ग्रन्थ में काष्ठासंघ की भट्टारक परम्परा का उल्लेख किया है देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन,

भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति (सं० १४६८ से १४८६), यशःकीर्ति १४८६—१५१०, मलयकीर्ति (१५१० से १५२५), भ० गुराभद्र (१५२५ से १५४०) ।

कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न साहित्यकारों का भी उल्लेख किया है, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त और वीर कवि । इनमें समय की दृष्टि वीर कवि सब से बाद के (सं० १०७६ के) हैं ।

साथ ही, इस ग्रन्थ में इससे पूर्व रची जाने वाली अपनी निम्न रचनाओं का उल्लेख किया है । पासणाहचरिउ, मेहेसरचरिउ, सिद्धचवकमाहप्प, बलहहचरिउ, मुदंसणचरिउ, धणकुमारचरिउ । परन्तु प्रशस्ति में ग्रंथ का रचना काल नहीं दिया है ।

३६वीं प्रशस्ति 'सुकौशल चरिउ' की है । जिसमें ४ संघियां और ७४ कडवक हैं । पहली दो संघियों में कथन क्रमादि की व्यवस्था व्यक्त करते हुए तीसरी संघि में चरित्र का चित्रण किया है, और चौथी संघि में चरित्र का वर्णन करते हुए काव्यमय वर्णन उच्चकोटि का किया है । किन्तु शैली विषय वर्णनात्मक ही है । कवि ने इस खण्ड-काव्य में सुकौशल की जीवन-गाथा को अद्भुत किया है । कथानक इस प्रकार है—

इक्ष्वाकुवंश में कीर्तिधर नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे । उन्हें उल्कापात के देखने से वैराग्य हो गया था, अतएव वे साधु जीवन व्यतीत करना चाहते थे; परन्तु मन्त्रियों के अनुरोध से पुत्रोत्पत्ति के समय तक गृही जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया । कई वर्षों तक उनके कोई सन्तान न हुई । उनकी रानी सहदेवी एक दिन जिन मन्दिर गईं, वहाँ जिन दर्शनादि क्रिया सम्पन्न कर उसने एक मुनि से पूछा कि मेरे पुत्र कब होगा ? तब साधु ने कहा कि तुम्हारे एक पुत्र अवश्य होगा, परन्तु उसे देखकर राजा दीक्षा ले लेगा और पुत्र भी दिग्भ्रमर साधु को देखकर साधु बन जायगा । कुछ समय पश्चात् रानी के पुत्र हुआ । रानी ने पुत्रोत्पत्ति को गुप्त रखने का बहुत प्रयत्न किया; किन्तु राजा को उसका पता चल गया और राजाने तत्काल ही राज्य का भार पुत्र को सौंप कर जिन दीक्षा ले ली । राजा ने पुत्र के शुभ लक्षणों को देखकर उसका नाम सुकौशल रखवा । रानी को पति-वियोग का दुःख असह्य था, साथही पुत्रके भी साधु हो जाने का भय उसे आतंकित किए हुए था । युवावस्था में कुमार का विवाह ३२ राज कन्याओं से कर दिया गया और वह भोग-विलासमय जीवन विताने लगा, उसे महल से बाहर जाने का कोई अधिकार न था । माता इस बात का सदा ध्यान रखती थी कि पुत्र कहीं किसी मुनि को न देख ले । अतएव उसने नगर में मुनियों का आना निषिद्ध कर दिया था ।

एक दिन कुमार के पिता मुनि कीर्तिधवल नगर में आये, किन्तु उनके साथ अच्छा व्यवहार न किया गया । जब राजकुमार को यह बात ज्ञात हुई, तो उसने राज्य का परित्याग कर उनके समीप ही साधु दीक्षा लेकर तप का अनुष्ठान करने लगा । माता सहदेवी पुत्र वियोग से अत्यंत दुखी हुई और आतं परिणामों से भरकर व्याध्नी हुई ।

एक दिन उसने अत्यंत भूखी होने के कारण पर्वत पर ध्यानस्थ मुनि सुकौशल को ही खा लिया । सुकौशल ने समताभाव से कर्म-कालिमा नष्ट कर स्वात्म लाभ किया । इधर मुनि कीर्तिधवल ने उस व्याध्नी को उपदेश दिया, जिसे सुनकर उसे जातिस्मरण हो गया, और अन्त में उसने संन्यास पूर्वक शरीर छोड़ा और स्वर्ग प्राप्त किया, कीर्ति धवल भी अक्षयपद को प्राप्त हुए ।

कवि ने इस ग्रन्थ को वि० सं० १४६६ में माघ कृष्णा १०मीं के दिन ग्वालियर में राजा द्वंगरसिंह के राज्य में समाप्त किया है ।



सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू का छठा आश्वास रहा जान पड़ता है। ग्रंथ का रचनाकाल वि० संवत् १४६२ है।

४१ वीं प्रशस्ति 'रिट्टरोमिचरिउ' या 'हरिवंश पुराण' की है। प्रस्तुत ग्रंथ में १४ सन्धियाँ और ३०२ कडवक हैं तथा १६०० के लगभग पद्य होंगे, जिनमें ऋषभ चरित, हरिवंशोत्पत्ति, वसुदेव और उनका पूर्वभव कथानक, बन्धु-वान्धवों से मिलाप, कंस बलभद्र और नारायण के भवों का वर्णन, नारायण जन्म, कंसवध, पाण्डवों का जुए में हारना द्रोपदी का चीर हरन, पाण्डवों का अज्ञातवास, प्रद्युम्न की विद्या प्राप्ति और श्रीकृष्ण से मिलाप, जरासंध वध, कृष्ण का राज्यादि सुखभोग, नेमिनाथ का जन्म, बाल्यक्रीड़ा यौवन, विवाहमें वैराग्य, दीक्षा तथा तपश्चरणा केवलज्ञान और निर्वाण प्राप्ति आदिका कथन दिया है। ग्रंथ में जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की जीवन-घटनाओं का परिचय दिया हुआ है। नेमिनाथ यदुवंशी क्षत्री थे। और थे कृष्ण के चचेरे भाई। उन्होंने पशुओं के बंधन खुलवाए। और संसार की असारता को देख, वैरागी हो तपश्चरणा द्वारा आत्म-शोधन किया, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बने, और जगत को आत्महित करने का सुन्दरतम मार्ग बतलाया। उनका निर्वाण स्थान ऊर्जयन्त गिरि या रैवतगिरि है जो आज भी नेमिनाथ के अतीत जीवन की भाँकी को प्रस्तुत करता है। तीर्थंकर नेमिकुमार की तपश्चर्या और चरणा रज से वह केवल पावन ही नहीं हुआ, किन्तु उसकी महत्ता लोक में आज भी मौजूद है।

इस ग्रंथ की रचना योगिनीपुर (दिल्ली) से उत्तर की ओर बसे हुए किसी निकटवर्ती नगर का नाम था, जो पाठ की अशुद्धि के कारण ज्ञात नहीं हो सका। ग्रंथ की रचना उस नगर के निवासी गोयल गोत्रीय अग्रवाल वंशी महाभव्य साहु लाहा के पुत्र संघाधिप साहु लोणा की प्रेरणा से हुई है। ग्रंथ की आद्यन्त प्रशस्तियों में साहु लोणा के परिवार का संक्षिप्त परिचय कराया गया है।

कवि ने ग्रंथ में अपने से पूर्ववर्ती विद्वानों और उनके कुछ ग्रंथों का उल्लेख किया है, देवनाग्नि (पूज्यपाद) जैनेन्द्र व्याकरण, जिनसेन (महापुराण) रविपेण (जैन रामायण-पद्यचरित) कमलकीर्ति और उनके पट्टधर शुभचन्द्र का नामोल्लेख है। जिनका पट्टाभिषेक कनकगिरि वर्तमान सोनागिरि में हुआ था। साथ ही कवि ने अपने रिट्टरोमिचरिउ से पहले बनाई हुई अपनी निम्न रचनाओं के भी नाम दिए हुए हैं। महापुराण, भरत-सेनापति चरित (मेघेश्वर चरित) जसहरचरिउ (यशोधरचरित) वित्तसार, जीवधर चरिउ और पासचरिउ का नामोल्लेख किया है। ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया, इसलिए यह निश्चित बतलाना तो कठिन है कि यह ग्रंथ कब बना? फिर भी अन्य सूत्रों से यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रंथ विक्रम की १५ वीं शताब्दी के अन्तिम चरणा या १६ वीं के प्रथम चरणा में रचा गया है।

४२ वीं प्रशस्ति 'धरणाकुमार चरिउ' की है जिसमें चार सन्धियाँ और ७४ कडवक हैं। जिनकी श्लोक संख्या ८०० श्लोकों के लगभग है। जिनमें धनकुमार की जीवन-गाथा अंकित की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ की रचना आरौन जिला ग्वालियर निवासी जैसवाल वंशी साहु पुण्यपाल के पुत्र साहु भुल्लण की प्रेरणा एवं अनुरोध से हुई है। अतएव उक्त ग्रंथ उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रंथ की आद्य प्रशस्ति में साहु भुल्लण के परिवार का विस्तृत परिचय कराया गया है।

इस ग्रंथ की रचना कब हुई? यह ग्रंथप्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नहीं होता; क्योंकि उसमें रचना काल दिया हुआ नहीं है। किन्तु प्रशस्ति में इस ग्रंथ के पूर्ववर्ती रचे हुए ग्रंथों के नामों में 'रोमिज्जिण्णिद चरिउ' (हरिवंश पुराण) का भी उल्लेख है, जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उसके बाद बनाया गया है।

४३ वीं प्रशस्ति 'जसहर चरित्त' की है जिसके कर्ता भी उक्त कवि रच्य हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ४ सन्धियाँ और १०४ कड़वक हैं। जिनकी श्लोक संख्या ६०० के लगभग है। ग्रंथ में योथेय देशके राजा यशोधर और चन्द्रमती का जीवन परिचय दिया हुआ है। ग्रंथ का कथानक सुन्दर और हृदय-प्राही है और वह जीव दया की पोषक वार्ताओं से श्रोत-प्रोत है। यद्यपि राजा यशोधर के सम्बंध में संस्कृतभाषा में अनेक चरित ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनमें आचार्य सोमदेव का 'यशस्तिलक चम्पू' सबसे उच्चकोटि का काव्य-ग्रन्थ है। परंतु अपभ्रंश भाषा की यह दूसरी रचना है। प्रथम ग्रन्थ महाकवि पुष्पदन्त का है। यद्यपि भ० अमरकीर्ति ने भी 'जसहर चरित्त' नाम का ग्रंथ लिखा था; परंतु वह अभी तक अनुपलब्ध है।

इस ग्रन्थ की रचना भट्टारक कमलकीर्ति के अनुरोध से तथा योगिनीपुर (दिल्ली) निवासी अप्र-वाल वंशी साहु कमलसिंह के पुत्र साहु हेमराज की प्रेरणा से हुई है। अतएव ग्रंथ उन्हीं के नाम किया गया है। उक्त साहु परिवार ने गिरनार जी की तीर्थयात्रा का संघ चलाया था। ग्रंथ की आद्यन्त प्रशस्ति में साहु कमलसिंह के परिवार का विस्तृत परिचय कराया गया है। कवि ने यह ग्रंथ लाहड़पुर के जोधा साहु के विहार में बैठकर बनाया है, और उसे स्वयं 'दयारसभर गुणपवित्त'—पवित्र दयारूपी रस से भरा हुआ वतलाया है।

४४ वीं प्रशस्ति 'अणायमी कहा' की है। इस कथा में रात्रिभोजन के दोषों और उससे होने वाली व्याधियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि दो घड़ी दिन के रहने पर श्रावक लोग भोजन करें; क्योंकि सूर्य के तेज का मंद उदय रहनेपर हृदय-कमल संकुचित हो जाता है, अतः रात्रि भोजनके त्याग का विधान धार्मिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से किया गया है जैसा कि उसके निम्न दो पद्यों से प्रकट है:—

“जि रोय-दलदिय दीण अगाह, जि कुट्ट-गलिय कर करण सवाह।  
दुहगु जि परियगु वगु अरोह, सु-रयणिहि भोयगु फलु जि मुगह।  
घड़ी दुइ वासर षक्कइ जाम, सुभोयण सावय भुंजहि ताम।  
दिवायर तेज जि मंदउ होइ, सकुच्चइ चित्तहु कमलु जिव सोइ।”

कथा रचने का उद्देश्य भोजन सम्बन्धी असंयम से रक्षा करना है, जिससे आत्मा धार्मिक भयार्थाओं का पालन करते हुए शरीर को स्वस्थ बनाये रखे।

४५ वीं प्रशस्ति 'अप्प-संबोह-कव्व' की है। यह एक छोटो सा काव्य-ग्रंथ है जिसे कवि ने आत्म-सम्बोधनार्थ बनाया है। आत्म-हित को दृष्टि में लक्ष्य रखते हुए हिंसादि पंच पापों और सप्त व्यसनानुदि से आत्म-रक्षा करने का उपाय वतलाया गया है—हिंसादि पापों का त्याग कर आत्म-कर्तव्य की ओर दृष्टि रखने का प्रयत्न किया गया है, जिससे मानव इस लोक तथा परलोक में सुख-शान्ति प्राप्त कर सके। ग्रंथ बहुत सुन्दर है, पर अभी तक अप्रकाशित है।

४६ वीं प्रशस्ति 'सिद्धांतार्थसार' की है, इस ग्रंथ का विषय भी सैद्धांतिक है और अपभ्रंश के गाथा छंद में रचा गया है। इसमें सम्यग्दर्शन, जीव स्वरूप, गुणस्थान, व्रत, समिति, इन्द्रिय-निरोध आदि आवश्यक क्रियाओं का स्वरूप, अष्टाईस मूलगुण, अष्टकर्म, द्वादशांगधृत, लब्धिस्वरूप, द्वादशानुप्रेक्षा दशलक्षणधर्म, और ध्यानों के स्वरूप का कथन दिया गया है। इस ग्रंथ की रचना वरिणकवर श्रेष्ठी खेमसी साहु या साहु खेमचंद्र के निमित्त की गई है। परंतु वेद है कि उपलब्ध ग्रंथ का अंतिम भाग खंडित है। लेखक ने कुछ जगह छोड़कर लिपि पुष्पिका की प्रतिलिपि कर दी है। ग्रंथ के शुरु में कवि ने लिखा है

किं यदि में उक्त सभी विषयों के कथन में स्वलिखित हो जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना चाहिए। यह ग्रंथ भी तोमर वंशी राजा कीर्तिसिंह के राज्य में रचा गया है।

४७ वीं प्रशस्ति 'वृत्तसार' नामक ग्रंथ की है। जिसके कर्ता कवि रङ्गू हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में छह सर्ग या अंक (अध्याय) हैं। ग्रंथ का अन्तिम पत्र त्रुटित है जिसमें ग्रंथकार की प्रशस्ति उल्लिखित होगी। यह ग्रंथ अपभ्रंश के गाथा छंद में रचा गया है, जिनकी संख्या ७५० है। बीच बीच में संस्कृत के गद्य-पद्यमय वाक्य भी ग्रन्थांतरों से प्रमाण स्वरूपमें उद्धृत किये गये हैं। प्रथम अधिकार में सम्यग्दर्शन का सुन्दर विवेचन है, और दूसरे अधिकार में मिथ्यात्वादि छह गुणस्थानों का स्वरूप निर्दिष्ट किया है। तीसरे अधिकार में शेष गुण-स्थानों का और कर्मस्वरूप का वर्णन है। चौथे अधिकार में वारह भावनाओं का कथन दिया हुआ है। पाँचवें अंक में दशलक्षण धर्म का निर्देश है और छठवें अध्याय में ध्यान की विधि और स्वरूपादि का सुन्दर विवेचन दिया हुआ है। इस तरह इस ग्रन्थ में जैनधर्म के तात्त्विक स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया गया है। ग्रन्थ सम्पादित होकर हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाश में आने वाला है।

४८ वीं प्रशस्ति 'पुण्यासव कहा कोश' की है। जिसमें १३ संधियां दी हुई हैं जिनमें पुण्य का आस्रव करने वाली सुन्दर कथाओं का संकलन किया गया है। प्रथम सन्धि में सम्यक्त्व के दोषों का वर्णन है, जिन्हें सम्यक्त्वी को टालने की प्रेरणा की गई है। दूसरी संधि में सम्यक्त्व के निश्चिंतादि अष्ट गुणों का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए उनमें प्रसिद्ध होने वाले अंजन चोर का चित्ताकर्षक कथानक दिया हुआ है तीसरी संधि में निकाक्षित और निर्विचिकित्सा इन दो अंगों में प्रसिद्ध होने वाले अनन्तमती और उदितोदय राजा की कथा दी गई है। चौथी संधि में अमूढदृष्टि और स्थितिकरण अंग में रेवती रानी और श्रेणिक राजा के पुत्र वारिषेण का कथानक दिया हुआ है। पाँचवीं सन्धि में उपगूहन अंग का कथन करते हुए उसमें प्रसिद्ध जिनभक्त सेठ की कथा दी हुई है। सातवीं सन्धि में प्रभावना अंग का कथन दिया हुआ है। आठवीं संधि में पूजा का फल, नवमी संधि में पंचनमस्कार मंत्र का फल, दशवीं संधि में आगमभक्ति का फल और ग्यारहवीं संधि में सती सीता के शील का कथन दिया हुआ है। बारहवीं सन्धि में उपवास का फल और १३ वीं संधि में पात्रदान के फल का वर्णन किया है। इस तरह ग्रन्थ की ये सब कथाएँ बड़ी ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं।

इस ग्रन्थ का निर्माण अग्रवाल कुलावतंस साहु नेमिदास की प्रेरणा एवं अनुरोध से हुआ है और यह ग्रंथ उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्तियों में नेमिदास और उनके कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। और बतलाया है कि साहु नेमिदास जोड़िणपुर (दिल्ली) के निवासी थे और साहु तोसउ के चार पुत्रों में से प्रथम थे। नेमिदास श्रावक व्रतों के प्रतिपालक, शास्त्रस्वाध्याय, पात्रदान, दया और परोपकार आदि सत्कार्यों में प्रवृत्ति करते थे। उनका चित्त समुदार था और लोक में उनकी धार्मिकता और सुजनता का सहज ही आभास हो जाता है, और उनके द्वारा अग्रणीत मूर्तियों के निर्माण कराये जाने, मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठादि महोत्सव सम्पन्न करने का भी उल्लेख किया गया है। साहु नेमिदास चन्द्रवाड के राजा प्रतापरुद्र से सम्मानित थे<sup>१</sup>। वे सम्भवतः उस समय दिल्ली से चन्द्रवाड चले गए थे, और वहाँ ही निवास करने लगे थे, और उनके अन्य कुटुम्बी जन उस समय दिल्ली में ही रह रहे थे, राजा प्रतापरुद्र चौहान वंशी राजा रामचंद्र के पुत्र थे, जिनका राज्य विक्रम सं० १४६८ में वहाँ विद्यमान

था\* । ग्रन्थ में उसका रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, परन्तु उसकी रचना पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिमचरण में हुई जान पड़ती है । क्योंकि उसके बाद मुस्लिम शासकों के हमलों से चन्द्रबाढ़ की श्री सम्पन्नता को भारी क्षति पहुंची थी ।

कवि ने ग्रंथ की प्रत्येक संधि के प्रारम्भ में ग्रंथ रचना में प्रेरक साहु नेमिदास का जयघोष करते हुये मंगल कामना की है । जैसा कि उसके निम्नपद्यों से प्रकट है—

प्रतापधरनृपराजविश्रुतस्त्रिकालदेवाचनवंचिता शुभा ।

जैनोक्तभास्त्रामृतपानशुद्धधीः चिरं क्षितौ नन्दतु नेमिदासः ॥ ३

सत्कवि गुणानुरागी श्रेयान्निव पात्रदानविधिदक्षः ।

तोसउ कुलनभचन्द्रो नन्दतु नित्येव नेमिदासाख्यः ॥४॥

ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है, उसे प्रकाश में लाना आवश्यक है ।

४६ वीं प्रगति 'जीवंधर चरित' की है । जिसमें तेरह संधियां दी हुई हैं । प्रस्तुत ग्रंथ में दर्शन-विशुद्ध्यादि षोडशकारण भावनाओं का फल वर्णन किया गया है । और उनका फल प्राप्त करने वाले जीवंधर तीर्थंकर की रोचक कथा दी गई है । प्रस्तुत जीवंधर स्वामी पूर्वं विदेह क्षेत्र के अमरावती देश में स्थित गंधर्वराज (राज) नगर के राजा सीमंधर और उनकी पट्ट महिषी महादेवी के पुत्र थे । इन्होंने दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारण भावनाओं का भक्तिभाव से चिंतन किया था, जिसके फलस्वरूप वे धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक तीर्थंकर हुए । ग्रंथका कथा भाग बड़ा ही सुंदर है । परंतु ग्रंथ प्रति अत्यंत अशुद्धरूप में प्रतिलिपि की गई है, जान पड़ता है प्रतिलिपिकार पुरानी लिपि का अभ्यासी नहीं था, प्रतिलिपि करवा कर पुनः जांच भी नहीं की गई ।

इस ग्रंथ का निर्माण कराने वाले साहु कुन्थ दास हैं, जो सम्भवतः ग्वालियर के निवासी थे । कवि ने इस ग्रन्थको उक्त साहु को 'श्रवण भूरण' प्रकट किया है । साथही उन्हें आचार्य चरण सेवी, सप्त व्यसन रहित, त्यागी धवलकीर्ति वाला, शास्त्रों के अर्थ को निरंतर श्रवधारण करनेवाला और शुभ मती बतलाते हुए उन्हें साहु हेमराज और मोल्हा देवी का पुत्र बतलाया गया है और कवि ने उनके चिरंजीव होने की कामना भी की है । जैसा कि द्वितीय संधि के प्रथम पद्य से ज्ञात होता है ।

२. चन्द्रबाढ़ के सम्बन्ध में लेखक का स्वतन्त्र लेख देखिए । सं० १४६८ में राजा रामचन्द्र के राज्य में चन्द्र बाढ़ में अमरकीर्ति के पटकर्मोपदेश की प्रतिलिपि की गई थी, जो भव नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भंडार में सुरक्षित है । यथा—

अथ संवत्सरे १४६८ वर्षे ज्येष्ठ कृष्ण पंचदश्यां शुक्रवासरे श्रीमच्चन्द्रपाट नगरे महाराजाधिराज श्रीराम चन्द्र देवराज्ये । तत्र श्री कृदकुदाचार्यान्वये श्री मूलसधे गूजरगोष्ठि तिहुयनगिरिया साहु श्री जग-सीहा भार्याः सोना तयोः पुत्राः (चत्वारः) प्रथम उदैसीह (द्वितीय) अर्जसहि तृतीय पहराज चतुर्थ खाह्यदेव । ज्येष्ठ पुत्र उदैसीह भार्या रतो, तस्य तयोः पुत्राः, ज्येष्ठ पुत्र देल्हा द्वितीय राम तृतीय भीक्षम ज्येष्ठ पुत्र देल्हा भार्या हिरो (तयोः) पुत्राः द्वयोः ज्येष्ठ पुत्र हाहू द्वितीय पुत्र अर्जुन नानावरणी कर्म क्षपार्थ इदं पटकर्मोपदेश लिखापितं ।

मग्नपुष्टि कटिग्रीवा सच्च दृष्टि रघो मुखं ।

कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ॥

—नागौर भंडार

‘जो भक्तो सूरिपाए विसरासगसया जि विरत्ता स एयो ।  
जो चाई पुत्त दागो ससिपह धवली कित्ति वल्लिकु तेजो ।  
जो नित्यो सत्थ-अत्ये विसय सुहमई हेमरायस्स ताओ ।  
सो मोल्ही अंग जाओ ‘भवट्टु इह धुवं कुथुयासो चिराओ ।’

६६वीं प्रशस्ति ‘सिरिपालचरिउ’ या ‘सिद्धचक्र विधि’ की है। जिसके कर्ता कवि रङ्घू हैं। इस ग्रन्थ में दश संधियां दी हुई हैं, और जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या दो हजार दो सौ बतलाई है। जिसमें चम्पापुर के राजा श्रीपाल और उनके सभी साथियों का सिद्धचक्रव्रत (अष्टाह्निका व्रत) के प्रभाव से कुष्ठ रोग दूर हो जाने आदि की कथा का चित्रण किया गया है और सिद्धचक्रव्रत का माहात्म्य ख्यापित करते हुए उसके अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है। ग्रन्थ का कथाभाग बड़ा ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है। भाषा सरल तथा सुबोध है। यद्यपि श्रीपाल के जीवन परिचय और सिद्धचक्रव्रत के महत्त्व को चित्रित करने वाले संस्कृत, हिंदी गुजराती भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। परन्तु अपभ्रंश भाषा का यह दूसरा ग्रंथ है। प्रथम ग्रंथ पंडित नरसेन का है।

प्रस्तुत ग्रंथ ग्वालियर निवासी अग्रवाल वंशी साहु वाटू के चतुर्थ पुत्र हरिसी साहु के अनुरोध से बनाया है और उन्हीं के नामांकित किया है। प्रशस्ति में उनके कुटुम्ब का संक्षिप्त परिचय भी अंकित है। कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक संधियों के प्रारम्भ में संस्कृत पद्यों में ग्रंथ निर्माण में प्रेरक उक्त साहु का यशोगान करते हुए उनकी मंगल कामना की है। जैसा कि ७ वीं संधि के निम्न पद्य से प्रकट है।

यः सत्यं वदति व्रतानि कुरुते शास्त्रं पठत्यादरात्  
मोहं मुञ्चति गच्छति स्व समयं धत्ते निरीहं पदं ।  
पापं लुम्पति पाति जीवनिवहं ध्यानं समालम्बते ।  
सोऽयं नन्दतु साधुरेव हरपी पुण्याति धर्म सदा ।

—सिद्धचक्र विधि (श्रीपालचरित संधि ७)

१०६वीं प्रशस्ति ‘सम्यक्त्व कीमुदी’ की है। इसमें सम्यक्त्व की उत्पादक कथाओं का बड़ा ही रोचक वर्णन दिया हुआ है, इसे कवि ने ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह के पुत्र राजा कीर्तिसिंह के राज्य काल में रचा है, इसकी आदि अन्त प्रशस्ति से मालूम होता है कि यह ग्रंथ गोपाचल वासी गोला लारीय जाति के भूपरा सेउसाहु की प्रेरणा से बनाया है। इसकी ७१ पत्रात्मक एक प्रति नागौर के भट्टारकीय ज्ञानभण्डार में मौजूद है उक्त अपूर्ण प्रशस्ति उसी प्रति पर से दी गई है। उस ग्रन्थ की पूरी प्रशस्ति वहां के पंचों तथा भट्टारक जी ने सन् ४४ में नोट नहीं करने दी थी, इसीलिए वह अपूर्ण प्रशस्ति ही यहां दी गई है।

**कवि की अन्य कृतियाँ**

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कवि की ‘दश लक्षणा जयमाला और ‘षोडशकारण जयमाला’ ये दोनों पूजा ग्रंथ भी मुद्रित हो चुके हैं। इनके सिवाय महापुराण, सुदसंराचरिउ, करकण्डुचरिउ ये तीनों ग्रंथ अभी अनुपलब्ध हैं। इनका अन्वेषणकार्य चालू हैं। ‘सोऽहं थुदि’ नाम की एक छोटी-सी रचना भी अनेकान्त में प्रकाशित हो चुकी है।

कवि रङ्घू ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों का अपनी रचनाओं में ससम्मान उल्लेख किया है<sup>१</sup>। जिन

१. विशेष परिचय के लिए देखिए, अनेकान्त वर्ष ६ किरण ६ में प्रकाशित महाकवि रङ्घू नाम का लेख।

के नाम इस प्रकार हैं—१. देवन्दी (पूज्यपाद) २. रविपेण ३. चउमुह ४. द्रोण ५. स्वयंभूदेव ६. कविवर ७. वज्रसेन ८. जिनसेन ९. देवसेन १०. महाकवि पुण्ड्रन्त ।

कवि वंश-परिचय

कविवर रङ्गू संघाधिप देवराय के पुत्र श्रीर हरिसिंघ के पुत्र थे, जो विद्वानों को आनन्ददायक थे । श्रीर माता का नाम 'विजयसिंरि' (विजयश्री) था, जो रूपलावण्यादि गुणों से अलंकृत होते हुए भी शील संयमादि सद्गुणों से विभूषित थी । कविवर की जाति पञ्चावती पुरवाल थी श्रीर कविवर उक्त पञ्चावती कुलरूपी कमलों को विकसित करने वाले दिवाकर (सूर्य) थे जैसाकि 'सम्मइजिन चरिउ' ग्रंथ की प्रशस्ति,के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

पोमावइ कुल कमल-दिवायर, हरिसिंघ बुहयण कुल, आणंदणु ।

जस्स धरिज रङ्गू बुह जायउ, देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ ॥

कविवर ने अपने कुल का परिचय 'पोमावइकुल' श्रीर पोमावइ 'पुरवाडवंस' जैसे वाक्यों द्वारा कराया है । जिससे वे पञ्चावती पुरवाल नाम के कुल में समुत्पन्न हुए थे । जैनसमाज में चौरासी उपजातियों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है उनमें कितनी ही जातियों का अस्तित्व आज नहीं मिलता; किन्तु दन चौरासी जातियों में ऐसी कितनी ही उपजातियां श्रयवा वंग है जो पहले कभी बहुत कुछ समृद्ध श्रीर सम्पन्न रहे हैं; किन्तु आज वे उतने समृद्ध एवं वैभवशाली नहीं दीखते, श्रीर कितने ही वंश एवं जातियां प्राचीन समय में गौरवशाली रहे हैं किन्तु आज उक्त संख्या में उनका उल्लेख भी शामिल नहीं है । जैसे पकंट १ आदि ।

इन चौरासी जातियों में पञ्चावती पुरवाल भी एक उपजाति है, जो आगरा, मैनपुरी, एटा, ग्वालियर आदि स्थानों में आबाद है, इनकी जन-संख्या भी कई हजार पाई जाती है । वर्तमान में यह जाति बहुत कुछ पिछड़ी हुई है तो भी इसमें कई प्रतिष्ठित विद्वान हैं । वे आज भी समाज सेवा के कार्य में लगे हुए हैं । यद्यपि इस जाति के विद्वान् अपना उदय ब्राह्मणों से बतलाते हैं श्रीर अपने को देवन्दी (पूज्यपाद) का सन्तानीय भी प्रकट करते हैं, परन्तु इतिहास से उनकी यह कल्पना केवल कल्पित ही जान पड़ती है । इसके दो कारण हैं । एक तो यह कि उपजातियों का इतिवृत्त अभी अंधकार में है जो कुछ प्रकाश में आ पाया है उसके आधार से उसका अस्तित्व विक्रम की दशमी घाटाव्दी से पूर्व का ज्ञात नहीं होता, हो सकता है कि वे उससे भी पूर्ववर्ती नहीं हों, परन्तु बिना किसी प्रामाणिक अनुसंधान के इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता ।

पट्टावली वाला दूसरा कारण भी प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पट्टावली में आचार्य पूज्य पाद (देवन्दी) को पञ्चावती-पुरवाल लिखा है, परन्तु प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों से उनका पञ्चावती-पुरवाल होना प्रामाणिक नहीं होता, कारण कि देवन्दी ब्राह्मण कुल में समुत्पन्न हुए थे ।

१. यह जाति जैन समाज में गौरव-शाली रही है । इसमें अनेक प्रतिष्ठित धीनम्पन्न धायक श्रीर विद्वान् हुए हैं जिनकी कृतियां आज भी अपने अस्तित्व से भूतन को समर्पण कर रही हैं । भविष्यदक्ष कथा के पता बुध धननाल श्रीर धर्मपरीक्षा के कर्ता बुध हरिपेण ने भी अपने जन्म से 'पकंट वंश' को पावन किया है । हरिपेण ने अपनी धर्मपरीक्षा दि० सं० १०४४ में बनाकर समाप्त की है । पकंट वंश के धनुषायी दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में रहे हैं ।

पड़ता है कि वे गृहस्थ-पंडित थे और उस समय वे प्रतिष्ठित विद्वान् गिने जाते थे। ग्रन्थ-प्रणयन में जो भेंटस्वरूप धन या वस्त्राभूषण प्राप्त होते थे, वही उनकी आजीविका का प्रधान आधार था।

वलभद्रचरित्र (पद्मपुराण) की अन्तिम प्रशस्ति के १७वें कडवक के निम्न वाक्यों से मालूम होता है कि उक्त कविवर के दो भाई और भी थे, जिनका नाम बाहोल और माहर्गसिंह था। जैसा कि उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

सिरिपोमावइपुरवालवंसु, रांदउ हरिसिधु संघवी जासुसंसु  
घत्ता—बाहोल माहर्गसिंह चिरु रांदउ, इह रइधूकवि तीयउ वि वरा।  
मोलिकय समाणउ कलगुण जाणउ रांदउ महियलि सो वि परा ॥

यहां पर मैं इतना और भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मेवेश्वर चरित (आदिपुराण) की संवत् १८५१ की लिखी हुई एक प्रति नजीबाबाद जिला विजनार के शास्त्र-भण्डार में है जो बहुत ही अशुद्ध रूप से लिखी गई है जिसके कर्ता ने अपने को आचार्य सिंहसेन लिखा है और उन्होंने अपने को संघ-वीय हरिसिंह का पुत्र भी बतलाया है। सिंहसेन के आदिपुराण के उस उल्लेख पर से ही पं० नाथूरामजी प्रेमी ने दशलक्षण जयमाला की प्रस्तावना में कवि रइधू का परिचय कराते हुए फुटनोट में श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुस्तार की रइधू को सिंहसेन का बड़ा भाई मानने की कल्पना को असंगत टहराते हुए रइधू और सिंहसेन को एक ही व्यक्ति होने की कल्पना की है। परन्तु प्रेमीजी की भी यह कल्पना संगत नहीं है और न रइधू सिंहसेन का बड़ा भाई ही है किन्तु रइधू और सिंहसेन दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं, सिंहसेन ने अपने को 'आइरिय' प्रकट किया है जबकि रइधू ने अपने को पण्डित और कवि ही सूचित किया है। उस आदिपुराण की प्रति को देखने और दूसरी प्रतियों के साथ मिलान करने से यह सुनिश्चित जान पड़ता है कि उसके कर्ता कवि रइधू ही हैं, सारे ग्रन्थ के केवल आदि अन्त प्रशस्ति में ही कुछ परिवर्तन है।

शेष ग्रन्थ का कथा भाग ज्यों का त्यों है उसमें कोई अन्तर नहीं, ऐसी स्थिति में उक्त आदिपुराण के कर्ता रइधू कवि ही प्रतीत होते हैं, सिंहसेन नहीं। हाँ, यह हो सकता है कि सिंहसेनाचार्य का कोई दूसरा ही ग्रन्थ रहा हो, पर उक्त ग्रन्थ 'सिंहसेनायरिय' का नहीं किन्तु रइधू कविकृत ही है। सम्मइजिनचरित की प्रशस्ति में रइधू ने सिंहसेन नाम के एक मुनि का और भी उल्लेख किया है और उन्हें गुरु भी बतलाया और उन्हीं के वचन से सम्मइजिनचरित की रचना की गई है। घत्ता—

“तं रिसुरिणं वि गुरणा गच्छहु गुरणाइं सिंहसेण मुणे।  
पुरुसंठिउ पंडिउ सील अखंडिउ भंरिणउ तेण तं तम्मि खरिण ॥५॥

### गुरु परम्परा

कविवर ने अपने ग्रंथों में अपने गुरु का कोई परिचय नहीं दिया है और न उनका स्मरण ही किया है। हाँ, उनके ग्रंथों में तात्कालिक कुछ भट्टारकों के नाम अवश्य पाये जाते हैं जिनका उन्होंने आदर के साथ उल्लेख किया है। पद्मपुराण की आद्य प्रशस्ति के चतुर्थ कडवक की निम्न पंक्तियों में, उक्त ग्रन्थ के निर्माण में प्रेरक साहु हरसी द्वारा जो वाक्य कवि रइधू के प्रति कहे गए हैं उनमें रइधू को 'श्रीपाल ब्रह्म आचार्य के शिष्य रूप से सम्बोधित किया गया है। साथ ही साहु सोढल के निमित्त 'नेमिपुराण' के रचे जाने और अपने लिए रामचरित के कहने की प्रेरणा भी की गई है जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि रइधू के गुरु ब्रह्म श्रीपाल थे वे वाक्य इस प्रकार हैं :—

भो रङ्गु पंडित गुरु गिहाणु, पोमावइ वर बंसहं पहाणु ।  
सिरिपाल ब्रह्म आयरिय मीस, महू वयणु मुण्हि भो वुह गिरीस ॥  
सोडल रिमित ऐमिहु पुराण, विरयउ जहं कइजण विहिय-माणु ।  
तं रामचरित्तु वि महू भणोहि, लवन्नण रामेउ इय मणि मुणोहि ॥

प्रस्तुत ब्रह्म श्रीपाल कवि रङ्गु के गुरु जान पड़ते हैं, जो भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे । 'सम्मइ-जिनचरित्तु' की अन्तिम प्रशस्ति में ' मुनि यशःकीर्ति के तीन शिष्यों का उल्लेख किया गया है, वेमचन्द, हरियेण और ब्रह्म पाल्ह (ब्रह्म श्रीपाल) । उनमें उल्लिखित मुनि ब्रह्मपाल ही ब्रह्म श्रीपाल जान पड़ते हैं । अब तक सभी विद्वानों को यह मान्यता थी कि कविवर रङ्गु भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे किन्तु इस समुल्लेख पर से वे यशःकीर्ति के शिष्य न होकर प्रशिष्य जान पड़ते हैं ।

कविवर ने अपने ग्रन्थों में भट्टारक यशःकीर्ति का गुला यशोगान किया है और भेधेद्वर चरित की प्रशस्ति में तो उन्होंने भट्टारक यशःकीर्ति के प्रसाद से विचक्षण होने का भी उल्लेख किया है । सम्मत गुरु-गिहाणु ग्रन्थ में मुनि यशःकीर्ति को, तपस्वी, भव्यरूपी कमलों को संबोधन करने वाला मूर्य, और प्रवचन का व्याख्याता भी बतलाया है और उन्हीं के प्रसाद से अपने को काव्य करने वाला और पापमल का नाशक बतलाया है । जैसा कि उसके निम्न पद्यों से स्पष्ट है :—

तह पुणु मूतव तावतवियंगो, भव्य-कमल-संबोह-पर्यंगो ।  
पिन्चोव्मासिय पवयण संगो, बंदिवि सिरि जसकित्ति अयंगो ।

तासु पसाए कब्बु पयासमि, आसि विहिउ कलि-मनु रिण्णासमि ।

इसके सिवाय यशोधर चरित्र में भट्टारक कमलकीर्ति का भी गुरु नाम से स्मरण किया है ।

**निवास स्थान और समकालीन राजा**

कविवर रङ्गु कहां के निवासी थे और वह स्थान कहां है । और उन्होंने ग्रंथ-रचना का यह महत्वपूर्ण कार्य किन राजाओं के राज्यकाल में किया है यह बात अवश्य विचारणीय है । यद्यपि कवि ने अपने जन्मभूमि आदि का कोई परिचय नहीं दिया, जिससे उस सम्बन्ध में विचार किया जाता, फिर भी उनके निवास स्थान आदि के सम्बन्ध में जो कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है उसे पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिया जाता है :—

उक्त कवि के ग्रन्थों में पता चलता है कि वे ग्वानियर में नेमिनाथ और बद्धमान जिनालय में रहते थे और कवित्तरूपी रसायन निधि से रसाल थे । ग्वानियर १५वीं शताब्दी में शूव समूह था, उस समय वहां पर देहनी के तोमर वंश का शासन चल रहा था । तोमर वंश बड़ा ही प्रतिष्ठित क्षत्रिय वंश रहा है और उनके शासनकाल में जैनधर्म को पनपने का बहुत कुछ आश्रय मिला है । जैन साहित्य में ग्वानियर का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । उस समय तो वह एक विद्या का केन्द्र ही बना हुआ था, वहां की मूर्तिकला और पुरातत्व की कलात्मक सामग्री आज भी दर्गकों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर रही है । उसके गमवन्नोरुन में ग्वानियर की महत्ता का सहज ही भान हो जाता है । कविवर ने स्वयं सम्भव-गुरु-निधान

१. मुनि जसकित्ति हू गिरम गुपायद, वेमचंडु हरिसेणु तवायद ।

मुनि तं पाट्ट बंभुए गांठु, तिन्नि वि पावट्ट भाए पिअंठु ।

—सम्मइ जिनचरित्तु प्रशस्ति



नामक ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति में ग्वालियर का वर्णन करते हुए वहाँ के तत्कालीन श्रावकों की चर्या का जो उल्लेख दिया है उसे बतौर उदाहरण के नीचे दिया जाता है :—

तहु रज्जि महायण बहुधराट्ठ, गुरु-देव-सत्थ विणयं वियट्ठ ।  
 जहिं वियक्खण मणुव सव्व, धम्माणुरत्त-वर गलिय-गव्व ॥  
 जहिं सत्त-वसण-चुय सावयाइं, णिवसहिं पालिय दो-दह-वयाइं ।  
 सम्महंसण-मणि-भूसियंग, णिच्चोव्भासिय पवयण सुयंग ॥  
 दारापेखण-विहि णिच्चलीण, जिण महिम महुच्छव णिरु पवीण ।  
 चेरणगुण अप्पारुह पवित्त, जिण सुत्त रसायण सवण तित्त ॥  
 पंचम दुस्समु अइ-विसमु-कालु, णिहलि वि तुरिउ पविहिउ रसालु ।  
 धम्मज्झारो जे कालु लित्ति, णवयारमंतु अह-णिसु गुणंति ॥  
 संसार-महण्णव-वडण-भीय, णिस्संक पमुह गुण वण्णणीय ।  
 जहिं णारीयण दिढ सीलजुत्त, दारो पौसिय णिरु तिविह पत्त ॥  
 तिय मिसेण लच्छि अवयरिय एत्थु, गयरुव ण दीसइ का वि तेत्थ ।  
 वर अंवर कणयाहरण एहि, मंडिय तरुणोसोहिं मणि जडेहिं ॥  
 जिण-णह्वण-पूय-उच्छाह चित्त, भव-तरुण-भोर्याहिं णिच्च जि विरत्त ।  
 गुरु-देव पाप-पंकयाहिं लीण, सम्महंसणपालण पवीण ॥  
 पर पुरिस स-बंधव सरिस जांहि, अह-णिसु पड्विण्णिय णिय मणाहिं ।  
 किं वण्णमि तहिं हउं पुरिस णारि, जहिं डिंभ वि सग वसणावहारि ॥  
 पव्वहिं पव्वहिं पोसहु कुणंति, धरि धरि चच्चरि जिण गुण धुणंति ।  
 साहम्मि य वत्थु णिरु वहंति, पर अवगुण भंपहिं गुण कहंति ॥  
 एरिसु सावर्याहिं विहियमाणु, रोमीसुरजिण-हरि वड्ढमाणु ।  
 णिवसइ जा रइध्व कवि गुणालु, सुक्ति-रसायण-णिहिं रसालु ॥१॥

इन पद्यों पर दृष्टि डालने से उस समय के ग्वालियर की स्थिति का सहज ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उस समय लोग कितने धार्मिक सच्चरित्र और अपने कर्तव्य का यथेष्ट पालन करते थे यह जानने तथा अनुकरण करने की वस्तु है।

ग्वालियर में उस समय तोमर वंशी राजा डूंगरसिंह का राज्य था। डूंगरसिंह एक प्रतापी और जैनधर्म में आस्था रखने वाला शासक था। उसने अपने जीवन काल में अनेक जैन मूर्तियों का निर्माण कराया, वह इस पुनीत कार्य को अपनी जीवित अवस्था में पूर्ण नहीं करा सका था, जिसे उसके प्रिय पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिंह ने पूरा किया था। राजा डूंगरसिंह के पिता का नाम गरुणेश या गरुणपतिसिंह था। जो वीरमदेव का पुत्र था। डूंगरसिंह राजनीति में दक्ष, शत्रुओं के मान मर्दन करने में समर्थ, और क्षत्रियोचित क्षात्र तेज से अलंकृत था। गुण समूह से विभूषित, अन्याय रूपी नागों के विनाश करने में प्रवीण, पंचांग मंत्रशास्त्र में कुशल, तथा असि रूप अग्नि से मिथ्यात्व-रूपी वंश का दाहक था, जिसका यश सब दिशाओं में व्याप्त था, राज्य-पट्ट से अलंकृत विपुल, भाल और बल से सम्पन्न था। डूंगरसिंह की पट्टरानी का नाम चँदादे था जो अतिशय रूपवती और पतिव्रता थी। इनके पुत्रका नाम कीर्तिपाल या कीर्तिपाल था, जो अपने पिता के समान ही गुणज्ञ, बलवान और राजनीति में चतुर था। डूंगरसिंह ने नरवर के किले पर

घेरा डाल कर अपना अधिकार कर लिया था। शत्रु लोग इसके प्रताप एवं पराक्रम से भयभीत रहते थे। जैनधर्म पर केवल उसका अनुराग ही न था किन्तु उस पर वह अपनी पूरी आस्था भी रखता था, फलस्वरूप उसने जैन मूर्तियों की खुदवाई में सहस्रों रुपये व्यय किए थे। इससे ही उसकी आस्था का अनुमान किया जा सकता है।

डूंगरसिंह सन् १४२४ (वि० सं० १४८१) में ग्वालियर की गद्दी पर बैठा था। राज्य समय के दो मूर्ति लेख सम्बत् १४६७ और १५१० के प्राप्त हैं। सम्बत् १४८६ की दो लेखक प्रशस्तियां-पं० विबुध श्रीधर के संस्कृत भविष्यदत्त चरित्र और अपभ्रंश-भाषा के सुकमालचरित्र की प्राप्त हुई हैं। इनके सिवाय 'भविष्यदत्त पंचमी कथा' की एक अपूर्ण लेखक प्रशस्ति कारंजा के ज्ञान भण्डार की प्रति से प्राप्त हुई है। डूंगरसिंह ने वि० सं० १४८१ से सं० १५१० या इसके कुछ बाद तक शासन किया है। उसके बाद राज्य सत्ता उसके पुत्र कीर्तिसिंह के हाथ में आई थी।

कविवर रङ्घू ने राजा डूंगरसिंह के राज्य काल में तो अनेक ग्रन्थ रचे ही हैं किन्तु उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्य काल में भी सम्यक्त्व कौमुदी की रचना की है। ग्रंथकर्ता ने उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति में कीर्तिसिंह का परिचय करते हुए लिखा है कि वह तोमर कुल रूपी कमलों को विकसित करने वाला सूर्य था और दुर्बार शत्रुओं के संग्राम से अतृप्त था और अपने पिता डूंगरसिंह के समान ही राज्यभार को धारण करने में समर्थ और वंदी-जनों ने जिसे भारी अर्थ समर्पित किया था और जिसकी निर्मल यश रूपी लता लोक में व्याप्त हो रही थी, उस समय यह कलिचक्रवर्ती था जैसा कि उक्त ग्रंथ प्रशस्ति के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

तोमरकुलकमलवियास मित्त, दुब्बारवरिसंगर अतित्तु ।

डूंगरसिंहवरज्जधरा समरथु, वंदीयण समप्यि भूरि-अरथु ॥

चउराय विज्जपालण अतंतु, गिम्मल जसवल्ली भुवणकंदु ।

कलिचक्रवट्टि पायडसिंहाणु, सिरिकित्तिंसिधु महिवइपहाणु ॥

—सम्यक्त्व कौमुदी पत्र २ नागौर भण्डार

कीर्तिसिंह वीर और पराक्रमी था उसने अपना राज्य अपने पिता से भी अधिक विस्तृत किया था। वह दयालु एवं सहृदय था जैनधर्म के ऊपर उसकी विशेष आस्था थी। वह अपने पिता का आज्ञाकारी था उसने अपने पिता के जैनमूर्तियों के खुदाई के अवशिष्ट कार्य को पूरा किया था। इसका पृथ्वीपाल नाम का एक भाई और भी था जो लड़ाई में मारा गया था। कीर्तिसिंह ने अपने राज्य को यहां तक पल्लवित कर लिया था कि उस समय उसका राज्य मालवे के सम-कक्षा का हो गया था। और दिल्ली का बादशाह भी कीर्तिसिंह की कृपा का अभिलाषी बना रहना चाहता था। सन् १४६५

१. सन् १४५२ (वि० सं० १५०६) में जीनपुर के मुलान महमूदसाह शर्की और देहली के बादशाह बहलोल लोदी के बीच होने वाले संग्राम में कीर्तिसिंह का दूसरा भाई पृथ्वीराज महमूदसाह के सेनापति फतहसां हार्वी के हाथ से मारा गया था। परन्तु कविवर रङ्घू के ग्रंथों में कीर्तिसिंह के दूसरे भाई पृथ्वीराज का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

—देहली टाड राजस्थान पृ० २५० स्वर्गीय महामना गोरीनंकर हीराचन्द जी घोभा कृत ग्वालियर के तंबर वाली टिप्पणी।

इन व्रतकथाओं में, व्रतका स्वरूप, उनके आचरण की विधि, और फलका प्रतिपादन करते हुए व्रतकी महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। आत्म-शोधन के लिए व्रतों की नितांत आवश्यकता है; क्योंकि आत्म-शुद्धि के बिना हित-साधन सम्भव नहीं है। इन कथाओं में से पक्खवड कथा और अनन्तव्रत कथा ये दो कथाएँ तो ग्वालियर निवासी संघपति साहू उद्धरण के जिनमन्दिर में निवास करते हुए साहू सारंगदेव के पुत्र देवदास की प्रेरणा से रची गई हैं और अणंतवयकहा, पुष्पजलिवयकहा और दहलकखग-वयकहा ये तीनों कथाएँ ग्वालियर निवासी जैसवालवंशी चौधरी लक्ष्मणसिंह के पुत्र पण्डित भीमसेन के अनुरोध से बनाई गई हैं। सातवीं शताब्दीसप्तमीकथा गोपाचलवासी साहू वीधा के पुत्र सहजपाल के अनुरोध से लिखी गई है। शेष ६ कथाएँ किनकी प्रेरणा से रची गई हैं, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। सम्भव है वे धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हों।

भट्टारक गुणभद्र काष्ठासंघ माथुरान्वय के भट्टारक मलयकीर्ति के शिष्य और भट्टारक यशःकीर्ति के प्रशिष्य थे और मलयकीर्ति के बाद उनके पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। उनकी ये १५ कथाएँ पंचायती मंदिर खजूर मस्जिद दिल्ली के शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक में संगृहीत हैं। इनकी अन्य क्या रचनाएँ हैं यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। यह भी प्रतिष्ठाचार्य थे और अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा इनके द्वारा सम्पन्न हुई है।

गुणभद्र नाम के अनेक विद्वान् हो गए हैं। उनसे प्रस्तुत भट्टारक गुणभद्र भिन्न हैं। इन्होंने अपने विहार द्वारा जिनधर्म का उपदेश देकर जनताको धर्म में स्थिर किया है और जैनधर्म के प्रचार या प्रसार में सहयोग दिया है। इनके उपदेश से अनेक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। यद्यपि इन्होंने अपनी रचनाओं में किसी राजा का उल्लेख नहीं किया। किन्तु अन्य सूत्रों से यह स्पष्ट जाना जाता है कि इनकी यह रचनाएँ ग्वालियर के तोमर वंशी राजा जूंगरसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिंह के राज्यकाल में बनाई गई हैं। इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और १६वीं शताब्दी के मध्य काल तक जान पड़ता है।

कांरजा के सेनगढ़ भंडार की समयसार की लिपि प्रशस्ति वि० संवत् १५१० वैशाख शुक्ला तीज की लिखी हुई है, जो गोपाचल में जूंगरसिंह के राज्यकाल में भट्टारक गुणभद्र की आम्नाय के अग्रवाल वंशी गर्ग गोत्रीय साहू जिनदास ने लिखवाई थी<sup>१</sup>। इससे भी गुणभद्र का समय १६वीं शताब्दी जान पड़ता है।

५१वीं, ५२वीं, ५३वीं, ५४वीं, ५५वीं, ५६वीं, ५७वीं, ५८वीं, ५९वीं, ६०वीं, ६१वीं, ६२वीं, ६३वीं, और ६४वीं प्रशस्तियों का परिचय ५०वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

६५वीं प्रशस्ति 'अनंतव्रतकथा' की है, जिसमें कर्ता का नाम अभी अज्ञात है। प्रस्तुत रचना पंचायती मन्दिर दिल्ली के शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक पर से दी गई हैं। रचनाकाल भी अज्ञात है। फिर भी यह रचना १५वीं शताब्दी की जान पड़ती है।

६६वीं प्रशस्ति 'आराहणासार' की है जिसके कर्ता कवि वीर हैं। प्रस्तुत रचना में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र और सम्यक्तरूप चार आराधनाओं का स्वरूप संक्षेप में दिया गया है। वीर कवि कव हुए और उनका समय तथा गुरु परम्परा क्या है? यह रचना पर से कुछ ज्ञात नहीं होता। यह रचना आमेर शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक पर से संगृहीत की गई है। वीर नाम के एक कवि वि० सं० १०७६ में हुए हैं जिन्होंने उक्त संवत् में जंबू स्वामिचरित्र की रचना की थी। ये दोनों एक ही हैं या भिन्न हैं। यह अभी विचारणीय है।

१. देखो अनेकान्त वर्ष १४ किरण १० पृ० २६६

६७वीं प्रशस्ति 'हरिसेणचरित्र' की है, जिसके कर्ता अज्ञात हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें हरियेण-चक्रवर्ती का जीवन परिचय दिया हुआ है। चरित्र सुन्दर और शिक्षाप्रद है। यह चक्रवर्ती वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के समय में हुए हैं। यह बड़े वीर धर्मात्मा और अपनी माता के आज्ञाकारी पुत्र थे। चक्रवर्ती की माता जैनधर्म की श्रद्धालु और धर्मात्मा थी, उसकी भावना जैन रथोत्सव निकलवाने की थी, परन्तु कारणवश वह अपनी भावना को पूरा करनेमें समर्थ नहीं हो रही थी। हरियेण चक्रवर्ती ने अनेक जिनमन्दिर बनवाए, प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न कीं और महोत्सवपूर्वक रथोत्सव निकलवाकर अपनी माता की चिरसाधना को सम्पन्न किया। इनके एक पुत्र ने कैलाश पर्वत पर तप धारण किया और कर्म-सन्तति का उच्छेदकर अविनाशीपद प्राप्त किया था। उससे चक्रवर्ती को भारी सन्ताप हुआ, किन्तु ज्ञान और विवेक से उसका शमन किया और अन्त में स्वयं चक्रवर्ती ने राज्य-वैभव को असार जान दीक्षा लेकर आत्म-साधना की और अविनाशी स्वात्म-लब्धि को प्राप्त किया। ग्रन्थ की रचना कब और कहाँ हुई? यह कुछ ज्ञात नहीं होता, सम्भव है रचना १५वीं शताब्दी या उससे पूर्ववर्ती हो।

६८ वीं प्रशस्ति 'मयण पराजय' की है जिसके कर्ता कवि हरदेव हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के दो परिच्छेदों में से प्रथम में ३७ और दूसरे में ८१ कुल ११८ कड़वक हैं। जिनमें मदन को जीतने का सुन्दर सरस वर्णन किया गया है। यह एक छोटा-सा रूपक सण्ड काव्य है। इसमें पद्धडिया, गाथा और दुबई छन्द के सिवाय वस्तु (रड्ढा) छन्द का भी प्रयोग किया गया है। किन्तु इन छन्दों में कवि को वस्तु या रड्ढा छन्द ही प्रिय रहा है। छन्द के साथ ग्रन्थ में यथा स्थान अलंकारों का भी संक्षिप्त वर्णन पाया जाना इस काव्य ग्रंथ की अपनी विशेषता है। ग्रंथ में अनेक सूक्तियाँ दी हुई हैं जिनसे ग्रंथ सरस हो गया है। उदाहरणार्थ यहाँ तीन सूक्तियों को उद्धृत किया जाता है—

१. असिधारा पहेण को गच्छइ—तलवार की धार पर कौन चलना चाहता है
२. को भुयदंडहि सायस लंघहि—भुजदंड से सागर कौन तरना चाहेगा
३. को पंचाणणु सुत्तउ खवलइ—सोते हुए सिंह की कौन जगाएगा।

ग्रन्थ का कथानक परम्परागत ही है, कवि ने उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है, रचना का ध्यान से समीक्षण करने पर शुभचन्दाचार्य के ज्ञानार्णव का उस पर प्रभाव परिलक्षित हुआ जान पड़ता है। जो तुलना करने से स्पष्ट हो सकता है।

इस रूपक-काव्य में कामदेव राजा, मोहमन्त्री, अहंकार और अज्ञान आदि सेनापतियों के साथ भावनगर में राज्य करता है। चारित्रपुर के राजा जिनराज उसके शत्रु हैं; क्योंकि वे मुक्तिरूपी लक्ष्मी से अपना विवाह करना चाहते हैं। कामदेव ने राग-द्वेष नाम के दूत द्वारा जिनराज के पास यह संदेश भेजा कि आप या तो मुक्ति-कन्या से विवाह करने का अपना विचार छोड़ दें, और अपने ज्ञान, दर्शन-चरित्ररूप सुभद्रों को मुझे सौंप दें, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ। जिनराज ने कामदेव से युद्ध करना स्वीकार किया और अंत में कामदेव को पराजित कर अपना विचार पूर्ण किया।

१. प्राकृत-पिगल में रड्ढा छन्द का लक्षण इस तरह दिया है। जिसमें प्रथम चरण में १५ मात्राएँ, द्वितीय चरण में १२ तृतीय चरण में १५, चतुर्थ चरण में ११, और पाँचवें चरण में १५ मात्रा हो, इस तरह १५ × १२ × १५ × ११ × १५, कुल ६८ मात्राओं के पदचातु अन्त में एक दोहा होना चाहिए, तब प्रसिद्ध रड्ढा छन्द होता है। जिसे वस्तु छन्द भी कहा जाता है। (देखो, प्रा० पि० १—१३३)

## कवि-परिचय

यद्यपि कवि ने अपना कोई विशेष परिचय ग्रन्थ में नहीं दिया, फिर भी प्रथम संधि के दूसरे-तीसरे कडवक से ज्ञात होता है कि कवि का नाम हरि या हरिदेव था। इनके पिता का नाम चङ्गदेव और माता का नाम चित्रा (देवी) था। इनके दो ज्येष्ठ और दो कनिष्ठ भाई भी थे। उनमें जेठे भाइयों का नाम किकर और कृष्ण था। इनमें किकर गुणवान और कृष्ण स्वभावतः निपुण था, कनिष्ठ भाइयों के नाम क्रमशः द्विजवर और राघव थे, ये दोनों ही धर्मात्मा थे।

संस्कृत 'मदन पराजय' इसी रूपक-ग्रन्थ का संवद्धित अनुवादित रूप है। और जिसके कर्ता कवि नागदेव उन्हीं के वंशज तथा ५वीं पीढ़ी में हुए थे। उन्होंने ग्रंथ प्रशस्ति में जो परिचय दिया है उससे कवि के वंश का परिचय निम्न प्रकार मिलता है—पृथ्वी पर शुद्ध सोमकुलरूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य तथा याचकों के लिए कल्पवृक्ष रूप चङ्गदेव हुए। उनके पुत्र हरि या हरिदेव, जो असत्कवि रूपी हस्तियों के लिए सिंह थे। उनके पुत्र वैद्यराज नागदेव, नागदेव के 'हेम' और 'राम' नाम के दो पुत्र थे। जो दोनों ही वैद्य-विद्या में निपुण थे। राम के पुत्र 'प्रियंकर' हुए, जो दानी थे। प्रियंकर के पुत्र 'मल्लुगि' थे, जो चिकित्सा महोदधि के परिगामी विद्वान् और जिनेन्द्र के चरण कमलों के मत्त भ्रमर थे। उनका पुत्र में अल्पज्ञानी नागदेव हैं। जो काव्य, अलंकार, और शब्द कोप के ज्ञान से विहीन हैं। हरिदेव ने जिस कथा को प्राकृत बन्ध में रचा था उसे मैं धर्मवृद्धि के लिए संस्कृत में रचता हूँ। कवि ने ग्रन्थ में कोई रचना काल नहीं दिया। ग्रन्थ की यह प्रति सं० १५७६ की लिखी हुई आमेर भंडार में सुरक्षित है। उससे यह ग्रन्थ पूर्व बना है।

इस ग्रन्थ की दूसरी प्रति सं० १५५१ मगशिर सुदि अष्टमी गुरुवार की लिखी हुई जयपुर के तेरापंथी बड़े मंदिर के शास्त्र भंडार में मौजूद है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ सं० १५५१ से पूर्ववर्ती है। ग्रन्थ के भाषा साहित्यादि पर से वह १४वीं शताब्दी के उपान्त समय की और १५वीं शताब्दी के पूर्वार्ध की कृति जान पड़ती है।

६६वीं और १०५वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः 'सिद्धचक्रकथा' और 'जिणरत्तिविहारण कथा' की हैं, जिन के कर्ता कवि नरसेन हैं।

सिद्धचक्र कथा में चंपा नगरी के राजा श्रीपाल और उनकी धर्मपत्नी मैनासुन्दरी का चरित्र-चित्रण किया गया है। अशुभोदय वस राजा श्रीपाल और उनके सात सौ साथियों को भयंकर कुष्ठ रोग हो जाता है। रोग की वृद्धि हो जाने पर उनका नगर में रहना असह्य हो गया, उनके शरीर की दुर्गन्ध से जनता का वहाँ रहना भी दूभर हो गया, तब जनता के अनुरोध से उन्होंने अपना राज्य अपने चाचा अरिदमन को

२. यः शुद्धःसोमकुलपद्मविकासनाको, जातोधिनां सुरतरुर्भुवि चङ्गदेवः ।

तन्नन्दनो हरिस्सत्कविनागसिंहः, तस्मात् भिषज्जनपतिर्भुवि नागदेवः ॥२॥

तन्नावुभौ सुभिषजाविह हेम-रामी, रामत्प्रिङ्करइति प्रियदोऽधिनां यः ।

तञ्जश्चिकित्सितमहाम्बुधि पारमाप्तः श्रीमल्लुगि जिनपदाम्बुज मत्तभृङ्गः ॥३॥

तज्जोऽहं नागदेवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः ।

छन्दोऽलङ्कारकाव्यानि नाभिधानानि वेदम्यहम ॥४॥

कथा प्राकृतबन्धेन हरिदेवेन या कृता ।

वक्ष्ये संस्कृत बन्धेन भव्यानां धर्मवृद्धये ॥५॥

दे दिया और कहा कि जब मेरा रोग ठीक हो जाएगा, मैं अपना राज्य वापिस ले लूंगा। श्रीपाल अपने साथियों के साथ नगर छोड़कर चले गए, और अनेक कष्ट भोगते हुए उज्जैन नगर के बाहर जंगल में ठहर गए। वहां का राजा अपने को ही सब कुछ मानता था, कर्मों के फल पर उसका विश्वास नहीं था। उसकी पुत्री मैना सुन्दरी ने जैन साधुओं के पास विद्याध्ययन किया था, और कर्म-सिद्धान्त का उसे अच्छा परिज्ञान हो गया था, उसकी जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी, साथ ही साध्वी और शीलवती थी। राजा ने उससे अपना पति चुनने के लिए कहा, परन्तु उसने कहा कि यह कार्य शीलवती पुत्रियों के योग्य नहीं है। इस सम्बन्ध में आप ही स्वयं निर्णय करें। राजा ने उसके उत्तर से असंतुष्ट हो उसका विवाह कुछ रोगी श्रीपाल के साथ कर दिया। मंत्रियों ने बहुत समझाया, परन्तु उस पर राजा ने कोई ध्यान न दिया। निदान कुछ ही समय में मैनासुन्दरी ने सिद्धचक्र का पाठ भक्ति भाव से सम्पन्न किया, और जितेन्द्र के अभिषेक जल से उन सबका कुछ रोग दूर हो गया। और वे सुखपूर्वक रहने लगे। पश्चात् श्रीपाल बारह वर्षों के लिए विदेश चला गया, वहां भी उसने अनेक कर्म के शुभाशुभ परिणाम देखे, और बाह्य विभूति के साथ बारह वर्षों बाद मैना सुन्दरी से मिला, उसे पटरानी बनाया, और चंपापुर जाकर चाचा से राज्य लेकर शासन किया। और अन्त में तप द्वारा आत्म लाभ किया। इस कथानक से सिद्धचक्रव्रत की महत्ता का आभास मिलता है। रचना सुन्दर और संक्षिप्त है।

दूसरी कृति 'जिनरात्रि कथा' है, जिसे वर्द्धमान कथा भी कहा जाता है। जिस रात्रि में भगवान महावीर ने श्विनाशी पद प्राप्त किया, उसी व्रत की कथा शिवरात्रि के ढंग पर रची गई है। उस रात्रि में जनता को इच्छाओं पर नियंत्रण रखते हुये आत्म-शोधन का प्रयत्न करना चाहिए। रचना सरस है, कवि ने रचना में अपना कोई परिचय, गुरु परम्परा तथा समयादि का कोई उल्लेख नहीं किया। इससे कवि के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। 'सिद्धचक्रकथा' की प्रति सं० १५१२ की लिखी हुई मिली है। जिससे स्पष्ट है कि उक्त ग्रंथ उससे पूर्व बन चुका था। कितने पूर्व यह अभी विचारणीय है। फिर भी यह रचना १४वीं शताब्दी या उसके आस-पास की जान पड़ती है।

७० वीं प्रारंभित 'अणाल्पमिय कथा' की है, जिसके कर्ता कवि हरिचन्द्र हैं। प्रस्तुत कथा में १६ कडवक दिये हुए हैं जिनमें रात्रिभोजन से होने वाली हानियों को दिखलाते हुए उसका त्याग करने की प्रेरणा की गई है और बतलाया गया है कि जिस तरह अन्धा मनुष्य प्राप्त की शुद्धि असुद्धि सुन्दरता आदि का अवलोकन नहीं कर सकता। उसी प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रि में भोजन करने वाले लोगों से कोई पत्तना, भौंशुर, चिउंटी, डांस, मच्छर आदि सूक्ष्म और स्थूल जीवों की रक्षा नहीं हो सकती। बिजली का प्रकाश भी उन्हें रोकने में समर्थ नहीं हो सकता। रात्रि में भोजन करने से भोजन में उन विपरीत जीवों के पेट में चले जाने से अनेक तरह के रोग हो जाते हैं, उनसे शारीरिक स्वास्थ्य को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। अतः आभिमहाष्टि और स्वास्थ्य की दृष्टि से रात्रि में भोजन का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है, जैसा कि कवि के निम्न पद्य से स्पष्ट है—

जिहि दिट्ठि एण य सरइ अंधुजेम, नहि गास-मुद्धि भणु होय केम ।  
 किमि-कीड-मयंगइ भिंणुराइ, पिप्पीलई डंसइ मच्छिराइ ।  
 खज्जूरइ कण्ण सलाइयाइ, अवरइ जीवइ जे बहुसयाइ ।  
 अन्नाणी एसि भुंजंतएण, पसुसरि सुधरिउ अप्पाणु तेण ।

धत्ता—जं वालि विदीणउ करि उज्जोवउ अहिउ जीउ संभवइ परा ।

भमराइ पयंगइ बहुविह भंगइ मंडिय दीसइ जित्थु धरा ॥ ५ ॥

कवि का वंश अग्रवाल है, उनके पिता का नाम जडू और माता का नाम वील्हा देवी था। कवि ने ग्रन्थ में रचनाकाल नहीं दिया, परन्तु रचना पर से वह १५ वीं शताब्दी की जान पड़ती है; क्योंकि रचना जिस गुच्छक पर से संगृहीत की गई है, वह ३०० वर्ष से पूर्व का लिखा हुआ है।

७१ वीं प्रशस्ति से लेकर ७३ वीं प्रशस्ति तक तीनों प्रशस्तियां क्रमशः चूनडीरास, निज्भरपंचमी कहारास और कल्याणक रास की हैं जिनके कर्ता कवि विनयचन्द्र हैं।

प्रस्तुत चूनडी रास में ३२ पद्य हैं। जिनमें चूनडी नामक उत्तरीय वस्त्र को रूपक बनाकर एक गीति काव्य के रूप में रचना की गई है। कोई मुग्धा युवती हंसती हुई अपने पति से कहती है कि हे सुभग! जिनमन्दिर जाइये और मेरे ऊपर दया करते हुए एक अनुपम चूनडी शीघ्र छपवा दीजिये, जिससे मैं जिन-शासन में विचक्षण हो जाऊँ। वह यह भी कहती है कि यदि आप वैसी चूनडी छपवा कर नहीं देंगे, तो वह छोपा मुझे तानाकशी करेगा। पति-पत्नी की बात सुनकर कहता है कि हे मुग्धे! वह छोपा मुझे जैन-सिद्धान्त के रहस्य से परिपूर्ण एक सुन्दर चूनडी छापकर देने को कहता है।

चूनडी उत्तरीय वस्त्र है, जिसे राजस्थान की महिलाएँ विशेष रूप से ओढ़ती थीं। कवि ने भी इसे रूपक बतलाते हुए चूनडी रास का निर्माण किया है, जो वस्तु तत्व के विविध वाग-भूषणों से भूषित है; और जिसके अध्ययन से जैनसिद्धान्त के मार्मिक रहस्यों का उद्घाटन होता है। वैसे ही वह शरीर को अलंकृत करती हुई शरीर की अद्वितीय शोभा को बनाती है। उससे शरीर को अलंकृत करती हुई वालाएँ लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त होंगी और और अपने कण्ठ को भूषित करने के साथ-साथ भेद-विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगी। रचना सरस और चित्ताकर्षक है इस पर कवि की एक स्वोपज्ञ टीका भी उपलब्ध है जिसमें चूनडी रास में दिये हुए शब्दों के रहस्य को उद्घाटित किया गया है। ऐसी सुन्दर रचना को स्वोपज्ञ संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित करना चाहिए।

कवि ने इस रचना को 'त्रिभुवनगढ़' में 'अजयनरेन्द्र' के विहार में बैठकर बनाया है। उस समय त्रिभुवनगढ़ या तहनगढ़ जन-धन से समृद्ध था, इसीसे कवि ने उसे 'सर्ग खंड एण धरियल आयउ' वाक्य द्वारा उसे स्वर्गखण्ड के तुल्य बतलाया है। प्रस्तुत 'अजयनरेन्द्र' तहनगढ़ के राजा कुमारपाल का भतीजा था और उसके बाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ था। संवत् १२५३ में वहाँ कुमारपाल का राज्य था, उस समय मुहम्मद गौरी ने सन् ११४६ में उस पर अधिकार कर लिया था। तब समस्त व्यापारी जन नगर छोड़कर इधर-उधर भाग गये थे, नगर जन-धन से शून्य हो गया था। वहाँ अनेक मन्दिर और शिवालय थे। मूर्ति-पूजा का वहाँ बहुत प्रचार था, किन्तु मुसलमानों का अधिकार होते ही अनेक मन्दिर-मूर्तियां धराशायी करा दी गई थीं, जिससे नगर श्रीहीन और वीरान-सा हो गया था। मुहम्मद गौरी ने वहाँ का शासक वहरुद्दीन तुग़रिक को नियुक्त किया था, उसने दूर-दूर से बसने के लिये व्यापारियों को बुलाया था,

१. त्रिभुवनगढ़ या तहनगढ़ राजस्थान के ऐतिहासिक स्थान है। जो 'बहनपाल' के द्वारा बसाया गया था वयाना 'तहनगढ़' और करौली ये तीनों स्थान इस वंश के द्वारा शासित रहे हैं। प्रस्तुत अजयनरेन्द्र करौली के राजवंश-सूची से कुमारपाल का भतीजा ज्ञात होता है। तहनगढ़ के सम्बन्ध में अन्यत्र पाद टिप्पण में विचार किया गया है, पाठक वहाँ देखें।

सुरेशान से भी लोग घसने को आये थे। सम्भव है कुछ दिनों के बाद उसकी समृद्धि पुनः हो गई हो। मुनि विनयचन्द्र ने अपनी चून्डी अजयराजा के विहार में बैठकर बनाई थी।

७२ वी प्रशस्ति 'निर्भरपंचमीकहारास' की है। जिसमें निर्भर पंचमी के व्रत का फल बतलाया गया है। जो व्यक्ति पंचमी व्रत का निर्दोष रूप से पालन करता है, वह अविफल सिद्ध पद को पाता है। इस व्रत की विधि बतलाते हुए लिखा है कि 'आपाढ़ शुक्ला पंचमी के दिन जागरण करे और उपवास करे तथा कांतिक के महीने में उसका उद्यापन करे अथवा श्रावण में आरम्भ करके अग्रहन के महीने में उद्यापन करे और उद्यापन में छत्र-चमरादि पांच-पांच वस्तुएँ मन्दिर जी में प्रदान करे'। यदि उद्यापन की शक्ति न हो, तो व्रत दूने समय तक करे। इस रास को कवि ने त्रिभुवनगिरि की तलहटी में बनाया था। रचना सुन्दर और सरस है।

७३ वी प्रशस्ति 'कल्याणक रास' की है, जिसमें जैन तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियों का निर्देश किया गया है।

### कवि परिचय

प्रस्तुत कवि विनयचन्द्र माथुरसंघ के भट्टारक उदयचन्द्र के प्रशिष्य और बालचन्द्र मुनि के शिष्य थे। इन्होंने अपनी दोनों रचनाएँ त्रिभुवनगिरि में बनाई थीं। किन्तु तीसरी रचना में उसके स्थान का कोई निर्देश नहीं किया, जिससे यह कहना कठिन है कि वह कहाँ पर बनी है। रचना समय तीनों में ही नहीं दिया है। संवत् १४५५ के गुच्छक में लिखी हुई कल्याणकरास की एक प्रति श्री पं० दीपचंद पांड्या केकड़ी के पास है, उससे इतना तो सुनिश्चित हो जाता है कि उक्त ग्रंथ उससे पूर्व ही रचा गया है। चून्डी-रास त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल के भतीजे अजयराज के विहार में बैठकर बनाने का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। जिसका नाम करोली के शासकों की सूची में दर्ज है। संवत् १२५३ में त्रिभुवनगिरि का विनाश हुआ था, उसके बाद ही किसी समय 'चून्डीरास' रचा गया है। अजयराज के राज्य काल में नहीं इससे जान पड़ता है कि कवि का रचनाकाल वि० की १३वीं शताब्दी का मध्यकाल या १४वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

यहां यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि डा० प्रेमसागर जी ने हाल ही में 'जैन-भक्ति काव्य' नामका निबन्ध, जो भिक्षु अभिनन्दन ग्रंथ के खण्ड दो, पृष्ठ १२३ पर छपा है। उसमें भट्टारक विनयचन्द्र का समय वि० सं० १५७६ बतलाया है। उनके वे वाक्य इस प्रकार हैं—

"विनयचन्द्र मुनि इसी शती के सामर्थ्यावान् कवि थे। वे माथुर संघीय भट्टारक बालचन्द्रके गिष्य थे। विनयचन्द्र सूरि से स्पष्टतया पृथक् हैं। विनयचन्द्र सूरि चौदहवीं शती के रत्नसिंह सूरि के शिष्य थे। मुनि विनयचन्द्र गिरिपुर के राजा अजय नरेश के राज्यकाल में हुये हैं। उनका समय वि० सं० १५७६ माना जाता है।"

१. धवल पवित्र आसाढ़ि पंचमि— जागरण,  
सुह उपवासइ किजइ कातिग उज्जवणु ।  
अह मावण आरभिय पुज्जइ प्रागहणे,  
इह मइ जिअर पंचमि अविश्य भय-हरणे ॥

२. संवत् १४५५ साके १३२० तारणनाम संवत्सर "समये पोपवदि २ भौमवासरे" टंडास्थाने शाखासपुरा-स्थाने भट्टारक श्रीलजितकीर्तिदेवा मन्थलिसापितं, कांगीपुरे वाइ विमलसिरि प्रेषित इध्वं (ध्वज) कर्मसाय निमित्तं सिखावतमिति । सुवुद्धि सुपुत्र पद्मसिंह लिखितं । शुभमस्तु । —गुच्छक पृ० १०४



डा० साहव का समय-सम्बन्धी निष्कर्ष ठीक नहीं है। श्वेताम्बरीय विनयचन्द्र सूरि से तो वे पृ० कृ० हैं ही। वि० सं० १५७६ विनयचन्द्र का समय नहीं है किन्तु उस गुच्छक के लिपि होने का समय है जो सुनपत (वर्तमान सोनीपत) में उक्त संवत् में लिखा गया था। श्वेताम्बरीय विनयचन्द्र सूरि से भट्टारक विनयचन्द्र पूर्ववर्ती हैं। कवि ने कुमारपाल के भतीजे अजयनरेश के विहार में बैठकर तहनगढ़ में चून्डी रास बनाया है। सं० १४५५ की तो कल्याणक रास की लिखित प्रति उपलब्ध है। विनयचन्द्र मुनि का समय विक्रम की १३ वीं शताब्दी का मध्य भाग या चौदहवीं का प्रारम्भिक भाग हो सकता है। उससे बाद का नहीं।

७४वीं प्रशस्ति 'सोखवइविहारकहा' की है कि जिसके कर्ता कवि विमलकीर्ति हैं।

प्रस्तुत कथा में व्रत की विधि और उसके फल का विधान किया गया है। कवि ने अपनी कोई गुरु परम्परा और रचना काल नहीं दिया। पर-सूत्रों से यह ज्ञात होता है कि प्रस्तुत कवि माथुर गच्छ वागडसंघ के मुनि रामकीर्ति के शिष्य थे। जिनका समय विक्रम की १३वीं शताब्दी का है।

राजस्थान शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची नं० ४ के पृष्ठ ६३२ पर 'सुगन्धदशमी कथा' का उल्लेख है, जिसकी अन्तिम प्रशस्ति में विमलकीर्ति को रामकीर्ति का शिष्य बतलाया गया है<sup>३</sup>। इससे यह रचना उन्हीं की जान पड़ती है। उनकी अन्य कथा रचनाये हैं। यह अभी ज्ञात नहीं हो सका। प्रस्तुत वागडसंघ के रामकीर्ति कब हुए, यहां यह विचारणीय है। रामकीर्ति नाम के दो विद्वानों का नाम मेरे ऐतिहासिक रजिस्टर में उल्लिखित है<sup>४</sup>। उनमें से प्रथम रामकीर्ति ही विमलकीर्ति के गुरु हो सकते हैं। ये रामकीर्ति वही जान पड़ते हैं, जो जयकीर्ति के शिष्य थे, और जिनकी लिखी हुई प्रशस्ति चित्तौड़ में सं० १२०७ में उत्कीर्ण की गई उपलब्ध है<sup>५</sup>। इससे रामकीर्ति का समय विक्रम की १३वीं शताब्दी है। क्योंकि जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता यश कीर्ति ने जो विमलकीर्ति के शिष्य थे। अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्वेताम्बरीय विद्वान् धनेश्वरसूरि का उल्लेख किया है जो अभयदेवसूरि के शिष्य थे<sup>६</sup> और जिनका समय सं० ११७१ है। इससे भी प्रस्तुत राम-

१. आसि पुरा विस्थिण्णे वायडसंघे संसंघ-संकासो।

मुणिराम इत्तिघीरो गिरिव्व णइसुव्व गंभीरो ॥१८॥

संजाउ तस्स सीसो विवुहो सिरि 'विमल इत्ति' विव्वलओ।

विमलयइकित्ति खडिया धवलिय धरणियल गयणयलो ॥१९॥

—जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

२. रामकित्ति गुरु विणउ करेविणु विमलकित्ति महियलि पडेविणु।

पच्छइ पुणु तवयरण करेविणु सइ अणुकमेण सो मोक्ख लहेसइ ॥ —सुगन्ध दशमी कथा प्रशस्ति

३. प्रथम रामकीर्ति जयकीर्ति के शिष्य थे, देखो एपि आफिका इडिका जि० २, पृ० ४२१ दूसरे रामकीर्ति जो मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने सं० १४१३ में वैशाख सुदि १३ बुधवार के दिन अमरावती के चौहान राजा अजयराज के राज्य में लंबकंचुकान्वयी श्रावक ने एक जिनमूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जो भूगर्भ से प्राप्त होकर भोगांव के मंदिर में खंडितावस्था में मौजूद है। (देखो, जैन सि० भा० भा० २२ अंक २।

४. एपिआफिका, इडिका जि० २ पृ० ४२१

५. सुवणाणं मज्झणो ताण पसाएण इट्ठसपत्तं।

णमिऊण तस्स चलणे भावेण धणेसरं गुरुस्स ॥४॥ —जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

कीर्ति १३वीं के अन्तिम चरण और १३वीं के प्रारम्भिक विद्वान् ज्ञात होते हैं और विमलकीर्ति का समय भी १३वीं शताब्दी मुनिश्चित हो जाता है। यहां यह विचार अप्रासंगिक होगा कि विद्याधर जोहरापुरकर ने 'भट्टारक सम्प्रदाय' के पृष्ठ २६३ में जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता यश-कीर्ति का समय 'अनुमानतः १५ वीं सदी है' ऐसा लिखा है जो किसी भूल का परिणाम है। ऊपर जो विचार किया गया है उससे स्पष्ट है कि ये यश-कीर्ति विक्रम की १३ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। उनकी दृष्टि धनेश्वर गुरु के उल्लेख पर नहीं गई जान पड़ती, इसीसे - ऐसा लिखा है।

७५वीं प्रदास्त 'चन्दन छट्टी कहा' की है जिसके कर्ता कवि लक्ष्मण या लाम्बू है। इस कथा में 'चन्दन छट्ट' के व्रत का परिणाम बतलाया गया है, और व्रत विधि के साथ उसके अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है।

कथाकार ने अपना कोई परिचय नहीं दिया और न अपनी गुरु परम्परा ही दी, जिससे यह कहना अत्यन्त कठिन है कि पं० लक्ष्मण की या लाम्बू की गुरु परम्परा क्या है और वे किस वंश के थे? अपभ्रंश भाषा के दो कवि लक्ष्मण नाम के हैं। उनमें प्रथम लक्ष्मण कवि वे हैं, जो जैसवाल वंश में उत्पन्न हुए थे, इन के पिता का नाम 'साहूल' या, यह 'त्रिभुवनगिरि' या तहनगढ़ के निवासी थे, उसके विनष्ट होने पर विन-राम पुर आये थे, वहां पुरवाड वंशीय सेठ श्रीधर की प्रेरणा से लक्ष्मण ने जिनदत्तचरित्र की रचना सं० १३७५ में चौप कृष्णा पन्नी रविवार के दिन की थी। इनका परिचय अन्यत्र दिया हुआ है।

दूसरे कवि लक्ष्मण वे हैं, जो रतनदेव वरिष्क के पुत्र थे और जो मालव देश के 'गोरादनगर' के निवासी थे। इन्होंने २२ कडवकों और चार संधियों में 'रोमिणाह चरित' की रचना की थी। इन दोनों लक्ष्मणों में से यह कथा किस की बनाई हुई है या लक्ष्मण नाम के कोई तीसरे ही कवि इस कथाके कर्ता हैं। यह सब अनुसन्धान करने की जरूरत है।

७६वीं और ७७वीं प्रदास्तियां क्रमशः 'निडुंल सप्तमी कथा' और 'दुन्दारस कथा' की है, जिनके कर्ता मुनि बालचन्द्र हैं।

प्रस्तुत कथाओं में व्रतों के फल का विधान किया गया है और व्रतों के अनुष्ठान की विधि बतलाते हुए उनके आचरण की प्रेरणा की गई है।

मुनि बालचन्द्र माधुरसंघ के विद्वान् उदयचन्द्र मुनि के शिष्य और विनयचन्द्र मुनि के गुरु थे। विनयचन्द्र का समय विक्रम की १३ वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और १४ वीं शताब्दी का प्रथम चरण है। अतएव इनके गुरु मुनि बालचन्द्र का समय विक्रम की १३ वीं शताब्दी का मध्य चरण हो सकता है पर निश्चित समय के लिए अभी और भी श्रवण की जरूरत है।

७८वीं प्रदास्त भी 'रविवय कहा' की है, जिसके कर्ता उक्त माधुर संधी मुनि नेमचन्द्र हैं।

प्रस्तुत कथा में रविवार के व्रत की विधि और उसके फल प्राप्त करने वाले की कथा दी गई है। अन्य प्रदास्त में रचना काल दिया हुआ नहीं है। अतएव यह भी कहना कठिन है कि उनका निश्चित समय क्या है? कथा के भाषा साहित्यादि पर से यह रचना १५ वीं शताब्दी की जान पड़ती है। हो सकता है कि यह शस्ये भी पूर्व रची गई हो। अन्य साधन सामग्री का श्रवण कर कवि का यथार्थ समय निश्चित करना आवश्यक है।

१. बारहमस्य सत्तरयं पंचोत्तरयं विषमशान्ति विराजतः।

पञ्चमशान्ति रविवारश्च छट्टि सत्तरश्च पुनमास सम्मत्ततः॥

— विनयचन्द्र चरित प्रदास्त

७६वीं प्रशस्ति 'सुगन्धदशमी कथा' की है जिसके कर्ता कवि नयनानन्द हैं।

प्रस्तुत कृति में दो सन्धियां और २१ कडवक हैं। जिसमें मुनि निन्दा रूप पाप के फल से होने वाली शारीरिक दुर्गन्धता और कुयोनियों में भ्रमण आदि के दुर्गोत्था सुगन्धदशमी व्रत के अनुष्ठान के परिणाम स्वरूप होने वाली शारीरिक सुन्दरता और उच्च कुल आदि की प्राप्ति का फल दिखलाया गया है। यह कथा कव रची गई इसका कवि ने कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। प्रस्तुत ग्रंथ की प्रशस्ति पंचायती मंदिर खजूर मस्जिद दिल्ली की अशुद्धि प्रति पर से दी गई है। हाल में इसकी दूसरी प्रति जयपुर के बड़े तेरापत्री मन्दिर के शास्त्र भंडार से देखने को मिली, जो प्रायः शुद्ध है और विक्रम संवत् १५२४ की लिखी हुई है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रंथ सं० १५२४ के बाद का लिखा हुआ नहीं है किन्तु पूर्ववर्ती है। और सम्भवतः विक्रम की १५ वीं शताब्दी या उससे भी कुछ पूर्व रची गई हो। कवि मुशालचन्द ने इसका हिंदी पद्यानुवाद भी कर दिया है जो भद्रपद शुक्ला दशमी के दिन शास्त्र सभा में पढ़ा जाता है। कथा रोचक और सरस है।

८०वीं प्रशस्ति 'मुक्तावलि कथा' की है, जिसके कर्ता कोई अज्ञात कवि हैं। ग्रंथ में मुक्तावलि व्रत के विधान और उसके फल की कथा दी गई है। कथा में रचनाकाल भी नहीं दिया है। जिससे उसके संबंध में निश्चयतः कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है अन्वेषण करने पर किसी प्रति में कर्ता का नाम भी उपलब्ध हो जाय।

जयपुर के पाटीदीमंदिर के शास्त्रभंडार में 'मुक्तावलि विधान कथा' की एक अपूर्ण प्रति उपलब्ध है। जो संवत् १५४१ फाल्गुण सुदी ५ की लिखी हुई है। यदि यह कथा वही हो, जिसकी संभावना की गई है, तो इसका रचनाकाल भी विक्रम की १५ वीं शताब्दी होना चाहिए। अधिकांशतः अपभ्रंश की कथाएं १५वीं १६वीं शताब्दी में ही अधिक लिखी गई हैं।

८१वीं प्रशस्ति 'अनुपेहारास' की है जिसके कर्ता कवि जल्हग हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने, अनित्य अशरण, संसार, एकत्व अन्वयत्व, अशुचि, आश्रय, संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ और धर्म, इन वारह भावनाओं के स्वरूप को दिखलाते हुए उनके बार-बार चिन्तन करने की प्रेरणा की है। वास्तव में ये भावनाएं देह-भोगों के प्रति अरुचि उत्पन्न कराती हुई आत्म-स्वरूप की ओर आकृष्ट करती हैं। इसीलिए इन्हें माता के समान हितकारी बतलाया है। कवि जल्हग कव हुए, यह रचना पर से ज्ञात नहीं होता। संभवतः इनका समय विक्रम की १४वीं या १५ वीं शताब्दी हो।

८२वीं प्रशस्ति 'वारस अणुवेवखारास' की है। जिसके कर्ता पं० योगदेव हैं।

इस ग्रन्थ में भी अनित्यादि वारह भावनाओं का स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। कवि ने इस ग्रंथ को कुम्भनगर के मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में बैठकर बनाया है। इनका समय और गुरुपरम्परा अभी अज्ञात है। प्रस्तुत कुम्भनगर कनारा जिले में बसा हुआ है। इनकी एक कृति तत्त्वार्थ-सूत्र की टीका 'मुखवोव-वृत्ति' है। जिसका परिचय जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के प्रथम भाग में दिया गया है<sup>१</sup>। उससे ज्ञात होता है कि कवि राज्य मान्य थे। और राजा भुजवली भीमदेव की राज्य सभा में उन्हें उचित सम्मान मिला हुआ था, उक्त राजा भुजवली भीमदेव कनारा जिले में किस प्रदेश के शासक थे और कब तक उन्होंने वहाँ राज्य

१. देखो, राजस्थान के जैन ग्रन्थभंडारों की सूची चतुर्थभाग पृ० २३६

२. देखो, जैनग्रंथ प्रशस्ति संग्रह भा० १ प्रस्तावना पृ० ४७।

किया है। इसके ज्ञात होने पर या कवि की गुरु परम्परा-मिलने पर ग्रन्थ कर्ता के समय का यथार्थ निश्चय हो सकता है।

१३वीं प्रशस्ति 'अणुवेक्खा दोहा' की है जिसके कर्ता कवि लक्ष्मीचन्द्र है। प्रस्तुत ग्रंथ में अनित्यादि वारह भावनाओं का ४७ दोहों में परिचय कराया गया है। और ग्रन्थ में उनका फल बतलाते हुए लिखा है कि—'जो मानव व्रत-तप-शील का अनुष्ठान करते हुए निर्मल आत्मा को जानता है, वह कर्मदाय करता हुआ शीघ्र ही निर्वाण का पात्र होता है।

कवि की एक दूसरी कृति 'श्रावकचरित्र' है जिसमें २२७ दोहा दिये हुए हैं, जिनमें श्रावकाचार का सरस वर्णन अन्य श्रावकाचारों के अनुसार ही किया गया है। किन्तु इसमें ग्रन्थात्म की पुष्टि है। इस कारण रचना में वैशिष्ट्य आ गया है। रचना सुन्दर और सरस है। कोई कोई दोहा चुभता हुआ-सा है। यह ग्रंथ कब बना, इसके जानने का कोई साधन नहीं है, फिर भी यह रचना पुरानी है। ग्रन्थ कर्ता लक्ष्मीचन्द्र किस परम्परा के थे, उनकी गुरु परम्परा क्या है? यह कुछ ज्ञात नहीं होता। इस नाम के अनेक कवि हुए हैं।

इस 'श्रावकाचार दोहा' की एक प्रति सं १५५५ में कार्तिक सुदी १५ सोमवार के दिन सरस्वती गच्छ बलात्कारण के भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य लक्ष्मण के पठनार्थ लिखी गई है। जिससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उक्त ग्रन्थ उससे बाद का नहीं हो सकता, किन्तु पूर्ववर्ती है। कितने पूर्ववर्ती है, यह विचारणीय है, संभवतः यह १५वीं शताब्दी की रचना हो, विक्रम की १६वीं शताब्दी के विद्वान् ब्रह्म श्रुतसागर ने अपने टीकाग्रन्थों में इस ग्रंथ के दोहा लक्ष्मीचन्द्र के नाम से ही उद्धृत किये हैं। इससे यह भी सुनिश्चित है कि कवि श्रुतसागर से पूर्ववर्ती हैं। कवि का समय १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १६वीं का प्रारम्भ भी हो सकता है, किन्तु अभी इस सम्बंध में और भी प्रमाणों के खोजने की जरूरत है।

१४वीं प्रशस्ति 'अणुवेक्खा' की है जिसके कर्ता कवि अक्षू हैं।

इस ग्रन्थ में आत्मा को ऊँचा उठाने के लिए संसार और उसके स्वरूप को बतलाकर संसार की अज्ञानता का दिग्दर्शन करते हुए जीव का पर द्रव्य से होने वाले राग को हेय बतलाया है। साथ ही, यह भी प्रकट किया है कि शरीर की अशुचिता उससे राग करने योग्य नहीं है। वह मल पूरित और दुर्गन्ध से युक्त है। इस जीव का कोई सगा साथी भी नहीं है, सभी स्वार्थ के साथी हैं, अतएव उनसे राग कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह जीवात्मा अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही सुख-दुःखरूप कर्मों के फलों का उपभोग करता है। मन वचन काय की चंचल प्रवृत्ति से कर्म आते हैं। उनके बंधन से आत्मा परतन्त्रता का अनुभव करता है अतएव आसन्न और वंध के कारणों का परित्याग करना ही श्रेयकर है। साथ ही अपनी इच्छाओं का संवरण करते हुए फल की अनिच्छा पूर्वक तपश्चरण द्वारा कर्म की निर्जरा करना चाहिए, और दुर्लभ रत्नत्रय रूप बोधि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह अनित्यादि वारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए आत्मा को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना आवश्यक है। कवि ने रचना में अपना कोई परिचय नहीं दिया, और न गुरु परम्परा ही दी है, जिससे समय निर्णय किया जा सके। फिर भी यह रचना भाषा साहित्यादि पर से १५वीं-१६वीं शताब्दी की जान पड़ती है।

१२. 'स्वस्ति संवत् १५५५ वर्षे कार्तिक सुदी १५ सोमे श्री मूलमंथे सरस्वती गच्छे बलात्कारणभे भट्टारक श्री विद्यानन्दि तत्पुत्रे भट्टारक मल्लिभूषण तच्छिष्ये पंडित लक्ष्मण पठनार्थं दत्ता श्रावकाचार शाश्वत समाम्पं ।

८५वीं-८६वीं और १०७वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः हरिवंशपुराण, परमेष्ठी प्रकाशसार और योगसार की हैं, जिनके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति हैं।

पहली कृति 'हरिवंश पुराण' है जिसमें ४७ सन्धियों द्वारा जैनियों के २२वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ के जीवन-परिचय को अंकित किया गया है। प्रसंगवश उसमें श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियों का संक्षिप्त जीवन चरित्र भी दिया हुआ है। इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हुई हैं। एक प्रति जैन सिद्धान्त भवन आरा में है, और दूसरी आमेर के भट्टारक महेन्द्रकीर्ति के शास्त्र भंडार में उपलब्ध है, जो संवत् १६०७ की लिखी हुई है। और जिसका रचनकाल संवत् १५५२ है। इसकी लिपि-प्रशस्ति भी परिशिष्ट में दे दी गई है। आरा की वह प्रति सं० १५५३ की लिखी हुई<sup>१</sup> और जिसमें ग्रन्थ के पूरा होने का निर्देश है जो मंड-पाचल (मांडू) दुर्ग के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य काल में दमोवादेश के जेरहट नगर के महाखान और भोजखान के समय लिखी गई है। ये महाखान, भोजखान जेरहट नगर के सूवेदार जान पड़ते हैं। वर्तमान में जेरहट नाम का एक नगर दमोह के अन्तर्गत है यह दमोह पहले जिला रह चुका है। बहुत सम्भव है कि यह दमोह उस समय मालवराज्य में शामिल हो। और यह भी हो सकता है कि मांडवगढ़ के समीप ही कोई जेरहट नाम का नगर रहा हो, पर उसकी संभावना कभी ही जान पड़ती है। क्योंकि प्रशस्ति में दमोवा देश का उल्लेख स्पष्ट है।

८६वीं प्रशस्ति 'परमेष्ठीप्रकाश सार' की है, इसकी एकमात्र प्रति आमेर ज्ञान भंडार में ही उपलब्ध हुई है। जिसमें आदि के दो पत्र और अन्तिम पत्र नहीं है। पत्र संख्या २८८, हैं ग्रंथ में ७ परिच्छेद या अध्याय हैं, जो तीन हजार श्लोक प्रमाण को लिये हुए हैं। ग्रन्थ का प्रमुख विषय धर्मोपदेश है। इसमें सृष्टि और जीवादि तत्त्वों का सुन्दर विवेचन कडवक और घत्ता शैली में किया गया है। कवि ने इस ग्रन्थ को भी उक्त मांडवगढ़ के जेरहट नगर के प्रसिद्ध नेमीश्वर जिनालय में की है। उस समय वहाँ ग्यासुद्दीन का राज्य था और उसका पुत्र नसीरशाह राज्य कार्य में अनुराग रखता था। पुंजराज नाम के एक वरिष्क उसके मन्त्री थे। ईश्वरदास नाम के सज्जन उस समय प्रसिद्ध थे। जिनके पास विदेशों से वस्त्राभूषण आते थे। जयसिंह, संघवी शंकर, तथा संघपति नेमिदास उक्त ग्रंथ के ज्ञायक थे। अन्य साधर्मि भाइयों ने भी इसकी अनुमोदना की थी और हरिवंशपुराणादि ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कराई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ विक्रम सं० १५५३ की श्रावण महीने की पंचमी गुरुवार के दिन समाप्त हुआ था।

एकसौ सात (१०७) वीं प्रशस्ति 'जोगसार' की है। प्रस्तुत ग्रन्थ दो परिच्छेदों या संधियों में विभक्त है, जिनमें गृहस्थोपयोगी आचार-सम्बन्धी सैद्धान्तिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। साथ में कुछ मुनिचर्या आदि के विषय में भी लिखा गया है।

ग्रन्थ के अन्तिम भाग में भगवान् महावीर के बाद के कुछ आचार्यों की गुरु परम्परा के उल्लेख के साथ कुछ ग्रंथकारों की रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है, और उससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि

१. संवत् १५५३वर्षे क्वारवादि द्वज सुदि (द्वितीया) गुरौ दिने अच्चेह श्री मण्डपाचल गढदुर्गे सुलतान ग्या सुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री दमोवादेशे महाखान भोजखान वर्तमाने जेरहट स्थाने सोनी श्री ईसुर प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मंडलाचार्य देविन्दकीर्तिदेव तच्छिष्य मंडलाचार्य श्री त्रिभुवनकीर्ति देवान् तस्य शिष्य श्रुतकीर्ति हरिवंश पुराणे परिपूर्णं कृतम्.....।

भट्टारक श्रुतकीर्ति इतिहास से प्रायः अनभिज्ञ थे और उसे जानने का उन्हें कोई साधन भी उपलब्ध न था, जितना कि आज उपलब्ध है। दिगम्बर-श्वेताम्बर सघ भेद के साथ आपुलीय (यापनीय) सघ भिल्ल और निःपिच्छक सघ का नामोल्लेख किया गया है। और उज्जैनी में भद्रबाहु से सम्राट् चन्द्रगुप्त की दीक्षा लेने का भी उल्लेख है। ग्रथकार संकीर्ण मनोवृत्ति को लिये हुए था, वह जैनधर्म की उस उदार परिणति से भी अनभिज्ञ था। इसीसे उन्होंने लिखा है कि 'जो आचार्य शूद्र पुत्र और नौकर वगैरह को व्रत देता है वह निगोद में जाता है और वह अनन्तकाल तक दुःख भोगता है'। प्रस्तुत ग्रन्थ सं० १५५२ में मार्गशिर महीने के शुक्ल पक्ष में रचा गया है।

कवि की इन तीन कृतियों के अतिरिक्त 'धम्मपरिवक्षा' नाम की एक चौथी कृति भी है जो अपूर्ण रूप में डा० हीरालाल जी एम० ए० डी० लिट् को प्राप्त हुई है। जिसका परिचय उन्होंने अनेकान्त वर्ष ११ किरण २ में दिया है। जिससे स्पष्ट है कि उक्त धर्मपरीक्षा में १७६ कडवक हैं और जिसे कवि ने सं० १५५२ में बनाकर समाप्त किया था<sup>२</sup>। इन चारों रचनाओं के अतिरिक्त आपकी अन्य क्या रचनाएँ हैं वे अन्वेषणीय हैं।

### कवि परिचय

भट्टारक श्रुतकीर्ति नन्दीसंघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। यह भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। ग्रंथकर्ता ने भ० देवेन्द्रकीर्ति को मृदुभाषी और अपने गुरु त्रिभुवनकीर्ति को अमृतवाणी रूप सद्गुणों के धारक बतलाया है। श्रुतकीर्ति ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को अल्प बुद्धि बतलाया है। कवि की उक्त सभी रचनाएँ वि० सं० १५५२ और १५५३ में रची गई हैं। और वे सब रचनाएँ मांडवगढ़ (वर्तमान मांडू) के सुलतान ग्यामुद्दीन के राज्य में दमोवा देश के जेरहट नगर के नेमिनाथ मंदिर में रची गई हैं।

इतिहास से प्रकट है कि सन् १४०६ में मालवा के सूबेदार दिलावर खाँ को उसके पुत्र अलफ खाँ ने विप देकर मार डाला था, और मालवा को स्वतन्त्र उद्घोषित कर स्वयं राजा बन बैठा था। उसकी उपाधि हुसंगसाह थी। इसने मांडवगढ़ को खूब मजबूत बनाकर उसे ही अपनी राजधानी बनाई थी। उसी के वंश में ग्यामुद्दीन हुया, जिसने मांडवगढ़ से मालवा का राज्य सं० १५२६ से १५५७ अर्थात् सन् १४६६ से १५०० ईस्वी तक किया है<sup>३</sup>। इसके पुत्र का नाम नसीरशाह था, और इसके मंत्री का नाम पुंजराज था, जो जैनधर्म का प्रति पालक था।

६७वीं प्रदास्ति 'सतिगाह चरित्र' की है, जिसके कर्ता कवि महिन्दु या महाचन्द्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में १३ परिच्छेद हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या पाँच हजार के लगभग है, जिनमें जैनियों के १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्ती का चरित्र दिया हुआ है। जो चक्रवर्ती, कामदेव और धर्मचक्री थे। जिन्होंने चक्रवर्ती के अनेक उत्तमोत्तम भोग भोगे। और अन्त में इन्द्रिय-विषयों को दुखद जान देह-भोगों से विरक्त हो दिगम्बर दीक्षा धारण कर तपश्चरण किया, और समाधिरूप चक्र से कर्म-शान्नुओं को विनष्ट कर धर्मचक्री बनें। विविध देवों में विहार कर जगत को कल्याण का मार्ग बतलाया। पश्चात् अवशिष्ट अघाति कर्म का

१. यह जो मूरि देइ वउ णिच्चहं, णीच-मूद-सुय-दासी-भिच्चहं।

जाम णियप्रसुह ण्णु हुज्जदं, अमियकाल तहं धोर-दुह भुंजइ ॥

—योगसार पत्र ६५

२. See Cambridge shorter History of India. P. ३०६.

विनाश कर आत्मानन्द में निमग्न हो गए। जो सदाकाल निजानन्दरस में लुके रहेंगे। कवि ने ग्रन्थ में चौपाई, पद्वडिया और सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना जोयणिपुर<sup>१</sup> (दिल्ली) निवासी अग्रवाल कुलभूपण गगं गोत्रीय साहु भोजराज के ५ पुत्रों में (खीमचंद (खेमचन्द) गाराणचंद (ज्ञानचन्द) श्रीचंद गजमल्ल और रणमल) इनमें से द्वितीय पुत्र ज्ञानचन्द के पुत्र विद्वान साधारण श्रादक की प्रेरणा से इस ग्रन्थ की रचना की गई है। इसीसे कवि ने ग्रन्थ साधारण के नामांकित किया है और ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में साधारण के वंश का परिचय कराया गया है। उसने हस्तिनापुर की यात्रार्थ संघ चलाया था और जिनमन्दिर का निर्माण भी कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी करवाई थी तथा पुण्यउपार्जन किया था। भोजराज के पुत्र ज्ञानचंद्र की पत्नी का नाम 'सउरा-जही' था, जो अनेक गुणों से विभूषित थी, उससे तीन पुत्र हुए थे। पहला पुत्र सारंग साहु था, जिसने सम्मेद-शिखर की यात्रा की थी। उसकी पत्नी का नाम 'तिलाकाही' था। दूसरा पुत्र साधारण था, जो बड़ा विद्वान् और गुणी था, उसका वैभव बहुत बढ़ा चढ़ा था। उसने 'शत्रुंजय' की यात्रा की थी। उसकी स्त्री का नाम 'सीवाही' था, उससे चार पुत्र हुए थे। अभयचंद्र, मल्लिदास जितमल्ल और सोहिल्ल। इनकी चारों पत्नियों के नाम क्रमशः—चंदराही, भदासही समदो और भीखराही थे, ये चारों ही पतिव्रता और धर्मनिष्ठा थीं। इस तरह साधारण साहु ने समस्त परिवार के साथ शांतिनाथ चरित बनवाया था।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना विक्रम सं० १५८७ की कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन मुगल बादशाह बाबर<sup>२</sup> के राज्य काल में बनाकर समाप्त किया था<sup>३</sup>। कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न विद्वान् कवियों का स्मरण किया है। अकलंक, पूज्यपाद (देवन्दी) नेमिचंद्र सैद्धांतिक, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदन्त, यशःकीर्ति रङ्गू, गुणभद्रसूरि, और सहणपाल। इनमें से सहणपाल का कोई ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आया।

ग्रन्थकर्ता ने अपना और अपने पिता के नामोल्लेख के सिवाय अन्य कोई परिचय नहीं दिया है। किंतु काष्ठासंघ माथुरगच्छ की भट्टारकीय परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—काष्ठा संघ<sup>४</sup> माथुरगच्छ पुष्करगण में भट्टारक यशःकीर्ति मलयकीर्ति और उनके शिष्य गुणभद्रसूरि थे। इससे यह

१. जोयणिपुर दिल्ली का नाम है। यहां ६४ योगिनियों का निवास था, और उनका मन्दिर भी बना हुआ था। इस कारण इसका नाम योगिनीपुर पड़ा है। जोयणिपुर अपभ्रंश का रूप है। विशेष परिचय के लिए देखिए अनेकान्त वर्ष १३ किरण १ में 'दिल्ली के पांच नाम' शीर्षक मेरा लेख।

२. बाबर ने सन् १५२६ ईस्वी में पानीपत की लड़ाई में दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी को पराजित और दिवंगत कर दिल्ली का राज्य शासन प्राप्त किया था, उसके बाद उसने आगरा पर भी अधिकार कर लिया था, और सन् १५३० (वि० सं० १५८७) में आगरा में ही उसकी मृत्यु हो गई थी। इसने केवल ५ वर्ष ही राज्य किया है।

३. विक्रमरायहृदयवगयकालइ रिसिवसु-सर-भुवि-अकालइ।

कत्तिय—पढम-पविख-पंचमि दिणि, हुउ परिपुण्ण वि उगंतइ इणि। शांतिनाथ चरित प्र०

४. जोयणिपुर (दिल्ली) के उत्तर में जमुना नदी के किनारे बसी हुई 'काष्ठापुरी' में टांकवंश के राजा मदनपाल के आश्रय में पेदिभट्ट के पुत्र विश्वेश्वर ने 'मदन परिजात' नाम का निबंध १४वीं शताब्दी के अन्त समय में लिखा था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् सं० म० ओभा जी के अनुसार काष्ठा नामक नगर में नागवंशियों की टांक शाखा के राजाओं का छोटा सा राज्य था। इससे काष्ठासंघ की उत्पत्ति का स्थान दिल्ली की काष्ठापुरी ही जान पड़ती है। दूसरे काष्ठासंघ का सम्बन्ध अग्रवालों के साथ है।

स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत कवि इन्हीं की आम्नाय का था। पर इनमें से किसका शिष्य था यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

१०८०वीं, १०८१वीं, और १०८२वीं ये तीनों प्रशस्तियाँ क्रमशः 'सियंकलेहाचरित' सुयंघदसमी और मउडसत्तमी कहा रास की हैं, जिनके कर्ता पंडित भगवतीदास हैं।

मृगांक लेखाचरित में चार सन्धियाँ हैं, जिनमें कवि ने चन्द्रलेखा और सागरचन्द्र के चरित का वर्णन करते हुए चन्द्रलेखा के शीलव्रत का माहात्म्य ख्यापित किया है। चन्द्रलेखा विपदा के समय साहस और धैर्य का परिचय देती हुई अपने शीलव्रत से जरा भी विचलित नहीं होती, प्रत्युत उसमें स्थिर रहकर उसने सती सीता के समान अपने सतीत्व का जो अनुपम आदर्श उपस्थित किया है, वह अनुकरणीय है।

ग्रंथ की भाषा यद्यपि अपभ्रंश है, फिर भी उसका वह रूप हिन्दी भाषा के अधिक नजदीक ही नहीं है किन्तु उसके विकास का स्पष्ट बोधक है। जैसा कि उसके निम्न दोहों से स्पष्ट है।

“ससिलेहा गियकंत सम, धारड नंजमु साह ।  
जम्मरु मरणा जलंजली, दाण सुयणुभव-ताह ॥  
करित्तणुतउसिउपुरगयउ, सो वणि सायरचंदु ।  
ससिलेहा सुरवरुभई तजि तिय-तरणु अडण्डिदु ।  
लहि रारभवु गारवारण पर पावसि सुदरि सोइ ।  
कवि सुभगौतीदासु कहि पुणभय-भमण रा होइ ॥  
सीलु वडा संसार महि सील साहि सव काज ।  
इहि भवि पर भविसुह लहइ आसि भणइ मुनिराज ॥”

कवि भगवतीदास ने इस ग्रन्थ को हिसारकोट नगर के भगवान वर्धमान (महावीर) के मन्दिर में विक्रम संवत् १७०० अग्रहण शुक्ला पंचमी सोमवार के दिन पूर्ण किया है। उस समय वहाँ मन्दिर में श्रद्धाचारी जोगीदास और पं० गंगाराम उपस्थित थे।

१०८०वी प्रशस्ति 'मउडसत्तमीकहा की है' जिसमें मुकुट सतमी के व्रत की अनुष्ठान विधि और उसके फल का वर्णन किया गया है।

१०८१वी प्रशस्ति 'सुयंघदसमी कहाव्रतरास' की है, जिसमें भाद्रपद शुक्ला दशमी के व्रत का विधान और उसके फल का कथन किया गया है।

कवि-परिचय

पंडित भगवतीदास काष्ठासंघ मायुरगच्छ पुष्करगण के विद्वान् भट्टारक गुणचन्द्र के पट्टघर भ० सकलचन्द्र के प्रशिष्य और भट्टारक महेन्द्रसेन के शिष्य थे। महेन्द्रसेन दिल्ली की भट्टारकीय गद्दी के पट्टघर थे। इनकी अभी तक कोई रचना मेरे देखने में नहीं आई और न कोई प्रतिष्ठित मूर्ति ही प्राप्त हुई है। इससे इनके सम्बन्ध में विशेष विचार करना सम्भव नहीं है। भ० महेन्द्रसेन प्रस्तुत भगवतीदास के गुरु थे, इसीसे

१. रदयो कोट हिसारे जिणहरि वर बीर बड्जनागस्त ।  
तत्पठिमी वयपारी जोईदासो वि वयपारीओ ॥  
भागवद मट्टरीया वत्तिगवर विति माहणा विणिण ।  
मइ विवुड सुंगारामो तत्पठिमी जिणहरेमु मइवंती ॥ — गंगावलेनाचरित .



उन्होंने अपनी रचनाओं में उनका आदर के साथ स्मरण किया है। यह बूढ़िया<sup>१</sup> जिला अम्बाला के निवासी थे। इनके पिता का नाम किसनदास था और जाति अग्रवाल और गोत्र वंसल था। इन्होंने चतुर्थवय में मुनिव्रत धारण कर लिया था<sup>२</sup>। यह संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान थे। इनकी पचास से अधिक हिन्दी की पद्यवद्ध रचनाएँ उपलब्ध हैं। उन रचनाओं में अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जो भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जैसे अनेकार्थनाममाला (कोष) सीतासतु, टंडाणारास, आदित्यव्रतरास, खिचड़ीरास, साधुसमाधिरास, मनकरहारास और रोहिणीव्रतरास आदि<sup>३</sup>। इनकी इस समय उपलब्ध रचनाएँ संवत् १६५१ से १७०० तक की उपलब्ध हैं। जो चकता बादशाह अकबर, जहांगीर शाहजहां के राज्य में रची गई हैं। एक ज्योतिष और वैद्यक की रचना भी इन्होंने संस्कृत में रची थी, जो कारंजा के शास्त्र भंडार में सुरक्षित हैं। इनके रचे हुए अनेक पद और गीत आदि हैं, इनकी सब रचनाएँ विभिन्न स्थानों पर रची गई हैं। उनमें से कुछ रचनाओं में रचना के कुछ नाम भी निर्दिष्ट किये हैं। उनके नाम बूढ़िया (जि० अम्बाला) दिल्ली, आगरा, हिसार, कपिस्थल<sup>४</sup> सिहरदि<sup>५</sup> और संकशा आदि हैं। कवि की प्रायः सभी रचनाएँ मैनपुरी, दिल्ली और अजमेर के शास्त्र भंडारों में सुरक्षित हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि को देशाटन करने का उत्साह था। अर्गलपुर में कवि को अधिक समय तक ठहरे का अवसर मिला<sup>६</sup> और वहां के तत्कालीन शासक अकबर, जहांगीर और शाहजहां तीनों को अत्यन्त निकटता से देखने का अवसर मिला है। इसीसे उन्होंने उनकी प्रशंसा की है। उस समय आगरा उच्चकोटि के शहरों में गिना जाता था और व्यापार का केन्द्र बना हुआ था, वहां अनेक जैन राज्यकीय उच्चपदों पर स्थित थे, सैनिक आफिसर, कोषाध्यक्ष और उमराहों के मंत्री एवं सलाहकार रहे हैं। वे सब वहां की अध्यात्म-गोष्ठी में सरीक होते थे। कवि की कुछ रचनाओं में रचना समय मिलता है। संवत् १६५१ में अर्गलपुर जिनवन्दना<sup>६</sup>, १६८० में

१. बूढ़िया पहले एक छोटी सी रियासत थी, जो मुगलकाल में धन-धान्यादि से खूब समृद्ध नगरी थी। जगाधरी के बस जाने से बूढ़िया की अधिकांश आवादी वहां से चली गई। आजकल वहां परखंडहर अधिक हो गए हैं, जो उसके गत-वैभव की स्मृति के सूचक हैं।
२. गुरु मुनि माहिदसेन भगोती, तिस पद-पंकज रैन भगोती।  
किसनदास वणिउ तनुज भगोती, तुरिये गहिउ व्रत मुनि जु भगोती ॥  
नगर बूढ़िये वसै भगोती, जन्मभूमि है आसि भगोती।  
अग्रवाल कुल वंसल गोती, पण्डित पद जन निरख भगोती ॥८३॥

—बृहत्सीतासतु, सलावा प्रति

३. देखो अनेकांत वर्ष ११ किरण ४-५ में कविवर भगवतीदास और उनकी रचनाएँ शीर्षक मेरा लेख
४. कपिस्थल को कांपिल्य और संकाश्य भी कहा जाता है। यह पांचाल देश की राजधानी थी। पाणिनीय की काशिकावृत्ति में (४—२, १२१ में) कांपिल्य की विशालता का वर्णन है। यह जैनियों के १३वें तीर्थंकर विमलनाथ की जन्मभूमि है।
५. यह नगर इलाहाबाद और जोनपुर के मध्य में बसा हुआ था, यहाँ अग्रवाल जैनियों का निवास था। उनमें कवि दरगहमल और उनके पुत्र विनोदीलाल भी थे। सिहरदि शब्दका अर्थ पहले शहादरा समझ लिया गया था, पर वह गलत था।
६. देखो, जैन सन्देश शोधांक ५, पृ० १८२, २२ अक्टूबर सन् १९५६।

चूनडीरास, १६८७ में अनेकार्यनाममाला और सीतासतु, १६९४वें में ज्योतिपसार<sup>१</sup> शाहजहां के राज्य में बनाया और सं० १७०० में हिसार में मृगांकलेखाचरित्र और मं० १७१२ में वैद्यविनोद<sup>२</sup> बनाकर समाप्त किया है। इससे कवि दीर्घायु वाले थे। उनका समय १७ वीं १८ वीं शताब्दी है। इनका विशेष परिचय अनेकान्त वर्ष ११ किरण ४-५ में पृ० २०५ से २०८ तक देखिये।

८९वीं प्रशस्ति 'अजित पुराण' की है। जिसके कर्ता कवि विजयसिंह हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में १० संधियां हैं। जिनमें जैनियों के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ के चरित्र का चित्रण किया गया है। रचना साधारण है और भाषा अपभ्रंश होते हुए भी देशी शब्दों की बहुलता को लिये हुए है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना महाभव्य कामराय के पुत्र पंडित देवपाल की प्रेरणा से की है। इसी कारण कवि ने ग्रंथ की आद्यंत प्रशस्ति में कामराय के परिवार का सक्षिप्त परिचय भी कराया है। वरिणपुर या वरिणकपुर नाम के नगर में खण्डेलवाल<sup>३</sup> वंश में कउडि (कोड़ी) नाम के पण्डित थे, उनके पुत्र

१. वर्षे पोडशगतचतुर्नवतिमिते श्रीविश्वमादित्यके ।  
पञ्चन्यां दिवसे विमुद्गरके मास्थारिने निर्मले ॥  
पञ्चे स्वाति नक्षत्रयोगसहिते वारे बुधे संस्थिते ।  
राजत्साहिगहावदीन भुवने साहिजहा कल्पते ॥

—देखो, सी० पी० एण्ड बरार कंटेलाग डा० रा० व० हीरालाल ।

२. सत्रहसई शचिडोत्तरई सुकलवतुर्दंभि चंतु ।  
गुरु दिन भन्यो पूरनु करिउ मुलितांपुरि सहजयतु ।  
लिखिउ भकबरावाद गिह साहिजहां के राज ।  
साहनि मई संपइ सरिसु देश-कोप-गज-बाज ॥

—देखो वही, सी० पी० एण्ड बरार कंटेलाग ।

३. 'खंडेलवाल' शब्द एक उपजाति का सूचक है, जो चौरासी उपजातियों में से एक है। इस जाति का विकास राजस्थान के खण्डेला नामक स्थान से हुआ है। इस जाति के ८४ गोत्रों का उल्लेख मिलता है जिनमें छावड़ा, काशलीवाल, बाकलीवाल, लुहाड्या, पहाड्या, पाड्या, सोनी, गोयां, नौया और कासा आदि प्रमुख हैं। इन सब गोत्रों आदि की कल्पना ग्राम नगरादि के नामों पर से हुई है। इस जाति में अनेक सम्पन्न धनी, विद्वान और दीवान जैसे राजकीय उच्च पदों पर काम करने वाले अनेक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। जिन्होंने राज्य के संरक्षण में पूरा योगदान दिया है, और प्रजा का पालन पुनवत् किया है। क्योंकि यह जाति भी क्षत्रिय ही थी, किन्तु वाणिज्यादि के कारण आज वह अपने उस क्षत्रियत्व को खो चुकी है। इस जाति की धार्मिकता प्रसिद्ध है। शाह दीपचन्द्र और टोडरमल्लजैसे प्रतिभा सम्पन्न विद्वान भी इसी में हुए हैं। जो जैन ममाज के निये गौरव की वस्तु हैं। रामचन्द्र छावड़ा जैसा बोर पाराक्रमी और होसले वाला राज्य संरक्षक दीवान, अमरचन्द्र जैसा प्रतिष्ठित विद्वान, गुणज्ञ, राजनी-तिज्ञ, धर्मनिष्ठ दयालु दीवान, जिसने अपने देस और धर्म की रक्षायें प्राणोत्साह उत्सर्ग किया था। इस जाति के द्वारा निर्मापित अनेक गगनचुम्बी विशाल जिन मन्दिर हैं। जिनमें १६वीं-१२वीं शताब्दी तक की प्रतिष्ठित प्रमान्त मूर्तियां उमलवा होती हैं। अनेक ग्रंथ, ग्रंथ-मंडारों में रचना कराकर और उन्हें प्रतिलिपि कराकर मुनियों, भट्टारकों, अजिकाश्री और थावक-आविकाश्री तथा मन्दिर जो में नैट किये हुए मिलते हैं। संवत् १२८७ में एक संडेन परिवार की प्रेरणासे 'गोमिणाहचरित' नाम का ग्रंथ मालवा के परमारवंशी राजा देवपाल के राज्यकालमें कवि दामोदर द्वारा रचा गया था। अनेक विद्वानों ने टीका ग्रंथ लिखे। ये सब कार्य उसकी धर्मनिष्ठा के प्रतीक हैं।

छीतु थे, जो बड़े धर्मनिष्ठ और श्रावक की ११ प्रतिमाओं का पालन करते थे। वहीं पर लोकमित्र पण्डित खेता थे, उनके प्रसिद्ध पुत्र कामराय थे। कामराय की पत्नी का नाम कमलथी था, उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिनका नाम जिनदास रयणु और दिउपाल (देवपाल) था। उसने वहां वर्धमान का एक चैत्यालय भी बनवाया था, जो उत्तुंग ध्वजाओं से अलंकृत था और जिसमें वर्धमान तीर्थंकर की प्रशान्त मूर्ति विराजमान थी और उसी देवपाल ने उक्त चरित्र-ग्रंथ लिखवाया था।

कवि ने ग्रन्थ की प्रथम सन्धि के ६वें कडवक में जिनसेन, अकलंक, गुणभद्र, गृध्रपिच्छ, पौडिल्ल (प्रोष्टिल्ल), लक्ष्मण, श्रीधर और चउमुह (चतुर्मुख) नाम के विद्वानों का उल्लेख किया है।

### कवि-परिचय

कवि ने अपना परिचय निम्नप्रकार व्यक्त किया है—मेरुपुर में मेल्कीति, करमसिंह राजा के घर में हुए, जो पद्मवती पुरवाड वंश में उत्पन्न हुए थे। कवि के पिता का नाम सेठ दिलहरा था और माता का नाम राजमती था। यद्यपि कवि ने अपनी गुरुपरम्परा का कोई उल्लेख नहीं किया। किन्तु ग्रंथकर्ता ने अपना यह ग्रन्थ वि० सं० १५०५ में कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बनाकर समाप्त किया था। उसी संवत् की लिखी हुई एक प्रति भोगांव के शास्त्रभण्डार से बाबू कामताप्रसाद जी अलीगंज को प्राप्त हुई है<sup>१</sup>, जो उनके पास सुरक्षित है। अन्य प्रतियां जयपुर के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध हैं। एक अपूर्ण प्रति मेरे पास भी है।

६०वीं प्रशस्ति से लेकर ६८वीं प्रशस्ति तक ९ प्रशस्तियां क्रमशः निम्न ग्रन्थों की हैं जिनके नाम 'कोइलपंचमी कहा' मडडसत्तमी कहा, रविवयकहा, तियालचउवीसीकहा, बुसुमंजलि कहा, निदूसि सत्तमी वयकहा, गिज्भरपंचमी कहा, और अणुपेहा हैं। जिनके कर्ता ब्रह्म साधारण हैं। इन कथाओं में जैन सिद्धान्त के अनुसार व्रतों का विधान और उनके फल का विवेचन किया गया है। साथ ही व्रतों के आचरण का क्रम और तिथि आदि के उल्लेखों के साथ उद्यापन की विधि को भी संक्षिप्त में दिया हुआ है। अंतिम ग्रंथ अनुप्रेक्षा में अन्तित्यादि द्वादश भावनाओं के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए संसार और देह-भोगों की असारता का उल्लेख करते हुए आत्मा को वैराग्य की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

ब्रह्म साधारण ने अपनी गुरु परम्परा का तो उल्लेख किया है, किन्तु अपना कोई परिचय नहीं दिया, और न रचना-काल का समय ही दिया है। कुन्दकुन्दगणी की परम्परा में रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनंदि, हरिभूषण, नरेन्द्रकीर्ति, विद्यानंदि और ब्रह्म साधारण। ब्रह्म साधारण भ० नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य

१. संवत् १५०५ वर्षे कार्तिक सुदी पूर्णमासी दिने श्री मूलसंवे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री पद्मनंदिदेव तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेव तस्य पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेव तस्मान्नाये श्री खंडेल-वालान्वये सकल ग्रन्थार्थ प्रवीणः पंडित कउडिः तस्य पुत्रः सप्त कलाकुशलः पण्डित छीतं (र) तत्पुत्रः निरवद्य श्रावकाचारधरः पंडित जिनदास, पंडित खेता तत्पुत्र पंचाणुव्रत पालकः पण्डित कामराज तद्धार्या कमलथी तत्पुत्रात्रयः पण्डित जिनदास, पण्डित रतम, पण्डित देवपाल एतेषां मध्ये पंडित देवपालेन इदं अजितनाथदेव चरित्रं लिखापितं निजज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थं, शुभमस्तु लेखक पाठनयोः।

—जैन सि० भा० भा० २२ कि० २।

थे। प्रस्तुत कथा ग्रंथ की यह प्रति वि० सं० १५०८ की लिखी हुई है। अतएव उनका रचना समय सं० १५०८ से पूर्ववर्ती है। अर्थात् वे विक्रम की १५वीं शताब्दी के अंतिम चरण के विद्वान् जान पड़ते हैं।

६६वीं प्रशस्ति 'सिरिपाल चरित' की है, जिसके कर्ता कवि रङ्गू हैं। इसका परिचय ३५वीं प्रशस्ति से लेकर ४६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१००वीं प्रशस्ति 'पासणहचरित' की है, जिसके कर्ता कवि तेजपाल हैं। जिसका परिचय २८वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०१वीं प्रशस्ति 'सिरिपाल चरित' की है, जिसके कर्ता कवि दामोदर हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सिद्धचक्र के महात्म्य का उल्लेख करते हुए उसका फल प्राप्त करने वाले चम्पा-पुर के राजा श्रीपाल और मैनासुन्दरी का जीवन-परिचय अंकित किया गया है। मैनासुन्दरी ने अपने कुष्ठे पति राजा श्रीपाल और उनके सात सौ साथियों का कुष्ठ रोग सिद्धचक्र व्रत के अनुष्ठान और जिन-भक्ति की दृढ़ता से दूर किया था।

कवि ने इस ग्रन्थ को इक्ष्वाकुवंशी दिवराज साहु के पुत्र नक्षत्र साहु के लिए बनाया था। ग्रन्थ प्रशस्ति में कवि ने अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार व्यक्त की है। मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के भट्टारक प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र, और कवि दामोदर। प्रस्तुत कवि दिल्ली पट्ट के भट्टारक जिनचंद्र के शिष्य थे। जिनचंद्र उस समय के प्रभावशाली भट्टारक थे, और संस्कृत प्राकृत के विद्वान् तथा प्रतिष्ठाचार्य थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ भारतीय जैनमंदिरों में पाई जाती हैं। ऐसा कोई भी प्रांत नहीं, जहाँ उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ न हों। यह सं० १५०७ में भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित हुए थे और पट्टावली के अनुसार उस पर ६२ वर्ष तक अवस्थित रहे। इनके अनेक विद्वान् शिष्य थे, उनमें पंडित मेवावी और कवि दामोदर आदि हैं। इनकी इस समय दो कृतियाँ प्राप्त हैं मिर्जातसार प्राकृत और चतुर्विंशति जिनस्तुति। इसमें दश पद्य हैं जो यमकालंकार के लिए हुए हैं। अने० वर्ष ११ कि० ३

कवि दामोदर ने अपना कोई परिचय नहीं दिया, केवल अपने गुरु का नामोल्लेख किया है। इनकी दूसरी कृति 'चंद्रपहचरित' है जिसकी प्रति नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। उनका समय विक्रम की १६वीं शताब्दी है। बहुत संभव है कि इनको अन्य कृतियाँ भी अन्वेषण करने पर भंडारों में मिल जायें।

१०२वीं प्रशस्ति 'पासणहचरित' की है, जिसके कर्ता कवि असवाल हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में १३ गंधियाँ हैं, जिनमें भगवान् पार्श्वनाथ की जीवन-गाथा दी हुई है। ग्रंथ की भाषा १५वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की है, जब हिन्दी अपना विकास और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रही थी। ग्रंथ में पद्धिड़िया छन्द की बहुलता है, भाषा मुहाबरेदार है। रचना सामान्य है।

यह ग्रन्थ कुशांत देग में स्थित 'करहल' नगर निवासी साहु सोणिण के अनुरोध से बनाया गया था, जो यदुवंश में उत्पन्न हुए थे। उस समय करहल में चौहानवंशी राजाओं का राज्य था। इस

1. कुशांतदेश सूरसेन देग के उत्तर में बसा हुआ था और उसकी राजधानी घोरौपुर थी, जिन साहबों ने बनाया था। जरासंघ के विरोध के कारण साहबों को इन प्रदेश को छोड़कर दारिका को अपनी राजधानी बनानी पड़ी थी। वर्तमान में यह ग्राम इन्ही नाम से प्रसिद्ध है।
2. करहल टटाया में १३ मील की दूरी पर जमुना नदी के तट पर बना हुआ है, जहाँ पर चौहान वंशी राजाओं का राज्य रहा है। यहाँ चार जैन निगर बन्द मंदिर हैं और अच्छा शास्त्र भंडार है।

ग्रन्थ की रचना वि० सं० १४७६ में भाद्रपद कृष्णा एकादशी को बनाकर समाप्त की गई थी<sup>३</sup>। ग्रन्थ निर्माण में कवि को एक वर्ष का समय लग गया था। ग्रन्थ निर्माण के समय करहल में चौहानवंशी राजा भोजराज के पुत्र संसारचन्द (पृथ्वीसिंह) का राज्य था। उनकी माता का नाम नाइकदेवी था, यदुवंशी अमरसिंह भोजराज के मन्त्री थे, जो जैनधर्म के संपालक थे। इनके चार भाई और भी थे जिनके नाम करमसिंह, समरसिंह, नक्षत्रसिंह, लक्ष्मणसिंह थे। अमरसिंह की पत्नी का नाम कमलश्री था। उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। नन्दन, सोरिग और लोणा साहु। इनमें लोणा साहु जिन यात्रा प्रतिष्ठा आदि प्रशस्त कार्यों में द्रव्य का विनिमय करते थे और अनेक विधान—'उद्यापनादि कार्य कराते थे। उन्होंने 'मल्लिनाथ चरित के कर्ता कवि 'हल्ल' की प्रशंसा की थी। इन्हीं लोणा साहु के अनुरोध से कवि असवाल ने पार्श्वनाथ चरित की रचना उनके ज्येष्ठ भ्राता सोरिग के लिये की थी। प्रशस्ति में सं० १४७१ में भोजराज के राज्य में सम्पन्न होने वाले प्रतिष्ठोत्सव का भी उल्लेख किया है, जिसमें रत्नमयी जिनविम्ब को प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न हुई थी।

ग्रन्थ कर्ता कवि असवाल का वंश 'गोलाराड' (लार) था। यह पण्डित लक्ष्मण के सुपुत्र थे। कवि ने मूलसंघ वलात्कार गण के आचार्य प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र और धर्मचन्द्र का उल्लेख किया है। जिससे कवि उन्हीं की आम्नाय का था। कवि कहां का निवासी था, और उसने अथवा क्या रचनाएं रचीं, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। अतः ज्ञान भण्डारों में कवि की अन्य कृतियों का अन्वेषण होना आवश्यक है।

१०३वीं प्रशस्ति 'संतिग्गाह चरित' की है जिसके कर्ता कवि शाहठाकुर हैं। ग्रन्थ प्रांच संधियों में विभक्त है जिसमें जैनियों के १६वें तीर्थंकर, शान्तिनाथ का, जो कामदेव और चक्रवर्ती भी थे, जीवन-परिचय अंकित किया गया है। चरित संक्षिप्त और साधारण रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

कवि ने यह ग्रन्थ विक्रम संवत् १६५२ में भाद्र शुक्ला पंचमी के दिन चकत्तावंश के जलालुद्दीन अकबर बादशाह के शासन काल में, ढूँढाहड़ देश के कच्छपवंशी राजा मानसिंह के राज्य में समाप्त किया है। मानसिंह की राजधानी उस समय अम्बावती या आमेर थी।

ग्रन्थ कर्ता ने प्रशस्ति में अपनी जो गुरु परम्परा दी है उससे वे भट्टारक पद्मनन्दिकी आम्नाय में होने वाले भ० विशालकीर्ति के शिष्य थे। जो मूलसंघ नद्याम्नाय सरस्वती गच्छ वलात्कार गण के विद्वान थे, उनके भट्टारक पद्मनन्दि, शुभचन्द्रदेव, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, विशालकीर्ति, लक्ष्मीचन्द्र, सहस्रकीर्ति, नेमिचन्द्र, अजिका अनन्तश्री और दाभाडालीवाई का नामोल्लेख किया गया है। इनमें भट्टारक विशालकीर्ति विद्वान कवि के समकालीन जान पड़ते हैं। और उनमें दो परम्परा के विद्वान शामिल हैं। एक अजमेर पट्ट के और दूसरे आमेर या उसके समीपस्थ पट्ट के। भट्टारक विशालकीर्ति अजमेर-शाखा के विद्वान थे। और जो भट्टारक चन्द्रकीर्ति के पट्टधर थे। जिनका पट्टाभिषेक सम्मेद शिखर पर हुआ था<sup>४</sup>। विशालकीर्ति नाम के अनेक विद्वान हुए हैं, परन्तु यह उनसे भिन्न हैं।

३. इगवीर हो णिन्वुइंभुच्छराइं, सत्तरि सहुँचउसय वत्थराइं।

पच्छइं गिरि णिव विक्कम गयाइं, एउणसीदीसहुँ चउवह सयाइं।

भादवतम एयारसि मुणेइ, वरिसिक्के पूरिउं गंधु एहु ॥

कवि के पितामह का नाम साहु सील्ला और पिता का नाम सेता था, जाति खंडेलवाल और गोत्र सुहाड्या था। यह लुवाइणपुर के निवासी थे, वह नगर जन-धन से सम्पन्न और भगवान चन्द्रप्रभ के विशाल जिनमंदिर से अलंकृत था। कवि की धर्मपत्नी गुरुभक्ता और गुण ब्राह्मिणी थी। आपके दो पुत्र थे, धर्मदास और गोविन्ददास। इनमें धर्मदास बहुत ही सुयोग्य और गृह भार वहन करने वाला था, उसकी बुद्धि जैनधर्म में विशेष रस लेती थी। कवि देव-शास्त्र-गुरु के भक्त और विद्याविनोदी थे, उनका विद्वानों से विशेष प्रेम था, वे संगीत शास्त्र, छन्द, अलंकार आदि में निपुण थे, और कविता करने में उन्हें विशेष आनन्द आता था।

कवि की दूसरी कृति 'महापुराण कलिका' है<sup>१</sup>। जिसमें २७ संधियाँ हैं, जिनमें ब्रैसठ शलाका महापुरुषों की गौरव-गाथा का चित्रण किया गया है। ग्रंथ के अन्त में एक महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति दी है, जिससे कवि के वंश आदि का परिचय मिल जाता है। कवि ने इस ग्रंथ को हिन्दी भाषा में लिखा है और जिसका रचनाकाल वि० संवत् १६५० है। इससे कवि १७वीं शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान जान पड़ते हैं<sup>२</sup>।

१०४वीं प्रशस्ति 'मल्लिणहकब्ज' की है जिसके कर्ता कवि जयमित्रहल हैं। इसका परिचय २६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०५वीं प्रशस्ति 'जिसुरत्ति विहारकहा' की है, जिसके कर्ता कवि नरसेन हैं। जिसका परिचय ६६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०६वीं प्रशस्ति सत्यकव कौमुदी की है जिसके कर्ता कवि रङ्गू हैं। इसका परिचय ३५वीं प्रशस्ति से लेकर ४६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०७वीं प्रशस्ति 'जोगसार' की है। जिसके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति हैं। इसका परिचय ८५-८६ प्रशस्तियों के साथ दिया गया है।

१०८वीं और १०९वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः सुगंध दसमी कथा और मज्जसत्तमी कहारास की हैं, जिनके कर्ता कवि भगवतीदास हैं। और जिनका परिचय ८८वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१. श्रीमत्प्रभाचन्द्र गणोन्द्र पट्टे भट्टारक श्रीमुनिचन्द्रकीर्तिः :

मंल्लापितो योज्वदिनापवृन्दः सम्पेदनाम्नोह गिरीन्द्रमूर्ध्नि ॥—मूलसंध पट्टावनी जैन सि० भा० १ कि० ३-४

२. कल्याण कीर्तिलोके जगु भवति जगे मंडलाचार्य पट्टे,

नंछाम्नाये मुगच्छे सुभगश्रुतमते भारती वारमूले ।

मान्यो श्री मूलसंधे प्रभवतु सुवने सार शीखाधिकारी,

सोऽयं मे वैश्यबंधी ठकुर गुरुयते कीर्तिनामा विगालो ।

—महापुराण कलिका संधि २३

१. कवि ने अपने को स्वयं ब्रैसठ शलाका पुराणों की पुराण कथा को कहने वाला लिखा है और जिसका परिचय अनेकान्त संधि १३ किरण ७-८ में दिया गया है। जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है।

या जन्मानयछेदनिर्णयकारी, या ग्रहग्रहोदरी ।

या मंसार विभावभावनपरा या धर्मकामापुरी ॥

यमानादय ध्वंसिनी मुभकारी, जेया सदा पावनी,

या तेषट्टिपुराण उत्तम कथा भव्या सदा पातु नः ॥—

महापुराण कलिका

२. विशेष परिचय के लिये देखिये अनेकान्त संधि १३ कि० ७-८

## परिशिष्ट नं० १

## कुछ मुद्रित ग्रन्थ-प्रशस्तियों का परिचय

अपभ्रंश भाषा में अनेक छन्द ग्रन्थ लिखे गए होंगे, क्योंकि अपभ्रंश के ग्रंथों में अनेक छन्दों का प्रयोग इस बात का सूचक है कि अपभ्रंश भाषा में अनेक छन्द ग्रन्थ थे और उनमें उनका परिचय दिया हुआ था, अन्यथा ग्रंथकार उनका अपने ग्रंथों में उल्लेख कैसे कर सकते थे। खेद है कि वे इस समय उपलब्ध नहीं हैं। महाकवि स्वयंभूदेव का छन्द ग्रन्थ है, जिसमें आदि के ३ अध्यायों में प्राकृत छन्दों का और अन्त के पांच अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का परिचय सोदाहरण दिया हुआ है। छन्द की यह प्रति बड़ौदा के औरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट की है। जिसे संवत् १७२७ आश्विन सुदि ५, गुरुवार के दिन रामनगर में कृष्णदेव ने लिखा था। यह प्रति अपूर्ण है, उसके गुरु के २२ पत्र नहीं हैं, यह प्रो० एच०डी० वेलंकर को प्राप्त हुई थी। जिसे उन्होंने सम्पादित कर प्रकाशित करा दिया था<sup>१</sup>।

११०वीं प्रशस्ति छन्द ग्रंथ की है। जिसके अपभ्रंश भाग की आदि-अन्त प्रशस्ति दी गई है। जिसमें उदाहरण सहित अपभ्रंश के छन्दों का विवेचन है। ग्रंथ के अन्तिम अध्याय में गाहा अडिल्ला, पद्धडिया आदि छन्दों को स्वोपज्ञ उदाहरणों के साथ दिया हुआ है। इनका परिचय 'छन्दग्रंथ' शीर्षक में दिया गया है। इस छन्द ग्रंथ का अपना वैशिष्ट्य है जो ग्रंथ का पारायण किये बिना अनुभव में नहीं आ सकता।

कवि स्वयंभू के इस छन्द ग्रंथ का सबसे पुरातन उल्लेख जयकीर्ति ने अपने 'छन्दोनुशासन' के नन्दिनी छन्द में किया है<sup>२</sup>। इससे स्पष्ट है कि स्वयंभू के इस छन्द ग्रन्थ का १०वीं शताब्दी में प्रचार हो गया था। ग्रंथ भंडारों में इसकी अन्य प्रतियों की तलाश होनी चाहिये। जयकीर्ति का समय विक्रम की १० वीं शताब्दी है। जयकीर्ति कन्नड़ प्रान्त के निवासी दिग्म्बर जैन धर्मानुयायी थे। उनका छन्द ग्रंथ एच. डी. वेलंकर द्वारा सम्पादित होकर जयदामन ग्रंथ में प्रकाशित हुआ है। पाठक वहाँ से देखें।

१११ वीं प्रशस्ति 'भविसयत्तकहा' की है, जिसके कर्ता कवि धनपाल हैं। प्रस्तुत कथा ग्रंथ में ३४४ कडवक हैं, जिनमें श्रुतपंचमी के व्रत का महात्म्य बतलाते हुए उसके अनुष्ठान करने का निर्देश किया गया है साथ ही भविष्यदत्त और कमलश्री के चरित्र-चित्रण द्वारा उसे और भी स्पष्ट किया है। ग्रंथ का कथाभाग तीन भागों में बटा हुआ है। घटना बाहुल्य होते हुए भी कथानक सुन्दर बन पड़े हैं। उनमें साधु और असाधु जीवन वाले व्यक्तियों का परिचय स्वाभाविक बन पड़ा है। कथानक में अलौकिक घटनाओं का समीकरण हुआ है। परन्तु वस्तु वर्णन में कवि के हृदय ने साथ दिया है। अतएव नगर देशादिक के वर्णन सरस हो सके हैं। ग्रंथ में जहाँ शृंगार वीर और शान्त रस का वर्णन है, वहाँ उपमा, उपेक्षा, स्वभावोक्ति और विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग भी दिखाई देता है। भाषा में लोकोक्तियों और वाग्धाराओं का भी प्रयोग मिलता है। यथा—

१. स्वयंभू-छन्द के प्रथम तीन अध्याय रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे के जर्नल सन् १९३५ पृ० १८-५८ में दिए हैं और अपभ्रंश के शेष पांच अध्याय बाम्बे यूनिवर्सिटी जर्नल (जिल्द ५ नं० ३ नवम्बर सन् १९३६) में प्रकाशित हैं। पाठक वहाँ से देखें

२. तीं जीं तथा पद्म पद्म निधिर्जतीं जरीं ।

३. देखो मि० गोविन्द पै का लेख Jaikirti in the Karnnatak quarterly प्रबुद्ध कर्नाटक V. L. 28 N. 3 gan. 1947 महाराजा कालेज मैसूर। तथा बम्बई यूनिवर्सिटी जनरल सितम्बर १९४७

किं घिउ होइ विरोलिण पाणिण'—क्या पानी विलोने से घा मिल सकता है ? 'दइवायत्तु जइ वि विलहिब्बउ, तो पुरिसिं ववसाउ करिब्बउ ।' यद्यपि सव कर्म देवाधीन है, तो भी मनुष्य को अपना कर्तव्य करना ही चाहिये ।

### कवि परिचय

कवि के पिता का नाम माएसर (मातेश्वर) और माता का नाम घनश्री था कवि का वंश घक्कड़ था । यह एक प्रसिद्ध वंश था जिसमें अनेक महारूप हुए हैं । इस घक्कड़ वंश की प्रतिष्ठा दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में रही है । दोनों ही सम्प्रदायों में इस वंश द्वारा लिखाये गये ग्रन्थों की प्रशस्तियां मिलती हैं जिनसे उनकी धार्मिक परिणति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । कवि अपने समय के प्रतिभा संपन्न विद्वान थे । उनका सम्प्रदाय दिगम्बर था, क्योंकि ग्रंथों में—'भंजि वि जेण दिवंबरि लायउ' (संघि ५-२०) जैसा वाक्य दिया हुआ है । साथ ही सोलहवें स्वर्ग के रूप में अच्युत स्वर्ग का नामोल्लेख है और आचार्य कुन्दकुन्द की मान्यतानुसार सल्लेखना को चतुर्थं गिहाव्रत स्वीकार किया है ।

'चउयउ पुण सल्लेहण भावइ' (संघि १७-१२) यह मान्यता भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नहीं पाई जाती । इस कारण वे दिगम्बर विद्वान थे, यह सुनिश्चित है । इनका समय विक्रम की १०वीं शताब्दी होना चाहिये । सम्पादक ने भी ग्रन्थ की प्रस्तावना में डा० हर्मन जैकोबी के निर्णय को स्वीकृत तथा पुष्ट करते हुए कवि को दिगम्बर लिखा है । यह ग्रन्थ गायकवाड़ ओरियन्टल सोरीज बड़ोदा से प्रकाशित हो चुका है ।

११२ वीं ११३ वीं और ११४ वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'महापुराण' 'नागकुमारचरित' और 'जसहर चरित' की हैं, जिनके कर्ता महाकवि पुष्पदन्त हैं ।

प्रस्तुत महापुराण दो खंडों में विभाजित है, आदि पुराण और उत्तर पुराण । आदि पुराण में ३७ सन्धियां हैं जिनमें आदि ब्रह्मा ऋषभदेव का चरित वर्णित है, और उत्तर पुराण को ६५ सन्धियों में अवशिष्ट २४ तीर्थकरों, १२ चक्रवर्तियों, नवनारायण, नव प्रति नारायण आदि त्रेसठ शलाका पुरुषों का कथानक दिया हुआ है । जिसमें रामायण और महाभारत की कथाएँ भी संक्षिप्त में आ जाती हैं । दोनों भागों की कुल सन्धियां एक सी दो हैं, जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या बीस हजार से कम नहीं है । महापुराणों का कथानक अत्यन्त विंगाल है और अनेक पूर्व जन्मों की अवांतर कथाओं के कारण और भी विस्तृत हो गया है । इससे कथा सूत्र को समझने एवं ग्रहण करने में कठिनाता का अनुभव होता है । कथानक विंगाल और विस्तृत होने पर भी बीच-बीच में दिये हुए काव्य भय सरस एवं सुन्दर आशयानों से वह हृदय ग्राह्य हो गया है । जनपदों नगरों और ग्रामों का वर्णन सुन्दर हुआ है । कवि ने मानव जीवन के साथ सम्यक् उपमाओं का प्रयोग कर वर्णनों को अत्यन्त सजीव बना दिया है । रस और अलंकार योजना के साथ पद व्यंजना भी सुन्दर बन पड़ी है । साथ ही अनेक सुभाषितों और वाग्धाराओं से ग्रन्थ रोचक तथा सरस बन गया है । ग्रन्थ में देवी भाषा के ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग वर्तमान हिन्दी में

१. देवी, अनेकान्त वगैरे ७-८ में घनपाल नाम के चार विद्वान ।
२. उट्ठाविउ मुताउ सोहणेण—नोट हुए गिह को किराने जमाया ।  
मानु भंगुवर मग्गु न जीविउ—अपमानित होकर जीने से मृदु भली है ।  
को तं भूगइ निराणइ निहिउ—मरतक पर जिये को कीज भेट भवता है ।



भी प्रचलित हैं<sup>२</sup>। कवि ने यह ग्रन्थ क्रोधन संवत्सर की आपाड़ युक्ता दशमी के दिन शक संवत् ८८७ वि० सं० १०२२) में समाप्त किया है और राष्ट्र कूट वंश के अन्तिम सम्राट् कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के अनुरोध से बना है। ग्रन्थ की सन्धि पुष्पकाओं में स्वतन्त्र संस्कृत पद्यों में भरत की प्रशंसा और मंगलकामना की गई है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० पी० एल० वैद्य ने किया है, जो मणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

११३वीं प्रशस्ति 'नागकुमारचरित' की है। यह एक छोटा-सा खंड-काव्य है। जिसमें पंचमीव्रत के फल को व्यक्त करने वाला एक सुन्दर कथानक दिया हुआ है, ग्रन्थ में ७ संधियों द्वारा नागकुमार के चरित्र का अच्छा चित्रण किया गया है। रचना बड़ी सुन्दर, सरस और चित्ताकर्षक है ग्रन्थ में तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति का भी वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना भरत मंत्री के पुत्र नन्नकी प्रेरणा से हुई है और और इसीलिए यह ग्रन्थ उन्हीं के नामांकित किया गया है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० हीरालाल जी एम. ए. अमरावती ने किया है और वह कारंजा सीरीज से प्रकाशित हो चुका है।

११४वीं प्रशस्ति 'जसहरचरित' की है। यह भी एक खंड काव्य है, जिसकी चार संधियों में राजा यशोधर और उनकी माता चन्द्रमती का कथानक दिया हुआ है। जो बड़ा ही सुन्दर और हृदय-द्रावक है और उसे कवि ने चित्रित कर कण्ठ का भूषण बना दिया है। राजा यशोधर का यह चरित इतना लोकप्रिय रहा है कि उस पर अनेक विद्वानों ने संस्कृत और अपभ्रंश में अनेक ग्रंथ लिखे हैं। सोमदेव, वादिराज, वासवसेन, सकलकीर्ति, श्रुतसागर, पद्मनाभ, मणिक्यदेव, पूर्णदेव कविराज, सोमकीर्ति, विश्वभूषण और क्षमा कल्याण आदि अनेक दिग्गम्वर, श्वेताम्बर विद्वानों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इस ग्रन्थ में सं० १३३५ में कुछ कथन, राउल और कौल का प्रसंग, विवाह और भवांतर पानीपत के वीसलसाहु के अनुरोध से कन्हड के पुत्र गन्धर्व ने बनाकर शामिल किया था। वह प्रतियों में अब भी पाया जाता है।

### कवि परिचय

महाकाव्य पुष्पदन्त अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान कवि थे। इनके पिता का नाम केशवभट्ट और माता का नाम मुग्धादेवी था। यह कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका शरीर अत्यन्त कृश (दुबला-पतला) और वर्ण सांवला था। यह पहले शैव मतानुयायी थे। परन्तु बाद में किसी दिग्गम्वर विद्वान् के सांनिध्य से जैनधर्म का पालन करने लगे थे। वे जैनधर्म के बड़े श्रद्धालु और अपनी काव्य-कला से भव्यों के चित्त को अनुरजित एवं मुग्ध करने वाले थे, तथा प्राकृत, संस्कृत, और अपभ्रंश भाषा के महा पंडित थे। इनका अपभ्रंश भाषा पर असाधारण अधिकार था, उनकी कृतियां उनके विशिष्ट विद्वान् होने की स्पष्ट सूचना करती हैं। कविवर बड़े ही स्वाभिमानी और उग्र प्रकृति के धारक थे, इस कारण वे 'अभिमानमेरु' कहलाते थे। अभिमानमेरु, अभिमानचिह्न, काव्य रत्नाकर, कविकुल-तिलक और सरस्वती निलय आदि उनकी उपाधियां थीं, जिनका उपयोग उन्होंने अपने ग्रन्थों में स्वयं किया है। इससे उनके व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वे सरस्वती के विलासी और स्वाभाविक काव्य-कला के प्रेमी थे। इनकी काव्य-शक्ति अपूर्व और आश्चर्यजनक थी। प्रेम उनके जीवन का खास अंग था। वे

खसैं = अवश्य, हट्ट = हाट (बाजार) तोंद = योंद (उदर)। लीह = रेखा (लीक),

... = शाखा, पाहुण = पाहुना, लुक्क = लुकना (छिपना) आदि अनेक

... से हिन्दी के विकास का पता चलता है।

धनादि वैभव से अत्यन्त निस्पृह और जैनधर्म के अटल श्रद्धालु थे। उन्हें दर्शन-शास्त्रों और जैनधर्म के सिद्धांतों का अच्छा परिज्ञान था, वे राष्ट्रकूट राजाओं के अन्तिम सम्राट् कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के द्वारा सम्मानित थे। इतना ही नहीं किन्तु भरत के समुदार प्रेममय पुनोत्थान व्यवहार से वे उनके महलों में निवास करते रहे, यह सब उस धर्मवत्सलता का ही प्रभाव है। जो भरत मंत्री उक्त कविवर से महापुराण जैसे महान् ग्रंथ का निर्माण कराने में समर्थ हो सके। उत्तर-पुराण की अन्तिम प्रगति में कवि ने अपना जो कुछ भी संक्षिप्त परिचय अंकित किया है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कविवर बड़े ही निस्पृह और अलिप्त थे और देह-भोगों से सदा उदासीन रहते थे। उत्तरपुराण के उस संक्षिप्त परिचय पर से कवि के उच्चतम जीवन-कणों से उनकी निर्मल भद्र प्रकृति, निस्संगता और अलिप्तता का वह चित्रपट पाठक के हृदय-पटल पर अंकित हुए बिना नहीं रहता। उनकी अकिंचन वृत्ति का इससे और भी अधिक प्रभाव ज्ञात होता है, जब वे राष्ट्रकूट राजाओं के बहुत बड़े साम्राज्य के सेना नायक और महामात्य द्वारा सम्मानित एवं संसेवित होने पर भी अभिमान से सर्वथा अछूते, निरोह एवं निस्पृह रहे हैं। देह-भोगों से उनकी अलिप्ता हीना ही उनके जीवन की महत्ता का सबसे बड़ा सवृत है। यद्यपि वे साधु नहीं थे; परन्तु उनकी वह निरोह भावना इस बात की संद्योतक है कि उनका जीवन एक साधु से कम भी नहीं था। वे स्पष्टवादी थे और अहंकार की उस भीषणता से सदा दूर रहते थे; परन्तु स्वाभिमान का परित्याग करना उन्हें किसी तरह भी इष्ट नहीं था, इतना ही नहीं किन्तु वे अपमान से मृत्यु को अधिक श्रेष्ठ समझते थे। कवि का समय विक्रम की दशवीं शताब्दी का अन्तिम भाग और ११वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

११वीं प्रगति 'करकंडुचरित' की है जिसके कर्ता मुनि कनकामर है। यह ग्रन्थ दश सन्धियों में विभक्त है। जिनमें राजा करकंडु का जीवन परिचय अंकित किया गया है। चरित नायक की कथा के अतिरिक्त तो आवांतर कथाओं का भी उपक्रम किया गया है, जिनमें मंत्र शक्ति का प्रभाव, अज्ञान से आपत्ति, नीच संगति का बुरा परिणाम और सत्संगति का अच्छा परिणाम दिखाया गया है, पांचवीं कथा एक विद्याधर ने मदानवलि के विरह से व्याकुल करकंडु के वियोग की संयोग में बदल जाने के लिए सुनाई। छठी कथा पांचवीं कथा के अन्तर्गत अन्य कथा है, सातवीं कथा शुभ शकुन-परिणाम सूचिका है, आठवीं कथा पद्मावती ने विद्याधरी द्वारा करकंडु के हरण किये जाने पर सोकाकुल रतिवेगा को सुनाई। नौमी कथा भवांतर में नारी को नारीत्व का परित्याग करने की सूचिका है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि उस काल में ये कथाएँ सात्त्विक समाज में प्रचलित होंगी। उन्हीं को कवि ने अपनी कल्पना का विषय बनाया है। कवि ने कथावस्तु को रोचक बनाने का अच्छा प्रयत्न किया है। ग्रन्थ की भाषा में देशी शब्दों का प्रचुर व्यवहार है। जो हिन्दी के अधिक नजदीक है। रस, अलंकार, श्लेष और प्राकृतिक दृश्यों से ग्रंथ सरस बन पड़ा है, किन्तु उनमें चमत्कारित्वता नहीं है और न पुष्पदन्तादि कवियों जैसी स्फूर्ति, श्रोत्र-तेज एवं प्रभाव भी अद्भुत हो सका है। हाँ, ग्रन्थ में तेरावर या तेरापुर की ऐतिहासिक गुफाओं का परिचय भी चित्रित किया गया है। यह स्थान आज भी धारानिज जिले में तेरपुर के नाम से प्रसिद्ध है, प्राचीन ऐतिहासिक दर्शनीय स्थान है। यह ग्रन्थ डा० हीरालाल जी एम. ए. द्वारा सम्पादित होकर कारंजासरीज में मुद्रित हो चुका है। इसी से इसकी प्रगति परिशिष्ट नं० १ में दी गई है।

कवि परिचय

मुनि कनकामर चन्द्र ऋषि गोत्र में उत्पन्न हुए थे। उनका कुल ब्राह्मण था; किन्तु देह-भोगों में वैराग्य होने के कारण वे दिगम्बर मुनि हो गये थे। कवि के गुरु बुध मंगलदेव थे। कवि भ्रमण करते हुए

'आसाइ' (आसापुरी) नगरी में पहुंचे थे। और वहां उन्होंने 'करकंडुचरित' की रचना की थी। यह ग्रन्थ जिनके अनुरागवश बनाया गया था, ग्रन्थकारने उनका नाम कहीं भी उल्लिखित नहीं किया। कवि ने उन्हें धर्मनिष्ठ और व्यवहार कुशल बतलाया है, वे विजयपाल नरेश के स्नेहपात्र थे, उन्होंने भूपाल नरेश के मन को मोहित कर लिया था। वे राजा कर्ण के चित्त का मनोरंजन किया करते थे। उनके तीन पुत्र थे, आहुल रहो और राहुल। ये तीनों ही मुनि कनकामर के चरणों के अनुरागी थे। उक्त राजागण कव और कहाँ हुए, इसी पर यहां विचार किया जाता है—

एक लेख में लिखा है कि विजयपाल नरेश विश्वामित्र गोत्र के क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पुत्र भुवनपाल थे, उन्होंने कलचूरी, गुर्जर और दक्षिण को विजित किया था, यह लेख दमोह जिले की हटा तहसील में मिला था, जो आजकल नागपुर के अजायब घर में सुरक्षित है।

दूसरा लेख वांदा जिले के अंतर्गत चन्देलों की पुरानी राजधानी काजिर में मिला है। उसमें विजयपाल के पुत्र भूमिपाल का दक्षिण दिशा और राजा कर्ण को जीतने का उल्लेख है।

तीसरा लेख जबलपुर जिले के अंतर्गत 'तीवर' में मिला है, उसमें भूमिपात्र के प्रसन्न होने का स्पष्ट उल्लेख है, तथा किसी सम्बन्ध में त्रिपुरी और सिंहपुरी का उल्लेख है। इन लेखों में अंतिम दो लेख दूटे होने के कारण उनका सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सका।

सं० १०६७ के लगभग कालिंजर में विजयपाल नाम का राजा हुआ। यह प्रतापी कलचूरी नरेश कर्णदेव के समकालीन था। इसके दो पुत्र थे देववर्मा और कीर्तिवर्मा। कीर्तिवर्मा ने कर्णदेव को पराजित किया था, ऐसा प्रबोध चन्द्रोदय नाटक से जान पड़ता है। अतएव मुनि कनकामर का रचना काल सन् १०६५ (वि० सं० ११२२) या विक्रम संवत् १२०० के लगभग जान पड़ता है। विशेष के लिए डा० हीरालाल जी द्वारा लिखित करकंडु चरित की प्रस्तावना देखना चाहिए।

## परिशिष्ट नं० २

### (लिपि प्रशस्ति-परिचय)

११६ वीं प्रशस्ति महाकविपुष्पदन्त के आदिपुराण की लिपि प्रशस्ति है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व की है। इस प्रशस्ति में आदिपुराण को लिखाने वाले ग्वालियर के सदगृहस्थ पद्मसिंह के परिवार का विस्तृत परिचय कराते हुए उनके धार्मिक-कार्यों का समुल्लेख किया गया है। प्रस्तुत प्रशस्ति को ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह के सुपुत्र श्री कीर्ति सिंह के राज्य काल में सं० १५२१ में काष्ठा संघ के भट्टारक

१. इस नाम के अनेक गांव और नगर हैं। एक आसापुरी वह स्थान है, जो औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत है और जहाँ सन् १८०३ में मराठों और अंग्रेजों का युद्ध हुआ था, अब एक छोटा-सा गांव है।

दूसरा आसीरगढ़ खान देश में है, जो आशा देवी के नाम पर बसाया गया है। तीसरा आसी नाम का स्थान राजपूताने के वूंदी राज्य में है। चौथा आसापुरी नाम का स्थान, पंजाब के कांगड़ा जिले के अन्तर्गत और ग्राम से १२ मील की दूरी पर पहाड़ की चोटी पर आसा देवी प्रतिष्ठित है और जिसके कारण उसका नाम आसापुरी कहलाता है।

पांचवीं आसापुरी नाम का एक गांव भोपाल (भोजपुरी) से उत्तर की ओर ४ मील पर बसा हुआ है। यह १२वीं शती में संभवतः एक विशालनगर रहा होगा। ग्रन्थकार द्वारा अभिमत आसापुरी इनमें से कौन है यह विचारणीय है। और वह संभवतः कालिंजर और भोपाल इसके आस-पास कहीं होना चाहिए।

गुणकीर्ति, यदा: कीर्ति मलयकीर्ति और गुणभद्र के समय में जयसवान् कुलभूपण उल्ला साहू की द्वितीय पत्नी भावश्री के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र पर्चासिंह ने लिखवाया था, 'उसकी पत्नी का नाम वीरा था, उसके चार पुत्र थे, बालू, डालू, दीवड़ और मयणवाल। उनकी चार पत्नियाँ थी, जिनके नाम मंगा या माणिसि, लखणसिरि, मयणा और मणसिरि थी। मंगा से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। रामचन्द्र, कमलनंद और वीरचन्द्र। इनमें प्रथम के दोनों पुत्रों की नंदा और पूना दो धर्म-पत्नियाँ थीं। इस परिवार सयुक्त पर्चासिंह ने जो धन-धान्य से समृद्ध था, अपनी लक्ष्मी का निम्न कामों में सदुपयोग किया था। २४ जिनालयों का निर्माण कराया था और एक लाख ग्रन्थ लिखवा कर भेंट किये थे। इससे उसके धार्मिक कार्यों का परिचय सहज ही मिल जाता है। परंतु आज ऐसे जिन बाणी भक्त सज्जन विरले ही मिलते हैं, जिनके द्रव्य का सदुपयोग जिनधर्म और जिनवाणी के प्रचार में होता हो।

११७ वीं प्रगति 'भविसदत्त चरित' की है जिसके कर्ता कवि श्रीधर थे। प्रस्तुत प्रगति में उल्लिखित माधुर कुलावतंस साहू साधारण और नारायण नाम के दो भाई थे, साधारण की रूपसि नाम की पत्नी थी, उससे पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे, सुपण्ड, वासुदेव, जगदेव, सोहण्डू और लखण्डु। इनमें सुपण्ड की माता रूपसि ने इस ग्रन्थ को संवत् १५३० में लिखवाया था।

११८ वीं लिपि प्रगति भ० श्रुतकीर्ति के हरिबंदा पुराण की है। जिसे बंदवार दुर्ग के समीप स्थित संपाधिप की चौपाल में संवत् १६०७ में राम पुत्र पंगारव ने लिखा था। इस ग्रन्थ के लिखाने वाले के परिवार का प्रगति में विस्तृत परिचय कराया गया है, जो एक पद्यावती पुरवाल बंदा था। पाठक उसका परिचय मूल प्रगति से देखें।

### परिशिष्ट नं० ३

#### (हस्तलिखित ग्रन्थ प्रगति-परिचय)

११६ वीं प्रगति 'रोहिणिविधान बहा' की है, जिसके कर्ता कवि देवन्दी है। इस कथा में रोहिणी प्रत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए उसके फल प्राप्त करने वाले का कथानक दिया हुआ है, और उसके अनुष्ठान करने की प्रेरणा की गई है। इसके रचयिता देवन्दी ने अपना कोई परिचय प्रस्तुत नहीं किया, और न यही बतलाया कि उनका समय क्या है? इन नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। पर ये उन देवन्दी (पूज्य पाद) से भिन्न और पश्चात् वर्ती हैं। यह किसी भट्टारक के निष्पन्न होना चाहिये। इनका समय संभवतः १४ वीं या १५ वीं शताब्दी होना चाहिये।

१२० वीं प्रगति 'बदृग्मासाचरित' की है जिसके कर्ता कवि श्रीधर हैं। इस ग्रन्थ में जैनियों के प्रतिम शौर्यकर भगवान महावीर की जीवन-गाथा दी हुई है। जिसमें १० सन्धियाँ और २३१ श्लोक दिये हुए हैं जिनकी श्लोक संख्या कवि ने दस हजार जितनी बतलाई है। ग्रंथ में जैनियों शौर्यकर भगवान महावीर की जीवन-गाथा अंकित की है। यद्यपि उसमें पूर्व जैनियों का वर्णन दिया है किन्तु कवि ने उसे विविध वर्णनों के साथ सुगम बनाने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ साहू नेमिचन्द्र के अनुरोध ने बनाया था। जिसमें जिनानां मे और जो जायम या जसमान कुल कर्मण्य भोग माना का नाम गोमा देवी था, जो जैनधर्म की पत्नी का नाम 'गोमा' देवी था। इनके

एक दिन साहु नेमचन्द्र ने कवि श्रीधर से निवेदन किया कि जिस तरह चन्द्रप्रभ चरित्र और शान्तिनाथ चरित्र बनाये हैं, उसी तरह मेरे लिये अन्तिम तीर्थंकर का चरित्र बनाइये। तब कवि ने उक्त चरित्र का निर्माण किया है। इसी से कवि ने प्रत्येक सन्धि पुष्पिका में उसे नेमिचन्द्रानुमत लिखा है। इतना ही नहीं किन्तु कवि ने प्रत्येक सन्धि के प्रारंभ में जो संस्कृत पद्य दिये हैं उनमें नेमिचन्द्र को सम्यग्दृष्टि, वीर, बुद्धिमान, लक्ष्मीपति, न्यायवान् और भव-भोगों से विरक्त वतलाते हुए उनके कल्याण की कामना की गई है। जैसा कि उसके ८ वीं सन्धि के प्रारंभ के निम्न श्लोक से प्रकट है—

यः सदृष्टिरुदारुधीरधिपणो लक्ष्मी मता संमतो ।

न्यायान्वेषणतत्परः परमत प्रोक्तागमा संगतः ॥

जैनेकाभव-भोग-भंगुर वपुः वैराग्य भावान्वितो ।

नन्दत्वात्स हि नित्यमेव भुवने श्री नेमिचन्द्रश्चिरं ॥

कवि ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् ११६० में ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी शनिवार के दिन बनाकर समाप्त किया है। इससे एक वर्ष पहले अर्थात् सं० ११८६ में पार्श्वनाथ का चरित्र दिल्ली में नट्टल साहु की प्रेरणा से बनाया था। चन्द्रप्रभ चरित सं० ११८७ से भी पहले बनाया था, क्योंकि उसमें उसका उल्लेख है। पर वह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। और न शान्तिनाथ चरित्र ही प्राप्त है। इन दोनों कृतियों का ग्रन्थ भण्डारों में अन्वेषण होना चाहिये।

#### कवि परिचय

कवि का वंश अग्रवाल था। इनके पिता का नाम बुध गोलह और माता का नाम वील्हा देवी था। संभवतः इनके पिता भी विद्वान् थे। कवि कहाँ के निवासी थे। यह ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं है। संभवतः वे हरियाणा प्रदेश के रहने वाले थे। अन्य दो ग्रन्थ मिलने पर कवि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त हो सकती है। कवि का समय १२ वीं शताब्दी है,

१२१ वीं प्रशस्ति 'संतिणाहचरित' की है जिसके कर्ता कवि शुभकीर्ति हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में १६ सन्धियाँ हैं। जिनमें जैनियों के १६वें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ का चरित्र चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ की एकमात्र प्रति तागौर के भट्टारकीय भंडार में सुरक्षित है। जो संवत् १५५१ की लिखी हुई है। ग्रन्थ सामने न होने से उसकी प्रशस्ति का ऐतिहासिक भाग नहीं दिया जा सका। और न कवि शुभकीर्ति का ही कोई परिचय या गुरु परम्परा दी जा सकी है। पर यह सुनिश्चित है कि ग्रन्थ सं० १५५१ से पूर्व का बना हुआ है। इस नाम के अनेक विद्वान् हो गए हैं, अतएव जब तक ग्रन्थ प्रशस्ति पर से उनकी गुरु परम्परा ज्ञात न हो, तब तक उनका निश्चित समय वतलाना कठिन है। यदि भट्टारक जी की कृपा से उक्त चरित ग्रन्थ प्राप्त हो सका, तो फिर किसी समय उसका परिचय पाठकों को कराया जा सकेगा।

१२२वीं प्रशस्ति 'रोमिणाहचरित' की है जिसके कर्ता कवि दामोदर हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ५ सन्धियाँ हैं, जिनमें जैनियों के २२वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ का चरित्र अंकित किया गया है, जो श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। चरित्र आडम्बरहीन और संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है, और कवि उसे बनाने में सफल भी हुआ है। इस चरित रूप खण्ड काव्य की रचना में प्रेरक एक सज्जन थे, जो धर्मनिष्ठ तथा दयालु थे। वे गुजरात से मालव देश के 'सलखणपुर' में आये थे। और भगवान् महावीर के उपासक थे। वे खंडेलवाल वंश के भूपण थे, विषय विरक्त और सांसारिक जीवन को सफल बनाने

वाले थे, जैनधर्म के प्रतिपालक थे। उनका नाम इंदुक या इन्द्र था और उनके पिता का नाम केशव था, वे जिन पूजादि गृहस्थ के पटकर्मों का प्रतिपालन करते थे और अन्तर्वाह्य कालिमा को दूर करने का प्रयत्न करते थे। तथा 'मल्ह' का पुत्र नागदेव पुण्यात्मा प्रसन्नचित्त और भव्यजनों का मित्र था, वहीं रामचन्द्र संयमी गुणनिधान भी रहते थे। कवि ने इन्हीं पंडित रामचन्द्र के आदेश से और नागदेव के अनुरोध से उक्त ग्रन्थ की रचना की थी। उसी सलखणपुर में संघाधिप कमलभद्र नाम के श्रेष्ठी थे, जो अष्टमदों से रहित, बाईस परीपहों के सहन करने में धीर, कर्म-शयुओं के विनाश करने में सावधान, त्रिशत्य, त्रिवेद और कपायों के हनन करने वाले और जैनधर्म की देशना में निरत रहते थे।

कवि ने इस ग्रन्थ को परमार वंशी राजा देवपाल के राज्य में विक्रम संवत् १२८७ में बनाया था। प्रस्तुत देवपाल मालवे का परमार वंश का राजा था, और महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्मा का, जो छोटी शाखा के वंशधर थे, द्वितीय पुत्र था, क्योंकि अर्जुनवर्मा के कोई सन्तान नहीं थी। अतः उस राजगद्दी का अधिकार इन्हें ही प्राप्त हुआ था। इनका अपरनाम 'साहसमल्ल' था। इनके समय के ३ शिलालेख और एक दान पत्र मिला है। एक विक्रम संवत् १२७५ सन् १२१८ का हरसोड़ा गाँव से और दो लेख ग्वालियर राज्य से मिले हैं। जिनमें एक विक्रम संवत् १२८६ और दूसरा वि० सं० १२८६ का है<sup>१</sup>। मांधाता से वि० सं० १२६२ भाद्रपद शुक्ला १५ (सन् १२३५, अगस्त २६ का) दान पत्र भी मिला है<sup>२</sup>।

दिल्ली के सुलतान शमसुद्दीन अलतमश ने मालवा पर सन् १२३१-३२ में चढ़ाई की थी। और एक वर्ष की लड़ाई के बाद ग्वालियर को विजित किया था। और बाद में भेलसा (विदिशा) और उज्जैन को जीता था और वहाँ के महाकाल मंदिर को भी तोड़ा था। इतना होने पर भी वहाँ सुलतान का अधिकार न हो सका। सुलतान जब लूट-पाट कर चला गया, तब भी वहाँ का राजा देवपाल ही रहा<sup>३</sup>। इसी के राज्यकाल में पं० आशाधर जी ने विक्रम सं० १२८५ में नलकच्छपुर<sup>४</sup> (नालखे) में 'जिनयज्ञ कल्प' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, उस समय देवपाल मौजूद थे। इतना ही नहीं किन्तु जब दामोदर कवि ने संवत् १२८७ में सलखणपुर<sup>५</sup> में 'शोमिण्णाह चरित' रचा, उस समय भी देवपाल जीवित थे। किन्तु जब संवत्

१. इंडियन एण्टी क्वेरी जि० २० पृ० ३११

२. इंडियन एण्टी क्वेरी जि० २० पृ० ८३

३. एमि प्रापिक्रा इंडिका जि० ६ पृ० १०८-१३

४. त्रिग फिरस्ता जि० १ पृ० २१०-११

५. नलकच्छपुर को नालछा कहते हैं यह धारा से १६ मील की दूरी पर स्थित है, वहाँ का नेमिनाय का मन्दिर प्रसिद्ध था, उसी में बैठकर पं० आशाधरजी ने ग्रंथ रचना की। यह स्थान उस समय जैन संस्कृति के लिए प्रसिद्ध था। जिनयज्ञकल्प सं० १२८५ में यही बना। जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है—

विभ्रम वर्षे स पंचाशोक्ति द्वादश शतेस्वतोत्तेषु,

प्रादिवन सितान्य दिवसे साहसमल्ला परारण्यस्य ।

श्री देवपालनृपतेः प्रमारकुमार शेषस्य गौराज्ये,

नलकच्छपुरे मिदो भ्रनोऽर्थं नेमिनायचैत्यगृहे ॥ जिनयज्ञकल्पप्रसक्तिः ॥

६. प्रस्तुत सलखणपुर या सलखणपुर धारा में नालखे के भाग-भास ही कहीं पर स्थित था। नागदेव इसी स्थान का निवासी और नागवंश का मणि तथा जैन पूढामणि था। उनके पिता का नाम माल्ल था, और वह देवपाल के राज्य में चुल्क, धुंभी या टाँग विभाग में काम करता था। नागदेव ने एक दिन

१२६२ (सन् १२३५) में 'त्रिपण्डित स्मृति शास्त्र' आशाधर जी ने बनाया उस समय उनके पुत्र 'जैतुगिदेव' का राज्य था। इससे स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु सं० १२६२ से पूर्व हो चुकी थी। इसीसे संवत् १२६६ में जय सागार धर्माभूत की टीका देवपाल राजा के पुत्र जैतुगिदेव के राज्य में, जब वह अवनती में था, तब नलकच्छपुर के चैत्यालय में पं० आशाधर जी ने 'भव्य कुमुचन्द्रिका' बनाई। और वि० सं० १३०० में जब अनगार धर्माभूत की टीका बनी, उस समय भी जैतुगिदेव का राज्य था।

### कवि-परिचय

कवि दामोदर का वंश 'मेडेत्तम' था। इनके पिता का नाम कवि मालहर था, जिन्होंने 'दल्ह' का चरित बनाया था, यह भी सलखणपुर के निवासी थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि गुणभद्र के पट्टधर सूरसेन हुए और उनके शिष्य कमलभद्र हुए और उनके शिष्य प्रस्तुत कवि दामोदर थे। कवि ने लिखा है कि पृथ्वीधर के पुत्र ज्ञानचन्द्र और पंडित रामचन्द्र ने उपदेश दिया, तथा जसदेव के पुत्र जसनिधान ने वात्सल्य भाव प्रदर्शित किया था। कवि पं० आशाधर के समकालीन थे। और वे उस सलखणपुर में रहे भी थे। ग्रंथकर्ता ने अपना यह ग्रंथ वि० सं० १२-७ में बनाकर समाप्त किया था।

मालव प्रांत के शास्त्र भंडारों का अन्वेषण करने पर संभव है अन्य रचनाएं भी प्राप्त हो जाय, और उससे इतिहास की गुत्थियों के सुलभाने में सहायता मिले।

### परिशिष्ट नं० १२ का परिचय

प्रस्तुत प्रशस्ति 'मेघमाला वयकहा' की है, जिसके कर्ता कवि ठक्कुर हैं। इसमें मेघमाला व्रत की कथा अंकित की गई है। कथा संक्षिप्त और सरल है और हिन्दी भाषा के विकास को प्रस्तुत करती है। यह कथा ११५ कड़वक और लगभग २११ श्लोकों में पूर्ण हुई है, जिनमें उक्त व्रत के अनुष्ठान की विधि और उसके फल का वर्णन किया गया है। इस व्रत का अनुष्ठान भाद्रपद मास की प्रतिपदा से किया

गृहस्थाचार्य पं० आशाधर जी से निवेदन किया कि मैं प्रायः राज्यकार्य से अवरुद्ध रहता हूँ। अतः मेरे कल्याणार्थ व्रतों का उपदेश दीजिये। तब उक्त पंडित जी ने आर्य केशवसेन के वचन से नागदेव की धर्मपत्नी के लिए सं० १२८३ में 'रत्नत्रय विधि' नाम की कथा संस्कृत गद्य में बनाई थी।

देखो राजस्थान जैन ग्रन्थ भंडार सूची भा० ४ पृ० २४२

७. नलकच्छपुरेश्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत् ।

टीकेयं भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्युदिता बुधैः ॥१२०

पणवद्व्येक संख्यान विक्रमाङ्क समात्यये ।

सप्तम्यामसिते पौषे सिद्धेयं नन्दताच्चिरम् ॥१२१

—सागारधर्माभूत टीका प्रशस्ति

८. प्रमारवंशावार्धोन्दु देवपालनृपात्मजे ।

श्रीमज्जैतुगिदेवेऽसि स्थेभ्नाऽवन्तींभवत्यलम् ॥११६

नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत् ।

विक्रमाब्द शतेष्वेपा त्रयोदशसु कीर्तिके ॥

—अनगारधर्माभूतटीका प्रशस्ति

जाता है। व्रत के दिन उपवासपूर्वक जिन पूजन अभिषेक, स्वाध्याय सामायिक आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये। इस व्रत को पाँच प्रतिपदा, और पाँच वर्ष तक सम्पन्न करे। पश्चात् उसका उद्यापन करे। यदि उद्यापन करने की सामर्थ्य न हो तो दुगने समय तक व्रत करना चाहिये। इस व्रत का अनुष्ठान चाटसू (चम्पावती) नगरी के श्रावक श्राविकाओं ने सम्पन्न किया था। उस समय राजा रामचन्द्र का राज्य था, वहाँ पार्श्वनाथ का सुन्दर जिनालय था और तत्कालीन भट्टारक प्रभाचन्द्र भी वहाँ मौजूद थे। और जो गण-घर के समान भव्यजनों की घर्माघर्मा का पान करा रहे थे। वहाँ खंडेलवाल जाति के अनेक श्रावक रहते थे। उनमें पण्डित माल्हा पुत्र कवि मल्लिदास ने कवि ठकुरसी को मेघमाला व्रत की कथा के कहने की प्रेरणा की। वहाँ के श्रावक सदा धर्म का अनुष्ठान करते थे। हाथुवसाह नाम के एक महाजन और भट्टारक प्रभाचन्द्र के उपदेश से कवि ने मेघमाला व्रत कव कैसे करना चाहिये इसका संक्षिप्त वर्णन किया। वहाँ तोपक, माल्हा, और मल्लिदास आदि विद्वान भी रहते थे। श्रावक जनों में प्रमुख जीणा, ताल्ह, पारस, नेमिदास, नायूसि और भुल्लण, वजली आदि ने व्रत का अनुष्ठान किया। कवि ने इस ग्रंथ को सं० १५८० में प्रथम श्रावण शुक्ला छट के दिन पूर्ण किया था।

कवि ने इसके अतिरिक्त सं० १५७८ में 'पारस श्रावण सत्ताइसी' एक कविता बनाई थी, जो एक ऐतिहासिक घटना को प्रकट करती है, और कवि के जीवन काल में घटी थी, उसका आँखों देखा वर्णन कवि ने लिखा है। इनके अतिरिक्त जिनचउवीसी, कृपणचरिय (सं० १५८० पूस मास) पंचेन्द्रियवेल (सं० १५८५ का० सु० १३) और नेमीश्वर की वेल आदि रचनार्य रची थीं, जो स्व-पर-सम्बोधक है ?  
कवि-परिचय

कवि चाटसू (वर्तमान चम्पावती) नगरी के निवासी थे। इनकी जाति खंडेलवाल, और गोत्र अजमेरा था। इनके पिता का नाम 'धेल्ह' था, जो कवि थे, इनकी कविता अभी मेरे देखने में नहीं आई। किन्तु कवि ने पंचेन्द्रियवेल के अन्तिम पद के 'कवि-धेल्ह सुतनु गुण गाऊँ' वाक्य में उन्हें स्वयं कवि ने सूचित किया है। कवि के पुत्र का नाम नेमिदास था, जिसने मेघमाला व्रत की भावना की थी। कवि की उल्लिखित रचनाओं का काल सं० १५७८ से सं० १५८५ तक का उपलब्ध ही है। इनके अतिरिक्त अन्य किन कृतियों का निर्माण किया, यह विचारणीय है। संभव है ग्रन्थ भडारों में इनकी अन्य कृतियाँ भी अन्वेषण करने पर मिल जावें।

यह प्रशस्ति सुगन्धदसमीकया की है जिसके कर्ता कवि विमलकीर्ति है। इस कथा में भाद्रपद शुक्ला दशमी के व्रत की कथा का वर्णन करते हुए उसके फल का विधान किया गया है। कथा संक्षिप्त और संभवतः षड्वक्त्रों को लिये हुए है। कवि ने दशवीं व्रत के अनुष्ठान करने की प्रेरणा की है। कवि ने कथा कव बनाई, इसका रचना में कोई उल्लेख नहीं है।

कवि-परिचय

ग्रंथकर्ता विमलकीर्ति ने रामकीर्ति गुरु का विनय कर इस कथा को बनाया है प्रस्तुत रामकीर्ति गुरु कौन थे और उनका समय क्या है ? यह विचारणीय है। रामकीर्ति नाम के चार विद्वानों का उल्लेख

१. इनके परिचय के लिये देखो, अनेकान्त वर्ष १५ किरण १ में प्रकाशित 'कविवर ठकुरसी और उनकी कृतियाँ' नामक मेरा लेख पृ० १०



मिलता है। उनमें प्रथम रामकीर्ति के शिष्य विमलकीर्ति हैं। दूसरे विमलकीर्ति मूलसंघ बलात्कारण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान् थे<sup>२</sup>। इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने सं० १४१३ में वैशाख सुदि १३ बुधवार के दिन अमरावती के चौहान राजा अजयराज के राज्य में लंबकचुकान्वयी श्रावक ने एक जिनमूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। जो खंडित दशा में भौगाँव के मन्दिर की छत पर रखी हुई है।

तीसरे रामकीर्ति भट्टारक वादिभूषण के पट्टधर थे, जिनका विम्ब प्रतिष्ठित करने का समय संवत् १६७० है। यह रामकीर्ति १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के विद्वान् हैं। चौथे रामकीर्ति का नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के पट्टधर के रूप में मिलता है। इनमें प्रथम रामकीर्ति का सम्बन्ध ही विमलकीर्ति के साथ ठीक बैठता है। इनमें प्रथम रामकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति ने 'जगत् सुन्दरी प्रयोगमाला' नाम के वैद्यक ग्रन्थ की रचना की है। जिनका समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी है। रामकीर्ति जयकीर्ति के शिष्य थे, जिनकी लिखी हुई प्रशस्ति चित्तौड़ में संवत् १२०७ की उत्कीर्ण की हुई उपलब्ध है<sup>३</sup>। यशःकीर्ति ने जगत् सुन्दरी प्रयोगमाला में अभयदेवसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरिका (सं० ११७१) का उल्लेख किया है<sup>४</sup>। इससे विमलकीर्ति का समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी हो सकता है।

यह प्रशस्ति 'पुष्पांजलि कथा' की है। इसके कर्ता का परिचय अभी अज्ञात है। और संभवतः वे अनन्तकीर्ति गुरु मालूत होते हैं। इसमें पुष्पांजलि व्रत की कथा दी गई है। ग्रन्थ सामने न होने से विशेष परिचय देना संभव नहीं है। इस कथा के कर्ता बलात्कारण के विद्वान् रत्नकीर्ति शिष्य भावकीर्ति युक्त अनन्तकीर्तिगुरु बतलाये गये हैं। इनका समय अभी विचारणीय है।

प्रभाचन्द्र

२. संवत् १४१३ वैशाख सुदि १३ बुधे श्रीमदमवरावती नगराधीश्वर चाहुवाण कुल श्री अजयराय देवराज्य प्रवर्तमाने मूलसंघे बलात्कारणो सरस्वती गच्छे श्रीरामकीर्तिदेवास्तस्य शिष्ये भ० प्रभाचन्द्र लंबकचुकान्वये साधु... भार्या सोहल तयोः पुत्रः सा० जीवदेव भार्या सुरकी तयोः पुत्रः केशो प्रणमंति । —देखो जैन सि० भा०, भा० २२ अंक २

३. एपिग्राफिका इंडिका जि० २ पृ० ४२१

४. देखो जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

प्रशस्ति संग्रह की प्रस्तावना में उपयुक्त ग्रन्थ-संकेत-सूची

शनेकान्त वर्ष—८, १०, ११, १२, १३, १४, सम्पादक पं० जुगलकिशोर मुस्तार आदि वीर सेवा

मंदिर, २१ दरियागंज दिल्ली

अपभ्रंग भाषा साहित्य—हरिवंश कोछड़

इण्डियन एण्टीक्वेरी जि० २०, पृ० ८३, ३११

इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी

एनाल्स आफ दी मण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

एपि ग्राफिका इण्डिका भा० २ जिल्द ३१

एपि ग्राफिका इण्डिका जि० २ पृ० ४२१

एपि ग्राफिका इण्डिका जि० ७ पृ० १०८-१३

करकंदु चरित्र कनकामर सं० डा० हीरालाल जैन, कारंजा सीरीज

बुबलय माला, सं० डा० ए० एन० उपाध्ये, भारतीय विद्याभवन बम्बई

ग्वालियर गजेटियर—ग्वालियर पुरातत्व विभाग

टाइराजस्थान टिप्पण, रा० व० गौरीशंकर हीराचन्द श्रोभा

जनरल एशियाटिक सोसाइटी आफ बिहार

जसहूर चरित्र पुष्पदन्त, सम्पादक डा० पी० एल० बंध, कारंजा सीरीज

जैनग्रंथप्रशस्तिसंग्रह प्रथम भाग, वीर सेवामंदिर २१ दरियागंज

जैनग्रंथप्रशस्तिसंग्रह, जैन सिद्धान्त भवन आरा (बिहार)

जैन मूर्तिलेख संग्रह—बाबू कामता प्रसाद

जैन शिलालेख संग्रह भाग १, २, ३, मारिकचन्द ग्रन्थमाला, बम्बई,

जैन संदेश शोषांक, सम्पादक डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भा० दि० जैन संघ चौरासी मधुरा

जैन साहित्य और इतिहास—पं० नाथूराम जी प्रेमी, हिन्दी ग्रं० रत्ना० बम्बई

जैन सिद्धांत भास्कर, जैन सिद्धान्त भवन आरा

जैसलमेर, मण्डार-सूची

नागकुमार चरित्र—पुष्पदन्त सं० डा० हीरालाल जैन, कारंजा सीरीज

पाइय सद्द महम्मदवी—पं० हरिगोविन्द

वाम्बे यूनिवर्सिटी जनरल जि० ५ नवम्बर सन् १९३८

भरत नाट्य शास्त्र

भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ विश्वेश्वरनाथरेड, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई

महापुराण पुष्पदन्त संपादक डा० पी० एल० बंध, मारिकचन्द ग्रन्थमाला, बम्बई

राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द, द्वितीय एडीसन गौरीशंकर हीराचन्द श्रोभा

राजस्थान जैन ग्रंथ सूची भाग २, ३, ४ महावीर तीर्थ क्षेत्र कमेटी जयपुर

रायन एशियाटिक जनरल वाम्बे सन् १९३५

तिगबन्टिक सर्वे आफ दण्डिया सन् १९२७ पृ० १२१

सनवागांगमूर प्रायगोदय समिति

हरिपेराक कथाकोश, सं० डा० ए० एन० उपाध्ये, सिध्दीसीरीज, भा० वि० भवन, बम्बई  
 हिन्दी काव्य-धारा, महापंडित राहुल सांकृत्यायन  
 हिस्टोरीकल ग्रामर अपभ्रंश सन् १९४८ पूना  
 हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३०६  
 हिस्ट्री आफ गुजरात इन वाम्बे गजेटियर

### अपभ्रंश भाषा की अनुपलब्ध रचनाएँ

ग्रंथ नाम	कर्ता	कहाँ उल्लेख है
अरांगचरिउ (अनंगचरित)	दिनकरसेन	हरिवंशपुराण धवल कवि, और वाहुवली चरित कवि धनपाल
अराणुपेहा (अनुप्रेक्षा) अम्बादेवीचर्चरीरास अमयाराहणा (अमृताराधना)	सीहनंदि कविदेवदत्त गणेश अम्बसेन	वाहुवली चरित कवि धनपाल जंबूस्वारिचरित कविवीर हरिवंश पु० कवि धवल, और वाहु- वली चरित में
करकंडु चरिउ (करकंडुचरित्र) चंदप्पहचरिउ (चंद्रप्रभचरित)	कवि रङ्घू कवि श्रीधर	अपने ही ग्रंथों में अपने पासणाह व वड्ढमाणचरिउ में
” ” जसहर चरिउ (यशोधर चरित) भाणपईव (ध्यान प्रदीप)	मुनिविष्णुसेन अमरकीर्ति	वाहुवली चरित में अपने पट्कर्मोपदेश में
रावयारमंत्र (नवकारमंत्र) धनदत्त चरिउ (धनदत्त चरित) धर्मोपदेशचूडामणि पउमचरिउ (पञ्चचरित)	” नरदेव अज्ञात अमरकीर्ति चउमुह	” वाहुवली चरित में ” अपने पट्कर्मोपदेश में स्वयंभू के छन्दग्रंथ, और पउमचरिउ के चौथे पद में
पउमचरिउ ( , )	सेदुकवि	हरिवंश पुराण धवल कवि, और वाहुवलि चरित में
पंचमीकहा (पंचमीकथा) पंचमीकहा ( , ) महापुराण महावीरचरिउ (महावीरचरित) रिट्ठोमिचरिउ (हरिवंशपुराण)	चउमुह स्वयंभू (त्रिभुवनस्वयंभू) रङ्घू अमरकीर्ति चउमुह	स्वयंभू के पउमचरिउ में पउमचरिउ प्रशस्ति में सन्मति जिनचरित प्रशस्ति में अपने पट्कर्मोपदेश में काव धवल के हरिवंश में (हरिपंडु- वाण कहा के रूप में
वरंगचरिउ (वरांगचरित) संतिणाहचरिउ (शांतिनाथचरित) संतिणाह चरिउ ( , ) सम्यक्त्व कौमुदी सुदंसणचरिउ (सुदर्शन चरित)	कविदेवदत्त कविश्रीधर, कवि देवदत्त सहणपाल कवि रङ्घू	वीरकवि के जम्बूस्वामि चरित में वड्ढमाणचरिउ में वीरकवि के जम्बूस्वामीचरित में सन्मति जिन चरित प्रशस्ति में

# प्रस्तावना की नामानुक्रम-सूची

अकम्पन	७१	अगुपेहा (अनुप्रेक्षा)	१२८
अकबर (बादशाह)	१२६	अनुवरयण पईव (अगुव्रत रत्नप्रदीप)	१७, ६७, ६८
अकलंक	५०, ५१, ५१, ११३, १२४, १२८		७७, ६२
अकलंकदेव	१६, ६३	अगुवेवला (अनुप्रेक्षा)	१२१
अंग (देश)	८४	अगुवेवला दोहा	१२१
अंगदेश	४८, ६७	अगुवेवखारास	१२०
अगरचन्द नाहटा	२४	अंतरंगसंधि	२४
अमलपुर (आगरा)	१२६, ५०३-१३८	अयववेद	टि० ४-१२
अमलपुर जिनवन्दना	१२६	अधकयानक	१०५
अग्रदेश	६३	अनंगचरिउ	६७
अग्रसेन (राजा)	६३	अनंगपाल (दिल्ली का तोमर वंशी राजा)	१६
अग्रवाल (कुल)	८५, ६१	अनंगपाल (तृतीय " " )	८६, ६३
अग्रवाल (वंश)	८२, ८४, ८७, ६३, ६४, ६६, ६७, ६८, ६९	अनंतकीर्तिगुरु	५० १२-१४२
	१००, १०२, ११६, १२४, १२६	अनन्तमती	१००
अग्रोतकान्वय	१११	अनन्तमती (मजिका)	१३०
अग्रोहा (नगर)	१०४	अनन्तवीर्य	३६
अग्रोहा (अग्रोदक-जनपद)	६३	अनन्त व्रत कथा	११२
अचलपुर	५३	अनाथसंधि	२४
अंजनचौर	१००	अनिरुद्ध (कृष्ण पीप)	३१
अजमेर (नगर)	७	अनुप्रेक्षा	६५, ७६
अजमेर पट्ट	१३०	अनुप्रेक्षारास	३४
अजमेरा (गोय-खंडेलवाल)	५० १२-१४१	अनेकान्त	८७, १११, ११२ (टि०)
अजयपाल (नरेश)	६७, ७०, ७६	अनेकान्त वर्ष ६ कि० ६	१०२
अजय नरेन्द्र	११६, ११७	अनेकान्त टि०, ७४, १०५, ११२, १२४, १२६, १३३, १४१	
अजयराज	११८	अनेकार्य नाममाला	१२६, १२७
अजयराज (अमरावती के चौहान राजा)	५० १२-१४२	अपभ्रंश व्याकरण	१६, ३७
अजरी (गाँव)	७५	अपभ्रंश साहित्य-सूची	३८
अजितनाथ (दूसरे तीर्थंकर)	१२७, १२८	अप्प-संबोह कव्व	६३, ६६
अजितपुराण	१२७	अवसेन (गण) अमृताराधना के कर्ता	६५
अण्णमिय कहा (अनस्तमित कथा)	१११, ११५	अंबाईय	५०, ७६
अण्णमी कहा ( " " )	६३, ६६	अंबादेवीरासउ	६८
अणंतवय कहा (अनंत व्रत कथा)	१११	अंबादेवी चर्चरीरास	३३, ३४, ५६
अणहिलपुर (गुजरात का एक नगर)	६२		

अब्दुलरहमान	१६, ३१, ३३	अलाउद्दीन खिलजी	७७
अभयचन्द्र (पुत्र साधारण)	१२४	अलीगंज (एंटो)	१२८
अभयदेव	११	अवन्ती (नगर)	८८, ५०, ६, १४०
अभयदेवसूरि	११८	अशोक (मौर्यसम्राट्)	६८
अभयनन्दी	७७	अश्वघोष (बुद्धचरित्र कर्ता)	६७
अभयपाल (चौहान वंशी राजा)	६८, ७०	असंग कवि (वीर चरित्र कर्ता)	३६, ४७, ६५, ७६, ६३
अभयारानी	२३, ३६	असवाल (कवि)	१७, ८६, १२६, १३०
अमरकीर्ति (भट्टारक)	१६, ६६, ६६, १०१	आगरा	१०३, १२४, १२५
अमरचन्द्र	८	आत्मसंवाोध काव्य	१११
अमरसिंह साहु (गोलालारीय)	१७	आदित्यदेवी	४५
अमरसिंह	८६	आदिनाथ	६३, १०५
अमरसिंह (मराठा)	६२	आदिनाथ भगवान	६७
अमरसेन	६६	आदिनाथ मंदिर	३२
अमरसेन (राजा)	६०	आदिपुराण	१०६, १३२, १३३ प० १२२-१३६
अमरसेन चरित्र	६०, ६२	आदि ब्रह्मा	१३३
अमरावती (नगर)	११८	आपुलीय (यापनीय संघ)	१२३
अमरावतीदेश	१०१	आबू (पर्वत-अर्बुदाक्षल)	७५
अमितगति (प्रथम)	५३	आमिअब्बा अमृताम्बा)	४५
अमितगति (द्वितीय)	६६	आमेर (राजधानी कछुवाहावंश)	६१
अमोघवर्ष (राष्ट्रकूट राजा)	१६	आमेरपट्ट	७६
अमृत या अमयपाल	६८	आमेर भंडार	७६, ८६, ८८, ६०, ६१, ६३, ११२, ११४
अमृतचन्द्र (मलधारी-भट्टारक)	७४	आमेर (ज्ञान) भंडार	१२२
अमृतचन्द्र (आचार्य-तत्त्वार्थसारकर्ता)	७४	आर्यवसु	५६
अम्बदेव (कवि)	६०	आयास पंचमीकहा	१११
अम्बाला (नगर)	१२६	आराहणासार (आराधनासार)	११२
अम्बावती (आमेर)	१३०	औरान (ग्वालियर म० प्र०)	६८
अम्बेर (आमेर)	६१	आशादेवी	प० २-१३६
अयोध्या (नगर)	४१	आशाधर (पंडित)	प० ३-१३६, १४०
अरहनाथ (जिन)	८०	आशाई (आशापुर)	१३५
अरुहदत्त	१६	आसापुरी (औरंगाबाद)	प० २-१३६
अर्ककीर्ति	७१, ६६	आसारी	८७
अर्जुन	८१	आसीरगढ़	प० २-१३६
अर्जुनवर्मा	प० ६-१६६	आहवमल्ल (चौहानवंशी राजा)	६८
अर्णोराज	७५	आहुल	प० २-१३६
अर्हदास श्रेष्ठी	५७		

इटावा (उत्तर प्रदेश)	१७, ७६, १६६	मोरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट (पूना)	१३२
इंडियन एण्टीक्वेरी जि० २० प० ३,	१६६	श्रीसा	१०४
इक्ष्वाकु (वंशी)	३०, ६१	श्रीसवाल	१०४
इंडुक या इन्द्र	प० ३, १३६	कजडी (कोडी) पंडित	१२७, १२८
इन्द्रवरि (इन्द्रपुरी)	८२	कंचीपुर	५०
इन्द्राणी	८१	कंस	६८
इब्राहीम लोदी	(टि०) १२४	कच्छप (वंश)	६१, ६२, १३०
इलाहाबाद (नगर)	१२६	कण्ह कृष्ण चातुर्व्य वंशी	६६
ईनाम	६८	कण्ह (कृष्ण)	२६, ६८
ईश्वरदास	१२२	कण्हड	१३४
ईश्वरदे (पट्टधानी राजा आहवमल्ल)	६८	कण्हड (कृष्णादित्य-मंत्री आहवमल्ल राजा)	३६
उज्जैन	१३३	कण्हड (कृष्णादित्यद्वितीयपुत्र श्रीवल्लाल)	६६
उज्जैनी (नगरी)	१२३, पृ० ३-१३६	कण्हपा (बौद्धसिद्ध)	२७
उज्जैन पुराण	१३३, १३५	कृपाकोश	१७, ६१, ६३
उदयकीर्ति	६३	कृपारयणकोश	२५
उदयचन्द्र (वीरदासपुत्र)	४४	कनकगिरि (सोनागिरि)	६८
उदयमुनि	७९, ११७	कनकामर मुनि	१३५, प० १-१३६
उद्धरण साहू (खालियर निवासी)	११२	कनटिक	१३२
उदितोदय	११०	कनड प्रान्त	६७, १३२
उद्योतनसूरि (सूक्त सं० ७००, डि० सं० ८३५)	५, ३३	कपिलस्थल	१२६
उन्मत्त (ग्राम)	८१	कवीर	१७, २३
उपमितिभवप्रपंचाकहा	३२, ३३	कमलकीर्ति (भट्टारक)	६६, १०७
उभयश्री	७६	कमलकीर्तिदेव	टि०-१११
उल्लामाहू प० ३	१३७	कमलनगर	प० नं० २-१३७
उपा (पुत्री वाणामुर)	३१	कमलभद्र	प० २-१३६, १४०
ऊर्जग्रन्थ (पर्वत)	८६	कमलभद्र संघाधिपथे प्ठी	प० ३, १३६
एच० डी० वेलणकर	३६, १३३	कमलश्री	७६, २३०, २३२
ए० एन० उपाध्याय	५३	कमलश्री (पत्नी कामराय)	१२८
एटा	१०३	कमलसिंह (साहू)	६७, ६६
एंडिल (गोन)	६६	ककंडु (राजा)	२३५
एपिग्राफिकाइंडिका	११६	ककंडुचरित	२१, २२, १०२, १११, १३५
एपिग्राफिका इंडिका जि० ६ प० ६,	१३६	ककंडुचरित	१३५
श्रृंगभचरित	६८	ककरकुंडु चरित (प्रस्तावना)	प० १-१३६
श्रृंगभदास सेठ	५८, ६१, ६७	कर्ण	५२
श्रृंगभदेव (नामिपुत्र)	३०, ४१, ७८	कर्णदेव	७६, प० १-२३६
		कर्णदेव (मोलंकी राजा)	१६

कर्णनरेन्द्र (संवत् ११२३)	६३	काष्ठासंघ	५३, ५६, ६६, ८३, ६४, १११, ११२, १२४, १२५
कर्णराजा	६२, १३६	काष्ठासंघ	५०२ १३६
करमासिंह	८६, १३८, १३०	किंकर	२६
करहल (नगर)	१७, १२६	किंकर (पुत्र चंगदेव)	११४
करौली	११७	किसनदास (पिता भगवतीदास)	१०६, १२६
कलकत्ता	१०५	कीर्तिकीमुदी	७६
कलचूरी (वंश)	५० १-१३६	कीर्तिधर	६५
कलिंग (देश)	८४	कीर्तिपाल	१०८
कल्याणरास	११६, ११७, ११८	कीर्तिराज (पुत्र राजा हूंगरसिंह)	१११
कश्यप (गोत्र)	१३४	कीर्तिलता	२६
काँची देश	१२	कीर्तिवर्मा	५० १-१३६
काँतिपुरी	१०४	कीर्तिसिंह (करणसिंह-तोमरवंशी राजा)	१७, १००
कामचरित्र	७८		१०२, १११, ११२, ५० २, १३६
कामदेव	२६, ७८	कुण्डदास (साहू)	८०, १०१
कामदेव चरित्र	७८	कुन्दकुन्द (आचार्य)	१०, ७२, ७४, १२६, १३३
कामराज (पंडित)	१२८	कुन्दकुन्दाचार्य	४६
कामता प्रसाद	१११, ११२	कुन्दकुन्दान्वय	५१, ६३
कामराय	१२७, १२८	कुवेरमित्रा	६७
कामलता (वेश्या)	५७	कुमरसिंह	८१
कायद्रा (गाँव)	७५	कुमार	६४
कारंजा (नगर)	६५, १०६	कुमारपाल (चौलुक्य राजा)	१६, ६६, ७०, ७५, ७६, ७६, ११६, ११७
कारंजा शास्त्र भंडार	६७, ६८, ७७	कुमारपाल प्रतिबोध	२८
कारंजा सीरीज	१३४, १३५	कुमारसेन	६२
कालपी	११०	कुमार स्वामी	१३
कालसंवर	७२	कुरावली (मैनपुरी)	१११
कार्लिजर	५० १-१३६	कुलचन्द्रदेव	टि०-१११
कालिदास	२७, ३८, ५०, ६३, ६८, ७२	कुलभूषण	६३
काव्य-मीमांसा	७	कुवलयमाला (कहा)	५, २५, ३२, ३४
काव्यानुशासन	३०	कुशराज (मंत्री राजावीरमदेव)	६१
काव्यालंकार	४, ६, २०	कुशार्त (देश)	१२६
काव्यालंकार टीका	६	कुसुमभद्र	८८
काशिकावृत्ति	१२६	कुसुमंजली (कहा)	१२८
काशी	७५	कृपण चरित्र	५० १२, १४१
काश्मीर	२१	कृष्ण (तृतीय)	१३४
काष्ठापुरी	टि०-१२४		

कृष्णदेव	१३२	खिचडीरास	१२६
कृष्ण नरेन्द्र	१६	खीमचन्द (खेमचन्द)	१२५
कृष्ण नरेन्द्र (पुत्र बंदिगदेव)	६६	खुमानराखो	३३
कृष्ण (द्वितीय-राष्ट्रकूट राजा)	४७	खुरागान	७०, ११७
कृष्ण (तृतीय-सम्राट्)	१३५	खुगालचन्द काला	१२०
कृष्ण	३१	खेऊ साहू (खेमसिंह)	६६, ६७
कृष्ण (पुत्र चंगदेव)	११४	खेता (पंडित)	१२८, १३६
कृष्णश्रावक	६२	खेमसी साहू (खेमचन्द्र)	६६
कृष्णादित्य (प्रधानमन्त्री धर्मपपाल)	७०	खेमचन्द	१००
केरल	८४, ८५	खेल्हा (ब्रह्मचारी)	६४
केसावन्ट	१०१, १३४, १४१	गडडवहो (गोड राजा का वध)	१०, १३, १८, १६
केसाव (पिता इंदुक)	५० ६, १६६	गंगाराम (पंडित)	१२५
केसावपुत्र	५० १-१४०	गजमल्ल	१२४
कैकय (देस)	१२	गग्य (गग्य गोत्र)	११४
कैंटेलोग सी० पी० एण्ड बरार	१२७	गग्य (गोत्र)	८२, ६३, १२४,
कैंलाश (पर्वत)	१३३	गजाधर साहू	१११
कोइलपंचमी कहा	१२८	गणेश (गणपतिसिंह)	१०८
कोसलदेस	४५	गंधर्वराज (राज) नगर	१०१
कोसवाल (प्रपिता लक्ष्मण कवि)	६६	गंधर्व	३४
कोल्हाही	८७	गरवठ (विद्वान)	६१
कौनुहल	१३, ५०	गाहल	६६
कौरव	८१, ८२	गाथासप्तसती	१०
कौल	१३४	गांगदेव (श्रावक)	७७
कीराम्बी	६३	गांगो	टि०-१११
क्षत्रियवंश	५० १-१३६	गिरनार (पर्वत)	६६
क्षमा कल्याण	१३४	गिरिपुर (त्रिभुवनगिरि)	११७
क्षेमकीर्ति	६२	गुडखेड देस	५८
खंडेलवात (कुल)	८८, १०६, ११८, १२७, १२८	गुजरात (देस)	१५, १६, ७५, ७६, ७६, ८८
	५० ३-१३८, १३६, ५० १२, १४१	गुराकीर्ति (भट्टारक)	८१, ८६, ६५, ५० २ १३७,
खण्डेला	१०४	गुगुचन्द्र	८
खंमात	८०	गुणपान (धर्मकीर्ति के पिता)	६६
खजुराहो	७७, १०४	गुणप्रवर	७३
खत्तर गच्छ प्रधान गुर्वावसी	७०	गुणमद्र (भट्टारक)	५७, ५०, ५१, ६३, ८८, ६५,
खानदेग	५० २-१३६		१११, ११२, १२५, १२८, ५० २,
खित्तवी	८७		१३७ ५० ३-१४०



गुणभद्रसूरि	१२४	चंद्रगच्छट्टी कथा	१०६, १११, ११६
गुणभद्राचार्य	४६	चंद्रगामी (पत्नी प्रभयनन्द)	१२४
गुणाकरसेन	५८	चन्द्रवार दुर्ग	प० २-१३३
गुं दिउज (नगर)	७७	चंद्रादे (पट्टरानी)	१०८
गुर्जर	८४ प० १-१३६	चंद्रेरी (नगरी)	१०४
गुहिल (गुहिलोत) वंश	७५, ७६	चंद्रेशिया	१०४
गुह्यसेन (राजा)	५	चन्देन (वंश)	प० १-१३६
गूजर	७३	चंदणहरिउ	८०, ८५, १२६
गोंगंदनगर	११६	चण्डमुह (महाकवि)	१६, २६, ५१, ६५, ६७, १०३, १२८
गोनन्द (नगर)	६०	चकतावंश	१३०
गोपाचल (खालियर)	४३, ४८, ६७, १०२, १११, ११२	चतुर्मुखा	५३, ६३, ६५, ६८, ७२, ७६, १२४
गोयल (गोत्र)	६३, ६८	चतुरासन	४७
गोलाराड (नगर)	१३०	चतुर्विधति (जिन स्तुति)	१२६
गोलालारीय (जाति)	१०२	चन्द्रगोवस कथा	१११
गोल्ह (बुध)	८५, प० ३-१३८	चम्पा नगर	६७
गोवागिरि (खालियर)	८३	चम्पा नगरी	५७, ११४
गोविन्द कवि (सनत्कुमार चरितकर्ता)	६५	चम्पापुर	४८, १०२, १२६
गोविन्दचन्द	६४	चर्चरीनाम	३२
गोविन्द	४७, ५१, ७२	चर्निष्ठा (माता प्रमरकीर्ति)	६६
गोविन्ददाम	१३१	चन्द्रकवि (गोत्र)	१३५
गोविन्दपै	१३२	चन्द्रकीर्ति (भट्टारक)	१३०, १३१
गोध्रा (गुजरात का एक छोटा नगर)	६६	चन्द्रकीर्ति मुनि	६६
गृद्धपिच्छ	१२८	चन्द्रगुप्त सम्राट्	११, १२३
गौड़	८४	चन्द्रप्रभ (भाटवें तीर्थकर)	८०, ८१, १३६
गौतम स्वामी	५६	चन्द्रप्रभचरित्र	७६-८१ प० ३-१३८
गौरी शंकर हीराचन्द श्रीभा	१०६	चन्द्रवाट नगर	१७, ७८, ८०, ८६, ६७, ६९, १००, १०१, १०४
ग्यामुहीन (मुलतान)	१२२, १२३	चन्द्रपाट दुर्ग	१११ टि०
खालियर	१७, ८३, ८४, ६१, ६५, ६७, १०२	चन्द्रपाल	७६
	१०३, १०४, १०५, १०७, १०८, १०९, ११०,	चन्द्रमती	६६, १३४
	१११ प० २-१३६	चन्द्रलेखा	१२५
खालियर गजिठियर	१११	चन्द्रसेन	५२
घूघलि (साहू)	८७	चद्रावती	७५
घेल्ह कवि (पिता ठक्कुर कवि)	प० १२-१४१	चाटमू (चम्पावती नगरी)	प० १२-१४१
चंगदेव	२६	चांडुवाड (गोत्र)	१०४
चंगदेव (पिता हरदेव)	११४	चारियपुर	२६

चातुर्व्य वंश	१३,२०,७७	जयपाल	७६
चित्रकूट (चित्तौड़)	५३	जयपुर (राजस्थान)	६५,१२८
चित्तौड़ (नगर)	११८,५० १२-१४२	जयमद्रा	५७
चीनी तुंकिस्तान	१२	जयमिश्रहल (कवि)	१३१
चूनाडीरास	३४,७०,११६,११८,१२७	जयराम (धर्मपरीक्षा कर्ता)	५०,५३
चेतक राजा	८५	जयसिंह (राजा भोज)	१६
चेतन चारित्र	२१	जयसिंह (परमारवंशी राजा)	५१,१२२
चेदि	८४	जयमी	६१
चेलना	८५	जयसेन	५८
चौहान वंश	७५,८६,६१,१००,१२६,१३०	जयधर	२१
चौहान वंशी नरेय	१७	जयादेवी	५८
छत्रकम्भोवण्डे (यदुकम्भोपदेश)	६६	जय वल्लभ (वज्जालम्भ के कर्ता)	११
छन्दे ग्रन्थ	३४	जल्हिंग	२७,३४,१२०
छन्दोनुदासन	३६,४७,१३२	जसई	५६
छोतिर (पंडित)	१२८	जसकिसि	८३
जंबूकुमार	५४,८५	जसचन्द्र	५०
जंबू स्वामिचरित्र	२१,३३	जसदेव (पुत्र जसनिपान)	५० २,१३७,५० ३ १४०
जंबू स्वामिचरित्र	५३,५६,६०	जमपाल	७६
जंबूस्वामी रास	३४	जसमनु (विद्वान)	६१
जंबूस्वामी (भ्रंतिम केवली)	५५	जसठरचरित्र (यसोपर चरित्र)	२१,६६,६३,६८,६६, १३३,१३४
जंगल्युन्दरी प्रयोगमाला	११८,११६,५० १२-१४२	जरासंध (राजा)	८६,६१,६८,१२६
जंगाधरी	६० १२६	जलालसा	८२
जटिलमुनि (वराहचरित्र कर्ता)	६५,७६	जलालुद्दीन (भ्रकबर)	१३०
जैतू (पिता कवि हरिचन्द्र)	११६	जहांगीर (बादशाह)	१२६
जेनादेन (राजा)	८६	जायस (कुल-जसवाल)	६६,७८,१०४
जबलेपुर (जिला-कमिशनरी)	५० १-१३६	जायस (मादववंश)	६१
जमुनी नदी	१३६	जायमवाल	६१,५०२-१३७
जय कवि	६०	जातौर (जावलिपुर)	३२
जयकीर्ति	३६,४७,५०,६०,१३२	जाल्हड	८८
जयकीर्ति (रामकीर्ति के गुद)	५० १२-१४२	जाल्ह नरेन्द्र (चौहान वंशी राजा)	६६
जयकुमार	७२,६६,६७	जिनरति विहाण कहा	११५,१३१
जयकुमार (सेनापति)	७१	जिनमल्ल (३ रा पुत्र सामारण)	१२४
जयधामन (छन्दग्रन्थ)	१३२	जिनचउवीली ५० १२	१४१
जयदेव	५०	जिनचन्द्र (भट्टारक)	१२६,१३०
जयधवला	५१,७६		

जिनचन्द्र मुरि	७०	जैनेन्द्र व्याकरण	६७
जिनदत्त	४७, ६८	जैसलनेर	३६, ४७
जिनदत्त (मुमुक्षु जीव्यमाथेष्ठी)	७७	जैसवाल (कुल)	६२, ६८, १०४, ५०३-१३७
जिनदत्त चरित (कवि लक्ष्मण)	२२, २३, ३५	जैसवाल वंश	११६
जिनदत्त चरित	६७, ६८, ७०, ६२, ११६	जोइणपुर (दिल्ली)	१००
जिनदत्त मुरि	७०, ७६	जोइन्दु	२७, ३७
जिनदत्त (पंडित)	१२८	जोगसार	१२२, १३१
जिनदास गण्डी	११	जोगीदास ब्रह्मचारी	१२५
जिनदास ग्रह	३१	जोध्या साहू	६६
जिनदास साहू (अप्रवाल, गंगं गोत्री)	११२	जोयणपुर (दिल्ली)	८४, १२५
जिनदार	७०	जौनपुर	१०६, ११०, १२६ टि०
जिनदामकव्य	५०३-१३६	ज्ञानचन्द (पृथ्वीधर पुत्र)	१२४, ५०३, १४०
जिनराज	२६	ज्योतिपसार	१२७
जिनराजि कथा	८१, ८२	झाणपईव (ध्यान प्रदीप)	६६
जिनराम मुरि	२४	झुंझुना	६१
जिनभारत (सिंठ)	१००	झूनागढ़ (नगर)	८६
जिन रचित (पालित) बबलग्रंथ प्रस्थापक	६५	ठक्क (ठक्क) पंजाव	७
जिनयत्री	५८	टंडाणारास	१२६
जिनसेन ५०, ५१, ५२, ५८, ६३, ६५, ८, १६७, १०३, १२८		टाठ राजस्थान हिन्दी (गोरी शंकर हीराचन्द ओभा द्वारा संपादित)	११०
जिनसेन (हरिवंश पुराण कर्ता)	७६	टोडर साहू	६१, ६२
जिनसेन (पुन्नाट संघीय)	४७	ठक्क (पंजाव)	८४
जिनसेनाचार्य	१६, ४६	ठक्कुर	५० १२-१४१
जिनराज (गोष)	६३	ठक्कुर कवि	५० १२-१४१
जीरदा	५० १२, १४१	ठाकुर (शाह ठाकुर)	१३०
जीरदेव	६७	ठाकू	५० २-१३७
जीरदेवतः कनका मंलाप कथा	२८	डूंगरसिंह (तोमरवंशी राजा, ग्वालियर)	१७, ८३, ८४
जीरदेवता श्रेष्ठी	६७	६५, १०२, १०५, १०८, १११, ११२ ५०-२, १३६	
जीरदासुमंभि	२४	डूंडाहट देस	१३०
जीरदार चरित	६३, ६८, १०१	पंदन	८६
गुणसिंहाशिर मुन्तार	१०६	राजराजा साहू	१२७
गुणसिंहाशिर (इमन निजामी)	६८	राजकार मन्त्र (नरदेव)	८६
गुणसिंहा (भरत)	१२२, १२३	राजकवदेवी	८६
गुणसिंहा (मासिक का परमार राजा)	५०३-१४०	राजकुमार चरित (माणिक्यराज)	२२
गुणसिंहा प्रकाशित सचह भा० १ प्रस्ता०	४७, १२०	राजराज	६१
गुणसिंहा सौपांक ५	१२६		
गुणसिंहास भवन धारा	१२२		

एण्जर पंचमी कहा	१२८	त्रिपुरो	प० १-१३६
शोमिणाह चरित्र	१६, २१, ६६, ८८, ८९, ११६-	त्रिभुवनकीर्ति	१२३
	प० ३-१३८, १३९	त्रिभुवनगढ़ (तहनगढ़)	११६
एण्हुह सप्तमी कहा	१११	त्रिभुवनगिरि (तहनगढ़)	६६, ७०, ११७, ११९
शोमिजिण्दि चरित्र (हरिवंशपुराण)	९८	त्रिभुवनपाल	६६, ८७
तवषडु श्रेष्ठी	५६	त्रिभुवन स्वयंभू	१६, ३७, ४१, ४३, ४५
तत्त्वार्थ राजवातिक	१९	त्रिपट्टि मलाका पुरुष चरित्र	११०
तपन (राजा)	३२	त्रिपट्टि स्मृति शास्त्र	प० ३-१५०
तहनपाल (त्रिभुवनपाल राजा)	६६, ११६ टी०	त्रैलोक्यनन्दी	४६, ५१
ताण्डव ब्राह्मण	१२ टि०	घोस्हा	८७
तामसचित्तपुर	२८	दक्षिण (देश)	प० १-१३६
तारानाथ (ऐतिहासिक विद्वान)	५	डण्डो (महाकवि)	४, ५१
ताल्लुय साहु	८८	दमोवा देग	१२२, १८३
तास्ह	प० १२-१४१	दमोह (जिना)	प० १-१३६
तियाल षडवीसी कहा	१२८	दरगहमल (कवि)	१२६ टि०
तिलोवाही (प० प० सारंग साहु)	१२४	दरह चरित्र	प० ३-१४०
तिहुवणसिरि (त्रिभुवनश्री)	६२	दगपुर (मन्दनौर)	६७
तुम्बर	८६	दगरथ (राजा)	४१
तुलसी	२७	दगलक्षणा जममाला	१०२, १०६
तुलसीदास	३४	दह लखणवय कहा	१११, ११२
तीवर (जबलपुर)	प० १-१३६	दाऊद ग्राह	८७
तेजपाल (मंत्री)	७५	दाक्षिणात्य	१२
तेजपाल (कवि)	८७, ८८, १२९	दाभाटालीवाड	१३०
तेजपाल (वणिक)	८६	दामोदर (कवि)	८८, १२९ प० ३-१३९, १४०
तेरपुर	१३५	दिगम्बर	७९
तेराडर (तेरापुर)	१३५	दिगम्बर गम्प्रदाय	३३
तेरापंथी मंदिर (जयपुर)	१२०	दिनक्रमेन (अनंतवचरित्र कवि)	६५, ७९, ९७
तोसड (पुत्र दिवराज)	७०	दिन्नी १५, १७, ६१, ८२, ८४, ८५, ८८, ९३, ९४, १०९, १२८	१२९ प० ३-१३८, १३९
तोमड साहु	६३, ६४, १००	दिन्नी (पट्ट)	१२९
तोमर कुल	१०९	दिल्लहाण	१२८
तोमर (क्षत्रिय वंश) ८३, ८४, ९१, ९३, १००, १०७, १०८		दिवटा (माहु)	८२
तोमर बंजी (राजाघोष)	१७	दिवगता साहु	१२९
तोपक	प०-१२	दिवगी	८७
तोहक (पुत्र भोमश्री)	१११ टि०	दीपवन्द पांडव्या	११७
त्योधर साहु	१११ टि०		

नेमिनाथ (श्री कृष्ण के चचेरे भाई)	प० ३, १३८	पद्मावती	१३५
नेमिनाथ (मन्दिर)	७१	पद्ममनी	४५
नेमि पुराण	१०६	परमंठी प्रकाश सार	१२२
नेमीश्वर की बेल	प० १२, १४१	परमात्म प्रकाश	२७, ३७
पंगारव (रामपुत्र)	प० १२-१३७	परमार (वंश)	७५, ७६ प० ३-१३६
पंच इन्द्रिय संवाद	२१	परमार जाति के इतिहास पर प्रकाश	१०५
पंचायती मंदिर दिल्ली	६५, ११२, १२०	परिहार (वंश)	८४
पंचास्तिकाय	१०	पहलीवाल	१०४
पंचेन्द्रियबेल	प० १२-१४१	पहलगपुर (पालनपुर)	७६, ८०
पंजाब	५१ प० २-१३६	पधाया (ग्राम-प्राचीन पद्मावती)	१०४
पंडिता दासी	४६	पहराज	६६
पंपाद्य	७२	पांचाल (देश)	१२, ८४, १२६ टि०
पउम चरिउ	६३	पाटन (गुजरात राजधानी अणहिलवाड़)	६२
पउम चरिय	१०, १६, २१, ३६, ४१, ४२, ४५	पाटीदी मंदिर शास्त्र भंडार जयपुर	१२०
पवखत्रइ कहा	१११, ११२	पाण्डव पुराण	१७, २१, ३६, ८१
पवण साहु	६६	पाण्डव	४७, ८२, ६८
पज्जुणसा कहा (सिद्ध तथा सिंहकवि)	२२	पाद पूज्य (पूज्यपाद-देवनन्दी)	६३
पज्जुणसाचरिउ	७२	पाणिनीय (व्याकरण कर्ता)	८
परियायार चैत्यालय	४३	पादलिप्त	१४, १६, ५०
पतंजलि (ऋषि)	३	पानीपत (पणपद)	१२४, १३४
पद्मकीर्ति	१४, ५२, ६५	पारस (पाशवं)	प० १२-१४१
पद्म चरित्र	४२, ४६, ६७	पारस श्रवण सत्ताइसी	प० १२-१४१
पद्मनन्दि (भट्टारक)	१३, ४६, ८६, ८७, ८८, ९२	पार्वती	३१
	१२६, १३०	पाल (वंश)	१६
	१२८	पाली	१०४
पद्मनन्दिदेव	८६	पाल्हा ब्रह्म (श्रीपाल ब्रह्म)	१०७
पद्मन्दि श्रावकाचार	६१, १३४	पावापुर	८२
पद्मनाभ (कवि)	८६	पार्श्वनाथ (तेवीसर्वे तीर्थकर)	५२, ७६, ७७, ८४, ८५, ६६
पद्म लक्षणा	१३		१२६, १३०
पद्मसिंह	२७	पार्श्वनाथ चरित्र	१७, ८६, ८६, ११०
पद्मसिंह मुनि	प० २-१३६, १३७	पार्श्वनाथ (मंदिर)	७७, ६१
पद्मसेन (पार्श्वनाथचरित्र कर्ता)	६५, ६६, ७६	पार्श्व पुराण	५२, ६३, ११०
पद्मावतिया	१०४	पासणाह चरित्र	११, १६, २१, ७६, ८४, ८६, ८७, ६२
पद्मावती पुरवाड (वंश)	१२८	पासणाह चरिउ	६५, ६८, १२६
पद्मावती पुरवाल	१०३ प० २-१३७	पास पुराण	८७, ६६
पद्मावती (नगरी)	१०४		

पाहड़ (श्रावक)	६१	प्रतापकीर्ति (भट्टारक)	७७
पाहल (कवि)	२६	प्रताप छत्र (चौहान बंशी राजा)	१००
पिंगल	५०	प्रतापसिंह (चौहानबंशी राजा रामचन्द्र पुत्र)	१११
पी० एल० वैद्य	१३४	प्रद्युम्न	६८
पुंजरज	१२२	प्रद्युम्नकुमार (श्री कृष्ण पुत्र)	७२
पुण्डरीकिनी (नगरी)	५७	प्रद्युम्न चरित्र	७६
पुण्यासव कथा	१११	प्रभाचन्द्र (भट्टारक)	५१, ८६, ११८, १२८, १२९, १३०, ५० १२-१४१, १४२
पुण्यासव कहा	६३		
पुण्यासव कहा कोस	१००	प्रभाचन्द्र (आचार्य)	१३०
पुण्यपाल	७६	प्रभाचन्द्र गणी	८०
पुण्यपाल (साह)	६८	प्रबन्ध चिन्तामणि	६३
पुराट (संघ)	६७	प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक)	५० १-१३६
पुष्पजलि कहा	१११	प्रवचनसार	१०
पुष्पजलि थककहा	११२	प्रशस्ति संग्रह	२६
पुष्पदन्त (महाकवि)	७, १४, १६, ५१, ५३, ६०, ६३, ६८, ७२	प्रह्लाद देव	७५
७६, ६१, ६५, ६७, ६९, १०३, १२४, १३३, १३४ ५० २-१३६		प्रह्लादन देव (पालनसी)	१०३
पुष्पांजलि कथा	५० १२-१४२	प्राकृत पिंगल	टि०-११३
पुरंदर विहाण कहा	६६, ६७	प्राकृत प्रकाश	१२
पुरवाड बंदा (कुल)	६४, ७६, ६०, १०३	प्राग्वाट (पुरवाड) कुल	६२, ७०
पुरुषार्थसिद्धिपाय	७४	प्राचीन जैन लेखसंग्रह	१११
पुष्कर गण	८३, १२४, १२५	प्रियंकर (पुत्र रामदेव)	१४
पुद्गमि (पृथ्वी राजा)	८६	फतहखा हार्वी	१०६
पुन्यपाद (देवनन्दी)	८१, १२६	फीरौजसाह तुगलक	८०, ६४
पूर्णदेव	१३४	यक्षतराम (पंडित)	१२५
पूर्णभद्र मुनि	८८	बंगाल	१५, १६
पूना (नगर)	५० २-१३७	बघेरवाल	१०४
पृथ्वी देवी	२१	बघेरा (प्राचीन नगर-वर्तमान कस्बा केकडी से १४ मील दूर)	१०४
पृथ्वीपाल	१०६		
पृथ्वीराज रासो	३३, ३४	बघेल बंध	६७
पेगावर	१२	बटनगर	७६
पोदिल्ल (प्रोटिल्ल)	१२८	बडोदा	१२२, १३३
पोमावइ (पदावती पुरवाल कुल)	१०३, १०४	बंदिगदेव	६६
पोमावती	५८	बनारसीदास (कवि)	२७, १०५
पोममेण (पद्यसेन)	६४	बम्हणवाड (नगर)	७५
पोल्हण	८८	बम्बई	१०४, १३२

वरार	१६	बुधजन	२७
बलडङ्ग ग्राम (अहमदाबाद)	६४	बूचिराज (बल्ह)	३०
बलदेव	८१	बूढिया (जिला अम्बाला)	१२६
बलभद्र (रामचन्द्र)	६६, ६८	बूंदी (राज्य)	प० २-१३६
बलभद्र चरित्र	११०	बौदाउनगर	प० ३-१३७
बलभद्र चरित्र	१०६, ११०	ब्रह्मदेव	८६
बलभी (नगर)	५	ब्राचड	१२
बलहृद् चरित्र	६५, ६६	ब्राह्मण (कुल)	१३५
बहलोल लोदी (बादशाह दिल्ली)	१०६, ११०	भगवती आराधना	६१
बलात्कारगण	८६, ११८, १२१, १२३, १२८, १२९, १३०	भगवतीदास (कवि)	२१, २४, १२५, १३६
	प० १२-१४२	भट्टारक सम्प्रदाय	११८
बल्लाल	७५, ७६, ७८	भदासही (पत्नी सा० मल्लिदास)	१२४
बाटू (साहु)	६६	भद्रबाहु (श्रुतकेवली)	१२३
बाण (कवि)	५०, ६८, ७२	भमियापुहमी	५२
बांदा (जिला यू० पी०)	प० १-१३६	भरतक्षेत्र	५६
बाबर (मुगल बादशाह सन् १५२६-१६३० तक)	१७, १२४	भरतचक्रवर्ती (आदिनाथ पुत्र)	७१
बाम्बे युनिवर्सिटी जर्नल	१३२	भरत	३०, ५०, ७८
बालचन्द्र	५०	भरत (तक्खडु श्रेष्ठिका लघु भ्राता)	५८
बालचन्द्र मुनि (विनयचन्द्र गुरु)	११७, ११९	भरत (मंत्री राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय)	१६, १३४, १३५
बाल्मीकि (ऋषि)	१७, ७२, ९८	भरत सेनापति चरित	५८
बालू (पुत्र पद्मसिंह)	प० २-१३७	भरत	६६
बाहुबलि	६६	भरत	१३६
बाहुबली	७८	भरत मुनि (नाट्यशास्त्र के कर्ता)	४
बाहुबली चरित्र	१७, २१, २६	भर्तृहरि	३
बाहुबली चरित्र	७८	भवदत्त	५६, ५७
बाहुबलीरास	३४	भवनगर	२६
बाहोल	१०६	भवनन्दि	४७
बाह्य साहू	८६	भविष्यदत्त	८६, १०६, १३२
बिम्बसार (श्रेणिक)	६१	भविष्यदत्त कथा	१०३
बिलरामपुर (जिला एटा)	७०	भविष्यदत्त चरित (त्र)	८३ प० २-१३७
बिहोलिया (गोत्र)	७०	भविष्यदत्त पंचमी कहा	१०६
बिहोली (ग्राम)	१०५	भविसयत्त कहा (धनपाल)	२२, २३, ८६, १३२
बील्हादेवी	८५, ६६	भव्यकुमुद चन्द्रिका	प० ३-१४०
बील्हादेवी (माता कवि श्रीधर)	प० ३-१३८	भादानक (पंजाब के भैलम जिले का भद्रावती देश)	७, ८४
बुद्धिविलास	१०५		

भादानक (भदायर-भदौरिया राजपूतों का स्वान)	८७	मंगा या माण्डिणि	५० २-१३७
भामह (कवि)	४, २०, ५१	मंडपाचल (मांडू)	१२२
भावकीर्ति	५० १२-१४२	मडडसत्तमी कहा	१११, १२८
भावधी	५० २-१३७	मडडसत्तमी कहा रास	१२५, १३६
भावसेन	६५	मगध (दिग)	७, ११, १२, ५४, ५६, ६७, ८४, ८५, ८६
बिन्धु अभिवंदन ग्रन्थ	११७	मणि द्वीप	६८
भिल्ल (संघ)	१२३	मथुरा	६, ६१, १०४
भीखणहो (पत्नी सोहिल्ल)	१२४	मदन	६६
भीम	८१	मदन पारिजात	१२४
भीम भट्टारक	६७	मदनपाल (टांक वंश के राजा)	१२४
भीमदेव	६३	मदन युद्ध	३०
भीमदेव	६३	मदनावली	१३५
भीमदेव (पुत्र मूलराज सोलंकी)	६२	मध्य प्रदेश	१०५
भीमद्वितीय	६७	मनकरहा राम	२६, १२६
भीममेन (पंडित लक्ष्मणसिंह चौधरी पुत्र)	११२	मन्दादरी	४३
भुजवली भीमदेव (राजा)	१२०	मनोरमा	४६
भुल्लण	७५	मम्मट	७
भुल्लण साहु	६८	मम्मलपुरी	७२
भुल्लण	५० १२-१४१	मयण जुम्क	२१
भुवनकीर्ति	८८, १३०	मयण पराजय	८१, २६, ११३
भुवनपाल	५० १-१३६	मयणवात	५० २-१३७
भूधरदास (कवि)	२७	मयण-रेहा-मन्वि	२६
भूपाल	७२	मयन मिरि (मदनश्री)	५० २-१२७
भूपाल नरेन	परि० १-१३६	मयणा (मदना)	५० २-१३७
भूमिपाल	५० १-१३६	मयना मुंदरी (रानी)	६७
भेलसा (विदिना)	६०, ५० ३ १३६	मयूर	५०, ७२
भोगवि	१२८	मरु (मारवाड)	७
भोजस्थान	१२२	मरह	८४
भोजराज (राजा)	८६, १३०	मलयकीर्ति (भट्टारक)	११२, १२४ ५० २-१३७
भोजराज (चौहान वंशी राजा)	१७	मलघारीदेव	७४
भोजराज (साहु-गर्ग गोत्रीय)	१२४	मल्लिसाह कव्व	८२, ८६, १३६
भोट	८४	मल्लिदान	८७
भोपाल	५० २-१३६	मल्लिदाग (पुत्र माधारण)	१२४
भोवर्दी (श्रेष्ठी)	७६	मल्लिदान (पं० मान्हा पुत्र)	५० १२-५१
भंगनदेव (बुध)	१३५	मल्लिनाथ	८६



मल्लिनाथ चरित्र	१३०	माणिक्यदेव	१३४
मल्लिभूपण (भट्टारक)	१२१	माणिक्यनन्दी	४६-५१
मल्लिपेण	४७	माणिक्यराज (कवि)	६१, ६०, ६२
मल्लुगि (वैद्य-विद्यामें निपुण, प्रियंकर पृथ)	११४	माधुरकुल	४६
मल्हादे (माता रत्नपाल और कण्हड)	६६	माधुरगच्छ	६२, ६३, ११६, ११८, १२४, १२५
महणा (साह महणा)	६१	माधुर संघ	६०, ७०, १०८, १०९, ११०, ११७, ११९
महमूद शाह शर्की	१०९, ११०	माधुर (वंश)	८७
महाकीर्ति	५०	माधुरान्वय	१११ टि० ११२
महाखान	१२२	मांभाला	५०३-१३९
महाचन्द	२७	मायवचन्द्र	७४, ७७
महादेवी	८७, १०१	मायवसेन	६२
महापद्म (चक्रवर्ती)	५७	मानसिंह (राजा)	१३०
महापुराण कलिका	१३१	मान्यरोट (मलयरोट)	१५, १६, ४५
महापुराण	७, १६, १९, २१, ६८, १०२, १३३, १३५	मारवाड	१५
महाभारत	२३, ४७, १३३	मायतदेव	४५
महाभाष्य	३	मानती माधव	१०४
महायान (बीदों का एक सम्प्रदाय)	५	मालव देश	५८, ६०, ११९
महामात्य भरत	१३४, १३५	माणिक्य राज्य	१२२
महाराष्ट्र देश	१०	मालहरा	५० ३-१४०
महावीर (चौबीसवें तीर्थंकर)	६, ११, १३, ८२, ६३	माल्हा	५० १२-१४१
महावीर चरित्र	६६	माहर्षिसिंह	१०६
महावीर चरित्र	६३	माह्व (माधव) चंद (मलघारी)	२१
महावीर स्वामी	५३	माहुर (माधुर कुल)	५० २-१४५
महासूदन	५८	माहिंदसेण	१३५
महासेन	५९	मित्तल (गोत्र)	८७, ६३
महासेन (सुलोचनाचरित्र कर्ता)	६५, ७९	मिर्गकलेहा चरित्र (मृगाकलेहाचरित्र)	१२५
महिदु (महाचन्द कवि)	१७, ११३, १२३	मुक्तायलि विधान कथा	१२०
महीचन्द	६१	मुग्धादेवी	१३४
महीयदु (देश)	६६	मुद्राराक्षस	३८
महेन्द्रकीर्ति (भट्टारक)	६१, ७६, १२२	मुनिभद्र	८८
महेन्द्रसेन भट्टारक (दिल्ली गद्दी)	१२५	मुनिसुव्रतनाथ (बीसवें तीर्थंकर)	११३, १२०
माएंसर (मातेश्वर)	१३३	मुवारिकशाह	१७, ८२
माघ (कवि)	५१	मुहम्मद गौरी	६९, ११६
मांडवगढ़	१२२, १२३	मुहम्मदशाह तुगलक	८०
माणिक्यचन्द ग्रन्थमाला	१३४	मूलराजन्टपेन्द्र (सोलंकी राजा)	६२
माणिक्यक (माणिक्यचन्द)	१२५	मूलराज (द्वितीय)	६७

मूलसंघ ७७, ८८, १०८, १२६, १३०, ११८ टि०, ५० १२-१४२	यशस्तिलक चम्पू	६८
मेघचन्द्र १११ टि०	योगदेव पंडित	३४, १२०
मेघपुर २१	योगिनीपुर (दिल्ली)	८०, ८४, ६८, ६६
मेघवन ६०	योधेय (दिस)	६६
मेघमालावयकहा ५० १२ १४१	योगसार (जोगसार)	२७, १२२
मेघेश्वर ७१, ६७	रङ्ग (कवि) १७, ८३, ६२, ६६, ६६, १००, १०२, १०३	
मेघेश्वर चरित १०६, १०७, ११०	१०५, १०६, १०७, १२६, १३४, १३७ ५० २	
मेहेत्तम (वंश) ५० ३-१४०	रङ्गप्रतिष्ठाचार्य	१११
मेघावी पंडित १२६	रघुपति कौर	६६
मेमद्विय ८४	रणधोरी	७५
मेरुकीर्ति १२८	रणमल	८७, ८८
मेरुतुंग ६३	स्तण्डक	८६
मेवाड़ ७६	रतन	६६
मेहरसर चरित २१, ८३, ६५, ६६, ६७	रतपाल	७६
मैनपुरी ५० ३-१२६	रति	८१
मैनासुन्दरी ११४, ११५, १२६	रतिवेगा	१३५
मैसूर १३२	रत्नकीर्ति (भट्टारक) ८०, १२८, १३०, ५० १२-१४२	
मोल्हण १११ टि०	रत्नपाल (प्रथम पुत्र श्रीवल्लाल)	६६
मोल्हादेवी १०१	रत्नप्रम	
मोहनधोष (डाक्टर) १०	रत्नचोखर (विद्याधर)	५४
मौनीदेव ७७	रत्नसिंह सूत्रि	११७
मुगांक (केरल नरेश) ४४, ८५	रपरी (चन्द्रवाह के समीपवर्ती नगर)	६१
मुगांकलेलाचरित्र १२७	रगडा धनंजय (आमात्य राष्ट्रकूट राजा ध्रुव)	१६
यदु (वंश) ८६, ८७, १२६, १३०	रयणकरंड सावयायार (रत्नकरंड श्रावकाचार)	१६, ३५, ६१, ६३
यदुवंशी ७२	रयणक्षय कहा	१११
यमकालंकार १२६	रयणदेव (रत्नदेव)	६०
यमुना (नदी) ८५	रयणु	१२८
यादव (कुल) ८६	रविचंद्र कथा	८१
युधिष्ठिर ८१	रविचय कहा	११६, १२८
यशोधर (राजा) ६६, १३४	रविचंद्र कथा	८२
यशोधर चरित्र ६१, १००, १०७	रविपण (पद्मचरित्र कर्ता)	४२, ४५, ४६, ६५, ७६, ६७
यशोपवल ७५, ७६, ७६		६८, १०३
यशोमती ५७		
यशःकीर्ति (भट्टारक) १७, २६, ४३, ४४, ४६, ८०, ८१	रहीम	२७
८२, ८३, ८४, ६५, १०७, ११२, ११६, १२४, ५० २-१३७,	राजल	१३४
५० १२-१४२	राघव	११४

राजगिर (राजगृह-मगध देश की राजधानी)	५५	राहुव (राघव) साहु	४८
राजगृह (नगर)	५७, ८६	राहुल	परि० १-१३६
राजपूताना	प० २-१३६	रासक (रासा)	३०, ३१
राजमती	८६, १२८	रिड्डोमिचरिउ	१६, ४१, ४३, ४४, ४६, ४७, ६३, ६८
राजशेखर (कवि)	७, ५०	रिपुदारणा रास (उपमितिभवप्रपंच कथान्तर्गत)	३२
राजसच्चित्तपुर	२८	रुद्र	५१
राजस्थान	१५, ८, १०६	रुद्रट (कवि)	६
राजस्थान जैन ग्रन्थ-भंडार-सूची	४, ११८	रुप्पिणी (रूपिणी)	८७
राजस्थानी पत्रिका	२४	रुप्पिणी (पत्नी साधारण)	प० २-१३७
राजोर्हि (राजसिंह या राजकुमार)	६०	रुहिधासु (रोहतासु)	५७
रागू (पत्नी कृष्ण श्रावक)	६२	रूपदेव	७६
रामकीर्ति (जयकीर्ति शिष्य)	११८	रेवतीरानी	१००
रामकीर्ति मुनि	११८	रैधू (आचार्य)	टि०-१११
रामकीर्ति	प० १२, १४१, १४२	रैवतगिर (ऊर्जर्यन्तगिरि)	६८
राम (चन्द्र)	२३, ४१, ४२, प० २-१३७	रोहतकपुर (नगर)	६१, १०५
रामचन्द्र (राजा) १००, १०१, प० २-१३७, प० १२-१४१		रोहिणी विधान कहा	प० ३-१३७
रामचन्द्र पंडित	प० ३-१३६, १४०	रोहिणीव्रतरास	१२६
रामचन्द्र (पुत्र साहु नेमचन्द्र)	प० ३-१३७	रोहिणोउ	३६
रामचरित्र	१०६	लंवकंचुक (लमेचू)	६८
रामणंदि	२६	लंवकंचुकान्वयी	प० १२-१४२
रामदेव	७५	लवखरा पंडित	११६
रामनगर	३६, १३२	लवखरांक	५६
रामनन्दी	४६, ५०	लवखनु	प० २-१३७
राम (पुत्र नागदेव)	११४	लखमरा (लक्ष्मरा)	४३
रामसिंह	२७	लखमदेव (साहु)	८७
रामायण	१६, २३, ४७, १३३	लक्ष्मरा (पंडित)	१३०
रामाही	६०	लक्ष्मरा	१४, १२८
रायगिह (राजगृह)	५५	लक्ष्मरा कवि (रत्नदेव वरिणक पुत्र)	११६
रायल एशियाटिक सोसाइटी वाम्बे	१३२	लक्ष्मरा कवि १७, १६, ३५, ४१, ४२, ६७, ६८, ८६, ६२, ६६	
रायवदिय (नगर)	६८, ७०	लक्ष्मरासिंह	१३०
रल्हण (बुध)	७३	लक्ष्मरासिंह (चौधरी जैसवाल वंशी)	११२
रल्हो	परि० १-१३६	लक्ष्मरासिंह	८६
रावरा वध	१०, ४३, ६०	लक्ष्मीचन्द्र	२७, ३४, १२१, १३०
राष्ट्रकूट (राजा ध्रुव)	१६, ४५, १३५	लद्धिविधान कहा	१११
राष्ट्रकूट वंश	१३४	ललितकीर्ति	११७ टि०

ललित विस्तर	५	वरसावडह (वंश)	८८
साधू	१४	वर्द्धमान	४७,५२,८५
सासवागड	५८	वर्धमान (मन्दिर)	१२५
साहडपुर	६६	वर्धमान चरित्र	८५,८६,६२
साहा (साह)	६८	वल्लभराज	५०
लिच्छविलोग	१२	वसंतपुर	६७,६८
सीलावड कहा	१६	वसुदेव	६८
सीलावती	१३,५८	वसुदेव हिण्डी	११,२५
नुवाइणपुर	१३१	वस्तुपाल	७५
नुहाइया (गोत्र)	१३१	वहुरुहीन तुगरिक	६६,११६
भूणवसहो	७६	वाक्यपदीय (व्याकरणग्रन्थ)	९
लोणा (साह)	६२,१३०	वागडसंघ	११८
लोणिव (लोणा साह)	८६	वाग्भट्ट	७,१४,३१
लोहडु	५० २-१३७	वाटग्राम	५१
लोहाचार्य	६३	वादरायण	५०
बडली	५० १२-१४१	वादिभूषण	५० १२-१४२
बंसल (गोत्र)	१२६	वादिराल	१३४
बजौरिस्तान	१२	वामन	५०
बच्छदन्त राजा	५७	वामादेवी	८४
बच्छसूरि (प्रमाण ग्रन्थ कर्ता)	६५,७३	वामुभूति	६३
बखसेन	६७,१०३	वारवती (झारवती-नगरी)	८६
बज्जस्वामि सन्धि	२४	वारिदेण	१००
बड्डमाण कव्व (वर्धमान काव्य)	८५	वाल्हाही (भार्या)	५१
बड्डमाण चरित्र	५० २-१३७	वासवह (वासवह)	३४
बणिपुर (बणिक्पुर)	१२७	वासवचन्द्र	७७
बल्लराज (सम्नाद)	३२	वासवपुर	८८
बाहिमदेव (चालुक्यवंशी राजा)	१६	वासवमुनि	६३
बनमाला रानी	५७	वासवसेन	१३४
बरदत्त	२४	वासावर (साह)	७८,७९,८०
बरंग चरित्र	८७	वासाहरू	३६
बरंग राजा	८७	वामिल्ल (गोत्र)	१११ डि०
बरंगचरित्र	५६	वासुएव (वामुदेव)	४६,५० २-१३७
बराडक (देश)	८६	वाहड	७६
बराड या बराट	५१	विक्रमसिंह	७५,७६
बरपेण	६३	विक्रमसिंह (राजा)	६१,६२

विक्रमोर्वशीय नाटक	२७, ३८	विश्वनंदी	४६
विजयकीर्ति (मुनि)	६५	विश्वभूषण	१३४
विजयगढ (वयाना)	६६ टि०	विश्वामित्र (गोत्र)	प० १-१३६
विजयपाल नरेश	प० १-१३६	विश्वेश्वर (पुत्र पेदिभट्ट)	१२४
विजय पालाही	१२३	विरान्वर (राजा)	५७
विजयसिंह	१२७	विहगसेन	६३
विजयसिरि	१०३	विहराज	७६
वित्तसार (ग्रन्थ)	१३, ६८	विहारी	२७
विदेह (उत्तर विहार)	१२	वीतशोका नगरी	५७
विदेहक्षेत्र	१०१	वीर कवि	३३, ५३, ५६, ६०, ६५, ११२
विद्याधर (जोहरापुरकर)	११६	वीरचन्द्र	६३ प० २-१३७
विद्यानंदि	६३, १२८	वीरजिन	प० ३-१५१
विद्यापति	१४	वीरमदेव	१०८
विद्युच्चर	५५, ५७	वीरसेन	५०, ५१, ६३
विद्युन्माली	५६, ५७	वीसलदेव	७६
विनयचन्द्र (मुनि)	३४, ७०, ११६, ११७, ११८, ११९	वीसलदेवरासो	३३
विनयचन्द्र सूरि	११७, ११८	वीरसिंह (राजा)	६१
विनोदीलाल (अग्रवाल कवि)	१२६ टि०	वीरसूरि	८८
विपुलकीर्ति (मुनि)	८७	वीरा (पत्नी पर्यासिंह)	प० २-१३७
विपुलाचल	५६	वीरादेवी	प० ३-१३७
विम्बसार (श्रेणिक राजा)	५४	वील्हा साहु	६४
विवुधश्रीधर	८३, १०६	वील्हादेवी (माता कवि हरिचन्द्र)	११६
विभीषण	४३	वीसल साहु	१३४
विमलकीर्ति	११८, ११९ प० १२, १४१, १४२	वृकेक (श्रावक)	६१
विमलचन्द्र (पुत्र साहु नेमचन्द्र)	प० ३-१३७	वैराग्य सार	२७
विमलमती	६८	वृत्तसार	१००, ११०
विमलसिरि	११७	वृषभनन्दी	४६
विमलसूरि	१०, ४२	वृन्द (कवि)	२७
विमलसेन (गराधर)	७२, १६४	व्रात्य	१२
विलरामपुर	६६	व्यास	६८, ७२
विलासवती	५४, ८५	शंकर संघवी	१२२
विल्हण सेठ	७०	शत्रुंजय (तीर्थ)	७६, १२४
विशालकीर्ति (भट्टारक)	८८, १३०	शम्भूनार्यासिंह	२२
विष्णुनंदी	४६	शमसुद्दीन अल्लमश (बादशाह)	प० ३-१३६
विश्वनाथ (कविराज)	१६, ३१	शशिशेखर राजा	६७

शान्ति कवि	६०	श्रीपाल चक्रवर्ती	६७
शान्तिदास	६१	श्रीपाल ब्रह्म (भाचार्य)	१०६, १०७
शान्तिनाथ (१६ वें तीर्थंकर)	१११, १३०	श्रीबालपुर	६३
शान्तिनाथ चरित्र	१२४, ५० ३-१३७	श्रीमालकुल	१०५
शान्तिपेण	६६	श्रीमती (सिंहल द्वीपकी राजपुत्री)	६८
शाबर	१२	श्रीवल्लाल (मंत्री जाहङ नरेन्द्र)	६९
शारङ्गधर	११	श्रीपेण	६६
शालिभद्र (जीव उद्योत कर्ता)	६५, ७९	श्रीसेना (रानी)	५७
शाहजहाँ (बादशाह)	१२६, १२७	श्री हर्ष (हर्षवर्द्धन राजा व कवि)	५०, ६३, ६८, ७२
शिवकुमार	५७	श्रुतिकीर्ति	६३, १२२, १२३, १३९
शिवकोटि मुनीन्द्र	६१	श्रुतकीर्ति (भट्टारक)	५० २-२३७
शिव	६०	श्रुतसागर (ब्रह्म)	१२१, १३४
शिवदास (साहू)	८७	श्रेशिक (राजा)	२०, ५६, ५७, ८९, १००
शिवदेवी (रानी)	८९	शृंगारदेवी	७
शिवनेदि	८८	शृंगारमती (राजकुमारी)	६८
शिशुनागवंश	८५	शृंगारवीर महाकाव्य	५३
शुभकीर्ति	५० ३-१३८	श्वेताम्बर	७९
शुभकर	७३	पट्टकर्मोपदेश	१६, १०१
शुभचन्द्र	६३, ६८, १२९, १३०	पद्दर्शन प्रमाण ग्रन्थ	७९, ९०
शुभचन्द्रदेव	१२८	पोडदाकारण जयमाला	१०२, १११
शौरसेन	१२	संकथा	१२६
शोरीपुर	८९, ९१, १२९	संघदासगणी	११
श्रवण बैलोल	७७	संघसेन	४७
श्रावकाचार दोहा	१२१	संतिणाह चरित्र	१७, १२३, १३०, ५०३ १३८
श्रीकीर्ति	६३, ७७	संतुष्ठा (माता वीर कवि)	६, ५९
श्रीकुमार	५१	संतोष	८०
श्रीकृष्ण	७२, ९१, ९८, १२२	संदेशरासक	१९, २६, ३१
श्रीचन्द्र	१६, ३५, ५१, ६१, ६२, ६३, १२४	संभवसाह चरित्र	८७
श्रीचन्द्र (पुत्र सा० नेमचन्द्र)	५० ३-१३७	संभवनाथ (तीसरे तीर्थंकर)	८७
श्रीदत्त	४७	भंमरी	७९
श्रीधर (श्रेष्ठी)	६८, ७०, ८६, ८७	संसारचन्द्र (पृथ्वीराजसिंह)	८६, १३०
श्रीधर कवि	१६, ८५, ९२, ५० २-१३७, ५० ३-१३८	सत्तराजही (पत्नी ज्ञानचन्द्र)	१२४
श्रीधर	६३, १२८	सकलकीर्ति (भट्टारक)	३१, १३४
श्रीधर (पुरवाहवंशी सेठ)	११९	सकलचन्द्र (भट्टारक)	१२५
श्रीपाल (राजा)	१०२, ११४, १२९	सकलविधि विधान काव्य	५०, ५१, ५२

सती सीता	१००	सागरचन्द्र	५७, १२५
सनत्कुमार चरित्र	६५	सागरदत्त (सेठ)	४६, ६८
सन्धि-काव्य	२४	सागार धर्माश्रित टीका	प० ३-१४०
सपादलक्ष (सांभर)	७५	साधारण (ब्रह्म)	१२८
समन्तभद्र (आचार्य)	५०, ५१, ६३, ८१	साधारण साहु	प० २-१३७
समदो (पत्नी जितमल्ल)	१२४	साधारण	७३
समयसार	७४	साधारण (श्रावक द्वितीय पुत्र ज्ञानचन्द)	१२४
समयसार (सेनगणकारंजा भंडार)	११२	साधु समाधिरास	१२६
समरसिंह	८६, १३०	सांभर	१०४
समराइच्च कहा	११, २५	सामंतसिंह (चावडावंशी राजा)	६२, ७६
सम्मइजिन चरित्र	८२, ६२, ६३, १०३, १०६, १०७, ११०	सारंगसाहु (प्रथम पुत्र ज्ञानचन्द)	१२४
सम्मत्त कउमदि	६३	सावय वम्म दोहा	२७, १२१
सम्मत्त गुरु निधान (हाण)	६३, ६७, १०७, ११०	सावसमल्ल (देवपाल)	प० ३-१३६
सम्यकत्व कौमुदी	१०२, १०६, १११, १३७	साहित्य दर्पण	११६, ३१
समुद विजय (राजा)	८६	साहु बाहु	१०२
सम्मेद शिखर	१२४, १३०	साहुल श्रेष्ठी	६६
सयलविहिविहाण कव्व	१६, ४७, ४६, ७७	साहुल (पिता लक्ष्मण कवि)	११६
सरस्वती कंठाभरण	१०४	साहुजी	६४
सरस्वती गच्छ	८६, ११८, १२१, १२३, १२८, १२६, १३०	सिगल (सिगल)	६१
सरस्वती देवी	७४	सिद्धचक्र कहा	११४
सरस्वती नदी	६२	सिद्धचक्र माहात्म्य (श्रीपाल कथा)	२३, ६५
सरहपा (बौद्ध सिद्ध)	२७	सिद्धचक्र का पाठ	११५
सर्वनन्दि	४७	सिद्धचक्र विधि	१०२, ११०
सलखणपुर (मालव देशमें स्थित ग्राम)	प० ३-१३८	सिद्ध	७२
	१३६, १४०	सिद्धपाल	८१
सत्रण वारसि कहा	१११	सिद्धसेन	४७, ७६, ८१
सहजमाल (गोपाचलवासी साहु वीधा पुत्र)	११२	सिद्धसेन (भक्तिक विनोद कर्ता)	६५
सहजपाल (साहु)	६८, ६९, ६३, ६४	सिद्धार्थपुर	३२
सहणपाल	१२४	सिद्धार्थि (६६२)	३२
सहदेव (साहु)	८१, ६३, ६४	सिद्धांतसार (प्राकृत)	१२६
सहदेवी	६५	सिद्धांतार्थसार	६६, १११
सहसराज	६६	सिन्धु (पश्चिमोत्तर प्रदेश)	४
सहसाम्रवन (शेषावन)	८६	सिन्धु सौवीर (पश्चिमोत्तर प्रदेश)	४
सहस्रकीर्ति	६३, ६५, १३०	सिंह भद्र	५०, ५१
सहस्रार्जुन	४३	सिंह (कवि)	७२, ७३, ७४

सिंहर्नदि, मुनि (अनुप्रेषा कर्ता)	७६	सुरमुन्दरी चरित्रं	११
सिंहनन्दो	५०, ५१	सुप्रतानुप्रेषा रास	३४.
सिंहपुरी	५० १-१३६	सुलक्षण ( धर्मपत्नी कृष्णादित्य )	६६
सिरिपाल चरित्र	६३, १०२, १२६	सुलोयनाचरित ( चरित्र )	२१, २६, ७१, ७२
सिहरदि (नगर)	१२६	सुलोचना	७१, ६६, ६७
सिंहल (गोन)	६३	सुहृदप्रभ ( श्रेष्ठी )	८०
सिंहलद्वीप	१७, १६, २५, ३५, ३७, ६८	सुहृडा देवी	८०
सिंहसेन (आचार्य)	१०६	सूर्यट	६१
सीठा	२३, ५१, ६६	सूरसेन देव	६, १०, १२६
सीठामुत्त	१२६, १२७	सूरसेन सेठ	५७
सीमंघर (राजा)	१०१	सूरा (वृष)	६१, ६२
सीवाही (पत्नी साधारण)	१२४	सूरिसेन मुण्डि	५० ३-१५२
सीहदा	१३१	सूरिसेन	५० ३-१४०
सीहल्ल	५६	सेठ साहु	१०२
सुप्रध्वा	४५	सेढु कवि (पञ्चमचरित्र कर्ता)	६५, ७६
सुकमाल चरित्र (चरित्र)	२१, ६३, ८३, ८८, १०६	सेणिय चरित्र	८५
सुकमाल (श्रेष्ठी)	८८	सेतुबंध	१०, १८
सुकमाल सामिरास	३४	मेनबंध	१६
सुकोसल चरित्र	६२, ६५, ११०	सोखवई विहान कहा	११८
सुमंघ दमनी कथा . ११८, १२०, १२५, १३१, ५० १२-१४०		सोडल (साहु)	७८, ८४, १०६
सुमंघ दहमी कहा	१११	सोडुल साहु (पुत्र अष्टपाल)	६६
सुजठ साहु	८८	सोणपाल (पहराज पुत्र)	७६
सुदंशप चरित्र . १६, १६, २१, २२, २३, ४७, ६५, १०२		सोणिय (सोता साहु)	८६, १३०
सुदर्शन	२३, ४८	सोणिय साहु	१२६
सुदर्शन चरित्र	४८, ५१, ११०	सोता (संधायिप श्रावक)	५२
सुधर्म मुनि	५६	सोनागिर (तीर्थक्षेत्र)	६६
सुनपत (नगर)	६, ६१	सोमकीर्ति	१३४
सुनीतिकुमार चटरजी	१३, ३७	सोमदेव	७६, १३४
सुप्यट्ट	५० २-१३७	सोमदेव आचार्य	६८, ६६
सुप्रभाचार्य	२७	सोम प्रभाचार्य	२७
सुप्रभादेवी	७१	सोमराज	६३
सुमंद्रा	५७	सोमसर्मा (पत्नी धार्य वयु)	५६
सुभाषितरत्नविधि	६६	सोमश्री	१११ टि०
सुमित्रा	४२	सोभादेवी (माता साहु नेमचन्द)	५० ३-१३७
सुरजन साहु	८८	सोमेश्वर (कवि)	७६



सोलंकी (वंश)	६६, ७६	हरिपेरा	५१, ५२, ५३, १०३, १०७
सोलह कारण वय कथा	१११	हरिपेरा चक्रवर्ती	११३
सोऽहं शुदि	१०२	हरिपेरा (बुध)	१०३
सोहिल्ल (४ था पुत्र साधारण)	१२४	हरिश्चन्द्र वर्मा (महाकुमार)	५० ३-१३६
सोहिल्ल	१००	हरिसिरि	६२, १२५
सौभाग्यदेवी	७५	हरिसिघ	१०३
सौराष्ट्र (देश)	५, ३१	हरिसिंह मुनि	५०
सौरिपुर (तीर्थ)	८०	हरिसिंह	१०६
स्वयंभू (कवि) ६, १४, १६, १६, २६, ३१, ३६, ४१, ४४, ४५		(डा०) हमन जैकोवी	१३३
५१, ५२, ५३, ६३, ६८, ७२, ७६, ८४, ९५, ९७, १२४		हल्ल (कवि हरिचन्द)	८५, ८६, १३०
स्वयंभू छन्द	३५	हल्लरा	६८
स्वयंभूदेव ३६, ३७, ४७, ६०, १०३, १३२		हल्लरा श्रावक	६८
हजारी प्रसाद द्विवेदी	३३	हाल (कवि, सतसई कर्ता)	११
हटा (तहसील मध्यप्रन्तका एक गाँव)	५० १-१३६	हलिय	७२
हम्मीर	२८	हस्तिनापुर (मगध देश का एक नगर)	५७
हम्मीरदेव	८४	हस्तिनागपुर (मेरठ जिला)	७१, १२४
हम्मी वीर	४५, ६८, ८४	हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास	२२
हर देव (कवि)	११३, ११४	हिमालय (पर्वत)	४
हरदेव	२६	हिरण्य गर्भ	६७
हरसी (साहु)	६६, १०२, १०६	हिसार	८२, ९३, ९४, १२६, १२७
हरसोडा (गाँव)	५० ३-१३६	हिसार कोट	१२५
हरिचन्द (कवि, अग्रवाल)	११५	हीययान (बौद्धों का एक सम्प्रदाय)	६
हरिदेव	६६	हीरालाल एम० ए०	१२३, १३४, १३५, ५० १-१३६
हरिदेव (प्रथम पुत्र कृष्णादित्य)	६६	हुंवड (कुल)	८१
हरिनन्दि (मुनीन्द्र)	६३	हुसैन शाह	११०
हरिभद्र	१३, २५	हेमकीर्ति	६२
हरिभूषण	१२८	हेमकीर्ति आचार्य	१११ डि०
हरियाना (देश)	८४, ८५	हेम (पुत्र नागदेव)	११४
हरियास (हरिदास)	११६	हेमचन्द्र	७, ११, १३, १६, ६२
हरिराज	८०	हेमचन्द्र (आचार्य)	२६, ३०, ३१, ३७
हरिराय	३७	हेमदेवी	७०
हरिवंश	१६	हेमराज (साहु)	८२, ९६, १०१
हरिवंश पुराण ३, १७, २१, ४६, ४७, ६४, ८१, ८२, ८३, ९७		हेमराज साह (मंत्री मुबारिक शाह)	१७
६८, ११०, ११२, ५० २-१३७		होलिवम्म	८६, ९६
हरिपेरा चरिउ	११३	होलु	८७

# विषय-सूची

संख्या	विषय	पृष्ठ	महत्या	विषय	पृष्ठ	
१	पउमचरिउ	१	३३	अमरमेन चरिउ	माणिवचरोज	५७
२	रिदुणेमिचरिउ	२	३४	नागकुमार चरिउ	"	६१
३	सुदंसण चरिउ	३	३५	सम्मइ जिन चरिउ	कवि रइधू	६२
४	पास पुराण	४	३६	सुकोसल चरिउ	"	७०
५	धम्मपरिवखा	५	३७	पासणाह चरिउ	"	७२
६	जंबूसामिचरिउ	६	३८	पउमचरिउ	"	७७
७	कहा कोमु	७	३९	मेहेसरचरिउ	"	७९
८	रयणकरंडसावयायार	८	४०	सम्मत्तगुणणिहाण	"	८३
९	सुकमाल चरिउ	९	४१	रिदुणेमि चरिउ	"	८८
१०	हरिवंश पुराण	११	४२	घणकुमार चरिउ	"	९१
११	छवकम्मोवएस	१३	४३	जसहर चरिउ	"	९३
१२	पुरंदरविहाण कहा	१५	४४	अणयमी कया	"	९५
१३	जिनदत्त चरिउ पं० लक्ष्मण	१५	४५	अपसवोह कव्व	"	९६
१४	मुलोयणा चरिउ कवि देवसेन	१८	४६	सिद्धतत्थ सार	"	९६
१५	पज्जुण चरिउ कवि सिद्ध व सिह	२०	४७	वित्तमार	"	९७
१६	पासणाह चरिउ कवि देवइंद (चन्द)	२३	४८	पुण्यासव कहा	"	९७
१७	मयलविहिंविहाण कव्व नयनंदी	२४	४९	जीवंधर चरिउ	"	१०१
१८	अणुवय रयणपईव पं० लक्ष्मण	२७	५०	सवणवाग्गि कहा	भ० गुणभद्र	१०२
१९	बाहुवलि चरिउ धनपाल	३२	५१	पक्खवड कहा	"	१०३
२०	चदप्पह चरिउ यशःकीर्ति	३७	५२	आयाग पत्तमी	"	१०३
२१	पंडयपुराण	३८	५३	चदायण जय कहा	"	१०३
२२	हरिवंश पुराण	४१	५४	चदण छट्टी कहा	"	१०३
२३	जिनरत्तविहाण कहा	४४	५५	दुय्यारग कहा	"	१०३
२४	रविवत्त कहा	४५	५६	णिदुह गत्तमी वहा	"	१०३
२५	पासणाह चरिउ कवि श्रीधर	४५	५७	मउडसत्तमी कहा	"	१०४
२६	वट्टमाण कव्व हरिइंद	४८	५८	पुफंजवी कहा	"	१०४
२७	भविंसवत्त कहा श्रीधर	४९	५९	रयणत्तय वहा	"	१०४
२८	संभवणाह चरिउ कवि तेजपाल	५०	६०	दह्मासणवय कहा	"	१०४
२९	वरंग चरिउ	५४	६१	अणतवय कहा	"	१०४
३०	सुकमाल चरिउ मुनि पूर्णमद्र	५५	६२	अद्विविहाण कहा	"	१०४
३१	शेमिणाह चरिउ अमरकीर्ति	५५	६३	सोलह कारण वय वहा	"	१०५
३२	शेमिणाह चरिउ लक्ष्मण कवि	५६	६४	मुगंध दग्गी कहा	"	१०५

संख्या	विषय	पृष्ठ	संख्या	विषय	पृष्ठ
६५	अणंतवय कहा	१०५	६६	गिद्दूसि सत्तमी कहा	१२१
६६	आराहणासार वीर कवि	१०५	६७	गिज्झर पंचमी कहा	१२१
६७	हरिसेणचरिउ	१०६	६८	अणुवेक्खा	१२२
६८	मयण पराजय कवि हरदेव	१०६	६९	सिरिपाल चरिउ रइधू	१२२
६९	सिद्धचक्र कहा नरसेन	१०६	१००	पासपुराण कवि तेजपाल	१२४
७०	अणत्थमिय कहा हरिचन्द	१०७	१०१	सिरिपाल चरिउ दामोदर	१२६
७१	चूनडी रास मुनि विनयचन्द	१०८	१०२	पासचरिउ कवि असवाल	१२८
७२	गिज्झर पंचमी कहारास	१०९	१०३	संतिनाह चरिउ शाह ठाकुर	१२९
७३	कल्याणकरास	१०९	१०४	मल्लिणाह कव्व जयमित्तहल	१३१
७४	सोखवइ विहाण कहा विमलकीर्ति	१०९	१०५	वडमाराण कहा नरसेन	१३२
७५	चन्दण छट्टी कहा लाखू या लक्ष्मण	१०९	१०६	सम्मत्तकउमदी रइधू	१३२
७६	गिद्दुह रात्तमी कहा मुनि बालचन्द	१०९	१०७	जोगसार श्रुतकीर्ति	१३३
७७	दुद्धारस कहा मुनि बालचन्द	११०	१०८	मउड सत्तमी कहा भगवतीदास	१३५
७८	रविवय कहा नेमिचन्द	११०	१०९	सुगंध दहमी कहा,	१३५
७९	सुगंध दसमी कहा	११०	११०	स्वयंभू छन्द स्वयंभूकवि प० नं० १	१३६
८०	मुक्तावली कहा	११०	१११	भविसयत्तकहा धनपाल	१३७
८१	अणुवेक्खा रासो जल्हगि	११०	११२	महापुराण पुष्पदन्त	१३८
८२	बारस अणुवेक्खा रासो पं० योगदेव	१११	११३	जसहर चरिउ	१३९
८३	अणुवेक्खा दोहा लक्ष्मीचन्द	१११	११४	गायकुमार चरिउ	१४१
८४	अणुवेक्खा अल्लूकवि	१११	११५	करकंडु चरिउ प० नं० २, मुनिकनकामर	१४२
८५	हरिवंशपुराण श्रुतकीर्ति	१११	११६	आदिपुराण पुष्पदन्त (लिपि प्रश्न०)	१४४
८६	परमेष्ठिपयास सारो	११२	११७	भविसयत कहा विबुध श्रीधर	१४५
८७	संतिणाह चरिउ महाचन्द	११३	११८	हरिवंशपुराण श्रुतकीर्ति (लिपि प्रश्न०)	१४६
८८	मयंक लेहा चरिउ भगवतीदास	११६		परिशिष्ट नं० ३	
८९	अजियपुराण पं० विजयसिंह	११७	११९	रोहिणी विधान कथा देवनन्दि	१५०
९०	कोइल पंचमी ब्र० साधारण	११९	१२०	वडमाराण चरिउ विबुध श्रीधर	१५०
९१	मउड सत्तमी कहा	१२०	१२१	संतिणाह चरिउ शुभकीर्ति	१५०
९२	दुद्धारस कहा	१२०	१२२	रोमिणाह चरिउ दामोदर	३५१
९३	रविवय कहा	१२०	१२३	सुगंध दसमी कहा भ० विमलकीर्ति	१७९
९४	तियाल चउवीसी कहा	१२१	१२४	पुष्पजलि कथा अनन्तकीर्ति गुरु	१७९
९५	कुसुमंजली कहा	१२१	१२५	मेघमाला वय कहा कवि ठकुरसी	१७९

# जैनग्रन्थ-प्रशस्तिसंग्रह

(आद्यन्तादिभागसंचयात्मक)

१—पउमचरिय [ पध्मचरित्र ] महाकवि स्वयंभु

आदिभागः—

यमह यत्र-कमल कोमल मण्यहर-वंर-बहल कंति-सोहिल्लं ।

उसहस्स पायमकमलं स-सुरासुरवंदियं सिरमा ॥१॥

दीहर-समास यालं सहदलं अथक्केसरुणधियं ।

वुह महुयर-वीयर-सं सयंभु-कवुप्पलं जयउ ॥२॥

धत्ता—जे काय-याय-मणे णिच्छिरिय, जे काम-कोह-दुखण्य सिरिय

ते एकक-भणेष्य सयंमुपेण, वंदिय गुरु परमायरिय ॥

घट्टमाण-मुह-कुहर-विणियगय,

रामकहा-ण्ह प्ह कमाण्य ।

अक्कर-वास-जलोह-मणोहर,

सु-अलंकार-धुन्द मच्छोहर ॥

दीह-समास-पवाहावेकिय,

सककय-याय-पुलिणालकिय ।

देमीभासा-उभय-सहुउजल,

क वि हुक्कर-वण्य सद्-सिलायल ॥

अथ्य वहल कल्लोलाण्णिट्ठय,

आसासय-सम-सुह परिट्ठय ।

प्ह राम कह-सरि सोहंती,

गण्यहर-देवहिं दिठ्ठ यहंती ॥

पच्छहं ईदभूह आयरिय,

पुण्य धम्मेष्य गुणालंकरिय ।

पुण्य एवहिं संसाराण्य,

कित्तिहेरेण अणुत्तरण्य ॥

पुण्य रविसेण।यरिय-पसाण्य,

वुद्धिय अवागहिय कहराण्य ।

पडांसाण्य-जण्यण्य गन्ध-संभूण्य,

म.रुयपव-रुव-अणुराण्य ॥

अहत्तण्यण्य पहेहरगत्य,

द्विचर-णानं पविरल दंतं ।

धत्ता—णिम्मल-मुण्य-पविच-कह किच्छण्य आठप्पह ।

जेण समाण्णिजंतण्य थिरकित्ति विट्ठप्पह ॥२॥

वुहयय सयंभु प्हं विण्यवद,

महं सरिसउ अणुण्य खण्णिय कुकह ।

व.यरणु कयाधि य जाण्णियंउ,

खउ वित्तिसुत्तु, ववखाणियउं ॥ १

खउ पच्चाहारहो तत्ति किय,

खउ संधिहे उपपरि वुद्धि थिय ।

खउ णिसुण्णियउ सत्त विहत्तियाउ,

दुव्विवहउ समास-पउत्तियाउ ॥

धुक्कारय दस लयार य सुय,

वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ।

य थलावल-थाउ-ण्णियायगणु,

खउ लिगु उण्णह वक्कु वयणु ॥

खउ णिसुण्णियउ पंच महाय कण्डु,

खउ भरहु य लक्खणु धुन्दु सखु ।

खउ वुज्जिउ थिंगल पत्थाह,

खउ भम्मह उंडियलंकार ।

ववसाउ तो वि खउ परिहरमि,

वरि रयटाणुत्तु कण्डु करमि ॥

इय प्थ पउमचरिय धणंजासिय-सयंमुपवकण्डु ।

जिण्य-जम्मुप्पत्ति इमं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥

अन्तिमभाग.—

तिहुयण-सयंभु-खवरं एकको कहराय-चविकणुण्यण्यो ।

पउमचरियस्स चूडामणिय व्व सेमं कयं जेण ॥१॥

कहरायस्स विजय-सेसियस्स विचारिओ जसो भुवणे ।

तिहुयण-सयंभुणा पउमचरिय सेतेण खिस्सेतो ॥२॥

तिहुयण-सयंभु-धवलस्स को गुणो वण्णियउ जणु वरह ।

वाल्लेण वि जेण सयंभु-कव्वमारो समुव्वुडे ॥३॥

वायरय-दुदकण्यंओ आगम-अंगोपमाण-वियउपओ ।

तिहुयण-सयंभु-धवलो जिण्य-तिये वहउ कव्वभरं ॥४॥

चउमुह-सयंभुण्यण्य वण्णियथं अचक्करमाणेण ।

तिहुयण-सयंभु-रहयं पंचमि-चरियं महच्छरियं ॥ ५

सव्वे वि सुया पंजर मुयव्य पडिअक्कराहं सिचरति ।

कहरायस्स सुओ मुयव्व सुदग्गभ-संभूओ ॥६॥

तिहुयण-सयंभु जइ ए हुंतु खंदखो सिरि सयंभुदेवत्स ।  
 कव्व कुलं कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥७॥  
 जइ ए हुउ छंदचूडामणिरस्स तिहुयणसयंभु लहु तणउ ।  
 तो पद्धडिया कव्वं सिरिपंचाम को समारेउ ॥८॥  
 सव्वो वि जणो गेण्हइणियताय-विटत्त दव्व-संतणं ।  
 तिहुयण-सयंभुणा पुण गहियं एं सुकइत्त-संतणं ॥९॥  
 तिहुयण-सयंभुमेक्कं मोत्तूण सयंभुकव्व-मयरहरो ।  
 को तरइ गतुसंतं मज्जे णिस्सेस-सीसाणं ॥१०॥  
 इय चारु पोमचरियं सयंभुएवेण रइय सम्मत्तं ।  
 तिहुयण-सयंभुणा तं समाणियं परिसम्मत्तमियं ॥११॥  
 मारुय-सुय-सिरिकइराय तणय-ऊय-पोमचरिय अवरसेसं ।  
 संपुण्णं संपुण्णं वंदइओ लहउ संपुण्णं ॥१२॥  
 गोइंद-मयण सुयणंत विरइयं (?) वंदइय-पढमत्तणयस्स ।  
 वच्छलदाए तिहुयण सयंभुणा रइयं महप्पयं ॥  
 वंदइय-णाग-सिरिपाल-पहुइ-भव्वयण-समूहस्स ।  
 आरोगत समिद्धी संति सुहं होउ सव्वस्स ॥  
 सत्त महा संसग्गी तिरयणभूसा सु रामकह-कण्ण ।  
 तिहुयण-सयंभु-जणिया परिणउ वंदइय मणतणउ ॥

इय रामायण पुराण समत्तं

सिरि-विज्जाहर-कंडे संधीओ हुंति वीस परिमाणं ।  
 उज्झाकंडंमि तथा वावीस मुणेह गण्णए ॥  
 चउदह सुंदरकंडे एक्काहिय वीसजुक्ककंडेण ।  
 उत्तरकंडे तेरह सन्धीओ खवइ सव्वाउ ॥छ॥

लिपिकार-प्रशस्ति

संवत् १२१४ वर्षे वैशाख सुदि १२ सोमवार ग्रन्थ-  
 संख्या १२००० ।

२-रिट्ठणेमिचरिउ [हरिवंश पुराण]—महाकविस्वयंभु,  
 आदिभागः—

सिरि परमागम-णालु सयल-कला-कोमल-दलु ।  
 करहु विहूसणु कण्णे जयव-कुरुव-कुलुप्पलु ॥

X X X

चित्तवइ सयंभु काइं करमि,

हरिवंस-महणणउ के तरम्मि ।

गुरु-वयण-तरंडउ लदूधु खवि,

जम्महो वि ए जोइउ कोवि कवि ॥

णउ णाइउ वाहत्तरि कलाउ,

एक्कु वि ए गंधु परिमोक्कलाउ ।

तहि अंबसरि सरसइ धीरवइ,

करि कव्वु दिण्णु मइ विमलमइ ।

इंदेण समप्पिउ वायरणु,

रसु भरहें वासे विथरणु ।

पिंगलेण छन्द-पय-पत्थारु,

भम्मह-दंडिणिहिं अलंकारु ।

वाणेण समप्पिउ घण घणउ,

तं अक्खर-डंवरु अप्पणउ ।

सिरिहरिसे णिय णिउत्तणउ,

अवेरहि मि कइहिं कइत्तणउ ।

छडुणिय-दुवइ-धुवएहिं जडिय,

चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय ।

जण णयणाणंद जणे रियणं,

आसीसए सव्वहु केरियणं ।

पारंभिय पुणु हरिवंस-कहा,

स-समय-पर-समय-वियार-सहा ।

घत्ता—पुच्छइ मागहणाहु, भव-जर-मरण-वियारा ।

थिउ जिण सासणु केम,कहि हरिवंस भडारा ॥२॥

X X X

इय रिट्ठणेमिचरिण धवलइयासिय सयंभुएवकए

पढमो समुद्धविजयाहिसेयणामो इमो सग्गो ॥१॥

अन्तिमभागः—

इह भारह-पुराणु सुपसिद्धउ,

णेमिचरिय-हरिवंसाइद्धउ ।

वीर-जिणेसे भवियहो अक्खिउ,

पच्छइ गोयमसामिण रक्खिउ ।

सोहम्मं पुणु जंबूसामें,

विण्णुकुमारें दिग्गयगामे ।

णांदिमत्त अवरज्जिय णाहें,

गोवद्धणेण सुभदहवाहें ।

एम परंपराइं अणुल्लगउ,

आयरियह मुहाउ आवगउ ।

सुणु संखेव सुत्तु अचहारिउ,

विउसं सयं भें गहि विथारउ,

पद्धडिया छन्दें सुमणोहरु ।

भवियण-जण-मण-सवण-सुहंकरु,

जस परिसेसि कवहिं जं सुयणउ ।

तं तिहुयण-सयंभु किउ पुण्णउ,

तासु पुत्ते पिउ-भर-णिञ्चाहिउ ।

पिय-जसु णिय-जसु भुवणे पमाहिउ,  
 गय तिहुयण-सयम्भु सुरटाणहो ।  
 जं उच्चरिउ किपि सुणियाणहो ।  
 तं जसवि त्ति सुणिह उदरियउ,  
 णिणं वि मुत्तु हरिवंसच्चरियउ ।  
 णिय गुरु-मिरि-गुणाकित्तियमाण,  
 किउ परिपुण्ण मखहो अणुराणं ।  
 सरह सेणेंदं (सहमलेण) सेटि-आणमं,  
 कुमर-खयरि आविउ-मवित्तेमं ।  
 गोवगिरिहे समीचे विसालण,  
 पणियारहे जियवर-चेयालण ।  
 मावयजणहो परउ वकराणउ,  
 दिडु मित्ठन्नु मोहु अयमाणिउ ।  
 जं अमुणेंते इह मइं साहिउ,  
 नं सुयदेवि खमउ अवराइउ ।  
 खंदउ खरवइ पय-पालन्तहो,  
 खंदउ भवियण-कय उच्छाहहो ।  
 खंदउ खरवइ पय-पालंतहो,  
 खंदउ दय-धम्म वि अरहंतहो ।  
 कालं त्रिय णिच परिस्सकउ,  
 कामुवि धणु कणु दिंतु ण थक्कउ ।  
 भट्टवमामि वियाणिय-भवकलि,  
 हुउ परिपुण्ण चउदसि णिम्मलि  
 घत्ता—इय चउविइ सपपहं, विहुणिय-विग्गहं,  
 णियणामिय-भव-जर-मरणु ।

जयकित्तिय-पयावणु, अरालिय-मामणु

पयउउ संतिययंभु जिणु ॥१७॥

इय रिट्ठणेमिचरिणं धवलहयामिय-सयंभुण्व-उच्चरिणं ।

तिहुवण-सयंभु रइणं समाणियं कण्हकित्तिय हरिवंसं ॥१८॥

गुरु-पव्व-वांगभयं सुयखाणुक्कमं जहां जायं ।

सयमिक्क-दुदहं-अहियं सन्धीओ परिस्सत्ताओ ॥२॥

इति हरिवंशपुराणं समाप्तं । मन्वि ११२

३-सुदंसणचरिउ(सुदर्शनचरित)नयनंदा रचनासं०१००

आदिभागः—

णमो अरिहंताणं णमो मिद्वारं णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्जायाणं णमो लोणं सव्वं साहूणं ॥१॥

इह पंच णमोधारहं लहेवि गोवहु घउ-सुदंसणु ।

गडमोक्कओ अरुणमि तहो चरिउ वचउ धणपयामणु ॥

× × × ×

इय सुदंसण-चरिणं पंचणमोकार फल-पयासरे  
 माणिककण्णदि-तइविज्ज-सीसु-खयण्णदिसा रइणं अस्स  
 मुर संधुयं खवेवि वड्डमाणं जिणं तउवि पट्ठणं खरय-  
 पच्छिओ पच्चयं समोमरणं संगय महापुराण-आउत्थणं इमाणं  
 कय पटमो संधि सम्मत्तओ । संधि १

अन्तिमभागः—

त्रिणंदम्म वीरस्म नित्ये महते ।

महा कुंदकुंदएणए एन मने ।

ससिक्खाहिहाणो तथा पोमण्णंदी ।

पुणो विण्हण्णंदी तवो खंदखंदी

जिणुदिट्ठ-धम्मं धुराणं विमुदो ।

कयाण्ये गंधो जयंते पसिदो ।

भवांवेहिह पोओ महाविस्मखंदी

ग्गमानुत्त सिदं तउ विसहण्णंदी ॥१॥

जिणिदागमाहमणो पुय-चित्तो ।

तवायारणिट्ठाय लद्धीय जुतो ।

खरिदानरिदेहि मो खंदवंदी ।

हुओ तस्म सीमो गणो रामण्णंदी ॥२॥

अस्समाणं गंयम्मि पारम्मि पत्तो,

तवे यंग वीभव्व राइव मित्तो ।

गुणावाप-भूओ सु-तेल्लोक्कण्णंदी ।

महापडिऊ तस्म माणिककण्णंदी ।

( तद्विज्ज सीमो कइं खयण्णंदी, )

सुयगण्णहाऊ इमो खाम छंदी ॥३॥

घत्ता—

पदम सीसु तहो जायउ जगविस्मयायउ सुणि णयण्णंदीअण्णिदउ

चरिउ सुदंसणं शाह हो तेण अवाहहो विरइउ बुह अहिण्णिदउ

आराम गाम-पुरवर-णियेय ।

सुपमिद्व ध-वंनीगाम देस ॥३॥

सुरवइ-पुरिच विवुहयण इड ।

तहि अथि धा(५)यरी गरिट्ठ ।

रण दुडक अरिवर सेलवज्ज ।

रिट्ठिणं देवा मुर-जणिय-चोज्ज ॥५॥

तिहुवण णारायण सिरिणिकेउ ।

तहि खरवर पुं गसु भोयदेउ ।

मणि-गण-पह-वृसिय-रवि-गमणिय ।

तहि जिणहर बद्ध-विहार अथि ॥६॥

एण विस्सकम कालहो वयणणसु ।

पुयारह संवच्छर-सपसु ।

तहिं केवलि चरिउ अमयच्छरेण ।

गायरांदी-विरयउ वित्थरेण ।

जो पडइ सुणइ भावइ लिहेइ ।

सो सासय-सुहु अइरे. लहेइ ।

घत्ता-रायरांदिहो मुण्दिहो कुवलयचंदहो गर-देवा-सुर-वंदहो ।

देउ दिणमइ गिम्मलु भवियह मंगलु वाया जिणवर इंदहो ॥

एत्थ सुदंसणचरिए पंचणमोक्कार-फल पयासयरे  
माणिककरांदि-तइविज्जलीसु-गायरांदिणा रइए गइंद,  
परि वित्थरो सुरवरिंद थोत्तं तहा मुण्दिद सहमंडवंत-सुविमोक्क  
वासे ठामे गमणमो पयफलं पुणो सयल साहूणाभावली इमाण  
कय वरणणो संधि दो दहमो सम्मत्तो ॥६॥ संधि १२

४—पासपुराण ( पार्श्वनाथपुराण ) पद्मकीर्ति

रचनाकाल सं० ६६६

आदि भागः—

चउवीस वि जिणवर सामिय,

सिव-सुह गामिय पणविवि अणुदिणु भावें ।

पुणकहं भुवण पयास हो,

पयडमि पास हो जणहो मज्ज सहावें ॥ ६ ॥

अन्तिम भागः—

अट्टारह संधिउ इय पुराण, तेसट्टिपुराणे महापुराण ।

सय तिणिए दहोत्तर कडवयाइं, राणाधिह छंद सुहावयाइं ॥

तेवीससयाइं तेवीसयाइं, अक्खरइं कहमि सविसेसयाइं ।

इउ एत्थु सत्थु गंथह पमाणे फुडु पयडु असेसु वि कय पमाणे ॥

सुपसिद्ध महापटु गियमधरु ॥

माथुरहं गच्छिउ पुहमिभरु ।

तहो चन्दसेणु रामेण रिसी,

वय-संजम गियमइ जाउ किली ॥

तहो सीसु महामइ गियमधारि,

णयवन्तु महामइवम्भचारि ।

रिसि माहउसेणु महाणभाउ,

जिणसेणु सीसु सुणु तासु जाउ ॥

तहो पुत्र सयेहें पउमकिंत्ति, उप्परणु सीसु जिणु जासु चित्ति ।

ते जिणवर-सासण-भाविएण, कइ-विरइय जिणसेणुहो मएण ॥

गारवमय-दोस-विज्जएण, अक्खर-पय-जोडिय लज्जिएण ।

कुकइत्तु वि जणे सुकइत्तु होइ, जइं सुवणइं भावइ एत्थ लोइ ॥

अमहइं कुकइइं किपि वुत्तु, खमिणुवउ सुयणहो तं गिरुत्तु ॥

घत्ता—रिसि गुरुदेव पसाए कहिउ असेसुवि चरित्तु मइं ।

पउमकिंत्ति मुण्णि-पुं गवहो देउ जिणेसरु विमलमइं ॥

जइवि विरुद्धं एयं गियाणवंधं जिणेंद-उवसमए ।

तहं वि तहय चलण कित्थं जयउ पउमकिंत्तिस ॥

रइयं पासपुराणं भमियापुहमी जिणालया दिट्ठा ।

एहिय जीविय-मरणे हरिस-विसाओ णं पउमस ॥

सावय-कुलम्मि जम्मो जिणचरणाराहणा कइत्तं च ।

एयाइ तिणिए जिणवर भवि भवि (महु) होउ पउमस ॥

णव-सय-णउवाणुइए कत्तियमासे अमावसी दिवसे ।

लिहियं पासपुराणं कइंण णामं पउमस ॥

सधिः अष्टादश ॥१८॥ इति पार्श्वनाथचरित्रं समाप्तं

५—धम्मपरिक्खा (धर्मपरीक्षा) बुध हरिषेण

रचनाकाल सम्वत् १०४४

आदि भागः—

सिद्धि-पुरंधिहि कंतु सुद्धं तणु मण-वयणें ।

भत्तिए जिणु पणवेवि चित्तउ बुह-हरिसेणें ॥

मणुय-जम्मि बुद्धी किं किज्जइ,

मणहरु जाइ कवु ण रइज्जइ ।

तं करंत अत्रियाणिय आरिस,

हासु लहहिं भड रणि गय-पोरिस ॥

चउमुह कव्व-विरयणि सयंभुवि,

पुफयंतु अणणाणु गिसुं भिवि ।

तिणिए वि जोग्ग जेण तं सीसइ,

चउमुह-मुहेथिय ताव सरासइ ॥

जो सयंभू सो देउ पहाणउ,

अह कयलोयालय-वियाणउ ।

पुफयंतु णवि माणसु बुच्चइ,

जो सरसइए कयावि ण मुच्चइ ॥

ते एवंधिह हउं जडु माणउ,

तह छन्दालंकार विहूणउ ।

६ पार्श्वपुराणकी अन्तिम प्रशस्तिके ये चार पद्य-कारंजा भरखारकी सं० १४७३ की लिखितमें नहीं पाये जाते, अतः रचनादि सम्वत्को लिए हुए होनेके कारण इस प्रशस्तिको यहां स्थान दिया गया है ।

१—लेखकने भूलसे ग्रामेर भरखारकी प्रतिमें सन्धि-वाक्योंको उक्त चार गाथाओंके ऊपर दे दिया है जो किसी गदलीका परिणाम जान पड़ता है ।

कथु करंतु केम यत्रि लज्जमि,  
तह विसस पिय जणु किह रंजमि ॥  
वो वि जिखिद्-धम्म-अणुराएँ,  
वुहसिरि-सिद्धसेण-सुपसाएँ ।  
कमि सयं नि यल्लिण-दल थिउ जलु,  
अणुदेरेइ शिरवमु मुत्ताहलु ॥

घत्ता—जा जयरामें आनि विरहय गाह-प्रबन्धि ।  
साहम्मि धम्मपरिकल सा पदद्विया-बन्धि ॥१॥

X X X

इय धम्मपरिव्याप चउवग्ग-दिट्ठियाए वित्ताए सुहहरियेय

कए पदमो सन्धी परिसमत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिम भागः—

इह मेवाढ-देसि-जण-संकुलि,  
सिरिउजहर-णियगय-धक्कड-कुलि ।  
पाव-करिद-कुम्भ-दारण-हरि,  
जाउ कलाहि कुसलु यामें हरि ॥

तामु पुच पर-यारि-सहोयर,  
गुणगण-पिहि कुल-नायण-दिवायर ।  
गोवड्ढणु यामें उप्पयणउ ।  
जो सम्मत-रयय-संपुणणउ ।  
तहो गोवड्ढणुसु पिय गुणवड्ढ ।  
जो जियर-यय खिच वि पयवड्ढ ।  
ताए जण्डि हरिसेणे याम सुउ,  
जो संजाउ विवुड्-कड्-विस्सुउ ।

मिरि-चित्तं उडु चड्ढि अ-बलउठ्ठो,  
गयठ-णिय-कज्जे जिणुए-पउरहो ।  
तहि छंडालकर-भयसिहिय,  
धम्मपरिकक्ष पड्ढ ते साहिय ॥  
जे मज्जकथ-मणुय आयणएहिं,  
ते मिरिदुच भाउ अरगणएहिं ।  
ते सम्मत जेण मणु तिज्जड्ढ,  
केवलयाणु साय उप्पज्ज ॥

घत्ता-सहो पुणु केरलप-यहो गेय-यसायहो जीव पणमहिं मुहडिउ,

माहारहिउ अर्यंउठ अइमववंउठ भोक्क-मुक्क-पलुपवडिपउ ॥

विक्कम-पिड-परिउत्तिय कालप,

गयण परित सहस चउताणए ।

इउ उप्पयणु भाविउउठ मुहवड्ढ,

उंम-रुदिप धम्मामय-भायर ॥

ते यंदहि जे लिहइ लिहावड्ढ,  
ते यंदहि जे भत्तिह भावहि ।  
जे पुणु के विहु पदहि पढावहि,  
ते खिय-यर-उडु दूरे लुंटावहि ॥  
एयहो अणु के वि जे पयडहिं,  
ताय यिरंतर सोक्कहि मुहडहिं ।  
जे यिसुएवि परिकरण भत्तिप,  
ते जुज्जहि यिम्मल मह सत्तिप ॥  
सयल पाणियगहो उडु हिज्जइ,  
सोम समिडिट्ठए मह सोहिज्जइ ।  
परहिय करणि विहडिय-अंहहो,  
होउ जियत्तणु चउविह संयहो ॥  
पयडिय बहु पयाव अरियारें,  
यंदउभूवड्ढ महु परिवारें ।  
धम्म पत्रत्तणेण दुह-हारें,  
यंद पय बहुविह-ववहारें ।

घत्ता—सलए दुमहमु साहिउ सदरिया हिउ इउकह रयणु अगव्वहं ॥

जो हरिसेण धरापर उयहि गयणपर ताम जणउमु-मव्वहं ॥

इय धम्म परिकगए चउवग्गादिट्ठियाए सुह-हरिसेण  
कयाए एयरसमो संधि समत्तो ॥ मन्धि ११ ॥

६—जंघूसामिचरिउ [जंघूसामीचरित] कचिवर धोर  
रचनाकाल संयत् १०७६

आदिभागः—

विजयंत धोर-चरणगि-चंपए मंदिरंमि धरहरण ।

कलसु छलंतं गोए सुतरणि-जग्गंत-विउ-उंकरा ॥१॥

सो जयउ जस्म जग्गाहिलेय-पय-र-पंडुरिउजोतो ।

जणियहि ममि हरिमंको कयायगिरि राइधो तइया ॥२

जयउ जिणो जस्मारण-णह-मणिय-पडिलग-धरसु मह मरगो ।

अणुइरिदुय सव्याउयवय-परिकलिय-लोययो जाओ ॥३॥

ममिरसु अवेय भामित्ति जोइमगण-जणिय-रयणि-दिणि-मंके ।

इय जयउ जस्म पुरओ पएत्तिचयं चारु मुक्कड्ढया ॥४॥

सो जयउ महावीरे भायाणल-हुणिय-रइ सुद्धो जस्म ।

यायंमि पुरइ मुघणं एक्कं यइअभिमिय गयणे ॥५॥

जयउ जिणो पासिट्ठिय यमि-विस्समि-रिउय-पुणियपडिठिओ ।

गटियाणं रूप-कुपलोण ति-जय-मणु भामित्ति रिमहो ॥६॥

जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जग्गंय सांभामिणो ।

अजिओ तटि विणिय एव-घयोव्य मणिय-गामियो कयकड्ढयो



इह अथि परम-जिण-पय-सरणु,  
गुडखेड विण्णगउ सुहचरणु ॥१॥  
सिरिलाडुवग्गु तहि विमल जसु,  
कइदेवयत्तु निबुड्ड कसु ।  
बहु भावहिं जे वरंगचरिउ,  
पट्टडिया वंधं उद्धरिउ ।  
कवि-गुण-रस-रंजिय-विउस सहं,  
विथारिय सुद्धय वीरकहं ।  
भव्वरिय-बंधि विरडुउ सरसु,  
पाज्जइ मंतिउ तारु जसु ।  
नच्चिज्जइ जिण-पय सेवयहिं,  
किउ रासउ अंधादेवि यहिं ।  
सम्मत्त-महा-भर-धुर-धरहो,  
तहो सरसइ-देवि लद्ध-वरहो ।  
नामेण वारु हुउ विणयजुओ,  
संतुव गम्भम्भ पढमसुओ ।

घत्ता-अखलिय-सर-सक्कय, कइकलिवि आपुसिउ सुउ पियरें ।

पायय पच बु वल्लहु जणहो, विरडुज्जउ किं इयरें ॥४॥

अह मा पावाम धण-कण दरसी,  
नयरी नामेण सिधु-वरिसी ।  
तहिं धक्कइ-वग्गं वंस-तिलउ,  
मह सूयण खंदणु गुणणिलउ ॥  
णामेण सेट्ठि तक्खडु वसई,  
जस पडहु जासु तिहुयणि रसई ।  
मह कइ देवदत्तः परम सुही,  
तें भणिउ वीर-वय सुवण-विही ॥  
चिरु कइहि बहुलगंधुद्धरिउ,  
संक्किल्लहिं जंघुसामिचरिउ ।  
पडिहाइ न विथरु अज्जु जणे,  
पडि भणइ वीरु संकियउ मणे ॥  
भो भव्वयंधु किय तुच्छ कहा,  
रंजियइ कमवि सिट्ठ सहा ।  
एत्थंतरे पि सुगामीह सरहो,  
तक्खडु कणिट्ठु बोक्कइ भरहो ॥  
विथर संसेवहु दिव्व भुग्गी,  
गुम पारउ अंतः वीरु सुणी ।

पण-सरि-सर-जिण-पय-सरणु-विउ बहु विजलु, सर सुन तिह मणिणज्जइ  
भोषट करयथु विमलु जणेण, अहिलामें जिह पिज्जइ ॥५॥

अवियः—

सेट्ठि सिरि तक्खडेणं भणियं च तओ समत्यमाणेण ।  
वड्डइ वीरस्स मणे कइत्त-करणुज्जमो जेण ॥१॥  
मा होंतु ते कइंदा गरुय पबंधे वि जाण निव्वूढा ।  
रसभाव सुगिरंती विथरइ न भारइ भुवणे ॥२॥  
संतिकई वाईविहु वरणुक्करि सेसु फुरिय-विण्णायो  
रस-सिद्धि-संठियत्यो विरलो वाई कई पुक्को ॥३॥  
विजयंतु जणु कइणो जाण वाणी अइट्ठ पुव्वत्ये ।  
उज्जोइय धरणियलो साहइ वट्ठिच्च णिव्वडई ॥४॥  
जाणं समग सहो हज्जे हुउ रमइ मइ फडंक्कम्मि ।  
ताणं पिहु उचरिल्ला करस व बुद्धी परिपुणइ ॥५॥

इय जंघुस्वामिचरिए सिंगार वीर-महाकव्वे महाकइ  
देवयत्त-सुअ-वीर-विरइणु सेणिय-समवसरणागमो णाम  
पढमो संधि ॥१॥

अन्तिम प्रशस्तिः—

वरिसाण सय-चउक्के सत्तरि-जुत्ते जिणिइ-वीरस्स ।  
णिव्ववाण उव्वरणे विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥  
विक्कम णिव कालाओ द्याहत्तरि दस-सणुसु वरिसाणं ।  
माहम्मि सुद्ध-पक्खे दसमी-दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥  
सुणियं आयरिय - परंपराणु वीरेण वीर णि-इट्ठं ।  
बहुलत्थ-पसत्थ-पयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥  
इच्छे (इट्ठे?) व दिणे मेहवण-पट्टणे वड्डमाण जिण-पडिमा  
तेणा वि महा कइणा वीरेण पयट्ठि-या पवरा ॥४॥  
बहुराय-कज्ज-धम्मत्थ-काम-गोदुठी-विहत्त समयरस ।  
वीरस्स चरिय - करणे इक्को संवच्छरो लग्गो ॥५॥  
जस्स कय-देवयत्तो जणणो सच्चरिय-लद्धमाहणो ।  
सुह-सील सुद्धवंसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥  
जस्स य पसयण वयणा लहुणो सुमइ सं सहोयरा तिण्णि ।  
सीहज्ज लक्खणं का जसइ-णामेत्ति विक्खाया ॥७॥  
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो वीया ।  
लीलावइत्ति तइया पच्छिम भज्जा जयादेवी ॥८॥  
पढम कलत्तं गरुहो संत्ताण कइत्त विउवि वारोहो ।  
विणय-गुण-मणि-णिहाणो तणउ तह रोमिचंदोत्ति ।  
सो जयउ कइ वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण ।  
पाहाणमयं भवणं पियरुदंसेण मेहवणे ॥९॥  
अह जयउ जस्स णिव्वामो जसणाउ पंडिउत्ति विक्खाओ ।  
वीर जिणालय सरिसं चरियमिणं कारियं जेण ॥१०॥  
इति जंघुसामिचरियं समत्तं ।

५—कहा कोसु ( कथाकोप ) श्रीचन्द्र  
आदि भाग—

—श्रीनाम पण्येवि चित्त धंवेवि षट्पट्टदस दोसु ।  
लोयत्तय वंदु देउ जिणेंदु, आहोममि कहकोसु ॥

पण्येविपणु जिण सुविमुदमइं,  
चित्तइ मणि सुणि मिरिचंदुकइं ।

संसार असार मव्यु अथिर,  
विय-पुत्तु-मित्तु माया तिमिरु ॥  
संवय पुणु संपहे अणुहरइ,  
राणि दीसइ मणि पुणु उमरइ ।  
सुविणय ममु पेम्सु विलासविही,  
दंडु वि लणिमंगुर दुक्खतिही ॥  
जोवणु गिरि वाहिणि घेयगउ,  
साथणु वणु कर सलिल सउ ।  
जीविउ जल-पुक्खय-फेणु णिहु,  
हरिजालु वरज्जु अयज्ज गिहु ॥  
अवरुवि जं किंविधि अथि जण्ये,  
तं तं धाहिण्य पलाइ हण्ये ।  
इंदिय सुहु सोकसाभामु फुड,  
जइ यं तो सेवइ किरण पडु ॥

घत्ता—  
इय जाणि वि णिरुचु मव्यु अणिरुचु,  
मणु विसणुसु ण लिचिउ ।  
अं दालु य दिरणु षउ तउ चियणु,  
तेणप्या षउ वंचिउ ॥

पहु दुक्खरोणित्त थलि जिज्जणु,  
मुयं मणुय हो पठवि य जाइ घणु ।  
बंधव-यणु लज्जइ थो सरइ,  
सुहुं मथभूउतामणुमरइ ॥  
मह भूउ माया जो पोमियउ,  
सो देहुवि दुज्जण विलगियउ ।  
एउ-जाइ ममउ ता केम वरु,  
वमु-पुत्त-कलत्त वंणु-णियरु ॥  
अणुगमइ सुदामुदु केवलउ,  
परनर पाहुण्यहो मंथणउ ।  
यापार करइ मत्थाय कण,  
अणुहयइ दुबसु पर पउरु जण ॥  
पच्छा माइज्जइ भाट्ठविहि,  
अणु पुत्त-रत्तिगहि दाट्ठविहि ।

राणियंति णियंत थयाणमणा,  
पर पुरिसु पलोयइ मवणियणा ॥  
घत्ता—  
इय वुण्य विपन्ने पुण्य पविन्ने,  
दिज्जइ सहं विलसिज्जइ ।  
पुत्तिउ फलु अण्ये जणिमाण्ये,  
जं दुत्थिमणि वइज्जइ ॥ -

X X X X

अन्तिम प्रशस्ति:

सर्वज्ञ-शाम्पने रम्ये घोराद्यौघ-विनाशने ।  
धमनिरु-गुणाधारं मूर्स्थे सुरसंस्तुते ॥ १ ॥  
अथ हितलपुरे रम्ये सज्जनः सज्जनोऽभवत् ।  
प्राग्वाटवंश-निष्पन्नो सुशारत्न-शतामयीः ॥ २ ॥  
मूलराज-शृपेन्द्रस्य धर्मस्थानस्य गोष्ठिकः ।  
धर्मसार-धराधारः कूर्मराज-नमः पुरा ॥ ३ ॥  
वृष्णनामा मुत्तस्नस्य गुणरत्न महोदधेः ।  
वभूय धर्म-कर्मरथे जनानां मौलिमंडनं ॥ ४ ॥  
निद्रान्वय-महामुखा-मालायां नाथकोपमः ।  
चतुर्विधस्य संवस्य दान-पायूप धारिदः ॥ ५ ॥  
श्वमैकाजयती तस्य कृष्णस्यैव सुभद्रिका ।  
राणुनाम प्रिया साध्वी हिमांशोरिव चन्द्रिका ॥ ६ ॥  
तस्यां पुत्रभयं जानं विश्व-सर्वस्व-भूषणं ।  
वीजासाहस्रपालास्यो सोढदेवही स्तृतीयकः ॥ ७ ॥  
चतस्रश्च सुनास्तस्या धर्म-कर्म-रुकोविदाः ।  
श्री शृंगारदेवो च मूर्ः मोगूरिति कमान् ? ॥ ८ ॥  
वलिकाल-महान्याल-विप व्यालुप्त चेतमः ।  
जैनधर्मस्य मंपन्ना जीवास्तु म्तर सुं दका ॥ ९ ॥  
महाप्रावक-कृदणुएण संतानेन शुभात्मना ।  
व्याख्यापितः कथाकोशोः स्वकर्म-ज्यहेतये ॥ १० ॥  
कुन्देंदु-निर्मले कुंडकुंडाचार्यावयवेऽभवत् ।  
धर्मो मूर्त्तः स्वयं वा श्रीक्रीतिनामा मुनीश्वरः ॥ ११ ॥  
तस्मात्तमोपहः श्रीमान् प्रभाशोऽपि निर्मलः ।  
श्रुतकीर्तिः ममुपयो रथं रत्नाश्रादिषु ॥ १२ ॥  
विद्राम्ममस्तशास्त्रार्थ-विचारचतुराननः ।  
शरच्छन्द्रकाराकार-कीर्तिव्याप्त-जगत्प्रथः ॥ १३ ॥  
व्याख्यातृ-वृत्तिविदि-गुणैर्देवस्मानस्यः ।  
सर्वज्ञ-शाम्पनाशान-जराधर्षण-च-द्रमा ॥ १४ ॥  
गोपय भोजद्रैवादि-न्यमस्त-शृप-पुं गुरं ।  
पूजितोऽकृत् पादार विदो विपश्चर कर्मणः ॥ १५ ॥

भव्य-पद्माकरानन्दो सहस्रांशुरिवापरः ।

ततो गुणाकरः कीर्ति सहस्रोव पदोऽजनि ॥१६॥

कपर्धुर-पूरोऽज्वल-चारुकीर्तिः सर्वोपकारोद्यत-चित्तवृत्ते ।

शिष्यः समाराधित वीरचन्द्रस्तस्य प्रसिद्धो भुवि वीर्यचन्द्रः १७

सूर्यचारित्र-सूर्यस्य तस्य तत्त्वार्थवेदिनः ।

विवेकवसति विद्वान्सोऽस्य श्री चन्द्रोऽभवत् ॥१८॥

भव्य-प्रार्थनया ज्ञात्वा पूर्वाचार्यकृतां कृतिः ।

तेनायं रचितः सम्यक् कथाकोशोऽतिसुन्दरः ॥१९॥

यदत्र स्वलितं किञ्चित् प्रमादं वशतो मम ।

तन्नमंतु ज्ञमाशीलाः सुधियः सोधयंतु च ॥२०॥

यावन्मही मरन्मर्या मरुतो मंदरोरगाः ।

परमेष्ठी पावनो धर्मः परमार्थ-परमाणमः २१॥

यावत्सुराः सुरार्थीशः-स्वर्गचन्द्रार्क-तारकाः ।

तावत्काञ्चमिदं स्वैयाचद्रीचन्द्रोऽज्वल-कीर्तिमत् ॥२२॥

८—रचणकरंडसावयायार (रत्नकररुदश्रादकौचार)

पण्डित श्रीचन्द्र, रचना काल सं० ११२३

आदिभागः—

सो जयउ जन्मि जिणो पढमो पढमं पयासिउं जेणं ।

कुण्डेसु पढंताणं दिणणंकर-लंबणा धम्मो ॥१॥

सो जयउ संतिणाहो विग्घं सहस्साइं णाममित्तेण ।

जस्सावहत्थियउणं पाविज्जइ ईहिया सिद्धी ॥२॥

जयउ सिरि वीरइंदो अकलंको अक्खथो णिरावरणो ।

णिम्मल-क्खेवलणाणो उज्जोइय सयल- भुवणयलो ॥३॥

सिद्धिवि विजय वुद्धि तुट्ठि पुट्ठि पीयंकर ।

सिद्ध सख्य जयंतु दितु चउवीस वि तित्थंकर ॥४॥

घत्ता—अवरवि जे जिणइंदा सिद्ध-सूरि पाठय वर ।

संजय साहु जयंतु दितु वुद्धि महु सुंदर ॥१॥

पण्येप्पणु जिण वयणुणयाहें विमलइं पयाइं सुयदेवयाहें ।

दंसण-कइ-रयणकरंडुणामु आहासमि कच्चु मणोहिरामु ।

गण्ठेक पहाणु महा मइल्ल इत्थथि अणेय कइ छइल्ल ।

हरियांदि सुण्णिहु समंतभइ, अकलंक पयो परमय-विमहु ।

सुण्णिवइ कुलाभूसणु पायपुज्ज, तथा विज्जारांडुअणंतविज्ज

वध १ रसेणु महामइ वीरसेणु जिणसेणु कुयोहि-विहंजसेणु

गुणभइयणंका उच्छमल्लु सिरि सोमराउ परमय-स-सल्लु

पउमुइ चउमुइ व पमिद्ध भाइं कइराइ संयंभु सयंभुणाइं ।

मइ पुण्णंभु विग्गुणोणु वरिणज्जइ किं सुयणुवि कोसु ।

वीरदरि-कालियाणाइं सार, अवरवि को गण्णइ कइत्तकार ।

दीपति गइ संवइ आरिमेहि किं वीरइ तहि अण्णरितेहि ।

घत्ता—सो सिरिचंद सुरिंद फणि णरिंद वंदिय पयउ ।

अक्खय सुक्ख णिवासु होइ देव परमपपउ ॥३६॥

इय पंडियसिरिचंदकए पयडियकोऊहलसए सोहणभावं-

पव्वत्तए परितोसिय-बुह-चित्तए दं-णकहरयणकरंडए

मिच्छत्त-पउहिं तिरंडिणुः कोहाइ-कसाय-विहंडणु सत्थम्मि

महागुण-मंडणु देव-गुरु-धम्मायण-गुणदाम-पयासणो णाम

पढमपरिच्छेथो समत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिमभागः—

परमार-वंस-मह गुण उरुणइं ।

कुंदकुंदाइरियहो अण्णइं ।

देसीगणं पहाणु गुण गणहरु,

अवइण्णउ णावइ सइ गणहरु ॥

तव पहा वि भाविथ वासउ,

धम्मज्जाण विणिहय पावासउ ।

भव्वमणो णलिणाण दिणेसरु,

सिरिकित्ति तिसु चित्त सुणासरु ॥

तासु सीस पंडिय-चूडामणि,

सिरि-गंणेय-पमुह पउरावणि ।

पोलत मिय सुइया सरोरु कुमुणि,

उंहुलिण मय गयण सहासकुसल ॥

वरस-पसरय-साहिय-महियलु,

णिणयमहत्त-परिणिज्जिय-णहयलु ।

चउविह-संघ-महाधुर-धारण,

हुसह-काम-सर-वीर-णिवारण ॥

धम्मु व रिसिरुवे जल रुवउ,

सिरि-सुयकित्ति-णाम संभूयउ ।

तासु वि परवाइय-मय-भंजणु,

णाणा वुहयणामणि अणुरंजणु ॥

चारु-गुणोहर-मण-रयणायरु,

चाउरंग-गण-वच्छल्लय यरु ।

इंदिय चंचल मयहं मयाहिउ,

चउकत्तायसार गमिणाहिउ ॥

सिरिचंदुज्जल-जस संजायउ,

णामें सहसकित्ति विक्खायउ ।

घत्ता—तहो देव इंदुगुरु सीसु हुउ,

धीयउ वासव सुणि वीरिंदु ॥

उदयकित्तीधि तथा तुरिय,

सुहइंदु वि पंचमउ भणि उ ।

जो चरण कमल आयम पुराण,  
 ग्याउचहं बहु साइम-समाणु ॥  
 आइरिय महा-गुण-गण-भमिद्धु,  
 वच्छुद्ध-महोवहि जय पसिद्धु ।  
 तहो वीरइंदु मुखि पंच मासु,  
 दूरजिक्य-दुग्मइ, गुण-खिवानु ॥  
 सउजयण-महामाणिक्य-प्राणि,  
 वय-मीलालंकिट दिग्ग-वाणि ।  
 सिरिचंदु ग्याम मोहण मुणीसु,  
 संजायउ पंडिय पउम सीसु ॥  
 तेणउ अणेय धरिय-धामु,  
 दंसण-अह-रयण-करंडु ग्यासु ।  
 किट कच्चु विहिय-रयणाह-धामु,  
 ललियकरर सुप्रणु मणोहिरामु  
 जो पउइ पढावइ प्यचिचु,  
 संलिहइ जिहवइ जो प्यरनु ॥  
 आययणइ मणणइ जो पयप्यु,  
 परिभावइ अह-प्यासु पउ सप्यु ।  
 जिप्यइ वा कंमार्यहि इंदुपहि,  
 तोलिय इह सो पासंडिपहि ॥  
 वहो दुक्किय कम्मु अतेमु जाइ,  
 सो लहइ मोक्ख-सुक्खइं भवाइं ।  
 जिणयाइ-चरण-जुव भताप्यु,  
 अमुयते कच्चु करंतपणु ॥  
 जं काईं वि लक्खय-दुंद-दीणु,  
 जइ मणइं तुत्तउ अह अहिय-दीणु ।

पत्ता—<sup>१</sup> रामउ सच्चु जगा शमित्य,  
 सुय-देवय अणयाण मइ ॥  
 जमि पुनजवियज्ज सिरिचंदमई,  
 वइ य भट्टारी थितसतइ ।

पुणामह तेवाग्या वाससया जिन्वत्तस्य महिवदयो ।  
 जइया गया हु वइया समाणिए सु दरं रइयं ॥

कण्णगारिद्वे रज्जमुदि मिरि मिरियालपुरेम्मि सुह ।  
 पालुपुर मदि सिरियंदे पउ कउ चंदउ कच्चु जयम्मि ॥  
 जयउ जिणवरु जयउ जिणुपम्मु वि  
 जयउ जइ जयउ ताहु मंइ सुहंफर ।

परुवंत हो भव्ययण  
 कुणउ जयहो सा सुह परंपर ।  
 दाण पुज्ज दय धम्म-रय सच्च मउच्च वि चित्त ।  
 भव्य जयंतु सया सुयण बहुगुण परिहिय चित्त ॥  
 जयउ शरवइ याम शयसेत्तु पयपालउ धम्मुरउ ।  
 सयस्यंथु परिवारि सहियउ  
 खियणामिय विउणु जणु ।  
 जेण खियय खियकम्मि खिहियउ  
 पच्चवउ मेहणि सइं हयउ ।  
 यरिसउ देवमया वि कित्ति धम्मु  
 शरवइ जयउ जनु मंत्रण ए कयावि ॥  
 जाम मेहणि जाम महणइउ  
 कुल-पच्चव जाम तहिं ।  
 जाम दीव गह रिक्ख-खह  
 पाजइ आयम सयल ।  
 जाम सग्गु सुर खियरु सुरवइ  
 जाम रायणु चंदु-रवि ।  
 जं जिणधम्मु पयप्यु ताम जणउ  
 सुहभव्ययणि जयउ गहु जइ सप्यु ।  
 जो सव्वणु तिलोयउइसिद्ध सदानं मंडु ।  
 ताम जणउ सुहु भव्ययणि दंसणकइ रयणकरंडु ॥

इति श्री पंडिताचार्य-श्रीचन्द्र विरचिते रत्नकरण्डनाम  
 शास्त्रं समाप्तम् ।

२—सुकमालचरित (सुकुमालचरित)  
 विबुध श्रीधर रचना सं० १२८८

आदिभाग :—

सिरि पंच गुरुहं पय दकपइ पणयिवि रंजिय समणहं ।  
 सुकमालसामि कुमरहं चरित आहासमि भव्ययणहं ॥

× × ×

एकहि दिसे भव्ययण-वियारप,  
 वलइ ग्यामे गामे मणहारप ।  
 मिरि गोविंदचंद पिय पालिप,  
 जयवइ सुहयारपकर लालप !  
 हुगविय बारइ जिणपेर मंडिय,  
 पयणएदपयवइ अयदंदिप ।  
 जिणमंदिरे वसणापु करं,

भव्ययणहं चिरु दुरिउ हरंतें ।  
 कलवाणीए बुहेण अण्णिदे,  
 पोमसेण णामेण मुण्णिदे ।  
 भासिउ संति अण्णेयइं सत्यइं,  
 जिण सासणे अवराइं पसत्यइं ।  
 पर सुकमालसामिणा मालहो,  
 कररुह मुह विवरिय वरवालहो ।  
 चारु चरिउ महुं पडिहासइ तह,  
 गोवरु बुहयणमण हरणु वि जह ।  
 तं णिसुणे वि महियले विक्खाएं,  
 पयडसाहु पीथे तणु जाएं,  
 सलखण जणणी गवभुपण्ये,  
 पडमा भत्तारेण रवण्ये ।  
 सहरसेण कुवरेण पठत्तउ,  
 भो मुण्णिवर पइं पभण्णिउ जुत्तउ ।  
 तं महु अग्गइ कियण समासहि,  
 विवरेविणु माणसु उल्लासहि ।  
 ता मुण्णि भणइ वप्प जइ णिसुणहि,  
 पुव्व-जम्म-कय दुरियइं विहुणहि ।

घत्ता—अठभग्धि वि णिरुसिरुहरु, सुकइ तच्चरित्तु विरयावहि ।

इह रत्ति वि कित्तियु तव तणउ सुहु परत्थे धुउ पावहि ॥२  
 ता अरणहि दिणि तेण छइरल्ले,  
 जिणभणियागम सत्य रसरल्ले ।  
 कइ सिरिहरु विणएण पउत्तउ,  
 तुहु परियाणिय जुत्तजुत्तउ ।  
 पुहुं बुहु हियय सोकल-विथारणु,  
 भविदण मण चित्तिय सुहकारणु ।  
 जइ सुकमालसामि कह अकळहि,  
 विरण्विणु महु पुरउ ण रक्खहि ।  
 ता महु मणहु सुक्खु जाइय लइ,  
 तं गिणुणेवि भासइ सिरिहरु कइ

× × ×

भो पुरवाइ-वंम सिरिभूसण,  
 धरिय-विमल-पम्भत्त विहूमण ।  
 एक्कचित्तु हो एधि आयण्णहि,  
 जंणइ पुच्छिउ मा अयण्णणहि ।

इयसिरि सुकमालसामि मणोहरचरिए सुंदरयर गुण-  
 रयण णियरस भरिए विबुह सिरिसुकइ-सिरिहरविरइए साहु  
 पीथे पुत्त कुमरणामंकिए अग्गिभूइ-वाउभूइ-सूरमित्त मेलाव-  
 चण वण्णणो णाम पडमो परिच्छेओ समत्तो ॥३॥  
 अन्तिमभागः—

आसि पुरा परसेट्ठिहि भत्तउ,  
 चउविह चारु दाण अणुरत्तउ ।  
 सिरिपुरवाड-वसमंडण चंधउ,  
 णिय गुण णियराणंदिय वंधउ ।  
 गुरु भत्तिय परणमिय मुणीसर,  
 णामे साहु जग्गु वणीसर,  
 तहो गल्ला णामेण पियारी,  
 मोहिणि मण इच्छिय सुहयारी ।  
 पविमल सीलाहरण विहूसिय,  
 सुह सज्जण बुहयणइ पसंसिय ।  
 ताहें तणुरुहु पीथे जायउ,  
 जण सुहयर महियले विक्खायउ ।  
 अरतु महिदे बुच्चइ वीयउ,  
 बुहयण मणहरु तिक्कउ तइयउ ।  
 जलहरणु णामे भण्णिउ चउत्यउ,  
 पुण वि सल्लकखणु दाण-समत्यउ ।  
 छट्टउं सुउ संपुण्णु हुअउ जह,  
 समुदपाल सत्तमउ भणउ तह ।  
 अट्टमु सुउ णयपालु समासिउ,  
 विणयाइय गुण गणहि विहूसिउ ।  
 पठसहो पिय णामेण सलक्कण;  
 लक्खण-कलिय-सरीर-वियक्कण ।  
 ताहे कुमरु णामेण तरारुहु,  
 जायउ मुह पइ पइय सरोरुह ।  
 विणय-विहूसण भूसिउ कायउ,  
 मय-मिच्छत्त-माण-परिचत्तउ ।

घत्ता—णारु अवरु वीयउ पवरु कुमरहो हुअ घर मोहिणि ।  
 पठमा भणिया सुअणहि गणिय जिण-मय-यर वहुमोहिणि ।

तहे पालहरणु णामेण पहुयउ,  
 पठम पुत्तु णं मयण-सरुवउ ।  
 वीयउ सालहरणु जो जिणु पुज्जइ,  
 जसु रूपेण ण मणहरु पुज्जइ ।

तद्वयं चले भयि वि आण्डज्जह,  
 संघव-मुवणहि सम्माण्डज्जह ।  
 तुरियं जयठ सुग्गु खामं,  
 थावह्ण विवसरु दुरियं कामं ।  
 एवहं खांसिसहं कम्मकपठ,  
 जिणमयर महं होठ दुवणवत्तठ ।  
 मग्गुणियं जि कज्ज थ्णय्ये,  
 .....  
 चट्ठिहु संघु महीयल्लि थंदुद,  
 जिणवर-वय-यंकय एवं उठ ।  
 च्च हु जाठ विसुणु वल्लु दुग्गुणु,  
 दुट्ठ दुग्गुमठ थिदियं सग्गुणु ।  
 एठ सत्थु सुणियवरहं पडिज्जठ,  
 भत्तिरु भत्तिण्येहिं थिणु थिज्जठ ।  
 जाम थाहं गणियं चंद-दिवावर,  
 कुल्लित्तिरि-मेरु-महीयल्ल-सापर ।  
 पीथे धंमु ताम्म च्चहिणंउठ,  
 मग्गुणु सुहिं मथाइं थिदिदठ ।  
 यावह्ण सयहं गयहं कय हरिसहं,  
 थ्णट्ठोत्तरं महीयले वरिसहं ।  
 कयण परत्ते धम्महये भावपु,  
 तिज्ज दिवसे सन्निवार समापपु ।

पचा—चारह सपहं गंधक कयहं पदकिण्णिहं र-वणणठ ।  
 जण-मय-हरणु-सुहु-विधरणु एठ सण्यु संपुणणठ ॥१३

इय तिरि सुकमालसामि मणोहर चरिणु सुंदर यर गुण-  
 रवण थियरमभरिणु विवुह्मिरि सुकह्ण मिरिहर विरहपु  
 ताहु पोये पुत्त कुमार थामंकिणु सुकमालसामि सव्यथ-सिदि  
 गमणो थाम्म इट्ठो परिच्छेभो समलो ॥संधि ६॥

१०—हरिवंस पुराणु ( हरिवंश पुराण ) धवलकवि  
 आदि भागः—

धीयाण दीहणालं वेमि-इली-कपह-नेमर सुमोहं ।  
 मद्द पुणियं तिमट्ठित्तं हरिवंसं मरोरुह जयठ ॥ १ ॥  
 हरि-रुद्रयाण बद्दा थंउग्गुह्ण वारोदि भयिणं जद या ।  
 तद्द विरयमि खोपणिया जेण थं थाम्मह्ण संयथं पठरं ॥ २ ॥  
 विम-मोमिध वरवीरं उह्ण सा थारिच मंथियारी ।  
 उग्गुमठ्ठ संयम मद्दयं मिच्छुत्तकःणियं कय्यं ॥ ३ ॥  
 मद्द गोगमेल भन्दिणं मेणियवराणुणु पुच्छियं जद या ।  
 मद्द जिणमेणोणु कयं उद विरयमिं हिरि उदोमं ॥ ४ ॥

अप्पा किं भयमि हरी कण्यरो मायरो-सुरसेलो ।  
 थं थं अप्पयमंसा परणिया गरहिया लोये ॥ ५ ॥  
 अप्पाणं जेण धुवं सुद्धिविहीणेण थिदियं तेण ।  
 पुक्कार थवह्ण जणो पदायरो पायरो तद्द वि ॥ ६ ॥  
 जो जोदह्ण वि थण पया विसुद्धा जिणवरोहि जह्ण मणिया ।  
 थां तेण वि मसो भविपायण वच्छुलो तद्द वि ॥ ७ ॥  
 सुध्वठ भविपाणं पिसुणु चट्ठकथाय मग्गुज्जमूलं ।  
 धयणुय धवल्लेण कयं हरवंस-म-मोहयं कयं ॥ ८ ॥  
 अत्थसारठदोसपरिसुक्क,अपाणहंथिण्णियादयवधवल्लु कण्ठुमणोहर  
 एहु कसिउ मवियवत्तण्णिहं, करहु कएण जण गुणमहाय ॥९॥  
 जिणथाहहोक्कुमुमंजलिदिवणु, जिणभूमणुगुणियवरपणवेणिय ।  
 पवर चरिय हरिवंसं कवित्ते,अप्पठ पयत्तिउ सरुहो पुत्ते ॥१० ॥

× × ×

कइं खक्कवह्ण पुणिय गुणयंतठ,  
 धोर (धर ?) सेणु हांतंउ सुगसिदठ ।  
 पुणु मम्मत्त उत सारागठ,  
 जेण पमारागंथु किठ चंगठ ।  
 देवण्णदि बहुगुण अत्त भूणित,  
 जे वावरणु जिणिएदु पयासिठ ।  
 यज्जसुठ सुपसिदठ सुणियरु,  
 जेण थय-पयाणु-गंथु किठ सुंदर ।  
 सुणिय महसेणु सुतोयणु जेण,  
 पठमचरिउ मुणिय रविसेणोण ।  
 जिणसेणोण हरिवंसु पणित्तु,  
 वडिल मुणोणु वरगचरित्तु ।  
 दिणय-मेणं चरिउ अणंगहो,  
 पठमसेणो थायरिय पावहो  
 अंधसेणु जे अमियाराहणु,  
 विरह्य दोम विरगिज्जय मोहणु ।  
 जिण चंदप्पह चरिउ मणोहर,  
 पाव-रदिउ धयायत्तु सु-सुंदर ।  
 अएणमिं थिम एमाह वहुत्तदं,  
 विरुद्धसेणु रिणियणु चरिचह्ण ।  
 सोहण्णदि गुण्ये अणुवेहा,  
 गुरदेयं थययार सुवेहा ।  
 तिद्धमेणु जे वेद चालठ,  
 भविय विसोय पचामिय चंगठ ।

रामयांदि जे विविह-पहाणा,  
जिण सासणि बहु-रइय-कहाणा ।  
असगु महाकइ जे सु-मणोहर,  
वीर जगिंद चरिउं किउं सुंदर ।  
केत्ति य कहमि सुकइ-गुण-आयर,  
गेय कच्चं जहिं विरइय सुंदर ।  
सणककुमारु जे विरयउ मणहर,  
कइ गोविंद पवरुं सैयंवरुं ।  
तह वक्खइ जिण रक्खिय सावउं,  
जे जइ धवलु भुवणि विक्खायउं ।  
सालिहइ कय जीयउ देवउं,  
लोए चउमुह दोण-सिद्धउ ।  
एकहि जिण सासणे अक्खलियउं ।  
सेहु महाकइ जसु गिम्मलियउं ।  
पउमचरिउ जि भुवणि पयासिउ,  
साहु एरेहि एरवरहिं पंससिउ ।  
हुउ जहु तो वि किंपि अब्भासमि,  
महियले जिणिय बुद्धि पयासमि ।

घत्ता—

सहस किरणु रइ वे विगंय णिचडे वि तिमिरं असेसु पणासहिं ।  
णियसत्ते मणि दीवउ जइविंसु थोवउतोवि उज्जोवि पयासहिं ॥३

× × × ×

मूले कहिउं इहु वीर जिगिंदु,  
पुण गोत्तमेण सुधम्मं मुण्णिंदु ।  
जंयूसामिं विविद्धं रसएण,  
यांदिमित्तं अवरज्जियं कएण ।  
गोवद्धणु तह भंइवाहु मुण्णिं,  
तह विसाहु पौट्टिलु खंत्तिउं मुण्णिं ।  
पुण जय तह खाग सु सिद्धत्थुं,  
धिइसेणहो ए माइं सत्थुं ।  
विजयहो बुद्धिलं गंगदेवहो,  
धम्मसेणं एणंत्तं मुण्णिंदहो ।  
जयपालहो पडुहो धुवसेणहो,  
कंसायरियहो तहव सुंभइहो ।  
जयभइहो तह पुण जसभइहो,  
आउ सत्थु एहु लोहाइज्जहो ।  
पुण कमेण बहु गय सुयहाणहो,  
एहु सत्थु आयउ जिणसेणहो ।

जिणसेणं पुण इह उज्जोयउ,  
अं वसेण रिसिणा महु ढोयउ ।  
एवइ इउं भवियणहं पयासमि,  
पयदउ अत्थु असेसुवि दरिसमि ।  
बालो विद्धो वि तिहइं सुहेण,  
सुक्खु विविउ वीसु बुक्कइ जेण ।

घत्ता—

एहु जिण वयंणु पराइउं कम-कम  
आयउ आगउ पुणु पवित्तु ।  
णिसुणहो पावपणासणु भवियहु  
बहुगुणु अविचलु-धरिविणु चित्तु ॥५॥  
मइ विप्पहो सूरहो रांदणेण,  
केसुल्लं उवरि तह संभवेण ।  
जिणंवरहो चरण अणुरत्तएण,  
णिगंथहं रिसियहं भत्तएण ।  
कुत्तिय कुधम्म विरत्तएण,  
णामुज्जलु पयहु वहंतएण ।  
हरिवंसु सयलु सुललिय इएहिं,  
मइं विरयउ सुट्टु सुहावएहिं ।  
सिरि अं वसेणु गुरवेण जेम,  
वक्खाणि कियउ अणुकमेण तेण ।  
सज्जण मुणे वि बहुगुण भणंति,  
हुज्जण पच्चोलिउ दोस लिति ।  
इहु दुट्टहं खलहं सहाउ को वि,  
लाए वि दोस णिहोस हो वि ।  
जे खाहि पियहिं धणु विहवंत,  
अप्पाउ समत्ता खल भणंति ।  
जे विड वि विसंचहि अत्थु केवि,  
तिट्टाउ खुल्लहिं खलहिं तेवि ।  
वक्खाणहिं जाणहिं जे पढंति,  
वायं तरि ह्या ते भणंति ।  
जे विविह सत्थे ये मुयांति केवि,  
जसु सुक्ख व लक्खण भणहिं ते वि ।  
वसंहहि महंत जे खंति पर,  
ते बुच्चहिं खलहिं असक्कणर ।  
जे परिहिउण सइहि पोरुसेण,  
परजंटा बुच्चहिं खलयणेण ।

जे माप विमलवर्हि विपरवदि,  
वदु दुश्चरु सुरुद् अयपुणे वि ।

पद्या—

जो वरहमित या तेहि अमुरेहि सोदुद सुववि या देवमि ।  
पदरवअहेदेविपुमिभिय क्येविपु अयपिमुयदु कद अरथमि ॥४

कर्मिम भाग—

त्रियवचक-दरी-बजएव जेवि,  
चठवएव अंगरु देसु तेवि ।  
रोदुद हरंगु सुव विपरंगु,  
मगा-वत्रग-वद-पावदंगु ।  
मद सुदि विहूये कदिठ जंजि,  
त्रियमुहविगय महो यमठ संजि  
सुगिदेव पसाएगु अयुहएव,  
चिट्टकवि जंजिठ जंजिण्य ।  
पुंदाखंशरं जे विहोपु,  
मदु होम य दीवठ दुखिदीपु ।  
जह बासुय जंजि जेम तेम,  
वह एव तिविय अचीयमेव ।  
त्रियसोसु सुसु वेधजेवि यदु,  
मदु विरवठ मवियहो पुसु गिलेहु  
ओ को वि सुवदु यदु महपुसायु,  
हरियंमय्यायु इचियुय पहायु  
ओ विहदु जिहायु को वि मयु,  
मगा-वत्रगु लहो होद मयु  
हो म्द विदव मदिशाहु बयग,  
अंधादेव सुग वि अत्रय ।  
मगा-वत्रो मयम बाज,  
जो मायदु हरिकुज याम भाज ।  
दे मदु मीन बापादिहाठ,  
विहरंगु होमिजसु हदठ पाठ ।  
पाठयु कविपठ विम ममव मयु  
त्रियपठ मययु मरियकायु

पद्या—

जो विने अरहणु सुवपुविहाह विपुयदु अरवठ जो मरदु  
अहो बाविवायु विम-मुहकायु होय केमि अरहवि अरठ ॥  
इम हरियंय पुगणी मजकं,

११—द्वकमोवएस ( पटकमोवदेश )  
अमरकीर्वि, रचनाकाल सं० १२४७

आदि भागः—

परमपाप-भायणु सुह-गुण - पायणु  
विहविप-अमन-अरा-अरणु ।  
सामय-सिरि-मुंदरु पयय-पुरंदर,  
रिमदु यविनि मविपय सरणु ॥

× × ×

अह गुकजर-विसयदु ममिकंदसु,  
यामेय महोययु, यदु-ययण ।  
रुपरामर-अर-गामदि विगदु,  
याया-वपार-अंर-समिदु ।  
वदि अयदु अवि सोदुहय यामु,  
यां मयु विचियु मुम-धामु ।  
पायायदं पंजिठ अदि सहेति, ( अमंति ? )—  
मरयमदु सोहाय यदुवि ।  
अय-किंकिवि कजरायदि सरिदि,  
यां कदुद सुरं पाविप पलिदि ।

पद्या—

देयागय-ओयदि मार-यमोयदि,  
अविपवि मवि मदिदयठ ।  
पुवहि संशमठ अचियु-यपायठ,  
यपदय अययु यविदयठ ॥४४  
ठं पानुकच-यंसि यप-त्रायठ,  
पाजुद अरह-गुरियु पहायठ ।  
जो अरुभारि-विदंमयु,  
मगियु साम्माविय-युरंमयु ।  
त्रिय-अदिमदेय-अयु-जयठ,  
असयययु यां हरिमिय-वायठ ।  
मयक-वाठ-अविप-विच-विवायठ,  
पुवदिदि...वि यवि यदो विगदु ।  
अमन-ओययार-मुह-दायदं,  
विचय-अहो मव बुदि-यगायदं ।  
आयु रजिअ अयु यदं मायदं,  
दुभुयु बुदिपुयु रोह य विपायदं ।  
रिमदु-अहोमहो अदि यदंरुदु,  
मुंमुगि-अहोदिठ अं मयदु ।



दंसणेण जसु दुरिउ विलज्जइ,  
पुण्ण-हेउ ज जणि मण्णिणउज्जइ ।

घत्ता —

अमियगइ महामणि, सुणिचूणामणि,  
आसित्थु समसील-धणु ।  
विरइय-बहु-सत्थउ, कित्ति-समत्थउ,  
सगुणाणंदिय-णिबइ-मणु ॥ १ ॥  
गणि संतिसेणु तहो जाउ सीसु,  
णिय-चरण-कमल-णामिय- महीसु ।  
माहुर-संघाहिउ अमरसेणु  
तहो हुउ विणेउ पुणु हय-दुरेणु ।  
सिरिसेणसूरि पंडिय-पहाणु,  
तहो सीसु वाइ-काणण-किसाणु ।  
पुणु दिक्खिउ तहो तवसिरिणिवासु,  
अत्थियण-संघ-बुह-पूरियासु ।  
परवाइ-कुंभ-दारण मइंदु,  
सिरिचंदकित्ति जायउ मुण्णिदु ।  
तहो अणउ सहोयरु सीसु जाउ,  
गणि अमरकित्ति णिहणिय पमाउ ।  
अहणिसु सुकइत्त विलोय लीणु,  
जामच्छइ बहु-विह-सुय-पवीणु ।  
तामण्णहिं दिणि विहियायरेण,  
णायर-कुल-नायण-दिणेसरेण ।  
चच्चिणि गुणवालहं णंदणेण,  
अव दिण्णदाण पेरिय मणेण ।

घत्ता—

भव्वयण पहाणें बुहगुण जाणें, बंधवेण अणुजायइं ।  
सो सूरि पवित्तउ, लहु विण्णत्तउ, भत्तिणँ अब पसाइं ॥ ६ ॥

परमेसर पइं णवरस-भरिउ,  
विरइयउ रोमिणाहहोचरिउ ।  
अणु वि चरित्तु सव्वत्थ-स हउ,  
पयउत्थु महावीरहो विहिउ ।  
तीयउ चरित्तु जसहर-णिवासु ।  
पट्टडिया-बंधं किउ पयासु ।  
टिप्पणउ धम्मचरिय हो पयहु,  
तिह विरइउ जह बुज्जेइ जहु ।  
सक्कय-सिलोय-विही-जणियदिही,  
गुंफियउ सुहासिय-रयण णिही ।

धम्मोवएस-चूडामणिक्खु,  
तहो भाणा-पईउ जि भाणसिक्खु ।  
छक्कम्मवएसें सहं पबंध,  
कय अट्ट संख सहं सच्चसंध ।  
सक्कय-पाइय कव्वय घणाइं,  
अवराइं कियइं रंजिय-जणाइं ।  
पइं गुरुकुलु ताय हो कुलु पवित्तु,  
सुकइत्तें सासउ किउ महंतु ।  
कइयण-त्रयणामउ जे पियंति,  
अजरामर होइ वि ते णियंति ।  
जिह राम-पमुह सुयकित्तिवंत,  
कइसुह-सुहाइ पेच्छहि जियंत  
कइ तुट्टउ अप्पापरु समणु,  
अक्खयत्तणु करइ पसिद्धगणु ।

घत्ता—

मंतोसहिं-देवहं, किय चिरसेवहं, धुय पहाउ णहु सीसइं ।  
परकाय-पवेसणु, किय-सासयत्तणु तिहजिह कइहिं पदीसइ ॥ ७

महु आहासहि पयणिय सम्मइं,  
अह काहण्णें गिहि-छक्कम्मइं ।  
जाइं करंतउ भवियणु संचइ,  
दिणि दिणि सुहु दुक्कयहिं विमुच्चइ ।  
तेहिं विवज्जिउ णरभउ भव्वहं,  
छग्गा-गल-थण-समु गय-गव्वहं (?)  
मइं मइमूढें कि पि ण चित्तउ,  
पुण्णं कम्मु इय कम्मु पवित्तउ ।  
भव-काणणि भुल्लहो महु अक्खहि,  
सम्म-मग्गु सामिय मा वेक्खहि ।  
अमरसूरि तव्वयणाणंतरु,  
पयउइ गिहि छक्कम्महं वित्थरु ।  
सुणि कण्हपुर वंस-विजयद्धय,  
णियरूवोहिय-मयरद्धय ।  
पूयय देवहं सुइ-गुरु वासणा,  
समय-सुद्ध-सज्जाय-पयासणा ।  
संजम-तव-दाणहं संगुत्तइं,  
जिणदंसणि छक्कम्मइं बुत्तइं ।

घत्ता—रयणत्तय-जुत्तउ, सहलहिं चत्तउ,  
गुण-सील-त्तउ-हणिय-मलु ।

जो दिग्भिन्निव्य रूपहं काह विदेवहं,  
मनुष्य जन्मु तदो पर महसु ॥३॥

इय पृथक्कमोपमो महाहह मिरि अमरकिरि विरहह  
महा रूपे गुणवान् धिरिधिया चंद्रय महामय्य अक्षयमापाउ  
मरिहह ह्यकमरिधयय ययययोषाम पदमो संधि ममतो ।

अन्निमभागः—

ताहं मुषियि सोहेवि गिरंतह,  
होयाह्वि विरहह विदिमयगह ।  
फेरेवठ ममसु भांगिदि,  
अहहं वपरि बुद्धि-मरिदिहं ।  
एकफन्मोययसु इह भविषहो,  
यरायाह्विगठ अगिहं अविषहो ।

अंयपमावहं चत्तिचयिपुले,  
गिह-दुहहम-यवित्त-यवित्तं ।  
गुणवालहह सुषय विभाविठ,  
अरेदि मि गियमरि संभाविठ ।

थाह मयहं ममच-यवामिदि,  
विहहम-अंययह विमालदि ।  
मायदि मि अरुपयतु वरगंगरि,  
गुहवाग्नि अठरि मि वापरि ।  
इहहं मारो यहु लुमसिठ,  
यहं विहिवठ अकसु अयहयिठ ।

यदठ परमासय-विदवागयु,  
मयसकाउ विदवागहह मागयु ।  
चंद्र तहयि देवि वीरुपदि,  
विगुगु-अमसुअय परमेदि ।

यदठ अमसु विदिहं भासिठ,  
चंद्र संसु सुमोले भूमिठ ।  
चंद्र मरिहह अम-अयठ,  
पय वरुपायय-याय-महहठ ।

चंद्र भावयतु विगम-अंगयु,  
अकमरिहं पाविठ विहयमसु ।  
यदठ अंयपमाउ विरकयठ,  
अमरगुरि-अहु-अंयु सुयययय ।

चंद्र अयहं विद यय-अयठ,  
विदु-अयु भांगिठ-अययय ।

पद्या—

चंद्र विद वावदि माय इह  
अमरकिरि-मुषि-विदिठ यपतो ।  
वावदि मदि मारुय-मेरु-गिरि-याहयतु  
अंय पमाययिमिठ ॥ १८ ॥

इय पृथक्कमोपमो महाहहमिरि-अमरकिरि-विरहह-  
महाहहमे महामय्य अक्षयमापाउ मांययय यय-याय-  
अयययोषाम अठदमनो संधो परिधुयको ममतो ॥ १९ ॥  
॥ संधि १४ ॥

१२—पुरंदर विहाय-कहा ( पुरंदरविधान कथा )  
अमरकीर्ति

आदिभागः—

परमप्यय भावसु सुहगुण पायसु,  
विहयिपयजम-अरा-अरुठ ।  
मायय मिरि मुंयठ ययय पुरंदर,  
रिमहययवि विहृयय सरुठ ।  
मिरिपीर जिहंदि ममयमरि,  
सेयियराए गुषययविदि ।  
जिहयय-पुरंदर विहयदि बदिठ तं,  
आयययवि विहिय विदि ।

अगिठय भागः—

अयराहमि मुरगिरि मिहरयहं,  
तठ चंदीयर द्वायि यमायहं ।  
जाह वि यहु मुरवर समगर्तो,  
अहम यय अय दुंयहियाए ।  
यहाह वि मुरतय कुमुनिदि अंयठ,  
विहयदि पुषययिमेमे संयठ ।

पद्या—

जिय रूप पुरंदर गिदि काह पृथक्कया जो यय यर ।  
तो वाय ययाह वेद यहु अमरकिरि तिय येयय ॥  
जिहयययययय ( जिहयययययय )  
यं लहयययु, ययनाहाय सं० १२, ३५

आदि भागः—

यय-अ मरकय हंगहो,  
विहयय हंगहो वेदीय दहा ।  
अययि मुहय अयहंगहो लहयययय हो  
अययि जिहयो ( जिहययय यहा ) ।

इय पणवेवि हय संसार-सरणि,  
 प्रवाडवंस तामरस तरणि ।  
 विल्हरा तणुरुह पाय इय धामु,  
 जिणहरु जिणभत्तु पसिद्ध णामु ।  
 तहो सुंदराण गयणाणंद-हेउ,  
 णामेण सिरिहरु सिरिणिकेउ ।

णिय नोत्तामर पंथो सहीसु,  
 वणिणीह तरंगिणि तीरिणीसु ।  
 दुध्वसण कसर भर समण-मेहु,  
 अणालिय गउरउ गुण गरु अणेहु ।  
 परिवार भार धुर-धरण-धीरु,  
 विलासिय विलास सुरवर सरीरु ।

मुणिय वयण कमल मयरद भसलु,  
 पवयण वयणाहिल मुणाय कुसलु ।  
 सो विलरामे णिवसंतु मंतु,  
 तहं णिवसइ लक्खणा सीलवंतु ।  
 तें सिरिणामें कह वसु पयार,  
 विरइ व पयडिय तहो पुरउ सार ।  
 णिसुणेवि कहा जिणहरहो पुत्त,  
 संपभणइ लक्खणाहो सुवुद्ध जुत्त ।

वत्ता—

मुणिया हिलवर लक्खणा भोकइ ?  
 लक्खण कह णिसुणे वि अणुरंजियउ ।  
 महु मणु गुण-गण साउ  
 पावणु पावें अहं जियउ ॥  
 पुणु पभणइ सिरिहरु णिसुणिय लल्ल,  
 पर पडिय सत्थ रस मइ महल्ल ।

वणि अरुहदत्त कह कहहि तेम,  
 अहिणव विरइवि महु पुरउ जेम ।  
 फिट्ठइ मणु संपउ अज्जु सज्जु,  
 पाविज्जइ किं प परत्त कज्जु ।  
 तेसु पसाएँ महु सहलु जम्मु,  
 लहु हवइ वप्प णिहणिय कु-कम्मु ।  
 अम्हाणुपरि किज्जउ पसाउ,  
 अहु सज्जण परिगलिय-गाउ ।  
 तुहु अणुदिणु मे मणि पुज्ज णिज्ज,  
 पई परि भाइउ भउ णिद णिज्ज ।

सुहु सुहु पभणइ कर फंसि जाणु,  
 लक्खणाहो सिरिहरु हरियमाणु ।  
 बहु भत्ति कुणिय वि मउलिय स-पाणि,  
 दय किज्जउ वंधव परमणाणि ।

वत्ता—

पर चित्तु परिववणु तस तणु रक्खणु  
 सुवियक्खणु लक्खणु स-धणु ।  
 तं णिसुणेवि पडिहासइ सिरि वि सरासइ  
 कुमइ-पंसु उवसमइ धणु ॥ ३ ॥  
 हो हो सिरिहर वणिवर कुमार,  
 मारावयार कय चारु चार ।

चारहडि चउर चउ रस्स उर,  
 उरयाहिव सणिणह भोय पउर ।  
 पउरिस रस रसिय सरीर मोह,  
 सोहाहिल कलिय पमुक्क मोह ।  
 मोहिय रूवें पुर रमणि विंद,  
 वंदियण सासण केलि कंद ।  
 कंदाविय दुट्ट जणाण मुद्ध,  
 मुद्धमइ विवज्जिय जस विसुद्ध ।

सुद्धा साहु उरिय तेयतार,  
 तारच्छवि तिरयणा रयणासार ।  
 सारंग वग्ग वर दीहणेत्त,  
 येत्ता हराम तामरस वत्त ।  
 .....पीणिय सुयणा रुत्थ,  
 सत्थेहिं वियाणिय णिरु गायत्थ  
 अत्थावियसुय-पय-रस-विलेस,  
 सेसिय ? कुविसय विसरस पएस ।

हावाइ णट्ट रस मुणिय भंग,  
 अठ्ठभंग य सासिय सिहरि संग ।  
 सिंगार विडवि पोसणु सुमेह,  
 भेहायर कय पंडिय रोह रोह ।  
 रोहिल्ल जणहिं कयकित्तिमाल,  
 मालइ मालंकिप कुडिल बाल ।  
 बालककु किरण तणु-तेय लील,  
 लीलारस पयडिय कामकील ।  
 कीलारविद मयरइ भिग,  
 भिगारहि हाविय जिण णिसिग ।

घटा—अरिदय तामर मायर सुहृदय,  
मायर दोमायर शायर तिलया ।  
वणि त्रियायत्त कहंतरे गुण्य शिरंतरे  
कह विरइज्जइ गुण्यगिलया ॥ ४ ॥

× × × ×

शिककलंके अकलंके चउमुहो,  
फालियासु सिरिहरि सुहृद सुहो ।  
वय निलानु कइवामु अमरिसु  
दोगु वाणु ईसाणु सह्रिसो ।  
पुपफयंतु सुसयंतु भरलभो,  
वालमोउ सन्मइं रसिल्लभो ।  
इह कइंउ भोम इण दिदिठया,  
फुरइ धेम महो मइ वरिदिठया ।  
धाउलिम गुण्य राउ गुण्य य कारभो,  
कम्मु करणु य समानु सारभो ।  
पय समित्ति किरिया विसेसया,  
मंधि धंतु वावरय भावया ।  
देम भाग छरउणु य ठरकभो,  
मुपामि केउ अवादि गुरकभो ।  
महाधवनु जयधवनु य दिठभो,  
य उर वण्य परामिइ वरिठभो ।  
एह य दिट्टु निदं तु पाव.....?

× × × ×

इय त्रिएयपाशरिने धम्मण्य-आम-भोगवरण्यउत्तभावर-  
मुनयिने समुपानिरिगाहलमुउ-अरकण्य-विरइणु अरुपनि-  
रिहरम्मप्यामिइणु त्रिएयकहुमाकण्यअधि-वएयथो याम परमो  
परिच्छेमो मत्तमो ॥ ॥ गंधि १ ॥

घनिन भाग—

इह होंगउ अयि त्रियाण सुदि,  
गुजिउ त्रिएणर निरयण विमुदि ।  
जायम गहपंग उणवरणु मिणु,  
गुण मरुसामर मादिउक मिणु ।  
जावर मारणालरो कोणवालु,  
उणवम सुदिप दिउणकइवाणु ।  
जमयाणु कणु गुर मइ वणालु,  
स्ताइहु अरइउ मइवरण राणु ।

वण जापिय त्रिएणमइ उणइ कणु ।  
ताइं मय सच पमुउक तामु ।  
पदमउ अरुहणु सुदि सरप सूह,  
परिवार-वारह-वरमाण-पूण ।  
परयण वयणामप-पाय-मोइठ,  
अयमेप महामइ-उत्तिय,दुइठु ।  
त्रिएणवरपण्यण-अयण-मयणु,  
अहियापिय य पिदिल विपाय विणु ।  
निरुद्धत \* त्विच यउणइकणु,  
गंभीर परम विम्मव मइकणु ।  
किरिलकल-वेकिल शिलत्तर-गिरकणु,  
मायर मुउ लकवणु रोइ-गिरकणु ।  
परिवार-भार-उठरण-धोर,  
त्रिय-अय-वारि-वारण-सरोर ।  
पवहिय-विपाल-वंदण-विमुदि,  
मुण्य सण्यभाज-भाजण अमुदि ।  
महु-सेउय-वार-मिर-घट्ट-गाय,  
वंदीयण दीणइ दिण्य पाय ।  
भायणिदि पयोमिय सूरिउंठु,  
सउत्तामर-वह-अय चंउ-वंदु ?

घटा—

सहोमोहपाहो रमाल हो भोयपराल हो कनरविट्टण्य महोवर  
दुदरि महामइ सोहण रिउकल मोहण गुयराहपरिहियापर  
गाहणु साहुणु मोहणु मइल्लु,  
तइ रयणु मयणु मतणु ति इइणल ।  
इहमहि भावर अल्लवाण भण,  
इहमरि ताहा मायात्मच चिण ।  
इहमरि ताहर पप पयउ-हुंरु,  
इहमरि मणणोयम-कामदेह ।  
साहु महु मुनिय पिय पम मइउज,  
यामंउजय वावरण गिलय कउ ।  
ताइ ति वंदणु सवण्यणु मलणु,  
लकवण-अरिउठ-अयदम-अवकणु ।  
त्रियविप-त्रियण-वण-मंत्रिय-अण्य,  
ते त्रिहृअणुगिरि त्रिणमंजि मण्य ।  
नो त्रिहृवणुगिरि अणउ उउउदव,  
विणउ वनेण मिणुदिदिप ।

लकखणु सन्नाउ समाणु साउ,  
 विथायउ विहिणा जणिय-राउ ।  
 सो इत्थ तत्थ हिंडंतु पत्तु,  
 पुरे विल्लराम लकखणु सु-पत्तु ।  
 मणहरु जिणहरु तणुरुह पवित्तु ।  
 ते णिज्जिउ सिरिहरु परम मित्तु ।  
 विरदा णंदणु सम्माण घणउ,  
 लकखणु हो समउ सो करइ पणउ ।  
 तहे जि सणेहु णिणभरु महंतु,  
 दिण दिण तं अइसय वुद्धि जंतु ।  
 भइवणु पवुट्ठणु मेहुणीरु,  
 असराल-वारि-पोसिय-सरीरु ।  
 जं एयारह मणु मासि फारु,  
 णिवडइ णहारु उ णिणभरुत्तु सारु ।  
 खर-कय पयंड-वयंहंड-पूरु,  
 जं जिट्ठइ णिट्ठरु तवइ सूरु ।  
 सुवणहो सुवणेसहु णाहु जंजि,  
 चिरु वट्टइ भोकह चित्तु तंजि ।

वत्ता—

जह अहिणव घण दंसणे ताव विहंसणे चंद कवउगं हुल्लियइ  
 सिरिहरुसिरिसाहारउरय-परिहारउलकखणुणाणहर सुल्लियइ  
 णवरेककदिणम्मि महाणुभाउ,  
 आभत्थि विल्लहो घत्थ-पाउ ।  
 पभणुउ भो वंधव अइ पवित्तु,  
 विरइव्वउ जिणायत्तहो चरित्तं ।  
 तहो वयणं मई विरइउ सवोज्ज,  
 वणियाहो ववसायउ मणोज्ज ।  
 पद्धडिया वंधं पायडत्थ,  
 आइहि जाणिज्जसु सुप्पसत्थु ।  
 सयलइ पद्धडिया एइ हुँति,  
 सत्तरि णवज्जु दस य दुणिया संतु ।  
 एयइ गंथइ सहसइ चयारि,  
 परिमाणु मुण्णिहु अक्खर वियारि ।  
 हउ.....रक्खरु खलिय लज्ज,  
 ण वियाणमि हेयाहेय-कज्ज ।  
 पय-बंध णिवंधु ण मुणमि किपि,  
 मइ-विरइउ संपइ चरिउ तंपि ।

× × ×

इयहं चरित्तु जो को वि भव्वु,  
 परिपडइ पडावइ गलिय-गव्वु ।  
 जो लिहइ लिहावइ परमु मुणइ,  
 भावइ दावइ कहइ सुणइ ।  
 जो देइ दिवावइ मुणिवराह,  
 जह तह सम्मइ पंडिय पराह ।  
 सो चक्कवट्टि पड आइ करिवि,  
 पालिवि सक्कत्तण लच्छि धरिवि ।  
 अणुहुँज्जिवि संसारिय-सुहाइ,  
 सव्वइ दिव्वइ पयलिय-दुहाइ ।  
 उव्वहियाहिल सुहरस-पयासि,  
 पच्चइ गच्चइ णिव्वुइ णियासि ।

वत्ता—

वारहसय सत्तरयं पंचोत्तरयं त्रिककम कालवि इत्तउ ।  
 पडम पक्खि रविवारइ छट्ठिठ-सहारइ पूस मासे सम्मत्तउ ॥३

× × ×

सम्महंसण णाण णिरु सम्मच्चरिय विसालु ।  
 तं रयणत्तउ सिरिहरहो अहिरक्खउ चिरकालु ॥

—आमेर भंडार प्रति, सं० १६११

१४ सुलोयणांचरिउ (सुलोचनाचरित)  
 गणिवेवसेन

आदिभाग—

वय-पंच-तिकख-णहरो पवयण-माया-सुदीह-जीहालो ।  
 चारित्त-केसरड्डो जिणवर-पंचाणणो जयऊ ॥१॥  
 तिहुवण-कमल-दिणोसु णियणासिय-घण तिमिर-भरु ।  
 पयडिमि चरिउ पसत्थु पणविवि रिसह-जियेसरु ॥२॥

× × ×

णिवमम्मलहो पुरि णिवसंतं,  
 चारुट्ठाणं गुणगणवंतं ।  
 गणिया देवसेणमुणिववरे,  
 भवियण-कमल-पवोहण-सूरं ।  
 जाणिय धम्माहम्म-विसेसं,  
 विमलसेण मलहारिहि सीसं ।  
 मणि चित्तउ किं सत्थवभासं,  
 णिप्फलेण णिरु वयणायासं ।  
 जत्थ ण धम्म-जुत्त रंजिय सह,  
 विरइज्जइ पसत्थ-सुं दर-कह ।

पस वि य पाये गुण वि चनक्किउ,  
चिरु कइ कवइ चिति विसंकिउ ।  
जहि वन्मीय वास सिरि हरिसहिं,  
कालियास पमुहहि कइ सरिसहिं ।  
वाण-मथूर-हलिय-गोविंदहिं,  
चउमुइ अवर सयंभु कइंदहिं ।  
पुष्पयंत-भूपाल-पहाणहिं,  
अवरेहिमि बहु सत्य वियाणहिं ।  
विरइयाइ कइइ शिसुखेंपियण,  
अमहारितइ थ रंजइ वुहयण ।  
हउं तह वि घिट्टत्तु पयासमि,  
सत्थ रहित-अप्पउ आयासमि ।

घत्ता—जइ सुरवइ करिमत्तु, तो कि अवर महव्वउ ।

जइ दुंदहि सुरसइ, तो कि तूर म वज्जउ ॥३॥

जइ आयासं विणयामुउ गउ,  
तो कि अवर म जाउ विहंगउ ।  
जइ सुरपेण्य जणयाणंदियि,  
हुज्जइ तो कि अवर गणंदियि ।  
जइ कप्पइ सु फलइ मयोहर,  
तो कि फलउ याहिं अवर वि तर ।  
जइ पवइइ सुर-सरि मंथर-गइ,  
तो कि अवर नाहिं परइउ थइ ।  
जइ कइ पवरहिं रइयइ कइइ,  
सुंदरराइं वण्यहिमि अउव्वइ ।  
हउंमि किपि नियमइ अणुरुवें,  
विरय वि तग्गउ काइं वहुवें ।  
जइ वि थ लक्खणु छंदु वियाणमि,  
अउर निवंडु यादि परिआयमि ।  
याणंकारु कोवि अयलोदु,  
यात्रि पुराय-आयमु-मणु टोयउ ।  
मइं पारंभिय तो वि जउत्तें,  
अरुइ जिणपम्महो अणुरत्तें ।  
विमुणत्तें सुंदर मइ कूसइ,  
हीणु थियवि मुयणत्तें पोमइ ।

घत्ता—अइ कि पच्चमि णु, अज्जथित रोमात्तथो ।

निम हुवें ईगाउ, धोपउ धोपउ कालथो ॥३॥

× × ×

किं करइ पिसुणु संगहिय पाउ,  
छुडु महु सरसइ जीहग्ग थाउ ।  
छुडु थोहरंतु सुंदर पयाइं,  
लजियाइं वइ भासा-गयाइं ।  
छुडु गय-विरोहु संतवउ अत्थु,  
छुडु होउ वयणु सुंदर पसत्थु ।  
आयणणहो बहुविहु-भेय-भरिउ,  
हउं कइमि चिरायउ चारु परिउ ।  
वइयरंदि विचित्तु सुलोयथाइं,  
थिव पुत्तहो मयणुक्कोवथाइं ।  
वयवंति हिय मिच्छत्तियाइं,  
वर-दिद-यम्मत्त-पउत्तियाइं ।  
जं गाहा-अंधें आसि उत्तु,  
सिरि कुदकुद-गणिएणु थिरत्तु ।  
तं पव्वहिं पइडिपहिं करेमि,  
परि किं पि न गूडउ अथु देमि ।  
ते थवि कवि थउ संला लहंति,  
जे अत्थु देमि वसथाइं पि (वि) वंति ।

घत्ता—कहियं जेण असेमु मिच्छत्ताउ थोहइइ ।

अवर वि बहुत्तर पाउ, तं जीयासितु तुटइ ॥ ६ ॥

× × ×

इय सुलोययाचरिण महाअब्बे महापुराणे दिट्ठिण गणिएण-  
देवसेण-थिरइण पडमो परिच्छेयो सम्मतो ॥ १ ॥

धरमभागः—

यंदउ सुहरु जिणिदहो सासणु,  
जय सुहवरु भन्नयण सावणु ।  
यंदउ पयजें धम्मु पयाणितु,  
पाउउ जेण सत्थु उवणमितु ।  
साहु-यणु-रयणत्तप धारउ,  
यंदउ साउउ वय-गुण धारउ ।  
दाणु देह इंदिय वल-उमरइं,  
येज्जाउरुु करेउ मुणि-पवरइं ।  
यंदउ थरवइ मइ परिवारें,  
पाणिणु थिर थियपायाारें ।  
यंदउ पय-पय मुच्चउ पायें,  
रंजिजउ जिण-धाम-पहायें ।  
वीरसेण-जिणुसेणुपरियदं,  
आयम-भाउ-भेय-यउ-भरियां ।

तह संताणि समायउ मुणिवरु,  
 होट्टल मुत्त<sup>१</sup> णाम बहुगुणधरु ।  
 रावणु च बहुसीस-परिग्गहु,  
 सयलायम-जुत्तउ अपरिग्गहु ।  
 गंडविमुत्तु<sup>२</sup> सीसु तहो केरउ,  
 रामभद्दु णामें तव सारउ ।  
 चालुक्किअयवंसहो तिलउल्लउ,  
 होंतउ णरवइ चाएं भल्लउ ।  
 तिणमिव मुयवि रज्जु दिक्खंकिउ,  
 तिरयण-रयणाहरणाळंकिउ ।  
 जायउ तासु सीसु संजम-धरु,  
 णिवडिदेउ णामु णिह णियसरु ।  
 तासु सीसु एक्को जि संजायउ,  
 णिहणिय-पंचेदिय-सुह-रायउ ।  
 सील-गुणोहर गुण रयणायरु,  
 उवसम-खम-संजम-जल-सायरु ।  
 मोह-महल्ल-भल्ल-तरु-गयवरु,  
 भवियण-कुमुयखंडु-वण-ससहरु ।  
 तवसिरि-रामालिंगिय-विग्गहु<sup>३</sup>,  
 धारिय-पंचायारु-परिग्गहु ।  
 पंच-समिदि-गुत्तिय-तय-रिद्धउ,  
 गुणिगण-वंदिउ भुवण-पसिद्धउ ।  
 मयरद्धय-सर-पसर-णिवारउ,  
 दुद्धर-पंचमहव्वय-धारउ ।  
 सिरि मलधारिदेव पभणिज्जइ,  
 णामें विमलसेणु जाणिज्जइ ।  
 तासु सीसु णिज्जिय-मयणुवभउ,  
 गुरु उवएसैं णिव्वाहिय-तउ ।  
 कलइ धम्मु परिपालइ संजमु,  
 भविय-कमल-रवि-णियणासिय-तमु,  
 सत्य-परिग्गहु-णिहय-कुसीलउ,  
 धम्म-कहाए पहावण-सीलउ ।  
 उवसम-णिलउ चरिय-रयणत्तउ,  
 सोम्मु सुयणु जिण-गुण-अणुरत्तउ ।

देवसेण णामें मुणि गणहरु,  
 विरयउ एउ कच्चु तें मणहरु ।  
 अमुयंतेण किं पि हीणाहिउ,  
 सुत्त-विरुद्धउ काइमि साहिउ ।  
 सयलुवि खमउ देइ-वाएसरि,  
 तिहुयण-जण-वंदिय-परमेसरि ।  
 फुडु ब्रह्मयणु सोहेप्पिणु भल्लउ,  
 तं करंत सुय-देइ-णवल्लउ ।  
 रक्खस-संवच्छर ब्रह्म-दिवसए,  
 सुक्क-चउदसि सावण-मासए ।  
 चरिउ सुलोयणाहि णिप्पणणउ,  
 सद्-अथ-वरणण-संपुणणउ ।

घत्ता—एवि मइं कवित्त-गव्वेण किउ अवरु केण एवि लाहें ।  
 किउ जिणधम्महो अणुरत्तएण मण-अय-परमुच्छ्राहें ॥ १ ॥

आमेर भंडार प्रति सं० १५६०

( दिल्ली पंचायती मंदिरकी खंडित प्रतिसे संशोधित )

१५—पज्जुएण धरियं (प्रद्युम्नचरितं) सिद्ध या सिंहकविकृतं ।

आदिभागः— १

खम-दम-जम-णिलयहो ति-हुअण-तिलय हो  
 वियलिय-कम्म-कलंकहो ।  
 थुइ करमि स-सत्तिए अइणिरुभत्तिए  
 हरिकुल-गयण-ससंकहो ॥

पणवेप्पिणु रोमि-जिणेसरहो भव्वयण-कमल-सरणेसरहो ।  
 भव-तरु-उम्मूलण-वारणहो कुसुम-सर-विणिवारणहो ॥  
 कम्मट्ट-विवक्ख-पहंजणहो मय-धण-पवहंत पहंजणहो ।  
 भुवणत्तय-पयडिय-सासणहो छम्भेयजीव आसासणहो ॥  
 णिरवेक्ख णिमोह णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो ।  
 पर-समय-भणिय-णय-सय-महहो कम-कमल-जुयल-णय-  
 सम-महहो ॥

महसेसिय-दंसिय-सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-करसुप्पहहो ।  
 माणावमाण-समभावणहो अणवरय-णमंसिय-भावणहो  
 भयवंतहो संतहो पावणहो सासय-सुह संपय-पावणहो ॥

घत्ता—

भुवणत्तय-सारहो णिज्जिय-मारहो अवहेरिय-धर दंदहो ।  
 उज्जयंत गिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिहि-  
 कलंकदहो ॥

१. द प्रतौ 'पुत्त' इति पाठः, २. द प्रतौ 'गंडइपुत्त'  
 इति पाठः । ३. अ प्रतौ 'विज्जहु' पाठः ।

हय दुरिय रिणं, तद्दलोग्दणं ।  
 भय-भय-हरणं, शिञ्जिय करणं ।  
 सुहृत्कलकुरहं, वंदिवि शरहं ।  
 पुणु सन्धमई, कलहंसगई ॥  
 वरवरणपया, मणिव धरिवि सया ।  
 पय-पाणसुहा, तोसिय विवुहा ।  
 सचंगिणिया, बहुभंगिणिया ।  
 पुव्वाहरणा, सुविसुद्धमणा ।  
 सुय-वर-वयणी, खय-गुण-खयणी ॥  
 कहयणजणणी, तं दुह-हयणी ।  
 मेहानयणी, सुद-सुय-वरणी ।  
 घर-पुर-ववरे, गामे खयरे ।  
 णिउ विउससहे सुद-भाणवहे ।  
 सरसद सु-सरा, महु होउ वरा ।  
 इम वज्जरह, कुडु म्पिदकई ।  
 हय-चोर भय, णिसि भवियण ।  
 पहरिद्विप, चित्तंतु-हिप ॥

पत्ता : -

जामुत्तउ अर्यइ तातहि वेच्छइ खारिपूक मणहारिणिया ।  
 सियवण्यणपणियय कंजय हथिय य अक्खमुत्तमुयधारिणिया । २।  
 सा चवेइ मिविणं तितक्कउणे, काइंसिद्ध चित्तयहि पियमणे ।  
 तं मुणेषि कइ सिद्ध जंपण, महुमज्जणिय हियउ कंपण ।  
 कय्युत्तुच्चित्तंतु लज्जियो, तक्क-इंद-लक्कण-वियज्जियो ।  
 य वि समामु य विहत्ति कारओ, संधि-मुत्त गंयहं असारओ  
 कय्यु कोइ य कयावि दिट्ठओ, महु णियंउ केणवि णु सिद्धओ ।  
 तेण वहरिण चिंतु अर्यमि,  
 सुजहो वि ताल हत्तु पंजमि ।  
 अंधो वि खयरउ पिच्छो,  
 गेय मुणयि बहो वि हपिच्छो ।  
 तं मुणेषि जानय महासुइ,  
 णिसुणिय सिद्ध जंय सरामइ ।

पत्ता—

धालमु मंभिकल्लहि हियउ जमेरलहि मज्जुवयणु हयदिट्ठु काहि  
 हउं सुविपरवमं बहमि चिंमं, कणु क्किपि तं तुहुं करहि ॥३  
 वा मलधारि देउ मुधि-पुगसु  
 यं पचक्ख भम्मु उवससु इसु ।

माहवचंद अमि सुपसिद्धउ  
 जो सम-दम-जम-खियम-समिद्धउ ।  
 तामु सीसु तव-नेय-दिवायण  
 वय-तव-खियम-मोल-रय-वायण ।  
 तद्ध-लहरि-मंकोलिय परमउ  
 वर-वायण-पवर-पमरिय-वउ  
 जामु भुवण दूरंतर मंकिवि  
 ट्ठिउ पच्छणु मयणु आसंकिवि  
 अभयचंदु णामेण भदरउ  
 सो विहरंतु पत्तु बुह-मारउ ।  
 सत्तिर-खंदण-वण-संच्छणणउ  
 मठ-विहार-जियभवण रवणणउ ।  
 वन्हणु वाहउ णामं पणु  
 अरि-णरण-सेण-दल वटणु ।  
 जो भुंजइ अरिय तय कालहो  
 रण-धोरिय हो सुअहो वल्लालहो ।  
 जामु मिच्छु दुजणु-मण-सलणु  
 खत्तिउ गुहिल उत्तु, जहि भुलणु ।  
 तहि संपत्तु मुणीसर जावहि  
 मय्युलोउ आणंदिउ तावहि ।

पत्ता—

खियणुय अपसंसिधि मुणिहि खमंसिधि जो लोणंदि अटुगंदिणउ  
 यण-वि-य-समिद्धं पुणु कइ सिद्धं सो जइयह आउंदिणउ ॥३॥  
 पुणु पंपाइय-देवण-खंदण,  
 भवियण-जणमण-खयणणंदण ।  
 बुहयण-जणपय-पंकय छणउ,  
 मणइ सिद्धु पणामिउ परमणउ ।  
 विउल गिरिहि मिह हय भवरंदहो,  
 समवसरणु सिरिवीरजिणिद्धो ।  
 खर-वर-तयरामर समवाण,  
 गणहर पुच्छिउ सेणियणण ।  
 मयूरद्वयहो निणज्जिय मारहो,  
 कहहि चरिउ पज्जुणणकुमारहो,  
 तं णिसुणेषि भणइ गणेषर,  
 णिसुणइ सेणिय मगह-खरसर ।

×

×

×

हय पज्जुणकदाणु पयदिण-धम्मण-काम-भोरणण कट्ट-  
 सिद्ध-विरहाणु पदमो संघो परिसमचो ॥ १ ॥



अन्तिम प्रशस्ति—

कृतं कल्मष-वृक्षस्य शास्त्रं शस्त्रं सुधीमता  
सिंहेन सिंहभूतेन पाप-सामज-भंजन ॥१

काम्यस्य काम्यं कमनीयवृत्ते वृत्तं कृतं कीर्तिमतां कवीनां ।  
भव्येन सिंहेन कवित्वभाजां लाभाय तस्यात्र सदैव कीर्तिः २॥

सर्वग्रहो सर्वदंसी भव-वण-दहणो सर्व मारस्स मारो ।  
सव्वाणं भव्याणं सव्यमणहरो सर्वलोयाण सामी ।  
सर्वेति वच्छरुवं पयडण-कुसलो सर्वयाणावलोई,  
सर्वेति भूयाणं करुण-विरयणो सर्वयाणं जयो सो ॥३

जं देवं देव देवं अहस्यसहिदं अंगदाराणिकंतं,  
सुद्धं सिद्धी हरत्वं कलि-मल-रहितं भव्य भावाण सुकके ।  
शाणायां अरुंतं वसुगुण गणिकं अंसहीणं सुगिच्चं ।  
अम्हाणं तं अणिकं पविमल-सहिदं देव संसार-पां ॥४

णादं मोहाणुवंधं सागह-णिलण किं तद्व्यं अण्यं,  
संतं संदेहयारं विवुह-विरमणं विज्ज देदीययाणं ।  
वाए सीण पवित्तं विजयदु भुवणो कव्यु-वित्तं विवित्तं,  
दिज्जं तं जं अणं वियरदि सुद्धं णाणाालाहं विदित्तं ॥५

वक्ता—

जं इह हीणाहिउ काइमि साहिउ अमुणिय सत्थ-रंरंरइं ।  
तं खमउ भडारी विहुवण-सारी वाएसरि सच्चायरइं ॥

दुवई—जा णिरु सत्तभंगि जिण वयण-

विण्णिय वुह विणासणी ।

होउ पलणण मज्झ सुहवरि,  
इयरण-कुमइ-णासणी ॥

पर वाइय-वाया-हरुअ-द्धम्मु,  
सुयकेवल्लि जो पच्चक्खु धम्म ।  
सो जयउ महामुणि अभियचंठु,  
जो भव्य णिवह कइरवहं चंठु ।

मलधारिदेव पय पोम-भसलु,  
जंगम सरसइ सव्वथ कुसलु ।

तह पय-रउ णिरु उयणय अमइयमाणु  
गुज्जर-कुल-णह उज्जोय-भाणु ।

जो उहय पवर वाणी विलासु

एवं विह विउसहो रत्तहणासु ।

तहो पणइणि जिणमइ सुहमसील  
सम्मत्तवंतं णं धम्मसील ।

कइ सीहु ताहि गवभंतरंमि  
संभविउ कमलु जह सु-सरंमि ।  
जण वच्छलु सज्जण-जणिय हरितु  
मुद्धवंतु तिविह वइ-राय यरिणु ।  
उप्पणणु सरोयर तासु थवर  
नामेण सुद्धंकेण गुणहं पवरु ।  
साहारणु लघु वउ तासु जाउ  
धम्मणाणुत्तु अइ दिव्वकाउ ।  
तहु अणु व मह एउ वि सु-सार  
संविणोउ विणु कुसुम सरधाउ ?  
जावच्छहि चचारि वि सुभाय  
पर उचयारिय जण जणियराय ।  
एकहि दिणि गुदणा भणइ वय  
णिसुखहि छप्पय कइ राय दच्छ ।  
भो बाल-नरासइ गुण-समीह  
किं अविणोयइं दिण गमहि सीह ।  
चउविह-पुरिसत्थ-रंसोह-भरिउ  
णिव्वाहि एउ पञ्जुणणचरिउ ।  
कइ सिद्धहो विरयंतहो विणासु  
संपत्तउ कम्मवलेण तासु ।  
महु वयणु करहि किं तुव गुणेण  
रंतेण ह्य छाया समेण ।

वक्ता—

किं तेण पहवइं चउ धणइं जं विहलिय हं ण उ वयरइ  
कच्चेण तेण किं कइयणहो जं ण छइल्लह मणु हरइं ।  
गुणा पुणो पउत्तं पविचप्पं धरम पुत्त मा चित्ते ।  
गुणिको गुणं लहेविणु जइ लोओ दूसणं थवइ ॥१  
को चारइ सवितेसं खुहो मुद्धत्तं पि विरयंतो ।  
सुवणो छुडु मज्भव्यो अमुवंतो णियसहावं वा ॥२  
संभव-इव हुअ विम्वं मुण (मणु ?) याणं सेयमग्गे लगाणं ।  
मा होहि कज्ज सिद्धिलो विरयहि कच्चं तुरंतो वि ॥३  
सुह असुहं ण वियप्पहि चित्तं धीरे वि तेजए वयणा ।  
परकज्जं परकच्चं विहडंतं जेहि उद्धरियं ॥४  
अमिय मयंदं गुरुणं आपुसं लहेवि मत्ति इय कच्चं ।  
णियमइणा णिमवियं खंडउ ससि दिणमणी जाम ॥५  
को लेक्खइ सत्थमं दुज्जोहं दुज्जणं पिअ सुहयरं ।  
सुवणं सुद्ध सहावं कर-मउत्तिं रइवि पच्छामि ॥६

जं किं पि हीय-अहियं विउसा कोहत्तु तं पि इयकव्वे ।  
 चिट्ठत्तयेण इहयं समंत्तु सच्चं पि महु गुरखो ॥७॥  
 यत्थाव्य चतुराननाऽऽज्जनिरत्तं सपघदानत्तकं ।  
 खैर भ्रायति भूमिभागमत्तिलं कुर्वन् यत्तत्तं दण्णात् ।  
 तेनेदं प्रहृत चरित्रमत्तमं सिद्धेन नाम्ना परं,  
 प्रचुम्नस्य सुत्तस्य कर्णं सुवदं धीपूर्वं देवद्विपः ॥

(आमेर प्रति सं० १२७७ से और करुवनगर प्रति  
 सं० १२१० से )

१६ पासणाहचरित ( पारयनाथचरित ) कथि देवदत्त  
 आदिभाग—

षडवीसपि जिणधर दिट्टपरंपर, चंदवि मूढदिट्टि-रहिउ ।  
 वर-चरितअणिदंहे पासजिणिदंहे णिसुण्णिज्जउ वईयरसहिउ ॥

चंदवि जिणलोयालोयजाण,  
 अत्तीद-अणाय-वट्टमाण ।  
 पुणु सिद्ध अणंत महाजसंस ,  
 जो मोचय-महासरि-नायहंसु ।  
 आइरिअ सुयंयुहि-पारु-पत्त ,  
 सिद्धवट्टु कडकसविण्हिय विचित्त ।  
 उज्जाय परम-पवयण पवीण,  
 घट्टु-सीस सुनिग्गल-धम्म-लीण ।  
 पुणु साहु महध्वय-वूड-भार,  
 कावीम-परीसह-तर-कुडार ।  
 पंचवि परमेद्वि महामहल्ल,  
 पंचरि निग्गच्छर-मोह-मल्ल ।  
 पंचमि कइउ दयधम्मु साह,  
 पंचहमि पयाण्डि-लोय-चार ।  
 पंचदमि न इच्छिउ दुविहु संगु,  
 पंचदमि निराउहु किउअण्णु ।  
 पंचहंसि भग्गु-इंदिय-मडप्पु,  
 पंचिद्वि किउ-पिण्डिय-मिय-अण्णु ।  
 पंचरि परिकलिय-अणिस-विग्ग,  
 पंचरि निय-निय-गुण-गण-महिज्ज ।  
 पंचहंसि कलित्त खाण्णं ममग्गु,  
 पंचदमि ययाण्डि मोचक-भग्गु ।

घत्ता—

पघरि गुरुचंदवि मत्तियअहिण्णंदिनि जिणमंदिरे मुण्णि अचउइ ।  
 पयइय-मलोहरे अरार-अंवर मुकुरिपाहो मण्ड गच्छइ ॥१॥

सुकविच-करणे मणे यदग्गहु, निक्सिमइवियप्पइ पुव साहु ।  
 जाणिययं नमई कालवत्तराई, न सुअउ वायरणउ सत्तियराई ।  
 पय-द्वेउ-संघि-विग्गहु-समासु,मणि फुरइ न पुवववि मइ-पयासु  
 छंदालंकार न उग्गियउ, निघंउत्त तवकु दूरज्जियउ ।  
 नवि भरहु स खु यग्गयणियउ,महकइ किउ कत्तु न जाणियउ  
 सामगि न एक वि मग्गु पासि, उत्तरमि केव मइ-धु रामि ।  
 माहिय सट्ट माहुविसयण मणु, इय चित्तवत्तु थिय एवकु खणु  
 कलहंसगमण ससिथिय-वयण , विलुलंत-हार-मयवत्त-नयण ।

+ + +

सिरिपासनाह-चरिणु चउवग्ग-कल्लेभयियज्ज-मण खंदे मुण्णिदेव-  
 यंदरइणु महाकव्वे विजया संघी ॥

अन्तिभागः—

दुवई— देसिय गच्छि सौलगुण गणहर,  
 भविय सरोजनेसरो ।

आस सुयंयु-वासि-अवगाहणु,  
 सिरि सिरिकित्ति मुण्णिवरो ।  
 तहो परम मुण्णिदहो भुवण भाणि,  
 संजाउ सीसु तव-नेय-वासि ।  
 नामेश पसिद्ध देवकित्ति,  
 .....

तहो सीसु तवेण अमेयतेउ,  
 गुणनाउ जासु जगि मउनिदेउ ।

गिवाण-वाणि गंगा-पवाहु,  
 परिचत्त-सगु तवसिरि-सणाहु ।  
 तहो माहयचंदहो पाय-भत्तु,  
 आसोह सुवायर सीस बुत्तु ।  
 निग्गदिय-वय-भर अययण्णदि,  
 निय-नाउ लिहाण्डि जेण चंदि ।  
 इय दुग्गम-कालि कुंकय यल्लेण,  
 होल्लंत धम्मु विर-कयउ जेण ।  
 तं दिग्गिउ वामधचंद मूरि,  
 जं निहिउ कताय-चउवकु-चूरि ।  
 भवियण-जण-नयणण्णदि-नाई,  
 उद्धरियई जं जिण-मंदिराहं ।  
 उहो सीसु जाउ मुण्णि देवचंदु,  
 अणिलंय वाणि कय सुमुअर्यहु ।

रयणत्तय-भृसण गुण-निहाणु,  
 अयणाण-तिमिर-पसरंत-भागु ।  
 गुंदिज्ज नयरि जिण पासहम्मि,  
 निव संतु संतु संजणिय-सम्मि ।  
 अइ अज्ज नियवि पासहो चरित्तु,  
 अरुभत्थि वि भविय जणेहि वुत्तु ।  
 छंदांलंकार-ललिय-पयत्थु,  
 पुण पासचरिउ करि पायठत्थु ।

घत्ता—

तैं तहिं गुण गणहरि गौदिज्ज पुरवरि णिवसंतइ पासहो चरित्तु  
 अक्खर-पय सारहं अत्थवियारहं सुललिय छंदिहि उद्धरिउ ॥१२॥

दुवई—

पास-जिण्णिद-चरिउ जगि निम्मणु फणि-नर-सुरह गिज्जई ।  
 फुडु सग्गापवग्ग-फल पावणु खणु न धिलंबु किज्जणु ॥

अणु दिणु जिण-पय-पोमहि नवियहं,  
 गंय-पमाणु पयासमि भवियहं ।

नाणा छंदि-बंध-नीरंधहिं,  
 पासचरिउ प्यारह संधिहिं ।  
 पउरच्छहिं सुवणणरस धडियहिं,  
 दोळि सयाइं दोळि पड्डियहिं ।  
 चउवग्ग-फलहो पावण-पंधहो,  
 सइं चउवीस होंति फुडु गंधहो ।  
 जो नरु देइ लिहाविउ दाणहं,  
 तहो संपज्जइ पंचहं नाणहं ।  
 जो पुणु वच्चइ सुललिय-भासइं,  
 तहो पुण्येण फलहिं सत्वासइं ।  
 जो पयठत्थु करे वि पउंजइ,  
 सो सग्गापवग्ग-सुहु भुंजइ ।  
 जो आयन्नइ चिरु नियमिय मणु,  
 सो इह लोइ लोइ सिरि भायणु ।  
 दिणि दिणि मंदिरि संगलु गिळइं,  
 नच्चइ कामिणि पड्डु पवज्जइ ।  
 निप्पज्जहिं भुवि सच्चइं सासइं,  
 दुहु-दुभिकु-मारि-भउ नासइं ।  
 अणु वि जं मइं कच्चु करंतइं,

अरण मणहं रसमोहिय चित्तइं ।  
 लवखण-छंदि-रहिउ हीणाहिउ,  
 न मुणंतेण पत्थ किर साहिउ ।  
 तं महुं खमहु विवुइ-चित्तमणि,  
 सत्त भंगि नय-पवर-पयासणि ।  
 जांतइ लोयसिहर-पुरवासहो,  
 कमठ-महामुर-दप्प-विणासहो ।  
 चउ-भासामय-सावण-चंदहो,  
 अइसयवंतहो पास-जिणंदहो ।

घत्ता—

मुह-कुहर निवासिणि भुवणुभामिणि कुपय-कुपय-कुनय-महणि  
 सा देवि सरासइ मायमहासइ देवयंद महुं वसठ मणि ॥१३॥

सिरिपासणाइ-चरिणु चउवग्गफले भविय जणमणाणंदे  
 सुणिदेवयंद-रइणु मएाकत्वे प्यारसियाइमा संधी समत्ता ॥  
 (मेरे पैतृक शास्त्रभंडारसे सं० १५४६ की खंडित प्रतिसे)  
 १७-सयलविहि-विहाणकव्व(सकलविधि-विधान-काव्य)  
 कवि नयनन्दी

आदिभाग :—

धलव-मंगल-रांद-जववट्ट-मुहलंमि सिद्धत्थवि,  
 एरलोय-हरिसु व-संकमिउ-सग्गाउ जिणु ।  
 जयउ पुरिम-कल्याण-कल सुव अह रां सिद्धि-वहु-विमल  
 मुत्तावलिहिं णिमित्तु सुह सुत्तिणु । पियकारिणिह सिप्पिहि  
 मुत्तिउ वित्तु ॥

जिण-सिद्ध-सूरि-पाटय-सवण,  
 पणवेप्पिणु गुरुभत्तिणु ।  
 णोसेस विहाण-णिहाण फुडु,  
 करिम कच्च णिय-सत्तिणु ॥  
 पयासिय-केवलणाण-मओह,  
 एरामर-विदुरविंद-पवोह ।  
 वियंभिय-पाव-तमोह-विणास,  
 एमामि अहं अरहंत विणास ।  
 णिरामय-मोक्ख एहंण-लीण,  
 कयावि ए वडिडय णो परिहीण ।  
 कलंक-विमुक्क जगत्तय-वंद,  
 एमामि सुसिद्ध अणोवम चंद ।  
 अलंब महंत खमासुणि सणण,  
 अणुव-महारयणावलि-पुणण ।

घटा—शरियस्य नामर सापर सुद्वन्द्वः,  
गापर श्रोणापर ग्यापर तिलया ।  
वयि त्रिद्वयस्य कर्णर पुण्य सिर्तर  
वद धिरद्वन्द्वः शुभस्थितया ॥ ४ ॥

× × × ×

श्लोककलंशु श्रकलंशु चउमुष्टो,  
वालियासु सिरिहरि सुन्द सुष्टो ।  
वय विनासु कइवासु धररिसु  
दोगु चासु ईसासु सहरिसो ।  
पुनपयंतु सुमयंतु भरलधो,  
वालमीउ सम्मदं रमित्तलो ।  
इद कइउ भीम इय दिद्विया,  
पुरइ केम महो मइ धरिद्विया ।  
धाठलिग गुण एउ गुण य कारयो,  
कम्मु करउ य समासु तारयो ।  
पप ममिणि किरिया विमेतया,  
संधि पुंडु पापरस्य भागया ।  
देम भाग छररस्यु य तरकयो,  
मुपनि कोप द्यापहि गुररकयो ।  
महाधयन्तु जयधयन्तु य दिद्वयो,  
य उर वय्य वयमिद करिद्वयो ।  
ता य दिद्वु मिदं तु पाप.....

× × × ×

इय त्रिद्वयस्यधरिणे धरन्ध-वाग्-भोरकरस्युपुग्मा-  
रनिणे समुत्तमिमाहुरवृष्ट-व्यररस्यु-विररुष्टु भग्गमि-  
दररररररररररिणु त्रिद्वयस्युनादयनि-व्यरररररर याम वदमो  
रिच्छेयो समलो ॥ ॥ संधि १ ॥

अन्तिम भागः—

इद होतउ धरिणि विगत्य बुद्धि,  
पुंमिजर त्रिद्वयः वि-रररर त्रिद्विदि ।  
जायम रररंय उवदररु विणु,  
दुग्ग सग्गदय्य सग्गिद्वरु विणु ।  
जायउ धरररररररु कंररररु,  
धरररर सुदिद दिद्वयउ-जायु ।  
उमयांतु मग्गु सुद मर पयाउ,  
सादरु खरररर उररररर सउ ।

अप जायिय जिणुमइ उवद तातु ।  
तादं मय सत पमुक्क तातु ।  
वदमउ श्रलहातु मुदि मरय मूद,  
परिया-धरर-धररमाम-पूद ।  
पउयस्य वययानय-वाख-मोट्टु,  
धयमेय महामइ-दलिय,दुदुदु ।  
त्रिद्वयस्यरररर-वयय-मपग्गु,  
दररियाणि य पिदिल त्रियाप त्रिणु ।  
मिररुत्त र विपय यररररररर,  
गंभीर परम विग्गय मइररु ।  
किरिल्लवल-वेरिल विरररु-विणुत्तु,  
भापर सुउ लकरवणु येह-गिणुत्तु ।  
परिया-भार-उदररर-धीर,  
त्रिय-मंध-धरि-वायस्य-धरिद ।  
पउदिय-तिपात्त-यंदय-विमुदि,  
मुय सयभाय-भायस्य अमुदि ।  
वहु-सेय-धर-धर-धर-धर-धर,  
वंदीयण दीणइ दिण्य चाप ।  
भायविदि पयोमिय मूरिदंनु,  
सवलामर-यह-अय धंनु-यंनु ?

घटा—

वहोमोहएहो रमान हो भोयवराल हो कलरविद्वय मद्दोपर  
एहमि महामइ सोहस रिदवल मोहण गुणरादणरिद्विवापर  
गादनु मादनु मोहस मइल्लु,  
एद ययानु मयानु मसतु त्रि एदरुत्त ।  
एदमदि भापर अलटगाए भग,  
एदमदि तादा माग्गयाप विण ।  
एदमदि तादर पर पयउ-दुवेद,  
एदमदि मयलोयम-वाग्गेद ।  
सादु सहु सुविप विप यम मग्गउर,  
वाग्गंउय ताउय विग्गय अउ ।  
साद त्रि रंउदु सग्गयानु मयउग्गु,  
सग्गय-अरिण-मयउग्ग-द्वयउग्गु ।  
विद्विय-रिणम-म-म-म-म-म-म,  
ते त्रिद्वयस्यगिरि दिग्गंमं मग्ग ।  
सो विद्वयःगिरि अग्गउ उररवेण,  
विणउ अग्गु विद्वयःदिणुत्तु ।

लकखणु सन्नाउ समाण साउ,  
 विल्थायउ विहिणा जणिय-राउ ।  
 सो इत्य तत्थ हिंडंतु पत्तु,  
 पुरे विल्लराम लकखणु सु-पत्तु ।  
 मणहरु जिणहरु तणुरुह पधित्तु ।  
 ते णिज्जिउ सिरिहरु परम मित्तु ।  
 विरदा णंदणु सम्माण घणउ,  
 लकखणु हो समउ सो करइ पणउ ।  
 तहे जि सणोहु णिचभरु महंतु,  
 दिण दिण तं अइसय बुद्धि जंतु ।  
 भइवणु पबुद्धणु मेहुणीरु,  
 असराल-वारि-पोसिय-सरीरु ।  
 जं पुयारह भणु मासि फारु,  
 णिवउइ णाहारु उ णिचभरुत्तु सारु ।  
 खर-कय पर्यउ-वग्गंड-पूरु,  
 जं जिट्ठइ णिट्ठरु तवइ सूरु ।  
 सुवणहो सुवणोसहु णाहु जंजि,  
 चिरु वट्ठइ भोकह चित्तु तंजि ।

चत्ता—

जह अहिणव घण वंसणे ताव विहंसणे चंद्र कवउगं हुल्लियइ  
 सिरिहरुसिरिसाहारउरय-परिहारउलकखणुणाणहर सुल्लियइ  
 णवरेक्कदिणमि महाणुभाउ,  
 आभत्थि विहो वत्य-पाउ ।  
 पभण्णउ भो वंधव अइ पधित्तु,  
 विरइव्वउ जिणायत्तहो चरित्तु ।  
 तहो वयणं मई विरइउ सबोज्ज,  
 वण्णियाहो ववसायउ मणोज्ज ।  
 पद्धडिया वंधं पायडत्य,  
 आइहि जाणिज्जसु सुप्पसत्थु ।  
 सयलइ पद्धडिया पुइ हुंति,  
 सत्तरि णवज्जु दस य दुण्णिण संतु ।  
 पुअइ गंधइ सहसइ चयारि,  
 परिमाण मुण्णिहु अक्खर वियारि ।  
 हउ.....रक्खरु खलिय लज्ज,  
 ण वियाणमि हेयाहेय-कज्ज ।  
 पय-बंध णिवंधु ण मुणमि किंपि,  
 मह-विरइउ संपइ चरिउ तंपि ।

× × ×

इग्गं चरित्तु जो को वि भव्ठु,  
 परिपटइ पटावइ गलिय-गव्ठु ।  
 जो लिहइ लिहावइ परसु मुणइ,  
 भावइ दावइ कहइ मुणइ ।  
 जो देइ दिवावइ मुणिवराह,  
 जह तह सम्मइ पंडिय पराह ।  
 सो चक्कवट्टि पउ आइ करिवि,  
 पालिवि सक्कतण लच्छि धरिपि ।  
 अणुहुंजिजि संसारिय-सुहाइ,  
 सच्चइ दिच्चइ पयलिय-दुहाइ ।  
 उच्चहिवाहिल सुहरस-पयासि,  
 पच्छइ गच्छइ णिच्चुइ णिवासि ।

घत्ता—

वारहसय सत्तरयं पंचोत्तरयं विक्कम कालवि इत्तउ ।  
 पढम पक्खि रविवारइ द्दिट्ठ सहारइ पूस मासे सम्मत्तउ ॥३

× × ×

सम्मइ णण णाण णिरु सम्मच्चरिय विसालु ।  
 तं रयणत्तउ सिरिहरहो अहिरवखउ चिरकालु ॥

—आमेर भंडार प्रति, सं० १६११

१४ सुलोचनाचरिउ (सुलोचनाचरित)  
 गणिवसेन

आदिभाग—

वय-पंच-तिकख-णहरो पवयण-माया-सुद्धीह-जीहालो ।  
 चारित्त-केसरड्डो जिणवर-पंचाणणो जयउ ॥१॥  
 तिहुवण-कमल-दिणेलु णिण्णालिय-घण तिमिर-भरु ।  
 पयडिमि चरिउ पसत्थु पणविधि रिसह-जिलेसरु ॥२॥

× × ×

णिवसम्मलहो पुरि णिवसेने,  
 चारुट्ठाणं गुणगणवते ।  
 गणिया देवसेणमुणिवरे,  
 भवियण-कमल-पवोहण-सूरं ।  
 जाणिय धम्माहम्म-विसेने,  
 विमलसेण मलहारिहि सीसे ।  
 मणि चित्तिउ किं सत्यम्भाले,  
 णिण्णलेण णिरु वयणायासे ।  
 जत्थ ण धम्म-जुत्त रंजिय सह,  
 विरइज्जइ पसत्थ-सुं दर-कह ।

एव वि व पाये गुण वि चमकित,  
 पित कद् कण्ठं गिति विमंकित ।  
 त्रिं यन्मोच वास निरि हरिमहि,  
 कालियाम पमुहदि कद् सरिमहि ।  
 वाण-मयूर-हलिय-गोविंददि,  
 चउमुह अजर सयंभु कद्ददि ।  
 पुण्णयंत-भूपाल-वहाणदि,  
 अरंगहिमि पद् मथ त्रियाणदि ।  
 मिहंवाहं कथद् यिसुणेनिय,  
 अग्हारिमह रा रंजद् पुहयण ।  
 हउं तह वि विदुत्तु पयाममि,  
 मथ रहित-अण्णट चायाममि ।

किं करद् विमुत्तु संगहिय पाउ,  
 पुत्तु महु मग्गद् औहण धाउ ।  
 मुत्तु योहरंतु मुद्दर पयादं,  
 लक्ष्मियाहं पद् भाया-मयादं ।  
 पुत्तु गय-विरोह संतवउ अण्णु,  
 पुत्तु होउ वयणु मुद्दर पयाणु ।  
 आणयणहो पुत्तुविहु-भेय-भरिउ,  
 हउं कहमि विराण्णट चाय अरिउ ।  
 यद्दयंदि विचिय मुलोवयादं,  
 विव पुण्हो मययुरकोवयादं ।  
 ययंति हिद्वय मिण्णुत्तियादं,  
 यर-द्विउ-अम्मन-पउमियादं ।

पत्ता—उद् सुरपद् करिमत्तु, सो किं अयण महम्मव ।

उद् हुंदि मुग्गद्, सो किं त्तर म वज्जउ ॥३॥

उद् आयामं विण्णयामुउ गउ,  
 सो किं अयण न जाउ विहंगउ ।  
 उद् सुरपेणुय जययाणदिणिय,  
 हुज्जमद् सो किं अजर गयंदिणिय ।  
 उद् अयण मु फलद मयोहर,  
 सो किं फलउ यादि अयण वि ठः ।  
 उद् पयद्द सुर-अरि मंयर-गाह,  
 सो किं अजर गहि पयद्द यद्द ।  
 उद् कद् पयर्दि रहपद् कयर्दं,  
 मुद्दग्गद् वयणदिमि अउण्णद् ।  
 हउंमि किं वि नियमद् अण्णुण्णे,  
 विण्णु वि मण्णउ कादं वहुण्णे ।  
 उद् वि अ नरगणु पुंउ विगाणमि,  
 अजर निपट्टु यादि परिगाणमि ।  
 एण्णअण्ण कंदि अण्णोहद्द,  
 अरि पुण्ण-आण्णु-मण्णु वीणउ ।  
 मद् फांमय सो वि जउण्णे,  
 मारण विण्णयामहो अण्णुण्णे ।  
 विण्णुण्णे मुद्दर मद् पुण्ण,  
 विण्णु विण्णु विण्णुण्णे वीणउ ।

उ याद्दा-वंधे आनि उत्तु,  
 निरि कुत्तुंदि-गण्णुत्तु विरत्तु ।  
 सं एण्णदि पद्ददिपदिं करेमि,  
 परि किं वि न गूउउ अण्णु देमि ।  
 ते यावि वरि खउ मंथा महुंनि,  
 ते अण्णु देमि वयणदि वि (वि) वंति ।

पत्ता—कहियं जेण असेमु निण्णुण्णउ घोहद्द ।

अजर वि बहुत्तव पाउ, सं जोगणित्तु गुहद् ॥ ६ ॥

× × ×

इय मुनोवयावरिण मद्दाराण्ये मद्दामुगणे दिद्विउण्णु गणिय-  
 देवमेण-परिहण्णु पउमो परिण्णुमो मम्मतो ॥ १ ॥

परमभावाः—

एदउ मुद्दर जिग्गिहो माणणु,  
 जय मुद्दर अण्णयण मावणु ।  
 एदउ वयणं धम्मु पयाणित,  
 पाउउ जेण माणु उण्णणित ।  
 माहु-माणु-अण्णयण धाउउ,  
 एदउ माउउ वय-मुत्तु पाउउ ।  
 दाणु देदु इण्णिय अण्ण-अमणं,  
 वेण्णअण्णु कउउ मुत्तु-अरहं ।  
 एदउ अण्णवद् मद् परिण्णं,  
 अण्णण्णु विण्णु विण्णयणं ।  
 एदउ वय-अण्ण उण्णउ वयं,  
 वंणित्तु विण्णु अण्ण-अण्णं ।  
 वंणित्तु-अण्ण विण्णु-अण्णणित्तु,  
 अण्ण-अण्ण-अण्ण-अण्ण-अण्णणित्तु ।

पत्ता—उद् किं वयणं पद्दु, अण्णणित्तु वीणउण्णो ।  
 विण्णु हुंदि इण्णणु, अण्णणु अण्णणु अण्णणो ॥४॥

× × ×

तह संताणि समायउ मुणिवरु,  
 होद्विल मुत्त<sup>१</sup> णाम बहुगुणधरु ।  
 रावणु न्व बहुसीस-परिग्गहु,  
 सयलायम-मुत्तउ अपरिग्गहु ।  
 गंडविमुत्तु<sup>२</sup> सीसु तहो केरउ,  
 रामभद्दु णामें तव सारउ ।  
 चालुक्किणयवंसहो तिलउल्लउ,  
 होंतउ शरवइ चाणं भल्लउ ।  
 तिणमिअ मुयवि रज्जु दिक्खंकिउ,  
 तिरयण-रयणाहरणाळंकिउ ।  
 जायउ तासु सीसु संजम-धरु,  
 णिवडिदेउ णामु खिह खियसरु ।  
 तासु सीसु एक्को जि संजायउ,  
 णिहणिय-पंचेदिय-सुह-रायउ ।  
 सील-गुणोहर गुण रयणायरु,  
 उवसम-खम-संजम-जल-सायरु ।  
 मोह-महल्ल-मल्ल-तरु-गयवरु,  
 भवियण-कुमुयखंडु-वण-ससहरु ।  
 तत्रसिरि-रामालिणिय-धिग्गहु<sup>३</sup>,  
 धारिय-पंचायारु-परिग्गहु ।  
 पंच-समिदि-गुत्तिय-तय-रिद्धउ,  
 गुणिगण-वंदिउ भुवण-पसिद्धउ ।  
 मयरद्धय-सर-पसर-णिवारउ,  
 दुद्धर-पंचमहव्वय-धारउ ।  
 सिरि मलधारिदेव पभणिज्जह,  
 णामें विमलसेणु जाणिज्जइ ।  
 तासु सीसु णिज्जिय-मयणुअभउ,  
 गुरु उवएसें णिव्वाहिय-तउ ।  
 कलइ धग्गु परिपालइ संजमु,  
 भविय-कमल-रवि-खिण्णासिय-तमु,  
 सत्य-परिग्गहु-णिहय-कुसीलउ,  
 धम्म-कहाणु पहावण-सीलउ ।  
 उवसम णिलउ चरिय-रयणत्तउ,  
 सोम्मु सुयणु जिण-गुण-अणुरत्तउ ।

देवसेणु णामें मुणि गणहरु,  
 विरयउ एउ कच्चु तें मणहरु ।  
 अमुण्तेण किं पि हीणाहिउ,  
 सुत्त-विरुद्धउ काइमि साहिउ ।  
 सयणुवि खमउ देइ-वाणुररि,  
 तिहुयण-जण-वंदिय-परनेसरि ।  
 फुडु बुहयणु सोहपियणु भल्लउ,  
 तं करंत सुय-वेइ-णवल्लउ ।  
 रक्खन-संयच्छर बुह-दिवसणु,  
 सुक्क-चउहसि सावण-मासणु ।  
 चरिउ सुत्तोयणाहि णिण्णणउ,  
 सइ-अत्थ-वणण-संपुचणउ ।

घत्ता—एवि महं कवित्त-भग्गेण किउ अवरु केण एवि लाहें ।  
 किउ जिणधम्महो अणुरत्तगुण मण-कय-परसुच्छाहें ॥ १ ॥

श्रामेर भंडार प्रति सं० १२६०

( दिल्ली पंचायती मंदिरकी खंडित प्रतिसे संशोधित )

१५-पज्जुएणा चरियं (प्रद्युम्नचरितं) सिद्ध या सिंहकविकृतं ।

आदिभागः—

खम-द्रम-जम-णिलयहो ति-हुअण-तिलय हो  
 वियलिय-कम्म-कलंकहो ।  
 थुइ करमि स-सत्तिण्ण अइणिरुभत्तिण्ण  
 हरिकुल-गयण-ससंकहो ॥

पणवेपियणु णेमि-जिणेसरहो भव्वयण-कमल-सरणेसरहो ।  
 भव-तरु-उम्मूलण-चारणहो कुसुम-सर-विणिवारणहो ॥  
 कम्मट्ट-विवक्ख-पहंजणहो मय-धण-पवहंत पहंजणहो ।  
 भुवणत्तय-पयडिय-सासणहो द्धम्भेयजीव आसासणहो ॥  
 शिरवेक्ख णिमोह णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो ।  
 पर-समय-भणिय-णय-सय-महहो कम-कमल-जुयल-णय-  
 सम-महहो ॥

महसेसिय-दंसिय-सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-करसुप्पहहो ।  
 माणावमाण-समभावणहो अणवरय-णमंसिय-भावणहो  
 भयवंतहो संतहो पावणहो सासय-सुह संपय-पावणहो ॥

घत्ता—

भुवणत्तय-सारहो णिज्जिय-मारहो अवेहेरिय-घर दंदहो ।  
 उज्जयंत गिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिहि-  
 कलंकदहो ॥

१. द प्रतौ 'पुत्त' इति पाठः, २. द प्रतौ 'गंडइपुत्त'  
 इति पाठः । ३. अ प्रतौ 'विज्जहु' पाठः ।

हृद्य हुरिय रिन्, तद्दलोपद्वयं ।  
 मय-भय-हरणं, विजिज्य करणं ।  
 मुद्गजलहरदं, धंदिवि अरुदं ।  
 पुणु सप्यमदं, कलहंमगदं ॥  
 परवयःपया, मयि धरिवि सया ।  
 पय-भास्यमुहा, सोमिय रिपुहा ।  
 सत्यंगिणिया, बहुभगिणिया ।  
 पुन्याहरया, मुविमुद्धमया ।  
 मुय-वर-यययी, यय-मुण-यययी ॥  
 कद्वयणजययी, सं हुह-दययी ।  
 मेहाजययी, मुद-मुय-करयी ।  
 पर-पुर-पयरे, गामे ययरे ।  
 यिठ विठसमदे मुद-भयययदे ।  
 मरयद् मु-मरा, मद्दु होठ यरा ।  
 इम वजयद्, पुणु सिद्धकद्दं ।  
 हृद्य-घोर भण, यिमि भवियगण ।  
 पहरिद्वष्टिण, यित्तं-मु-हिय ॥

धया : -

जामुगत अथद् ताहदि वेरपुद्द रारिण्कक मयाहारिविया ।  
 निययय-देवयं वय कंजय हृयि य अरवसमुत्तमुयधारिविया । २।  
 मा यवेद्द गिरियं नि तक्कयो, काङ्गिमिद्ध पितयदि यियमये ।  
 सं मुलेवि वद्द मिद्दु जंयण, मद्दमगभविह दियत कंयण ।  
 कम्पुपुदिपिणं मु सगिजयो, तक्क-मुद्द-सक्कयण-यियगिजयो ।  
 य वि ममायु य विरति करयो, संधि-मुत्त मयहं अगारयो  
 कयु कोद्द य कयावि दिहयो, मद्दु यिपुंद्द वेणवि य विहयो ।

मेव यदण्डि यिणं अथमि,  
 मुज्जहो वि काज हसु संयुमि ।  
 यययो वि काण्ठर रिण्णये,  
 मेव मुययि कदिहो वि हृयियगे ।  
 सं मुलेवि जायय मयागुदे,  
 यियुमि मिद्ध अयद् मरुण्णं ।

धया—

आत्मनु संधिक्कयदि यियत मयोत्तदि मग्गु कयणु हृयदिपु करदि  
 हदं मुदिपययं कदिमि रिण्णये, कम्पु यिदि सं मुद्दं करदि ३३

॥ मयाधारि देव मुदि-पु मुणु  
 यं ययययय ययु जयययु हयु ।

माह्वयचंदं आगि मुपयिदुत  
 जो यम-दम-जम-वियम ममिदुत ।  
 तामु सीसु तय-नेय-दियायय  
 यय-तय-यिययम-मोल-यययायण ।  
 तद्ध-लहरि-मंकोलिय परमठ  
 पर-याययय-पर-यययिय-यठ  
 जामु भुरय दूरंतक यंकिवि  
 ठिठ पय्यणु मययु आनंकिवि  
 अमययचंदु यामेणु भडारउ  
 सो विहरंठु पत्तु युद मारउ ।  
 मस्मिर-यंदय-यय-मंय्ययणठ  
 मठ-यिहार-यियमयय रवययउ ।  
 यमहृण योडउ यामं परणु  
 अरि-यययय-मंय-दल ययणु ।  
 जो मुंजद् अरिय यय कान्हो  
 यय-योारिय हो मुययो वल्लालहो ।  
 जामु मियु हुज्जय-मग-मरुत्रणु  
 यतिठ मुदिहल ठणु अदि भुक्कणु ।  
 कदि संयणु मुयंमरु जायदि  
 मयुजोठ आयंदिठ तायदि ।

धया—

यिययुण अयसंमियि मुविदि यमंमियि जो कोपुदि कदुमंदिपयठ  
 यय-यिह-य-ममिदं पुणु कद्द मिदं मो जह्वर यारंयिययय ३४ ॥  
 पुणु पंपादय-देवयणु-यंदय,  
 मयियय-जयमण-यययययंदयु ।  
 पुदयय-जययय-यंयण यययठ,  
 मयद्द मिदु पयमित परमययठ ।  
 यिडल गिरिदि मिद हय मयरंदयो,  
 मयययययु यिरियोरमिदियदयो ।  
 यर-यय-ययययय मयययणु,  
 मययय पुण्णय सोणियययणु ।  
 मयययययो यियिजिय मयायो,  
 कदि ययिठ यज्जुयययुमयायो,  
 सं यियुयेवि मयद्द मदेमर,  
 यियुयद्द सोणिय मयय-ययययठ ।

× × ×

हृद्य ययययययय यययय यययय-ययय-यययययय यद्द-  
 मिदु-ययययय यययो संधिं यिययययो ३५ ॥



श्रान्तिम प्रशस्ति—

कृतं कल्मष-वृत्तस्य शस्त्रं शस्त्रं सुधीमता  
सिंहेन सिंहभूतेन पाप-सामज-भंजन ॥१

कायस्य कायं कर्मनीयदृशो वृत्तं कृतं कीर्तिततां कर्माणां ।  
भव्येन सिंहेन कविःवभाजां लाभाय तस्यात्र सर्वैव कीर्तिः २॥

सच्चरुहु सच्चरुसी भव-वण-द्रुहणो यच्च सारस्य सारो ।  
सच्चार्यं भव्ययाणं सचणमणहरो सच्चलोयाणं सामी ।  
सच्चेमि चन्द्ररुचं पयदण-दुसालो मच्चयाणागणोई,  
सच्चेमि भूययाणं कण्ठ-विरयणो सच्चरालं जघ्रो लो ॥३  
जं देवं देव देवं अद्वययसहिदं धंगदाराणितं,  
सुहं सिद्धी हरणं कति-मल-रहितं भव्य भावाणु सुहो ।  
याणायारं अणंतं वसुगुणं नणिणं अंसनीयां सुखिण्यं ।  
अन्हाणं तं अणिदं पयिमल-मनिदं देउ संसार-वारं ॥४  
खादं मोहाणुयंथं सान्द-खिलाणु किं तथयं प्राणाथं,  
संतं संदेहयारं धिबुह-विरमणं गिज्जं देहीयद्याणं ।  
वाण सीण पयित्तं विजयदु भुवरो कच्चु-विजं विचित्तं,  
दिज्जं तं जं अणं विवरदि सुदरं खाणातादं विदितं ॥५

वृत्ता—

जं इह हीणाहिउ काइमि साहिउ अमुणिय सत्य-परंपरई ।  
तं समउ भडारी तितुवण-तारी चाणसरि सच्चावरई ॥

दुवई—जा गिर सत्तभंगि जिण वयण-

विणियगय दुह विणासणी ।  
होउ पसगण सत्तक मुहयरि,  
इयरण-कुमइ-यासणी ॥  
पर वाइय-याया-दुसल-उम्मु,  
सुयकेवलि जो पच्चकमु धम्मु ।  
सो जयउ नहामुणि अभियचंदु,  
जो भव्य खिवह कइरवहं चंदु ।  
मलधारिदेव पय पोम-भसणु,  
जंगम सरसइ सच्चथ कुसलु ।  
तह पय-रउ गिरु उरणय अमइयमाणु  
गुज्जर-कुल-णह उज्जीय-भाणु ।  
जो उहय पवर चाणी विलासु  
एवं विह विउसहो रलहणासु ।  
तहो पणइणि जिणमइ सुहमसील  
सम्मत्तवंत णं धम्मसील ।

कइ सीहु साहि शरभंरमि  
संभविउ कगणु जइ सुह-सरंनि ।  
एण पच्चणु सच्चर-जंथय इमि  
सुहणं गिणिय यद-राय सगिणु ।  
उपयणु सहायकं नामु एवर  
नामिणु सुहंकेसु सुहणं पयम ।  
साधारणं कणु वउ ताणु जाउ  
धग्गाणुरणु अइ दिव्यताद ।  
तहु थाणु व मउ एउ वि सुन्नाह  
हंविणोउ विणु सुनुन सरभाण ?  
जायणइहि पचारि वि सुभाव  
पर उवयारिय जणु जणियराय ।  
एकहि दिमि सुगणा भकाइ यथ  
गिसुणहि इणय कइ तय दच्छ ।  
भो वान-सरासइ गुण-सर्माइ  
किं जणिकोयदं दिणु गमाई सीह ।  
चउविह-गुरिमय-रंमोह-भरिउ  
गिध्याहि एउ पच्चुणुचरिउ ।  
कइ सिद्धो विरयंको विणासु  
संचउ कम्मवसेण तासु ।  
महु वयणु करहि किं तुय गुरोण  
हंतेण ह्य द्याया समेण ।

वृत्ता—

किं तेण पक्कंयदं यउ धग्गइ जं विहलिय हं ए उ वयरइ  
कच्चेण तेण किं कइअणहो जं रा इइणह मणु हरई ।  
गुणा पुणो पउत्तं पयियणं धरन पुत्त मा चित्ते ।  
गुणियो गुणं लहेविणु जइ लोचो दुसणं थवइ ॥१  
को वारइ सवितेसं सुदो सुएत्तणं पि विरयंतो ।  
सुवणो सुह मवन्थो अमुवतो खियसहावं वा ॥२  
संभव-इय हुअ विणवं मुण (मणु ?) याणं सेवमणे लगाणं ।  
मा होहि कज्ज सिडिलो विरयहि कच्चं तुरंतो वि ॥३  
सुह असुहं ए विचप्पहि चित्तं धीरे वि तेजणु वयणा ।  
परकज्जं परकच्चं विहउतं जेहि उद्धरियं ॥४  
अभिय सयंदं गुरुणं आणुसं लहेवि भक्ति इय कच्चं ।  
खियमइणु गिण्मवियं शंदउ सलि दिणमणी जाम ॥५  
को लेक्खइ सत्यमं दुज्जीहं दुज्जाणं पिअ सुहयरं ।  
सुवणं सुह सहावं कर-सउलि रइवि पच्छामि ॥६

जं किं वि होष-क्षतिर्यं विउमा मोहसु सं वि हृदकरये ।  
 धिदृष्टकरोरु रङ्गं गमन्तु गमन्ति मनु सुख्यो ॥७॥  
 यथाव्य चतुरात्मनाऽऽजनिरतं तस्य षडानुशकं ।  
 स्वैर भाषयति मृनिभागमनिरतं कुरुन् वलवं घणाय ।  
 तेनेदं प्रकृत धरिप्रसन्नममं मिद्धेन नाम्ना परं,  
 प्रशुन्नस्य सुनस्य कलं सुखदं श्रीपूरं देवद्विपः ॥

(आमेर प्रति सं० १५७० से श्रीर फरंगनगर प्रति  
 सं० १५१० मे )

१६ पासणाहचारित ( पारसनाथचरित ) कवि देवदत्त  
 आदिभाग—:

षडपीमवि त्रिषुषर दिदृष्टपरंवर, वंदयि मूढदिदृष्ट-रहित ।  
 पर-भरितउत्तमिदंशो पामजिद्विदंशो विमुण्डितउठ वदंवरसहित ॥

पदवि जिणलोपाशोयजण,  
 अत्तीद-धरामय-वट्टमाण ।  
 पुणु मिद्व अत्तं महाजमीम ,  
 जो मोरस्य-महापरि-रायदंणु ।  
 आदरिष सुखंभुदि-राज-पण ,  
 विद्वरहु कडरसविणिद्विप विषण ।  
 उरम्याय परम-वययण पवीण,  
 कट्ट-सीम सुनिमज-धम्म-जीण ।  
 पुणु माहु मरुत्तप-युद्ध-भार,  
 पावीण-पवीणह-जण-कुटार ।  
 पंचरि परमेदुट्टि महामदण्ल,  
 पंचरि निम्मण्ण-मोद्ध-मरुत्त ।  
 पंचरि वरिद्व द्दण्णम्मु मार,  
 पंचरिणि दणामिउ-मोय-पाण ।  
 पंचरिणि न हृत्तियुठ कुविदु संणु,  
 पंचरिणि निगाडहु विउधण्णु ।  
 पंचरिणि भण्ण-धुंदिद-मण्णु,  
 पंचरिि विउ-विउविमु-विमय-जण्णु ।  
 पंचरिि पविउरिउ-धण्णम-नीणत्त,  
 पंचरि विउ-विउ-मण्ण-जण-मरिणत्त ।  
 पंचरिणि वरिउठ मण्णदं मण्णु,  
 पंचरिणि दण्णविउठ मोरस्य-जण्णु ।

पद्या—

पंचरि सुखंभुद्वि विद्विद्विद्वि विममंदिरे सुदि वरुद्व ।  
 पंचरिउ मण्णोरे वरुद्व-उरंवे सुखंभुद्वो मण्णु मण्णु ॥१॥

सुद्विउ-वरुद्वो मणो वद्वगाहु, निद्विममद्विपय्यद्व मण्णु माहु ।  
 जाणिययं नमदं कान्तपण्णदं, न सुमउठ वापराण्ड मरिपण्णदं ।  
 पय-धेउ-मंवि-विमगाहु-ममासु, मरिउ वरुद्व न पृक्कवि मद्व-वपासु  
 पुंदाळंफाण न सुदिमयउ, निमंउदु मरुहु दूरमिमयउ ।  
 नवि भरहु म सु षण्णवद्विपउ, महकड्व व्रिउ कानु न जाणियउ  
 माममिउ न पृक्क वि मण्णु पामि, उतरमि वेण मरुंभु रावि ।  
 माद्विय मद्व माहुविमण्णय मण्णु, इय चिणत्तंणु विउठ पृक्क मण्णु  
 कलहंममण्णय मविद्विध-वययण , विगुलंत-हार-वययण-वययण ।

+ + +

विरिदायनाह-परिण् षडययणकलेभरियजण-मण्णु मंदि सुविद्वेय-  
 मंदरदण्ण महाकण्णे विजया मंधी ॥

अन्तिभागः—

दुषदं— देविय मणिउ, मोलणुण मण्णद्व,  
 भाविय मरोजनेमरो ।  
 द्दाम सुदंभु-रावि धरगाहणु,  
 मिरि मिरिक्किउत्ति सुणियरो ।  
 ततो परम सुधिद्वो सुपय मणि,  
 संजाउ मीसु मय-नेउ-भामि ।  
 नामेण पणिउठ देवविउत्ति,  
 ..... ।  
 ततो मीसु मथेण धमेरंउठ,  
 सुणगाउ जामु जणि मउनिद्वेउ ।  
 विण्णाय-वावि संण-पण्णु,  
 परिचण-मणु मरविउ-मण्णु ।  
 ततो माह्वयचंद्वो पाव-मण्णु,  
 धामोठ सुपावर मीण पुणु ।  
 निमःविउ-वय-भर अभायण्णुदि,  
 निव-गाउ विहाविउ वेण पंरि ।  
 इण हुमम-मण्णवि वृ-कण वधेण,  
 होलपंण धण्णु विण-कणउ वेण ।  
 ने दिविणउ वामवचंद मृण्णु,  
 जे निरिउ वगाव-वउरु-भृण्णु ।  
 भाविणउ उय मण्णवोदि-वण्णु,  
 उउरिपण्णु जे विण्ण-मंरिण्णु ।  
 पदो मीसु जण मृण्णु देवपंणु,  
 वरिउरय वरिउठ वय सुमुद्वयंणु ।

रव्यगात्तय-भुक्तणु गुण-जिहाराणु,  
 अरणाणाणु-तिमिर-पस्रंत-भाणु ।  
 गुं दिज्ज नयरि जिण पासहम्मि,  
 निव संतु संतु संजणिय-सम्मि ।  
 अह अज्ज नियधि पासहो चरित्तु,  
 अरुभयि वि मविय जणेहि युत्तु ।  
 छंदालंकार-ललिय-पयत्थु,  
 पुणु पासचरिउ करि पायडत्थु ।

घत्ता—

तं तर्हि गुण गणहरि गौंदिज पुरवरि शिवसंतह पासहो चरिउ  
 अक्खर-पय सारहं अत्यवियारहं सुललिय छंदहि उक्खरिउ ॥१२॥

हुचहं—

पास-जिहिउ-चरिउ जणि निम्मणु फणि-नर-सुरह गिज्जहं ।  
 फुडु सग्गापवग्ग-फल पावणु सणु न विलंयु किज्जण ॥

अणु दिणु जिण-पय-पोमहि नवियहं,  
 गंध-पमाणु पयासमि भवियहं ।

नाणा छंद-बंध-नीरंघहि,  
 पासचरिउ प्यारहं तंधिहि ।  
 पउरच्छहि सुवणणरस घटियहि,  
 दोसि सयाहं दोसि पद्धडियहि ।  
 चउवग्ग-फलहो पावण-बंधहो,  
 सहं चउवीस होति फुडु गंधहो ।  
 जो नरु देह लिहाविउ दाणहं,  
 तहो संपज्जहं पंचहं नाणहं ।  
 जो पुणु वच्चहं सुललिय-भासहं,  
 तहो पुणणेण फलहिं सच्चासहं ।  
 जो पयडत्थु करे वि पउंजहं,  
 सो सग्गापवग्ग-सुहु भुंजहं ।  
 जो आयन्नहं चिरु नियमिय मणु,  
 सो इह लोह लोह तिरि भायणु ।  
 दिणि दिणि मंदिरि मंगलु गिज्जहं,

नच्चहं कामिणि पडडु पवज्जहं ।  
 निप्पज्जहिं भुवि सच्चहं सासहं,  
 दुहु-दुभिकखु-मारि-भउ नासहं ।  
 अरणु वि जं महं कच्चु करंतहं,

अणु मणुहं रत्तमोदिय चित्तहं ।  
 लाम्यण-इंद-रहिउ हीणाहिउ,  
 न सुगंतेण पय किर साहिउ ।  
 तं महं पमहु यियुह-चिणामणि,  
 सत्त भंगि नय-पवर-पयासणि ।  
 जांतहं लोयनिपुर-पुरवासहो,  
 फमठ-महामुर-दण-चिणालहो ।  
 अट-भासामय-मायण-चंदहो,  
 अहसपचंगहो पाव-जिणहो ।

घत्ता—

सुह-रुहर निवासिणि भुपसुद्धभाविसि कुपय-कुण्य-कुलय-महाणि  
 सा देवि सरासह मायमहासह देवयंद महं यत्त मणि ॥१३॥

विदिपासणाह-चरिणु अउवग्गफले भविय जणमणायवे  
 सुणिदेवयंद-रहणु महाकवे प्यारसियाहमा संधी त्तमत्ता ॥  
 (भेरे पैतृक शास्त्रभंडारते सं० १२४६ की संदित प्रतिले)

१७--सयलविधि-विद्याणकठव(सकलविधि-विधान-काव्य)  
 कवि तयनन्दी

आदिभाग :-

धलय-मंगल-नांद-जयण्ट-सुहलंमि सिद्धत्ववि,  
 सरलोय-हरिसु य-संकमिउ-सग्गाठ जिणु ।  
 जयउ पुरिम-कल्याण-कल सुव अह सां सिद्धि-वह-विमल  
 सुत्तावलिहिं गिमित्तु सुह सुत्तिणु । विवकारिणिह सिप्पिहि  
 सुत्तिउ खित्तु ॥

जिण-सिद्ध-सूरि-पाउय-सवण,  
 पणवेप्पिणु गुरुभत्तिणु ।  
 खोसेस विहाण-विहाण फुडु,  
 करिम कच्च शिव-सत्तिणु ॥  
 पयासिय-कैवलणाण-मथोह,  
 सरामर-विंदरविंद-पवाह ।  
 विचंभिय-पाव-त्तमोह-दिणास,  
 यमामि अहं अरहंत विणास ।  
 गिरामय-मोक्ख राहंगाण-लीण,  
 कयावि ण वडिडय णो परिहीण ।  
 कलंक-विमुक्क जगत्तय-वंद,  
 यमामि सुसिद्ध अणोवम चंद ।  
 अलंघ महंत खमासुणि सरण,  
 अयागव-महारयणावलि-पुरण ।

प्राप्तिय-संज्ञम-श्रेय-सुख-द,  
 लभामि नन्देन गार्ह-र-समुद्र ।  
 महान्प्रय-श्रेय-श्रेय-शिर-शरक,  
 विप्रित्त-सज्ज-खिमु-भाण-शरक ।  
 दिवामु पञ्चानिप-वाह-गार्ह-द,  
 यामामि उवदमय चार-सर्ह-द ।  
 पमाप-शिवचर-शिवारण-द-शरक,  
 समीहिय-निदि-पुरधि-कदरक ।  
 परीमह-गुणिक-शिवद-शरीर,  
 यामामि असेमयि संज्ञम-शरीर ।

पणा—इय परम वंच परमेष्टि वहु पदाविय पुण्य पयामदि ।  
 शिपोर-विम-विमहर-जलप-यि.....॥ १ ॥

शरमिय सुनपर-गुण-गण-मलरगु,  
 मुक्तार्थकरिठ महामहस्यु ।  
 सं वसुह-विज्ञानिदि-दिवय-शाय,  
 अरथीहायती रिमय-शार ।  
 पाण्यरम-पचण-पददिय-निरोदु,  
 यिगार-विज्ञाप-निमेम-मोदु ।  
 शदि सुब-द-द-इय विप्र-दार,  
 कथरी-चतयगण-पार-पार ।  
 तदि परम-कंठाहरणु देद,  
 शय-संज्ञम-शरीर ।  
 विदुपय-शारावपु-मुकय-मायु,  
 परमेवर शयी जल-विज्ञायु ।  
 पम्मारवंम-गणयेश-पेदु,  
 जयसिर-निगवाम शूह-शरिदु ।  
 शरी शोमिगामु उचुर गरिरदु,  
 मयुपय-मुयन-श्रेय-जगिरदु ।  
 शेरुनाक-क-किचि शानिपिदे पामु,  
 मुनिपिउ कदु दिदर यामु ।  
 महिमादिनी दे मरक य मदिदु,  
 शाराविद किणयु मे गरिदु ।

पणा—  
 तदि अणिय मूदि हरिभिमु मुनि निजमामर-पु-शोमिगु ।  
 शरुमि-शरिनिदि-जपरदक, शरुमि-कदु-मल-शरीर ॥ १ ॥  
 शमोवि निवदुदु शिवनिदि केण,  
 मुलोमुमदिदि पमम-अपेय ।

पठणु पठरिय विण-द्विहामु,  
 मुशेमज-विमज-शानि-शिरामु ।  
 गुमं कुणु किचि कवित्तु मदिदु,  
 यमामि य सं कथ्या इद दिदु ।  
 विगं भणियं य कइणु मुयेमि,  
 अयापमयो भायु कादं करेमि ।  
 परं महु अट्ट गुणादु मनेरि,  
 य अद पमिददि मिददि तेरि ।  
 य देशदि दाखर-विदि पण,  
 अमेय-गुणापर-अपुद-वण ।  
 गुणरुदु रि अणिय पाविउ जेण,  
 पईपइ सो शययदी तेण ।  
 मय पुणु शंमुणि उरमय तामु,  
 पयामठ मे गुणजेणु विणायु ।

पणा—पर-विद्या गिरले मलठणु मयवट शशिय द्विय ।  
 कजिबंठल अट्ट रि गुणगणय महमुणवि कमु मंदिप ॥१॥  
 + + +

मणु जयकपकडु वामोउ यामु,  
 वररुदु यामणु कवि कानियामु ।  
 फोउठणु वाणु मयूररुदु,  
 जिणसेणु निपाणम कभममठ ।  
 यारायणु वरणाउ वि रिपुदु,  
 निरि हरिमु शयसेहर गुणरुदु ।  
 जमरंशु जणु जयरामणामु,  
 जयदेउ जयनपाणर-कामु ।  
 पानिणउ पाणिणित पचरसेणु,  
 पायंजलि विणायु धीरसेणु ।  
 निरिनिहन्दि गुणमिभरदु,  
 गुणमह मुणियर नमतभरदु,  
 अकं कु विममकदुवशिदि,  
 फानरुदु कदुदु गोयिन्दु शंदि ।  
 भाणुदु भारदु भाशरि मरुणु,  
 अउमुदु मयंशु पद पुणरंशु ।

पणा—  
 निरिपंदु पठरंशु दि विपुदु गुण मणु तदि मरुदर ।  
 निरिदुमार कणर-कुमार-विपाणिनिदक ॥१॥

इमे अगण जेते कहते ललामा,  
 गुणालंकिया कित्ति-अंताहिरामा ।  
 ए चार्थं भद्रत्तं कष्टत्तं विदत्तं,  
 गुणं केवलं मज्जक्यं तं सद्यत्तं ।  
 जिगिदस्स शिगगंध-पंधंमि लीणो,  
 पयासेमि चार्थं कष्टं गंधहीणो ।  
 करामो भद्रत्तं जेणं सुप्पविद्धं,  
 पयासेह् गान्णं मत्तरे गिमिद्धं ।  
 समुप्पवियया मज्जकणो कष्टवसत्तो,  
 लज्जकणं शिगगुणत्ते ए कित्ती ।  
 अलंकार-सकलवसणा देसि छंदं,  
 ए लपसेमि सद्यत्तरं अथासंदं ।  
 परं लपस्यणो रम्म भाइं कथिट्ठो,  
 अलंकारयंतो वि सत्थं हइट्ठो ।  
 हुठ देसिट्ठ सो वि देसंतराले,  
 पइट्ठो ए पेसे कहते चित्ताले ।  
 शिसंबंध सुद्धे र सु बुद्धीह पण्यो,  
 ए जाणामि वाया-विलासो पवय्यो ।  
 ए पुज्जेमि कष्टस्स गामं पि सुत्तं,  
 हसेऊए ता सूरिणा तेण उत्तं ।  
 अहं तुज्ज सज्जता कविची पहाटं,  
 पयासेमि कष्टं भुखंगप्पयाटं ।

घत्ता—

जो चारु चाठ चार हडि गुण सु कहत्तणु ए पयासइ ।  
 खर-जम्म रयणु दुल्लहु लहवि भव सायरि सो ग्यासइ ॥७॥

इय जंपिठ मुखि हूरसिचु जाम,  
 पडिजंपइ मुखि रायरांदि ताम ।  
 चिरु कह सरसइ करणावयंसु,  
 सुकइत्त-सरोवर-रायहंसु ।

× × × ×

पचक्ख-परोक्ख-पमाण-खीर,  
 राय-तरल-तरंगावलि-नाहीर ।  
 वर-सत्तभंगि-कल्लोल-माल,  
 जिण-सांसणि-सरि-शिम्ल-सुसाल ।  
 पंडिय-चूडामणि विबुह-चंडु,  
 माणिक्यपांदि उप्पणु कंडु ।  
 दिडवुद्धि कहिण कंठय-पयंडु,  
 तहो तुहुं हुठ सोसु गुणत्थ डंडु ।

तटभूट-विमल-सम्भत्त-सदणु,  
 सयल-विहि-शिवागु सुकळ्य कमणु ।  
 घवणय-मिच्छुच-तमोह-दोणु,  
 धम्मण-काम-कमणोप-कोणु ।  
 संकाइय-मलसंगम-पिराणु,  
 दय-रम्म-रमा-रामाहिराणु ।  
 सायय-यव-हंसावलि-वियाणु,  
 परमेद्धि-पंच-परिमल-पयाणु ।  
 केचलि-मिरि-कानिनी कम-विलाणु,  
 सग्गावत्तण-सुद्ध-नय-पयाणु ।  
 मुखि-शाण कट्ट-मयसंद-परिणु,  
 सुहयण-महुय-नण-दिगण-हरिणु ।

घत्ता—

इय यणु पनणु कोमल करर, जो लंकार म कयवाहं ।  
 सो सिद्धि पुरंधिह मणु हरइ, कवणु गहणु सुरकण्णहं ॥११॥

× × × ×

मुखिपर-कण्णदि-संखिषट्ठे पमिद्धे,  
 सयल-विहि-विहाणे पण्य कण्णे सुभण्णे ।  
 सुहट्ट सुकट्ट चाइं पण्यणुल्लासज्जुत्ते,  
 लत्तिय-पयट्ट उत्तो चाइमो संधि युत्तो ॥११॥

× × × ×

मिरी भोयणव धाराउदेहि, कव्य विणोणं अरुइ ।

मुखि भणइ एम हरिसिधु तहो, रायरांदि पण सुपयासइ ॥११॥

पारंमि वि कच्चु ममंतण्य,  
 पुर पट्टण पमुह कमंतण्य ।  
 रायरांदि मुखिट्टु मुखोहि रम्म,  
 वत्थोसु शियच्छिट्ट लच्छि-धम्म ।  
 जहि वच्छराउ पुणु पुइ वत्थु,  
 हुंतउ पुह ईसर सुदवत्थु ।  
 होणप्पिणु वत्थए हरि मण्ड,  
 मंडलित विक्कमाइच्चु जाउ ।  
 भुवणोक्कमणु रायहो पियार,  
 गुणवंतउ गउरि-गुण-पियारु ॥  
 अंवाइय कंचीपुर विरत्त,  
 जहं भमहं भव्थु भत्तिहि पसत्त ।  
 जहि वल्लहराए वल्लहेण,  
 काराविउ कित्तणु दुल्लहेण ।

त्रिय पक्षिमार्त्तकेतु गणपुत्राय,  
 यं वेद्य विषंमिड सुर-नियमाय ।  
 अदि रामस्युदि गुण-मसि-विहाय,  
 जयकित्ति महाकित्ति वि पहाय ।  
 इव तिसिय वि परिमण-मई-मईद,  
 मियदुत्त-विहवि-मोडप-गईद ।

अन्तिमभागः—

मुगिवा-मण्युंदि-मगिलबदे पमिदे,  
 मयन्विदि-विहाये दाय कये सुमण्ये ।  
 अदि-ममुद-मुत्त-युक्तु-मागहापाय,  
 पमणित कुनु संधि चट्टायवं मसोति ॥  
 मंधि २८ ॥ (प्रति धामेर मंडार, मं० १३८०)

१८ अमुगुयय-रयराग-पईय ( अमुगुत-रान-मदीर )

—रवि सधमण, रचना काळ सं० १३१३

आदिभागः—

यत्त-स त्रिये मिदे आपरिण पाठय प पत्रइदे ।  
 अमुगुय-मण्य-मईयं मारुं सुरये विमामेइ ॥

× × × ×

इह जउंया-गइ-उत्तर-नइय,  
 मह गुयरि रायवाइय पमण्य ।  
 धय-कय-कंचय-नय-मरि-ममिद,  
 दागुणयय इर-अय-रिदि-मिदि ।  
 किमोर-कम्म-विमिय रयणय,  
 मइय-मपोरय-विगिद-यणय ।  
 पंदुर-यापारुय-ममेय,  
 अदि सइदि विरंतर-मिरि-मिडेय ।  
 अटइइ अरधराम, जण्य,  
 मरगण-मण-कोलाइय-ममण्य ।  
 अदि विरये विरये पण कुण्यमंड,  
 अदि कमिअदि विरर विमंदि-मंड ।  
 लिरिचय-दाय-मंमाय-मोह,  
 अदि कमदि महायय मुद-कोह ।  
 अरहा-पण-मिरि-मुद-धोय,  
 विदरदि पमण्य अरधयय धोय ।  
 अदि कययपूद-मंडय-ममेय,  
 मिगाय-माय-अय-मिरयमेय ।  
 मोहय-जगा-अय-धम्म-मीय,  
 आदिदि-दिप-मइ-अय-अइय-खोय ।  
 अदि अरय-अइरिद-अरय-मण्य,  
 याप-अमेदि मुगिय विमाय ।  
 पिययय विदुयय अदिप-मण्य,  
 कूरिग-अदरिअ-अद-अण्य ।  
 अर-अमुगुयय-मोरे-मइर,  
 अदि सइदि मंय-मोरे-अइर-अइर ।

पत्ता —  
 मिवपुर मण्युं विदुयगहो यं इयरायय सोहय ।  
 दरमिय अरवीरे गणहर, अदिनाल हो पदिबोहय ॥१॥

रामस्युदि मणित मणिरुठ,  
 अदि त्रियं एमंमि वि मिरिउठ ।  
 तदि त्रिय वि मर्यादिणंदिद्या,  
 गुरिया महारामस्युदिया ।  
 यालइंद-मोमिण जंयियं,  
 मयन्न-विहंविहायं मयण्यियं ।  
 अइ दिसाइं पारमित पुया,  
 कोय-विदुये-चित्त-मुमणो ।  
 न मुयेवि गुयस्युदि बोधयय,  
 मण्यु अदि-अययय बोधयय ।  
 रइय कये इयमतिण्युअरा,  
 बानु मणि छेहायये पया ।  
 अइइ ठामु मो अरहरिदय,  
 अर अराहदेसे पमिदय ।  
 अदि-अदि-अरय-अयोइरे,  
 याठगामि अदि अदिअ-अइरे ।  
 अदि त्रिदि-द-द-अय-अराययय,  
 अं-द-मूय अदे जं अदिअया ।  
 तदि त्रियागणुयय अअरेदि,  
 यीरमेण-अदिगमेण देदि ।  
 याम अयल अयययय मय,  
 महाभंयुं निपयमिदं अ मिव-अरा ।  
 रिहअय मययइं मुलाविवा,  
 मिरि-अमणि-दगायय दाविवा ।  
 गुंअरोअ अदि अइ अयअइ,  
 इअ मयय अययं वि अंअइ ।

पत्ता—मयमि-मण्य-अइर-अइर । अदि अदि अदि अदि ।  
 अदि अदि अदि अदि अदि अदि अदि अदि ।

जहिं दविष्णंगण-बहि-पेम-छिता,  
 लावण्य-पुण्य-धन-लोल-चित्त ।  
 जहिं चरत चाड कुसुमाल भेड,  
 दुज्जण-सखुद-खल-पिसुण-एठ ।  
 ण विर्यंभहि कहिमि ण धण-विहीण,  
 दविष्णुद णिहित णर धम्म-लोण ।  
 पेम्माणुरत्त परिगलिय-गण्व,  
 जहिं वसहिं वियक्खणं मणुव सख ।  
 वावार सख जहिं सहहिं शिच्च,  
 कण्यंवर-भूसिय-रायमिच्च ।  
 तंजोल-रंग-रंगिय-धरणा,  
 जहिं रेहहिं सारुण-सयल-मगा ।  
 तहिं णरवह आहवमल्ल-एठ,  
 दारिद-समुत्तारण-स-सेठ ।

घत्ता—

उव्वासिय-परमंडलु दंसिय मंडलु कास-कुसुम-संकास-जसु ।  
 बल-कुल-बल-सामर्थ्ये णीह-णयर्थे कवरु राउ उवमियह तसु

शिय-कुल-कहरव-घण-सिय-पयंगु,  
 गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।  
 अवरह-बलाहय-पलय-पवणु,  
 मह सागह-गाण-पट्टिदियण-तवणु ।  
 दुव्वसण-रोय-णासण-पवीणु,  
 किउ अखलिय-सुजस मयंकु म्मीणु ।  
 पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु,  
 .....

माणिणि-मण-मोहणु मयरकेउ,  
 गिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।  
 रिउ-राय-उरथल-दिणण-हीरु,  
 विसुमुणय-समा-भिडंत चीरु ।  
 खगगि-डहिय-पर-चकक-वंसु,  
 विवरीय-बोह-माया-विहंसु ।  
 अतुलिय-बल खल-कुल-पलय-कालु,  
 पहु-पट्टालंकिय विउल-भालु ।  
 सत्तंग-रउज-धुर-दिणण-खंडु,  
 सम्माण-दाण-गोसिय-सवंडु ।  
 शिय-परिधण-मण मीमत्सण-दच्छु,  
 परिवसिय-पयासिय-केरकच्छु ।

करवाल-पट्टि-विष्णुरिय-जीहु,  
 रिउ-उंड-चंड-सुं टाल-सीहु ।  
 अह-विसम-साह सुधाम-धामु,  
 चउ सायरंत-पाचडिय-णासु ।  
 णाणा-लक्खण-लक्खिय-सरीरु,  
 मोमुज्जल सामुदय-गहीरु :  
 दुष्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-भल्लु,  
 हम्मरीर-वीर-मण-नट्ट-सल्लु ।  
 चउट्टाण्वंस-तामरस-भाणु,  
 मुणियह न जासु भुय-बल-पमाणु ।  
 पुज्जलीदि-खंड-विष्णुण-कोसु,  
 छत्तीसाउए पयडण-समोसु ।  
 साहण-समुह दहुरिदि-रिदु,  
 अरि-राय-विसह-संकर पसिदु ।

घत्ता—

पालिय-वत्तिय-सासणु परयल-तासणु ताण मंडल-उव्वासणु ।  
 मह-जस-पसर-पयासणु खव-जल-हरसणु दुखणय-वित्ति-पवासणु

सहो पट्ट-महाएवी पसिदु,  
 ईसरदे पण्ययि पण्य-विदु ।  
 णिहिते उर-मज्जणु पहाणु,  
 शिय-पहमल पेसण-सावहाणु ।  
 सज्जण-मण-कप-महीय-साह,  
 कंकाण-केकरंकिय-सुवाह ।  
 छुण-ससि-परिसर-संपुण्य-वयणु,  
 मुक्क-मल-कमल-दल-सरल-णयणु ।  
 आसा-सिंधुर-गह-गमण-लील,  
 वंदियण-मणासा-दाण-सील ।  
 परिवार-भार-धुर-धरण-सत्त,  
 मोयई अंतर-दल-ललिय-गत ।  
 छहं सण-चित्तासा-विसाम,  
 चउ-सायरंत-विकखाय-णाम ।  
 अहमल-राय-पय-भत्ति-जुत्त,  
 अवनमिय-णिहित-विष्णुण-सुत्त ।  
 शिय-णंदणहं चित्तमणोव,  
 शिय-धवलगिह-सरहंसिणीव ।  
 परियाणिय-करण-विलास-कज्ज,  
 रुवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज ।

संगा-संभ-कलोल-मात्र,  
 समकिति-भरिय-ककुदंशराल ।  
 कलपंदि-कंठ-कल-मदुर-वापि,  
 गुण गहन-नयथा-व्यति-न्याधि ।  
 धाराराय-विमह संकरहो मिट्ट,  
 मोहम-भ्रम गोरिचदिदृष्ट ।

पत्ता—सहि पुरे, कइ-भुज-संभलु,  
 दुएप-संभलु मिहपुस सि छ जितत ।  
 सुपमिदत कइ लकरजगु,  
 बोह-विपकवपु पर-मप-राय य दिपाउ ॥४॥

पुक्वहि दिये मुकइ पमपय-चिपु,  
 यिम मेउजायले म्हाइयइ मइपु ।  
 महु बोह-नपु धट गहन-मगिपु,  
 बुदपय-मपयथाहं जिय-भूमिपु ।  
 कर-कंठ-कएण-पदिरण समरउ,  
 पार-हर महुं नेय मजोद पपउ ।  
 महु मु-कइणपु विजा-विद्याम,  
 बुदपय-मुह-संठपु माहितपु ।  
 भाएद-उयाहक समिप-नेय,  
 य विवाणइ मुपइ य ह्य को वि ।  
 महुं समुह-हमन-परिणइ सहाउ,  
 उगमित सहिपयट दुह-विहाउ ।  
 एमेव कइणय-गुण-विसेपु,  
 परिणइद पारव महु पिरवसेपु ।  
 पंयुन्नापं अतिउयइं धम्पु,  
 टिउइ उषाउ इह भुवनि रम्पु ।  
 पाहणइ धम्पु-मांसवकू जेय,  
 सहगा संरइ गुहं मयेय ।  
 धमयेय रहित पार-उगु मंउ,  
 ह्य विगउय कइ-विपु मंउ ।  
 हि कुणमि एव पपहनि उषाउ,  
 जे धम्पइ दुणय-पहाउ-साउ ।  
 मये म्हा म्हापु सुह-देरिह-कंउ,  
 महि-रुध-पिणलु पिरहिवि रंउ ।  
 एह-विपार-विपार-संउ-मुपु  
 मवेहक-उपु जे विगउ गुणु ।  
 एह मुह-नेरि मुपमइ कएण,  
 विह-मपय-उदिमंनिपु कणिम कण ।

पाइरिह काइ दे मुह-सहाय,  
 कइ-कुल-निकयामल गत्रिय-गाव ।  
 जिय-धम्म-नमापय-वाय-तिपु,  
 सुहुं धएणउ एरिपु जामु चिपु ।  
 चिगा-किउमु जे मुहइ कय,  
 एं तजिवि मजमि मय-विवप्य ।

अहमलि-राय-महमंति मुयु,  
 किय-मामय-परियाय गुण पबहु ।  
 कणहपु-कुल-कइय-सेय-भापु,  
 परुया समउत समउं पहापु ।  
 सम्मत्त धंउ कामय-भपु,  
 सापय-नय-मात्रगु गत्रिय-गपु ।

पत्ता—

सो मुहइं मय-संतउ,  
 जिय-मुहंमउ विपयामिहइ ममुपयउ ।  
 गुपयामिपइ कइणपु मुहइ पमुपयु,  
 जिय-धम्मपु उरवउ ॥२॥

इउ मुदेरि मयमि पिरहिवि हंउ,  
 इह कजे म साउय होदि मंउ ।  
 तहो रामो पिरपहि पयउ मपु,  
 साउय-वप-विदि-विपपर-कपु ।

इउ पमयेरि भंकिवि मय-महनि,  
 मय थंयादेयी विपय धंति ।  
 परि गत्रिय-विद्यापार गोपु पुउपु,  
 कइ-लकरणपु मंजम-पिरि-विमुपु ।  
 जियु पंदिवि भजिजि धम्मन-वपु,  
 विगयपइ मये माहनिव-विपयु ।

मुहु मुहु भावइ जे कएण चिपु,  
 रंवादेविपु पण्डित वणिपु ।  
 तम सोउ य हएइ कपि मपु,  
 महु मपु विगावा-वउपु पुएणु ।  
 गणे-विपय-मपु लकरणपु कइउ,  
 सोपरीउ कय-कएणमउ ।  
 विप-नेरि पणउ वपु मंउ-मुपि,  
 मय-कणु नुरिय मुहइ-ममपि ।  
 पवि हुवउ म-सर एम-रिपि मंउ,  
 मपु हो य पंविपइ तहो हंउ ।



सुप्पसरण-गाड घरइं तवेह,  
 भणु कवणु दुवार-ऊवाड देह ।  
 श्रवमिय वय गालिणा चातुरंग,  
 धरा-कण-कंचण-संपुरण चंग ।  
 घर समुह गुंत पेच्छि वि सवार,  
 भणु कवणु वप्प भंपह दुवार ।  
 चितामणि-ढाढय-निवड-जडिउ,  
 पज्जहह कवणु सडं ह्य-चडिउ ।  
 घर-रगुप्पणणउ कप्पस्सु,  
 जले कवणु न लिचह जणिय-सुकु ।  
 सयमेव पत्त घर कामधेणु,  
 पज्जहह कवणु कय-सोसलेणु ।  
 चारण-मुणि तेणु जित्त-भवह,  
 गय गाउ पत्त किर को ण णवह ।  
 पेऊस-पिंड करे पत्तु भच्चु,  
 को सुयह निवे (इय)-जीवियच्चु ।  
 मह चिज्जक्खर-गुण-मणि-णिहाणु,  
 पवयण-वयणामय-पय-पहाणु ।  
 घर-धम्मिय-णर-मण [वो] ह्यत्थु,  
 वर-कहणा विरइउ परसु सत्थु ।  
 एमेव लह-मह-पुरण-भवणु,  
 श्रवणणह णरु धीमंतु कवणु ।

इह महियले सो धणणउ,  
 पुणण-पउणणउ जसु णामे सुपसाहमि ।  
 चितउ लकवण-कहणा,  
 सोहण-महणा कन्व-रयणु णिवाहमि ॥६॥  
 इह चंदुवाडु जमुणा-तडत्थु,  
 दंसिय-विसेस गुण-विावह-वथ ।  
 चउ हट-हट-धर-सिरि-समिह,  
 चउ वणणासिय-जण-रिद्धि-रिद्धु ।  
 भूवालु तथ सिद्धि मरहवालु,  
 णिय-देस-गाम-णर-रक्खवालु  
 तहि-लंबकंचु-कुल-गयण-भाणु,  
 हल्लणु पुरवइ सव्वह पहाणु ।  
 नरनाह-महा-मंडणु जणिट्ठु,  
 जिय-सासण-परिणइ पुणण-सिट्ठु ।

तहो अभयवालु तणुरुहव हूठ,  
 वणि-पट्टं क्रिय-भालयल-रूठ  
 गारवह-समज्ज-सर रायहंसु,  
 महमंत-धयिय-चचहाण-वंसु ।  
 सो अभयवालु-णणणह-रउज,  
 सुपहाणु राय-वावार-फज्ज ।  
 जिय-भवणु करायउ तं ससेउ,  
 केयावलि-मंपिय-तरणि-नेउ ।  
 कूडावीडगाहणा वोमु-कलहोय,  
 कलस-कलवित्ति-सोमु ।  
 चउ सालउ तारणु सिरि जणंतु,  
 पड-मंडय-किंकिणि-रण-भणंतु ।  
 देहहह तालु सिरि साहु सोहु,  
 जाहउ-णरिद-सहमंत-पोडु ।

घत्ता—

संभूयउ तहो रायहो, लच्छि सहायहो पडमु जण मणायंदणु ।  
 सिरि वल्लालु णरेसर, रुधे जिय-सर लुद्धासउ महणंदणु ॥७

जो साहु सोहु तहि पुर-पहाणु,  
 जण-मण-पोसणु गुण-मणि-णिहाणु ।  
 तहो पडमु पुत्तु सिरि रयणवालु,  
 वीयउ कणहहु च्छिद्धु-भालु ।  
 सो सुपसिद्धउ मल्ला-तणउ,  
 तस्साणु मणा जिउ सुद्धरूउ (?) ।  
 उद्धरिय जिणालय-धम्म-भारु,  
 जिणसासण-परिणय-चरिय-चारु ।  
 गंधोवणु दिण दिण पवित्तु,  
 मिच्छत्त-वसण-वासण-विरत्तु ।  
 शरिराय-गाइ-गोवाल-रज्ज,  
 वल्लालिणव-णरवहं समज्ज ।  
 सव्वहं रुव्वेसर रयण-साहु,  
 वावरइं ।णरगालु चित्त-भाहु ।  
 सिवदेउ तालु हुउ पडमु सुण,  
 सिरि दाण (वंतु) ण गंध-थूणु ।  
 परिणणइ णिहिल-कला-कलाउ,  
 विणणण-विसेसुज्जल-सहाउ ।  
 मह-महा-पंडिउ वि (उ)-सियासु,  
 श्रवणमिय-णिहिल-विज्जा-विलासु ।

घत्ता—

पदाहिवारि संपुष्य-भात्,  
 विपविष-भरोप संक्राम-भत् ।  
 घ्रायुष्यस्य सो सिरि रयसुवात्,  
 गठ मगात्रप गुण-भाय-विमात् ।  
 तहो पच्युत् हुट सिवएव माद्,  
 पिठ-पट्टि बहट्टठ गत्रिय-माद् ।  
 अह-मल्ल-राय-कर-विहिय-त्रिषट्,  
 मह-पदाहं महिठ गुण-भाय-णिलठ ।  
 सो साद्दु पट्टिट्ठ-अधिय-सेठ,  
 सिवदेउ साद्दु कुल-भंम-सेठ ।

एण कंतुपो (कवचपो) दाचिणो मुहकपो,  
 जहामएण-भवरसम समत्त-विणो  
 पत्ता—  
 तामु सुखबन्धय विहिय कुनरकम अणुगामिणिय तद्द जएमहिण  
 तहि हूव वे यंदइयय पयायइय हरिदेउ वि दिउराउ हिया ॥  
 × × × ×

अन्तिम भाग—  
 निरि लंयकंचु-मुत्त-कुमुप-चंदु,  
 कल्ल्यावली-यय-धयण-चंदु ।  
 जस-भयर-भउरिय-योम-भंडु,  
 धदिपदि-विमइय-कुन्निम देउ ।  
 अवराह-भत्ताहय-पयय पयणु,  
 भययय-धयय-निरि-सपय-तरणु ।  
 उम्भूत्रिय-निष्पुणवपीठ,  
 त्रिय-भरयचयय-विरयय-विपीठ ।  
 दंमय-भंणि-भूमय-भूमियंणु,  
 तत्रियय-भर-भामंनिपि-पमंणु ।  
 पययय-विहाय-पययय-भमंणु,  
 विहवम-गुण-भाय-भाययक-ओणु ।  
 सवयदि-भरपयदि-भया-पयिणु,  
 पय-हाय-पविष-यंदियय-विणु ।  
 संभाराह-भरिभमस भीह,  
 त्रिय-कम्मामय-भोमिय-भरोठ ।  
 गुह-देव-पाय-पुंठरिय-भणु,  
 विणयाधंदिप-यव-भोउ-णुणु ।  
 महसह अवरणय तद्द पाणयणु,  
 पु-परिहावार-गर्भ-भाद्दु ।  
 कल्लु वदिवह जय-मुत्तपिठ,  
 अह-मल्ल-राय-अहमंणि विह ।  
 तहो पयय-भंयय विपचयेय,  
 महसइया कइया सवरयोणु ।  
 माहूमहो पयिणो जइया-मुपय,  
 मुहइणयणु-विउणयणु ।  
 आयम-कुल-भायय-विउणयणु,  
 पत्ताभंमोदि विहिययोय ।  
 इह अणुपय-वरणु-पट्टेउ कणु,  
 विरयह कवचि परिहदि वि गणु ।

पत्ता—  
 जो फलदु पुणुगत पुणय पठत्त महि मंडलि विस्वायठ  
 आह्वमल्ल-भरिदेउ मयमा दंदु मंतताय पद्दभायठ ॥३॥  
 निया तम्य मल्लभरणा अरययददा,  
 गुत्तयं पण भवि वाउं विवइया ।  
 म-भत्ता-यायारविहाणुगामो,  
 परारंभ-यायार-संपुष्य-कामो ।  
 मुदायार-चारिण-भोरंठ-णुला,  
 मुपेयवाय गंभोइपयं पविता ।  
 स-यायाय-कामार-मारा मरात्री,  
 दिवा-दाय-भंतिमिया धंदियात्री ।  
 पमयथा मुसाया धचंउय-विता,  
 राम (रमा) राम-रमा मण वाउ विता (?) ।  
 गज्जामं मुहभोव-संपुष्य-जुणहा,  
 पुणमो महामाह मोदगम मुवहा ।  
 दया-भर-वी-भेट-मुचंउपया,  
 मरुणयणे सुद भोवाउयामा ।  
 जहा धंदुवाणुगामो भभामो,  
 जहा मय-येइदि मयण-भाली ।  
 जहा गोण-दिहायिणो रंभ रामा,  
 रमा हाय-भरिभय संपुष्य-कामा ।  
 जहा मेहियो भोमहोमय मयणा,  
 महइरी मपुष्यमय मयण रयणा ।  
 जहा भूयिणो मुनिदेउ मयणय,  
 विमरुणयणु जहा-भभोमोमः (?) ।  
 जहा जणुदेउ भंमभेणय मया,  
 मुणोदयणु देहइणो मेदणया ।

संतगु-राम-जाड-श्रद्ध-दुल्लह ।  
 एयहि सत्तहिं सुयहिं पसाहिउ,  
 सोमएउ. रं रयहिं जिणहिउ ।  
 जो पढमउ रंदणु वासाहरु,  
 सयल-कलालउ लंछण-ससहर ।  
 पेक्खविणु-सारंगणरिदं,  
 पाहु-वाण-कुल-कहर-व-चंद ।  
 रज्ज-धुराधरु शियमणि जाणिवि,  
 मंति-पयम्मि ठवित सम्मानिवि ।  
 अप्पिवि देसु-कोसु-धणु-परियणु,  
 भुंजह रज्ज-लोक्ख-खिचल-मणु ।

वत्ता—

लोसुअणु-गुणायरु बुहु-विहियायरु दुक्खिय-जण-एव-कप्पतरु  
 जिण-पय-पंकय-महुयरु सिरिवासद्धरेण जाअच्छदु तहिं दुरिय-इर  
 ता पेक्खवि पंडिय धणुवालें,  
 विहसिवि पभणुउं बुद्धि-विसालें ।  
 भो सम्मत्त-रयण-रयणांयर,  
 वासद्धर हरिराय-सहोयर ।  
 विणय-गुणालंकिण शिम्मच्छर,  
 पंडिय-जण-मण-रंजण-कोच्छर ।  
 करिवि पइट्ट भवजणु-रंजित,  
 जे तित्थयर-गोत्त आवज्जित ।  
 धरणउं तुहं गुरुभक्ति-कयायर,  
 मह-सुह-कित्ति-तरंगिण-सायर ।  
 जिणवर-पाय पओरुह-महुयर,  
 सयल-जीव-रक्खण-सु-दयायर ।  
 दुस्तमकाल-पहाव-गुरुक्कउ,  
 जिणवर-धम्म-मग्गि जणु वंकउ ।  
 दुज्जण-पउर-लोउ-अकयायर,  
 विरलउ सज्जणु गुणिविहियायर ।  
 असहायहो जगि को वि ण मणणइं,  
 धम्म-पहावें लटभइ उरणइं ।  
 धम्महीणु जणु जहिं जहिं गच्छइं,  
 तहिं तहिं सम्महुं कोवि ण पेच्छइं ।  
 तें कज्जे धम्मायर किज्जइं,  
 धम्महीणु ण कयावि हविज्जइं ।  
 इय धम्महो पहाउ उर दुट्टउ,  
 णिसुणिवि वासाधरु संतुट्टउ ।

वत्ता—पुणु जंपिवि पियचायणु महुरु तहिं गुरुचरणं ठियठे ।

बहुविणुणु सिरिवासद्धरेण कह घणुवालउ पत्थियउ ॥६॥

जिण-पय-पंकय-इंदिरेण,  
 आयम-पुराण-सुह-मंदिरेण ।  
 सम्मत्त-रयण-रयणांयेण,  
 कह पुच्छिउ-पुणु वासाहरेण ।  
 भो किं अविणोणं गमहिं कालु,  
 मह-तंतु धुणहिं जिणु सामिसालु ।  
 वरि-कवु मणोहरु सत्य-चित्त,  
 जिण-चक्कि-काम-कह अह-विचित्त ।  
 जसु रामहं खासइ णिहिलु दुरिउ,  
 वाहुवलि-कामपवहो चरियउ ।  
 जस असणोवरि तंचोलु भवु,  
 तह जिण तिलओवरि सहइ कवु ।  
 तुहुं विरयहि भव-मणोहिरामु,  
 पद्धटिया वंधे सहधामु ।  
 कं विज्जणु जाणु यो होइ सिद्धि,  
 पुरिसं जेण य लद-लद्धि ।  
 किं किंविणएण संविण-धरेण,  
 किं णियणेहं-पिय-संगमेण ।  
 किं णिज्जलेण वण-भज्जिणुण,  
 किं सुहदें संग-भज्जिणुण ।  
 किं अप्पणेण गुण-कित्थेण,  
 किं अविदेयं विउ-सरणणेण ।  
 किं विप्पणु पुणु हसिणुण,  
 किं कव्वे लक्खण-दूसिणुण ।  
 किं मणुयत्तणि जं जणिअ भवु,  
 किं बुद्धिणु जाणुण रइउ कवु ।  
 इय वयणं सुणिवि संवाहि वासु,  
 धणुवाल पयंपइ वियसियासु ।  
 भो कुणमि कवु जं कहिउ मज्जु,  
 गुरुयण हंसाणं किं अज्जु ।  
 हउं करमि कवु बुह-जणिय-दासु,  
 तुच्छमइं रं पयडइ जस-पयासु ।  
 णालोयउ पवयणु पय-सुअंणु,  
 णउ-लद्धउ-मइ-कइयणहं संणु ।

वत्ता—वायरण महोवहिं दुत्तरु सह-लहरि-वित्थियणुं ।

णाणाभिहाण-जल-पूरियउ णउ हउ पारुत्तियणुं ॥ ७ ॥

वाणसुरि-हीला-सरयवोत्त,  
 दुष्ट आसि महाकई सुखि-पयात्त ।  
 सुख-पवथ-दुविय-कुमय-रेणु,  
 कद-चक्र-द्वि-सिरि धीरसेणु ।  
 महि-मंडलि वण्णउं विधुइवंदि,  
 वाधरण-कारि सिरि-देवणंदि ।  
 जइएणं दे यामु जइयण-दुलभइ,  
 किउ जेण पसिइ स-वायलवसु ।  
 सम्मत्तारु वुसु रायभणु,  
 दंसण-पमाणु वरु रयउ कन्नु ।  
 सिरि-वज्जसूरि गणि गुण-णिहाणु,  
 वि-यउ मह छंदसण-पमाणु ।  
 महासेणु महामई विउ समहिउ,  
 धण याम मुलोयण-चरिउ काइउ ।  
 रविसेणं पउमचरिउ वुसु,  
 जिणसेणं हरिउं सु वि पविउ ।  
 मुणि जडिलि जइत्त-विधारण्यु,  
 यं वरंगुचरिउं खंरुण पवणु ।  
 दिण्यरसेणं कंदपचरिउ,  
 विथरिय महिदि खवरसई भरिउ ।  
 जिण-पासचरिउ अइसपवदेण,  
 विरयउ मुणिपुं गव-पउमसेण ।  
 अमियाराइण विरहय विचित्र,  
 गणि अंनसेण भव-ओस-चत्त ।  
 चंदपहचरिउ मणोदिराणु,  
 मुणि विण्णुसेण किउ धम्म-धामु ।  
 धणयत्तचरिउ चउवण-गारु,  
 अवरैदि विहिउ य-पापवार ।  
 मुणि सीहणंदि सइय यामु,  
 अणुपेहा-कय-संकथ-यामु ।  
 यवयारणोहु खरदेव कुत्त,  
 कइ असग विहिउ वीरदो परिउत्तु ।  
 सिरि-सिद्धसेणु पवयण विणोउ,  
 जिणसेणं विहउ आरिसेतु (आरिसाउ)  
 गोविदकइ दंसण-कुमार,  
 कइ-रयण-अमुरो लइ-वार ।  
 गपयणु सिद्ध-गुण-मुण्णउं तैउ,  
 सुप साजिहणु कइ ओर देउ ।

वर पउमचरिउ किउ सु-कइसेडु,  
 ह्य अवर जायवर बलववेडु ।  
 वत्ता—चउमुह दोणु सयंभुकइ पुण्णयंतु पुणु वीर भणु  
 ते यण-दुमणि-उज्जोय-कर इउ दोजोवमु हीण-गुण ॥२॥  
 तं णिमुणिवि वासाहरु जंगइ,  
 किं सुइं सुइ चित्ताउत्तु संपइ ।  
 जइ मयंकु किरणंदि धवलइ भुवि,  
 तो खमोउ य छुंइह णिय-दुवि ।  
 जइ खयराउ गयणे गमु सज्जइ,  
 तो सिहंदि किं णिय-कमु पज्जइ ।  
 जइ कप्पतर अमिय फल कप्पइ,  
 तो किं तरु लज्जइ णिय संपइ ।  
 जसु जेतित्त मह-पसर पवइइ,  
 सो तेत्तित्त धरिअथिले पवइइ ।  
 ह्य णिमुणिवि संवाहिव वुत्ताउ,  
 कइया धणवालेण पउत्तउ ।

× × × ×  
 ह्यसिरि-पाहुपलि-दे-चरिउ सुइइदेव-तणय-सुइ धण-  
 वाल-विरहण; महाभव-वासदर-यामकिणु सेणियराय-  
 समवसरण-समागमो वणणयो याम पढमो परिच्छेओ  
 समत्ते ॥ संधिः १ ॥

अन्तिमो भागः—

× × × ×  
 जंबुदीव-भरइ-वर-संतारि,  
 गिरि-सति-सीमाराम-णिरंति ।  
 अंतरवेह मज्जि धयारिइउ,  
 तहं काविट्ट-विसउ सु-पविइउ ।  
 वीर-प्राणि उप्पत्ति पविताउ,  
 सूरीपुरु जण-गरिभलंतउ ।  
 सूरसेणु खरयइ तहो खंदणु,  
 अंधय-विट्ठ-राउ रिउ-महणु ।  
 एहो पइवय निय-याण-पिपारो,  
 याम मुभहा देवि भट्टारो ।  
 दत्त-दमार तहिं खंदणु जाया,  
 वीर-वित्त तिहुअण-विभत्ताया ।  
 सायर-विजउ पवसु उविणोयउ,  
 पुणु अकरओहु याम दुष्ट बीपउ ।  
 तइयउ अमियात्तु सिरिचत्तइ,  
 पुणु हिमयंतु गतिउ जाणहु दुक्कइ ।

विजउ यामु पंचमु सुह-वद्वण,  
 छटउ अचलु रिदि-सकंदण ।  
 सत्तमु यामु पसिद्धउ धारणु,  
 पुणु अट्टमउ तणुभउ पूरणु ।  
 सुउ अहिचंदु शत्रुसु पुणु जाणहु,  
 दहमउ सुउ वसुएवउ माणउ ।  
 एयहं लहु अंकोऽतिमदोवर,  
 लावणं णिजिय अमरच्छर ।  
 समुद विजअ सूरीपुरि धण्डउ,  
 चंदवाडु वसुएवहो अपिउ ।  
 तहो सुउ रोहिणोउ अरि-नंजणु,  
 देवइ-सांदणु अणु जणहणु ।  
 तहो संताण कोटि-कुल-लपखइं,  
 संजाया केवल्लि-पच्चकखइं ।  
 पुणु संभरि एरिंदु महि भुंजिय,  
 जायव-सुवभते रंजिय ।  
 असवंतु चहुवाण पुहइ षहु,  
 तहु मंतिउ जदुवंसिउ जसरहु ।  
 पहुगण पत्तिहु अउ धरणीयलि,  
 आसानुरि सुरि-पय-पंकव-अलि ।  
 साहु याम गोकणु मंती तहु,  
 जिणवर-चरणभोरह-महुलिहु ।  
 हुउ संभरि एरिंदु महिवालउ,  
 कणणद्वु-याम-पय-पलउ ।  
 सोमदेउ तहो मंति सहोयरुं,  
 सयल-रुलालंकउ यं ससइरु ।

घत्ता—पुणु सारंगु एरिंदु अभयचंदु तहो खंदणु ।  
 तहो सुअ हुउ जयचंदु रामचंदु यामे पुणु ॥  
 णिव-सागर-रज्जि-समयंकिउ,  
 वासाहरु मंतिउ खीसंकिउ ।  
 णिय-पहु-रज्ज-भार-दिठ-कंधरु,  
 विधुइ-वंदि-तरु-पोसण-कंधरु ।  
 एककु जि परमपठ जो भावइ,  
 वे ववहार सुद्धणय भावइ ।  
 जो ति-काल रयणत्तउ अंचइ,  
 चउ.णश्रोय-रह कह-वि.ण सुच्चइ ।  
 जो परमेट्टि-पंच-आराइइ,  
 जो पंचंग-मंत-महि साहइ ।

जो मिच्छत्त पंच श्रवणणहं,  
 छक्कम्महि जो दिणि दिणि तम्महं ।  
 जो रत्तंगु-रज्जु सु णिहालइ,  
 सत्त-तच्च-सइइइ रसालइ ।  
 दाधारहु-गुण-संतत-रत्तउ,  
 सत्त वसणं जो कहिवि ण रत्तउ ।  
 अट्ट मूलगुण-पालण-तप्परु,  
 सहंसय अट्टंग रयखावरे ।  
 अट्ट-सिद्ध-गुण-गण-सम्माणइ,  
 अट्टदध्व-पुजिय जिय-चरणइं ।  
 यव-विह-पुण्य-पत्त दाणायरु,  
 यव-पयथ-परिरक्खण-खायरु ।  
 यव-रत्त-चरिउ सुणइं पक्खणइं,  
 दइ-लवखण-धम्महि रइ-माणइं ।  
 पयारह अंगइं मणि इच्छइ,  
 पयारह-पडिमाउ-णियच्छइ ।  
 चारह-सावय-वय-परिपालइ,  
 तेरह-विहि चरित्तु सुणिहालइ ।  
 चउदइ-कुलयरक्खमुवपस्सइ,  
 चउदइ-विह-पुव्वहि-मणु-वासइ ।  
 चउदइ-भगण-वित्थरु-जोवइ,  
 चउदइ पुरिस सत्तण उज्जोवइ ।

घत्ता—

तहो वंधउ रयणसीहु भणितं भज्जा य मेरु सुपसिद्धउ ।  
 जिणविद-पइट्ट-रएवि पुणु जिणवर-गोत्तु णिवदउ ॥२॥  
 वासद्धर पिययम वे धरिण्डं,  
 परियण-पोसण यं कुरु धरिण्डं ।  
 वे पक्खुज्जल पर य मरालिय,  
 सील-तरुहिं यं वेल्लि रसालिय ।  
 पेमंकिय-कुल-सरणं पोमिणि,  
 सुयण-सिहंडणि यं जलहर-भुणि ।  
 पइ-वय-सील-सलिल-मंदाइणि,  
 दुवित्तय-जण-जण-शिव-सुह-दाइणि ।  
 उदयसिरी होमा विणय-जुय,  
 चउविह-संधहो कण्णिही इय ।  
 उअर-सप्पि-सुय-रयण-समुवभव,  
 संजाया कुल-हरण-तणुवभव ।  
 पहम-पुत्तु जयपालु गुणंगउ,

रुद्रेणं पचकञ्च ध्रयांगत ।  
 हुड जसपाल वियरसणु धीयड,  
 पुणु रउपालु पसिद्धत तीयड ।  
 सुरियड चंदपालु सिरि-मंदिर,  
 पंचमु सुअ विहराज सुहंकर ।  
 छट्टट पुण्णपालु पुण्णायरु,  
 ससमु वाहहु याम गुणायड ।  
 छट्टमु रुवणउ रुवट्टड,  
 पुण्णदि छट्ट-सुअदि-चर-वड्डड ।  
 भाइय-भात्तजय-संजुतड,  
 यंडत वासाधर गुण जुतड ।  
 जं हंड पच्छिड पसमिय गव्वे,  
 वासाहर-संधादिय-मव्वे ।  
 यडो वय्ये मडं आरिसु दिट्टड,  
 जं गण्णहर सुअ-केवल-सिट्टड ।  
 सो वेच्छिवि मडं पाइय कव्वे,  
 विरयंड-सुह-धणुवालें मव्वे ।  
 सिरि-वाहुवलि-चरिड जं जाणितं,  
 बकलण धंडु तक्कु य वियाणितं ।

पत्ता—खकलण-मत्ता-धंडु-गण-हीणाहित जं भणित मडं ।  
 तं खेमउ सयलु अवरहु वाणसरि-सिवहं संगहं ॥३॥

विक्कम-परिद-अक्रिय-समणं,  
 चउदह-सय-संवकद्धरिं गणु ।  
 पंचास-थरिम-चउ-अदिय-गणु,  
 बहंसहडो मिय-तेरसि सु-दियि ।  
 साइ यक्कतो परिट्टियहं,  
 वरसिदि-जोग-चामें टियहं ।  
 ससि-मामरे रासि-मयंक-तले,  
 गोलमो सुत्ति-सुक्कें सबबे ।  
 षडयगा-सहिड यत्र-नस-मरिट,  
 वाहुवलिदेव-सिंदहो चरियड ।  
 गुंजजर पुरवाट-धंमविज्जड,  
 सिरि-सुहह-सेट्टि गुण-गणु णिज्जड ।  
 तहो मणहर छाया गेहपिय,  
 सुहडाएथी यामें भणिय ।  
 तहो उवरि जाड बट्ट-वियय-ठुधो,  
 धणुपालु वि सुड यामेय हुधो ।  
 तहो विदिय तणुज्जव विउठ-गुण,

संतोमु तह य हरिराय पुण ।  
 विरु अरुह-धम्मु जा महिवल्लणं,  
 सायर-जलु जा सुर-सरि मिलिणं ।  
 कणयदि जाम वमुहा अचलु,  
 वासरहो छट्टट ताम कुलु ।  
 जो पडइ पढावइ गुण-भरिओ,  
 जो लिहइ जिहावइ वर-चरिओ ।  
 संवाण-सुद्धिं विण्यरइ तहो,  
 मणवंधित पूरइ सयलु सुहो ।  
 वाहुवलि-सामि गुरु-गणु-संमरणु,  
 महु यासड जम्म-जरा-भरणु ।

घत्ता—जो देह लिहावइ वि पत्तहो, वायइ सुणइ सुपावइ ।  
 सो रिदि-सिदि-संपय ल्हवि, पच्छइ सित-पठ पावइ ॥४॥  
 श्रीमत्प्रभाचन्द्र-पद-प्रसादाद्वाप्तयुद्धया धनपालदणः ।  
 श्रीसाधुवासाधर-नामधेयं स्वकाव्य-सौधे क्लृप्तो-करोति ॥  
 इति वाहुवलि-चरिप्रं समाप्तम् ।

( आमेर-भंडार, प्रति सं० ११८६  
 ६० पञ्चालाल सरस्वती भवनकी प्रतिसे संशोधित )

२० चंदप्पह-चरिउ (चन्द्रप्रमचरित) म० यशःकीर्ति  
 आदिभागः—

एमिउणु विमल-केवल-लख्खो-सव्वंग-दियण-परिरंमं ।  
 लोयालोय-पयासं चंदप्पह-सामियं सिरसा ॥१॥  
 विक्काल-वट्टमाणं पंचवि परमेट्टिर ति-सुद्धोऽहं ।  
 तह ममिउणु भणिससं चंदप्पह-सामियो चरियं ॥२॥

घत्ता—  
 जिय-गिरि-सुह-खिण्णय, सित-पठ-संगय, सरसह-सरिसुह-कारियिय  
 महु होउ पसवियय गुणदि रवियिय तिहुवय-उण-मणहारियिय

हुं वड-कुल-नहयलि पुण्णयंत,  
 बट्टु देउ कुमरसिंहवि महंत ।  
 तहो सुउ खिमणु गुण-मणु-विसालु,  
 सुपसिद्धत पभणइ सिद्धपालु ।  
 जसकित्ति विउड-करि तहु पसाड,  
 महु पूरदि पाइय कम्म-भाउ ।  
 तं निमुणियि सो भासेइ मंडु,  
 पंगलु पोटेमइ केम चंडु ।  
 इह इह बट्टु गणहर, यणुपयंत,  
 निण-वयण-रमायणु विण्णयंत ।

गणि कुंदकुंद वच्छलज गुणु,  
 को वरणण सककह इयर जणु ।  
 कलिकाल जेण तसि लिहिउ गामु,  
 सह दिट्टउ फेवल खंत-घामु ।  
 णामें समंतभट्टु वि सुण्णिट्टु,  
 श्रह णिम्मलु खं पुण्णिमहि चंदु ।  
 जिउ रंजिउ राया रुहकोडि,  
 जिण-धुत्ति-मिन्ति सिवविडि फोडि ।  
 शीहरिउ विंशु चंदप्पहासु,  
 उज्जोयंतउ फुट्टु दव दिसासु ।  
 अकलंतु णाई पच्चक्खु णाणु,  
 जें तारा-देविहि दजिउ-साणु ।  
 उज्जालिउ सासणु जय पसिद्ध,  
 णिद्धाडिय घल्लिय सयल-वुद्धि ।  
 सिरि-देवणांदि सुण्णियहु पहाउ,  
 जसु णाम-गहणि णासेउ पाउ ।  
 जसु पुज्जिय अंचाएई पाय,  
 संभरण मिन्ति तदञ्जणि ण आय ।  
 जिणसेण सिद्धसेण वि भयंत,  
 परवाह-उप्प-भंजण-कयंत ।  
 इय पमुहहं जहिं चाणी-विलासु,  
 तहि अरहह कह होई पयासु ।

घत्ता—

जहि धुणह फणीसरु, बहु जीहारुरु, श्रह सहसक्खुतिरिक्खइ ।  
 तहि पर जिण-चरणह, सिवसुहकरणह, किह संधुणह समिक्खइ

× × × ×

अन्तिमभागः—

गुडजर-देसहं उम्मत्त गामु,  
 तहिं छट्ठा-सुउ हुउ दोण णामु ।  
 सिद्धउ तहो खंदणु भव्व-वंधु,  
 जिण-धम्म-भारि जें दिरणु खंधु ।  
 तहु सुउ जिट्टउ बहुदेव भव्वु,  
 जें धम्म कज्जि विव कलिउ दव्वु ।  
 तहु लहु जायउ सिरि-कुमरसिंहु,  
 कलिकाल-करिदंही हणण-सीहु ।  
 तहो सुउ संजयउ सिद्धपालु,  
 जिण-पुज्ज-दाण-गुणगण-रमाणु ।  
 तहो उवरेहिं इह कियउ गंधु,

इउं णसु णमि किपिवि सत्थु गंधु ।

घत्ता—

जा चंद दिवायर सव्व विसायर, जा कुल पव्वय भूक्खओ ।  
 ता एहु पयट्टु हियहं चहुट्टु, सरसहं देविहि सुहि तिलओ ।  
 इय-सिरि-चंदप्प-चरिण महाकह-जसकित्ति-विरहण  
 महाभव-सिद्धपाल-सव्वण-भूमणे सिरिचंदप्पह-सामिण्णिव्वाण  
 गमणो-णाम प्यारहमो-संधी परिच्छेओ सम्मत्तो ॥

(नेरे पैत्रिक-शास्त्र-अंदारसे)

सं.—१५३०

पडव-पुराणु (पांडव-पुराण) (भाषा अपभ्रंश)

कर्ता-भ० यशःकीर्ति. रचना-काल सं १४६७

आदिभागः—

बोह-सु-सर-वयरट्टहो गय-धय-रट्टहो सिरिल्लाम सोरट्टहो ।  
 पणविवि कहुमि जिण्णिट्टहो सुयवल-विट्टहो कह पंडव-धयरट्टहो ॥

जो भव्व सरय-बोहण-दिण्णिट्टु,  
 हरिवंन-पवण-पह णिसियरिट्टु ।  
 सव्वंग सलक्खणु लद्धसंसु,  
 णिय-कम्म-णियक्खणण विहंसु ।  
 भव-भीयहं सत्तहं ललिय हंसु,  
 वे पक्ख समुज्जलु णाह हंसु ।  
 जेसि वर-जन्मि पयडिउ अहिंसु,  
 जो सिद्धि-मरालिहि परमहंसु ।  
 जें णाणें पवियाणिउ ण हंसु,  
 जो तिरयणाहु वज्जरिय हंसु ।  
 जण-चाय-विता-सारंग-वरिसु,  
 जम्मणे हरि-किय सारंग-वरिसु ।  
 णिय-कंतिण जिउ सारंगु सज्जु,  
 सारंगेण जि मेहिलउ अवज्जु ।  
 निह-मोहु चह वि सारंगु जाउ,  
 सारंगु णयणे दिरणु न राउ ।  
 सारंगें पणविय णिच्च-पाउ,  
 सारंग पाणि कर तुलिउ राउ ।  
 चउतीसातिसयहिं सोहमाणु ।  
 वसु-गादिहेर-सय-वत्त-माणु ।  
 चउ-घण-चमरेहि विजिज्जमाणु,  
 जसु लोयालोय पमाणु णाणु ।  
 जें पयडिउ बावीसमउ तिण्णु,  
 जसु अणुदिणु पणवइ सुरहं सत्थु ।  
 समुद-विजय तिवण्णीहे पुत्तु,

सो नेमियाहु गुण-सील-शुचु ।  
जसु तिर्ये जाठ महियलें पविचु,  
एडवहं चरिठ अछुरिय-शुचु ।

धेनाही तहो पिय याम सिद्ध,  
गुरदेव-भक्त परियणहं इद्धे ।  
तहो यंदणु यंदणु हेमराउ,  
जिणधम्मोवरि जसु णिच्च-भाउ ।  
सुरतान मुमारख-वणहं रज्ज,  
मंतिंतणो थिठ पिय भार कज्ज ।

धसा—

तह पणविधि सिद्धं याण-समिद्धं श्रावणियहं पाठयहं तहं ।  
साहुहु पणवेपिणु भाउ धरेणियु वाएसरि जिण-वयण-रहं ॥१

पुणु पणवेपिणु जिणु बह्दमाणु,  
अज्जवि जस तित्थु पवद्धमाणु ।  
चउ-कम्म हण्णि विहु परम-याण्णि,  
ओयण-पमाण-जसु दिग्ग-वारिण ।  
जं जए पयडिय पंचरियकाय,  
छुद्धय तह व कालहो न काय ।  
ओवाइ-पयासिय-सत्त-त्तच्च,  
पुणु खव-पयथ-दह-धम्म-सत्तच्च ।  
सम्मसु वि पणविसह दोसु चत्त,  
णित्तसकिय संधेयाइं शुत्त ।  
पज्जरिठ विविहु सायार-धम्म,  
अणयार-धम्म णिह णियहु कम्म ।  
जसु समवसरणु सोयण-पमाणु,  
जे भाण्णित्तिलोय-पमाण-ठाणु ।  
पुणु इंदमूइ-पमुहइ यथेवि,  
णिय-गुरुहु अमुज्जल गुणु सरैधि ।  
चिर कह हु करेणियु परम भवि,  
सुउ क्किपि पयासमि णियय-सत्ति ।  
इय धितंतउ मणि जाम थक्कु,  
सुंण ताम परायउ साहु एक्कु ।  
इह जोयणिएणु बहु पुर-दिसाए,  
धण-धयण-सुवयण-णरेहि फारु ।  
सिरि-सर-यण-उवयण-गिरि-विसाहु,  
गंभीर-परिह-उत्तुग-साणु ।  
तहि निवमह जालपु साहु भण्णु,  
णियउजी भज्जालकिउ अगण्णु ।  
सिरि-अयरवाल-यंसहि पहाणु,  
सो संवहं वच्छु-विगय-माणु ।  
एदो यंदणु सीलहा गय-यमाउ,  
महं जि थाउ ।  
आवेणियु हितमक्खाउ दिद्धे,  
ते थवि सम्माणित किउ धरिद्धे ।

धसा—

जें अरहंतु-देउ मणि भाविठ, ज.सु पवुत्तें, को पिय ताविठ ।  
जेण करामउ, जिण चेवालउ, पुणएहेउ चिर-रय-पक्खालउ ॥२  
धय-तोरण-इलसेहि अलंकिउ,  
जसु गुरति हरि जाणु वि संकिउ ।  
पर-तिय-यंघउ-पर उवयारिउ,  
जेण सणु जणु धम्महं तेरिउ ।  
संघ धुरंधर-पवहु सु.णउज्जइ,  
सावय-धम्मं णिच्च मणु रंजइ ।  
सत्त वसण जे दूरं वज्जिय,  
सोल-सयण-वित्ति वि आवज्जिय ।  
सत्त गुणहं दायारहं जुत्तउ,  
यव-विह-नाण-विधिप याउ चत्त ।  
पणपं पणय-गुणें मठ भंजिउ,  
रयणत्तय-भावण-अणुरंजिउ ।  
विणपं दाणु देइ जो पत्तहं,  
जिणु तिकालु पुज्जइ समचित्तहं ।  
तासु भज्ज-गुण-रयण-वसुंधरि,  
गंधो याम णिय-गइ-जिय-सुरसरि ।  
रुवें चेजण-देवि पहाण्य,  
जिणवर-भत्तिहं थं इंदाण्य ।  
अमिय-सरस-वयणहि सच्चहि त्रिय,  
याउ तंपोत्तराय अणुरंजिय ।  
उवरि कद्विहु सील जे धारिउ,  
रयणत्तय हारें मणु वेरिउ ।  
धम्म सयण-कुंठल जें धारिउ,  
जिण-सुहा-सुहिय संचारिउ ।  
जिण-मोहमि गमण-येठर-सर,  
तहो चंदण-यंकण सोहिय-कर ।  
जिणवर-भंत सरणु कुंघउ उरि,  
जिणवर-इयणु तिलउ किउ णिय-सिरि ।  
एणहं आहरणहं आ सोहिय,



भार मुणिवि कंचणहि ए मोहिय ।  
तासु पुत्तु पल्हणु जाणिज्जइ,  
चाणं तक्कय-गणहिं थुणिज्जइ ।  
वीयउ सारंगु वि पिय भत्तउ,  
कडला तइउ पसणहिं चत्तउ ।

घत्ता—

पल्हणु खंदणु गुणखिलउ गोलहणु माय-पियर-मण-रंजणु ।  
वील्हा साहुं अवह सुउ लखा णामु जण-मण आणंदणु ॥३॥  
दिउ राजही य भज्जहि समेउ,  
कीलंतहं हुउ संताण जोउ ।  
खंदणु हू गरु तइ उधरणक्खु,  
हंसराउ तयउ सुउ कमल-वक्खु ।  
एक्कहिं दिणि चित्तिउ हेमराय,  
जिणधम्म हीणु दिणु अहलु जाय ।  
णिसुणिज्जइ चिर पुरिसहं चरित्तु,  
हरि-नेमिनाह-पंडवहं वित्तु ।  
ता होइ मज्फ जन्मु वि सलग्गु,  
णामइ-चिर-संचिउ-पाठ-सिग्गु ।  
इय चित्तिवि जिण-मंदिरहि पत्तु,  
जस मुणि पणविवि अक्खिलउ सचित्तु ।  
सोउं इच्छमि पंडवचरित्तु,  
पयडहि सामिय जं जेम वित्तु ।  
विवरीउ सधु जणु वज्जरेइ,  
णरयावणि हुक्खहो णउ डरेइ ।  
तं णिसुणिवि जंपिउ मुणिवरिणु,  
चंगउ पुच्छिउ वुहयणहं चंडु ।  
पंडव-चरित्तु अइ-गहणु जइवि,  
तुव उवरोहें हउं कहमि तइवि ।  
तो तहो वयणें गुण-गण-महंतु,  
पारंभिउ सइत्यहं फुरंतु ।  
सज्जण-दुज्जण-भउ परिहरेवि,  
णिय-णिय-सहाव-रत्तें वि देवि ।

घत्ता—सज्जणु वि सहावु अकुडिल-भावु

ससि-मेहुव उवयार-मई ।

पर-दोस-पयासिरु अवगुण-भासिरु

दुज्जणु सग्गु व कुडिल-गई ॥४॥

×

×

×

इय पंडवपुराणे सयल-जण-मंण-सरण-सुहयरे सिरि-

गुणकित्ति-सिस्स-मुणि-जसकित्ति-विरइए साधु-वीरहा-पुत्तराय  
मंति-हेमराज-णामंकिए वुरवंस-गंगेयउ-धिति-वरणयेणाम  
पढमो संगो ॥प्रथमसंधिः॥१॥

चरमभाग :—

खंदउ सासणु सम्मइणहें,  
खंदउ भवियण-कय-उच्छाहें ।  
खंदउ खरवइ पय पालंतउ,  
खंदउ उदय-धम्मु वि रित्तिहंकिउ ।  
खंदउ मुणिगणु तउ पालंतउ,  
दुधिइ-धम्मु भवियणहं कहंतउ ।  
दाण-पूय-वय-विहि-पालंतउ,  
खंदउ सायय-गुण-रय-चत्तउ ।  
कालं विणिय णिव्व परिसक्कउ,  
कामवि धणु कणु देति ण थक्कउ ।  
वज्जउ मंदलु गिज्जउ मंगलु,  
खच्चउ णारीयणु रहसैं कणु :  
खंदउ वील्हा पुत्त गुएवंतउ,  
हेमराउ-पिय-पुत्त सइत्तउ ।  
अरथ-विरुद्ध सुहहिं सोहिण्वउ,  
धम्मत्थें शालसु नउ किण्वउ ।  
विककमराय हो ववगय कालए,  
महि-सायर-गह-रिसि अंकालए ।  
कत्तिय-सिय अट्टमि बुइ वासर,  
हुउ पणिपुणु, पढम नंदीसर ।  
णहु मही-चंडु-सूरु-तारायणु,  
सुर-गिरि उवहि ताउ सुह भायणु ।  
जाता खंदउ कलिलु हरंतउ,  
भविय-जणहिं वित्थारिज्जंतउ ।

घत्ता—इय चउविह संवह जिहुणिय विग्गहं

णिएणसिय भव-जर-मरणु ।

जसकित्ति-पयासणु अक्खलिय-सासणु

पयहउ संति सयंभु जिणु ॥२३॥

इय पंडव-पुराणे सयल-जण-मण-सवण-सुहयरे सिरि-  
गुणकित्ति-सिस्स-मुणि-जसकित्ति-विरइए साधु - वीरहा-पुत्त  
हेमराज - णामंकिए - खेमिणाह-दुधिट्टर-भीमाज्जुण-निव्वाण  
गवणं, नकुल-सहदेव-सव्वट्टसिद्धि-बलदइ - पंचम - संग  
गमण - पयासणो णाम चउतीसमो इमो संगो समत्तो  
॥संधि ३४॥

मिरि कट्टमंघ माहुरहो गाच्छि, ल  
 पुक्खर-भागु मुणिवरवई वितच्छि ।  
 नंजायठ वीर जिणुअकमेण,  
 पयिवाणिए जइवर यिइयएण ।  
 मिरि देवसेणु तइ विमलसेणु,  
 तइ धम्मसेणु पुणु भावसेणु ।  
 तहो पट्टि उवएणउ सहसकित्ति,  
 भणउरव भमिय जए आमु कित्ति ।  
 तइ निअवायठ मुणिए गुणकित्ति यामु,  
 तरलेणं जामु सरोह खामु ।  
 तहो एव वंघउ जसकित्ति जाठ  
 आयरिय (शामिय दोमु-नाउ ।  
 ते एव बुद्धिए विरइयउ गंधु,  
 भवियहं दाविय-मुह-भाग-वंधु ।

जय सेय-मेय क्रिय-विणय-सेय,  
 जय चागुपुजज भव-जउद्धि सेय ।  
 जय विमल विमल गुण-गए-महंण,  
 जय संत दंत त्रियउर भवोत्त ।  
 जय धम्म धम्म विव हरिय ताव,  
 जय मंनि ममिय-मंतार-मात्र ।  
 जय कुंधु मुखिवण-मुहुर-माणिय,  
 जय अरिणिण चक्की सपल-याणिय ।  
 जय मल्लि सिहय-तिल्लोको-मण्ण,  
 जय मुणिसुण्य चूविय-नि-मएज ।  
 जय यमि त्रिय विस-रह-चउरकोमि,  
 जय जहिय राय रायमह येमि ।  
 जय पाण अमुर-एम्महिय-माण,  
 जय वीर विहामिय-णय-पमाण ।

(मति धामेर और देहली पंचायती मंदिर शास्त्रमंडारसे,  
 सं० १६१२, सं० १६६१)

२२ हरिवंशपुराण

( म० यशःकीर्ति ) रचनाकाल सं० १२००

आदिभागः—

पपडिय जयहंसहो कृष्णविहंसहो भविय-कमल-भरहंसहो ।  
 पपडियि विहंसहो मुणियजयहंसहो कइ पपडमि हरिवंसहो ॥

जय त्रिवद विमंथिय त्रिय-पयाम,  
 जय मज्जिय-भजिय ह्य-कम्मपाय ।  
 जय मंगव भय-उठउर-कुठार,  
 जय अमित्थंय परिमंथिय बुवारि ।  
 जय मुमहं मुमय पपडिय-वय-य,  
 जय पठमापह यामिय-जुणिय ।  
 जय जय मुणाय हप-कम्मपाय,  
 जय चंदपद मयि-भाग-भाय ।  
 जय मुणिकि मुणिकि-वचउउ-उरोण,  
 जय सीपच विण सानो-वपीय ।

घटा—

पुणु विणय-सरिय मय-भउवीर वीण एइ गुण मूरिवरा ।  
 उयज्जाय मुणाह हुय सिवलाह पणविपियडमि कइ पवरा ॥१

पुण्य पुराण चागु अइ विणय,  
 काल-यहाणे भजियहं दुत्तर ।  
 अयरवाल-जुल-कमल-दियेणम,  
 दिउचंडु माह भविय-जय-मणहए ।  
 वामु भजज वालुहिइ भयिउजइ,  
 दाय गुणहि लोणह भुविउजइ ।  
 सत्त्व-मील-आहारपाहि सोहिय,  
 भाए मुणियि कंचेपाहि ए मोहिय ।  
 ताहि पुणु विणयाण विवायउ,  
 दिउठो यामपेउ इहु जणउ ।  
 तहो उवरोहं मइ यहु पाउउ,  
 यिमुणहं भवियव-चाय-विमुणउ ।  
 जामु मुपंगणं महाउ-विउजइ,  
 मणउउणहं सुद-मंगउउ ।  
 अइ महंणु विणयवि जणु मंकिउ,  
 ता हनिवंणु मइमि घोमिंकिउ ।  
 मर-पाव-मंघ-जुमंउ,  
 जिणुमेणहो मुणहो यहु पयडिउ ।  
 तइ सीणु वि गुणभए वि मुणिदु,

हयमस्त्रिहा अइ याम धामेर मयिमें महीं हें, मयि-  
 येणहोको कूरये एउ मया जान पइता हें । किणु  
 पंशःवो मंदिर देहली ये शास्त्र-मंडारकी मयिमें मीजइ  
 हें, इयो पर ये यहाँ दिता गया हें ।

वाईहिं कुंभदारण-मयंदु<sup>१</sup> ।  
 सज्जण-दुज्जण-भट अचगणिवि,  
 ते णिय-णिय-सहाव-रय दोणिवि ।  
 कहुयउ-णिवु-महुरु इंगाली,  
 अंबिलु दीयपूर-चिंशली ।  
 तिह सज्जण सुसहायें वच्छलु,  
 दुज्जण दुत्थ गहइ कवियण दलु ।  
 लेउ दोसु सो मइं मोकल्लिउ,  
 जइ पिक्खइ ता अच्छउ सलिलउ ।

× × ×

अन्तिमभागः—

इह हरिवंसु सत्थु मइ अक्खिउ,  
 कुरुवंसहो समेउ णउ रक्खिउ ।  
 पढमहि पयडिउ वीर-जिणेंदे,  
 लेणियरायहो कुत्रलय-चंदें ।  
 गोयमेण पुणु किय सोहम्मं,  
 जंबूसामि विणहु सणामें ।  
 खंडिमित्त अवरज्जिय णाहें,  
 गोबद्धणेण सु भट्टयवाहें ।  
 एम परंपराणु अणुलगाउ,  
 आहरियहं मुहाउ ध्यावगाउ ।  
 सुणि संखेव सुत्तु अवहारिउ,  
 सुणि जसक्कित्त महिहि वित्थारउ ।  
 पद्धडिया छंदें सुमणोहरु,  
 भवियण-जण-मण-सवण-सुहंकरु ।  
 करि वि पुणु भवियहं वक्खाणिउ,  
 दिडु मिच्छत्तु मोह-अवमाणिउ ।  
 जो इउ चरिउ वि पढइ पढावइ,  
 वक्खाणेण्णियु भवियहं दावइ ।  
 पुणु पुणु सहहेइ समभावें,  
 सो मुच्चइ पुव्वक्किय-पावें ।  
 जो आयरइ ति-सुद्धि करेण्णियु,  
 सो सिउ लहइ कम्म छेदेण्णियु ।  
 जोणु एम चित्तु णिसुणेसइ  
 सग्गु-मोक्खु सो सिग्गु लहेसइ ।

एउ पुराणु भवियहं आसासइ,  
 आयु-बुद्धि-बलु-रिद्धि पयासइ ।  
 वहरिउ मित्तत्तणु वरिसावइ,  
 रज्जयिउ विरज्जु संपावइ ।  
 इट्ट समागसु लाह मुहाइवि,  
 देवदित्ति वरु मच्छरु सुचिन्नि ।  
 गह साग्गुग्गह सयल पयट्टिहें,  
 मिच्छाभाव खण्णुहें तुट्टिहें ।  
 आवइ सव्व जाहिं खम भावें,  
 सुह-विलास वरि होहि सदावें ।  
 पुत्त-कलित्तयियहं सुपुत्तहं,  
 सग्गवियहं अणु हुज्जइ ।  
 जो जं इच्छइ सो तं पावइ,  
 देसंतरि गउ णिय वरि आवइ ।  
 भवियण संयोहणहं णिमित्तें,  
 एउ गंधु किउ णिम्मल-चित्तें ।  
 णउ कवित्त कित्तहें धणलोहें,  
 णउ कासुवरि पवडिइय मोहें ।  
 इंदउ रंदिणु हुउ संपुण्णउ,  
 रज्जे जलालखान कय उण्णउ ।  
 कम्मक्खय णिमित्तु णिरवेक्खें,  
 विरइउ केवल धम्मह पक्खें ।  
 अत्थ-विरुद्धु जं जि इह साहिउ,  
 तं सुयदेवि खमउ अवराइउ ।  
 खंदउ खरवइ णाय सपत्तउ,  
 सहता उवणिय पय पालंतउ ।  
 खंदउ जिणवर सासणु बहुगुणु,  
 खंदउ सुणिणणु तह सावय जणु ।  
 कालि कालि कालिविणि वरिसउ,  
 खच्चउ कामिणि गोमिणि विलसउ ।  
 पसरउ मंगलु वज्जउ महलु,  
 खंदउ दिउडासाहु गुणग्गलु ।  
 जावहि चंदु सूरु तारायणु,  
 खंदउ ताम गंधु रंजिय जणु ।  
 विक्कमरायहो ववगय कालइं,  
 महि इंदिय दुसुण्ण अंकालइं ।  
 भादवि सिय एयारसि गुरुदिये,  
 हुउ परिपुण्णउ उग्गतहिं इणे ।

१ यह पंक्ति आमेर प्रतिमें नहीं है, किन्तु पंचायती मंदिर देहली भंडारकी प्रतिमें पाई जाती है ।

मय आर्त्तम मंग म-भाण्डु,  
गोप-पमाणु अणुदृष्टं जाण्डु ।

पना—

हरिवंसु ण्डु महं वज्ररिठ हरिवलणोमहिं चरिउ विमिठ्टु ।  
परियादिण् धदिठ मुणोसरहं तं तिह भवियहं सिठ्टु ॥

इह कट्टसंधे माहुरहं गच्छि,  
पुक्खरगणे सुणिवर-वह् मिळच्छि ।  
मंत्राय। वीर जिणुपकमेण,  
परिवाडिय अद्दयर णिहयपय्य ।  
सिरि देवसेणु तह विमलसेणु,  
मुण्णि धम्मसेणु तह भावसेणु ।  
सहो पट्ट उवण्ण उ सहसकित्ति,  
अवयय भनिय जण्ण वासु कित्ति ।  
सहो सीसु भिद्धु, गुणुक्कित्ति वासु,  
सव-सेणुं जासु तरीरु वासु ।  
सहो बंधउ जस मुण्णि सीसु राठ,  
आयरिय पणाविय दोसु-राठ ।  
सहो पट्टे भिद्धुठ मलयकित्ति,  
मलधारि सुणोमरु पयडिकित्ति ।  
तह अण्णहं मातठ दिण्ण चाठ,  
आमीयासु विज्जय थयदु जाठ ।  
इह जोयण्णिपुग, बहु पुर हंगार,  
धण-धण्ण-मुयण्ण-अरेहि फारु ।  
सरि-सर-अण-उवयण्ण गिरि-विसासु,  
गंमोर परिह उणुं गु सासु ।  
जठणाण्डु सहो पामिहि व्हंनि,  
यार-आरि जण्ण कीरंनि थंनि ।  
जहि धरि-वरि इंगर भूह-ठण,  
धरि धरि विण्ण विण्ण-भोरोहि रण ।  
अण्णवरउ जण्ण वट्टह मुनिवणु,  
वट्ट अोर-भारि वट्ट इय-दुवणु ।  
अहि कालि कालि धरिंनि मेइ,  
वंदहि थायर-अण्ण अण्ण-वेइ ।  
जहि येरावड उणुं गु वट्टु,  
धव रण्ण-म-वंदहि वं वरिंनु ।  
जिण-वट्टिमा मंदिठ रिण्ण-अण्ण,  
वट्टुणु म उवण्ण उवण्ण-अण्ण ।

पत्ता—

तहि जिणवर-मंदिर थयण्णान्दिरि, आहवि रिमि मुह अण्णहि  
सावय-वय-पालहि जिणु जयकारिं मानिय दाणु पयण्णहि ॥

जहि हूंगर पंडिउ अह मुदवणु,  
अणुदिय परिपोमह धम्म-पण्णु ।  
तहि अवरवाल-वंसहं पहाणु  
विरि गग-भोत्त रणं सेय भाणु ।  
जं रूपं वेणुज्जय काम-शाणु,  
दिउचंद साहू किय पत्त-शाणु ।  
भत्तारहो भतिय इट्टु पत्ति,  
बालुदिय याम थय-विण्णय-गुत्ति ।  
तहि वंदण्ण चत्तारि वि महत,  
संधो दिउडा-दुसाहि उण  
जो पदम गुण्णगुलु आसाराठ,  
थिय पिय तोसउई थदराठ ।  
मुउ चोवा जिण-मुय-भन माहू,  
पिय थम योधाही थदगाहू ।  
पुणु दिवचंद भज्जहि गण्णहूउ,  
गुण अण्णगु देओ याम वीठ ।  
देओ पिय परिह्व महु-यायि,  
थय-अण्ण-मील-गुण-रयण्ण गायि ।  
मूतू यामं जिण्णमय विणीय,  
कीलंतह गा थंदण पण्ण ।  
भोरहणु लखमाणु तहं गोउंद दणु,  
दाणुअण्णिगु गं कण्णरुणु ।  
देओ बीया भज्जा गुण्ण,  
देओ यामं मधंण वण्ण ।  
जिण-मायण्ण वण्ण गुदभाव,  
जिण-ण्ण-दाणु रय-रिठ सहाव ।  
गोउंद पिय ओरही गुण-मण्णु,  
पिय-पाय-भणु जिण्णवासु-गुणु ।  
दिउडा माहूदि रिण-अण्ण-विणीय,  
पूहहाही मइ सोसेणु गांय ।  
तहं लाणो यामं थयर भाज,  
मंवरं विण्णयावर अह सतज्ज ।  
भत्तारहो भनिय विण्णयण्णि,  
रुणे इह पिय इव कण्ण-अण्णि ।

तहो पुत्त वीरदासुवि गुणुं,  
पिय साधाही रुवं अणुं ।  
तहो रांदणु सामें उदयचंदु,  
पिय-माय-कुसुयवणणाइ इंदु ।  
तुरियउ रांदणु हुमासयत्तु,  
पाहुलुही पिय करमसिंह बुत्तु ।

घत्ता—

पुयाहिं मज्झि रांदणु तइयो, दिउचंदु साहुहिं कि यणियज्जइ ।  
दिउढाणामें सुद्धमणु सिद्धि सुदंसणु इव जाणियज्जइ ।

अरहंतुवि एकु जि जो भावइ,  
ववहार सुद्धणउ भावइ ।  
जो तियाल रचणत्तउ अंचइ,  
चउ-णियथोय रइ-कहव ण मुच्चइ ।  
चउविह संवहं दाणु कयायरु,  
मंगल उत्तम सरण विणय-परु ।  
जिणवरु धुहवि तिकालहिं अंचइ,  
धणु ण गणेइ धम्म-धणु संचइ ।  
जो परमेद्धि पंच आराहइ,  
पंचवि इंदिय-विसयइं साहइ ।  
जो मिच्छत्त पंच अन्नगणणइ,  
पंचम गइ णिवासु मणि मणणइ ।  
जो अणुदिणु छवकम्म णिवाहइ,  
दाण-पूय-गुरु-भक्तिहिं साहइ ।  
जो छज्जीव-निकायहं रक्खइ,  
छह दच्चहं गुण-भाव णिरक्खइ ।  
सत्त-तच्च जो णिच्चारहइ,  
सत्त-वसण दूरेण पमायइ ।  
सत्तावि दायारह गुणजुत्तउ,  
इह परसत्त भयहं जो चत्तउ ।  
अट्ठ मूलगुण जो परिपालइ,  
उत्तर गुण सयल वि संभालइ ।  
सहं सण-अट्ठंग-रयण-धरु,  
मज्ज-दोसु परिवज्जण-तप्परु ।  
णव णव णयवि पयत्थइं वुज्झइ,  
दह-विह धम्मगगहण वि रुच्चइ ।  
पुयारह पडिमउं जो पालइ,  
वारह वयइं णिच्च उज्जालइ ।

जो वारह भावण अणुचितइ,  
अप्प-त्तरुव भिणणु तणु मणणइ ।  
दिउढा जसमुणि पयि पवित्ठुवि,  
काराविट हरिवंसु-चरित्ठुवि ।

घत्ता—

जामहिं णहु सायरु चंदु दिवायरु ता रांदउ दिउढा हु कुलु  
जें विणुहुहिं पुरियउ कुल-वंसहं सणियउ काराविट हय-पाव

इय हरिवंसपुराणे कुलवंस-साहिदिठणु विणुह-विचयण  
रंजण-विनिगुणकित्ति-सीसु मुखियजसकित्ति-विरइणु  
दिउढा-सामंकिणु येमिणण-सुहिट्टिर-भीमाज्जुण-विचयण  
गमण (तहा) णकुल-सहदेव सच्चट्टिसिद्धि-गमण-चरणण  
खाम तेरहमो सगो समत्तो ॥ संधि १३ ॥

(लिपि सं. १६४४ पंचायती मंदिर दिल्ली शास्त्र भंडारसे)

२३—जिणरत्ति कहा (जिनरात्रिव्रत कथा)

भट्टारक यशःकीर्ति

आदिभाग :—

पणविधि सिरिमंतहो अइसय-जुज्जो वीरहो नाणिय-पावमलु  
णिच्चल मण भक्खहं पियलिय-गाव्वहं अक्खमि कुहु जि  
रत्ति फलु

परमेद्धि पंच पणविधि महंत,  
तइलोय णमिय भव-भय-कयंत ।  
जिय-वयण-विणियगय दिच्चवारिण,  
पणमेवि सरासइ सहखाणि ।  
णिग्गंथ उहव-परिसुक्क-संग,  
पणवेवि मुणीसर जिय-अणंग ।  
पणविधि णियगुरु पयडिय-पहाउ,  
फलु अक्खमि जिणरत्तिहि जहाउ ।

अन्तिमभाग :—

णिसुणिवि गोयम भासिउ णिराउ,  
चउ गहिउ ऋत्ति मणि करि विराउ ।  
जिणु वंदिवि तह गोयसु गणेसु,  
णिय शयरु पत्तु सेणिउ णरेसु ।  
दह-तिउण वरिसि विहारिवि जिणेंदु,  
पयडेवि धम्मो महियलि अणेंदु ।  
पावापुर वर मज्झिहि जिणोसु,  
वेदिय सह उज्झिवि सुत्तिइंसु ।

चउमेसह कम्मइ करि विद्यामु,  
संपत्तउ मिद-विद्याम-वामु ।  
देवाली धम्मावम छलेउ,  
महो देउ बोहि देवाहिदेउ ।  
चउदेव-विद्यायहं अहमलुग्ग,  
आइवि विरह्य दिव्याण-पुत्त ।  
जिइ विमिउउ जो जि करेइ भग्नु,  
पावेइ मोरगु मंहरिय-नाथु ।

पक्षा—

जिण विमियउ कल अकिउउ गुणहं कित्ति मुणीसे ।  
मिरिजमकित्ति मुखिंउ कुपलपचंउ जिणगुण-भक्तिवित्तमे ॥११॥  
अमुणिय कअरवित्तमे तह वि जे वीरगाह-अपुराणं ।  
विदुअणेण रहयं तं मयलं भारही अमअो ॥

इति जिनरात्रियत कथा—(आमेरशास्त्र भंडारमे)

४२ रविचउ कथा (रविम्रन कथा)

भ० यदाःकीर्ति

आदिभाग :—

आदि अंन जिणु वंदिवि मारद,

धरेवि मयि गुरु निग्गंध श्वेत्पिय ।

गुणपहं अरुमरेवि पुच्छंउ अउयगहं पामपाह तहं रवि-अउ  
पमअमि मावपहं, जामु करंगहं लज्जहइ संपह परा ॥

अन्तिसभागा :—

पामजिणेंद पमायं दिवमहं मो कइह,

वंदिय मुरजन पामहं भणउ यउ लवइ ।

जो इहु पइह पउरइ थियुणइ कणु दइ,

मो जयइति पंअविधि पाइइ परम गइ ॥२०॥

(दिक्ती पंचापमो मन्दिर शास्त्र भंडारते गुच्छेने)

२५—पामसाह-चरिउ (पार्ष्णेनाथ चरित)

(अवि श्रीधर) रचनाकाल सं० ११-६

आदिभाग—

पूरिध भुषणमहो पाउ-अणमहो  
दियमन-गुण-मदि-मल-भरिउ ।  
मंदिहय मअणमहो पणदेरि पणहो  
पुउ पवडमि तामु ति अरिउ ॥

× × ×

विरण्वि वंदपहचरिउ चारु,  
चित्तर चरिय कम्म दुग्गारहाण ।  
विहरंते कोउगहल वसेय,  
परिहणिय वाएमरि रमेय ।  
मिरि-अवरपाल-गुल-अंभणेष,  
जलथी-कीलहा-गहनुयेण ।  
अणवरय विणय-परापारहण,  
कइण। सुइ गीरह-तणुगहेण ।  
पयडिय निहुअण-अइ गुणभरेण,  
मंणिय सुदि सुअणें मिरिहरेण ।  
जडैण-सार्तर मुर-पर दिवय-हार,  
अं पार विनासिणिय-अउर-हार ।  
दिंदार-दिइ-उपरिय-विहल,  
कीलिर रहं गंवाअउ धरियउ ।  
सेगल-माल-रोमावतिलल,  
सुहयल-मण-परिंअण दइणल ।  
अमराउलि-येथी-यलय-अरिउ,  
पणुणल-पोम-दल-दीहरिउ ।  
पउपाइय सतिजाननजाहिं,  
विण्हइय-अणवय तणु-साव-याहि ।  
यलमय-अणमय-जल धुमिण जिज,  
दर पुडिय-विणियउ दमय-दिदि ।  
विमंन मरोगइ पवर-अच,  
रययावर-पवर-निवाउ रत्त ।  
विउलामअ पुडिल विपय जामु,  
उत्तियपी अयणहि दिदु तामु ।  
हरियाणुए देमे अहंरागामे,  
गामिदिय अविध अणवरय कामे ।

पक्षा—

परपरक-विदहणु मिरि-अंधणु, जो मुरयइया परिमायउ ।

रिउ रदिराहणु विउलु पयहणु, दिह्मि धामेण जि मखिउ ॥२

× × ×

अहिं अमि-अर-गोडिय रिउ-अणु,  
अरणाहु वदिउ, अणंमवातु ।  
धिरणु वदिउ ६४मी-रवीर,  
वंदियअ-रिद-परियण-धीण ।  
दुग्ग-दियवारात दउय-सीर,  
दुषयय-अणय-दियमय-ममीक ।

बल-भर-कंपादिय गायराउ,  
 माणियि-ग्रण-मण-संजणिय-राउ ।  
 तर्हि कुल-गयणं गणोसिय पयंगु,  
 सम्मत्त विहूसण भूवियंगु ।  
 गुरुभत्ति गविय तेल्लोक-णाहु,  
 दिट्ठउ अल्लहाण णामेण साहु ।  
 तेण वि णिज्जिय चंदप्पहासु,  
 णिसुणेवि चरिउ चंदप्पहासु ।  
 जंपिउ सिरिहरू ते धरणं त,  
 कुलवुद्धि विहवमाण सिरियवंत ।  
 अणवरउ भमइं जणि जाहिं कित्ति,  
 धवलंती गिरि-सायर-धरित्ति ।  
 सा पुणु हवेइ सुकइत्तणेण,  
 वाएण सुएण सुकित्तणेण ।

घत्ता—

जा अत्रिरल धारहिं जणमण हारहिं दिज्जइ धणु वंदीयणाहं ।  
 ता जीव गिरंतरी भुअणएभंतरी भमइं कित्ति सुंदर जणहं ॥४

पुत्तेण विलच्छि-समिद्धएण,  
 गय-विणय सुसील-सिण्हएण ।  
 कित्तणु विहाइ धरणियलि जाम,  
 सिसिरयर-सरिसु जसु ठाइ ताम ।  
 सुकइत्ते पुणु जा सलिल-रासि,  
 ससि-सूर मेरु-णक्ख त-रासि ।  
 सुकइत्तु वि पसरइ भवियणाहं  
 संसग्गं रंजिय जण-मणाहं ।  
 इह जेजा णामें साहु आसि,  
 अइ णिम्मलयर-गुण-रयण-रासि ।  
 सिरि-अयरवाल-कुल-कमल-मित्तु,  
 सुह-धम्म-कम्म-पवियण-वित्तु ।  
 मेमडिय णाम तहो जाय भज्ज,  
 सीलाहरणालंकिय सलज्ज ।  
 बंधव-जण-मण-संजणिय-सोक्ख,  
 हंसीव उहय-सुविसुद्ध पक्ख ।  
 तहो पढम पुत्तु जण वयण रामु,  
 हुउ आरक्ख तसजीव गामु ।  
 कामिणि-माणस-विहवण-कामु,  
 राहुउ सब्वत्थ पसिद्ध णामु ।

पुणु वीयउ विवुहाणंद-हेउ,  
 गुरु भत्तिण संथुअ अरुह-देउ ।  
 विणयाहरणालंकिय-सरीरु,  
 सोढल-णामेण सुवुद्धि धीरु ।

घत्ता—

पुणु तिज्जउ खंदणु गायणाणंदणु जणे णट्टलु णामें भणितं ।  
 जिणमइ णीसंकिउ पुणणालंकिउ जसु पुहेहिं गुण गणु गणितं ॥५

जो सुंदर बोया इंदु जेम,  
 जण-वल्लहु दुल्लहु लोय तेम ।  
 जो कुल-कमलायर-रायहंसु,  
 विहुणिय-चिर-विरइय-पाव-पंसु ।

तिरथयर पयट्टावियउ जेण,  
 पढमठ को भणियइं सरिसु तेण ।  
 जो देइ दाणु वंदीयणाहं,  
 विरएवि माणु सहरिस मणाहं ।  
 पर-दोस-पयासण-विहि-विउत्तु,  
 जो ति-रयण-रयणाहरण-जुत्तु ।

जो दित्तु चउव्विहु दाणु भाइं,  
 अहिणउ वंधू अवररिउ णाहं ।  
 जसु तणिय कित्ति गय दस दिसासु,  
 जो दित्तु ण जाणइं सउ सहासु ।  
 जसु गुण-कित्तणु कइयण कुणंति,  
 अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति ।

जो गुण-दोसहं जाणइं वियारु,  
 जो परणारी-रइ णिवियारु ।  
 जो रूच-विणिज्जिय-मार-वीरु,  
 पडिवरण-वयण-धुर-धरण-धीरु ।

घत्ता—

सोमहु उवरोहें णिहय विरोहें णट्टलसाहु गुणोह-णिहि ।  
 दीसइ जाएप्पिणु पणउ करेप्पिणु उप्पाइय भव्वयणदिहि ॥६

तं सुणिवि पयंपिउ सिरिहरेण,  
 जिण-कव्व-करण-विहियायरेण ।  
 सब्वउ जं जंपिउ पुरउ मज्झु,  
 पइ सन्भावें बुह मइ असज्झु ।  
 परसंति एत्थु विवुहहं विवक्ख ।  
 बहु कवड-कूट-पोसिय सब्वक्खु ।

अमरिण धरणीपर विर विजग,  
 शर मरुप निरग्य मुह कण्ठलम्ग ।  
 अमहिय परणर गुण गरुण रिदि,  
 दुष्यवण हृषिय पर कज्ज सिदि ।  
 अयण सा मोडण मय रिणल,  
 भूमिठ डिमंगि विदिप गुणिल्ल ।  
 को सक्कइ रजय ताहं विचु,  
 सज्जण पयट्ठिय सुअणत्त रिचु ।  
 तहि लइ महु कि गमयेण भव्व,  
 मय्यवण-अंशु परिहरिय-भाव ।  
 तं सुणिवि भणहं गुण-नयय-धामु,  
 अल्लुण यामेण मयोहिरामु ।  
 पउ भयिठं काइ पइं अरुदभत्तु,  
 किं सुणदि य एट्टलु भूरिसत्तु ।

पद्य-—जो धम्म-पुरधर उखणय-कंठर सुअण-सहावात्तंकरिठ  
 अणुदियु गिच्छलनणु जमु संधवणु करइ वयणु येदावरिठ ।\*

जो भयनभाव पयडय समणु,  
 ण कया वि जासु भाविठ विरएणु ।  
 याइएणइ वयणइं दुज्जयाहं,  
 मम्मणु करइ पर सज्जयाहं ।  
 मंमणु ममीहइ उत्तमाहं,  
 त्रियधम्म विहायें विज्जमाहं ।  
 विरु करइ गोदिट्ठ सहुं बुद्धययेहि,  
 मण्यण-रियारण द्विय-मयेहि ।  
 किं बहुण। तुम्हु ममाविण्य,  
 अण्ड अण्येण वमंविण्य ।  
 महु वयणु य आलइ सो कपावि  
 जं भयमि करइ सहुं तं सपावि ।  
 ते जिमुणिवि मिरिहक अजित तेणु,  
 उअरिहट्टइ एट्टलु टाई जेणु ।  
 तेणुवि तहो आवहो विहइ माणु,  
 गणाय मंवालायण ममाणु ।  
 जं गुण ममि पयिरहइ किंवि,  
 इइ विदिस्सेय वरिसुवह तंवि ।  
 एणु एणु गियेहे मज्जित जान,  
 अइहण यामेण पइणु जाम ।

पद्य-—

मो एट्टलु विरिचन धरिय इच्छय

भणमि विवि पइं परम मुदि ।  
 पर समय परमुह अगणिय दुम्मह  
 परिवाणिय त्रिय समय विदि ॥८॥  
 कारवेवि खाहेपहो विण्हेउ,  
 पविइएणु पंच वण्यं सुकेउ ।  
 पइं पुणु पइट्ट पविरहय जेम,  
 पामहा चरिचु जइ पुणवि तेम ।  
 विरयावहि ता संभवइ मोवणु,  
 कालंतरेण पुणु कम्ममोवणु ।  
 मिनिरयर-विंवे णिय जयण यामु,  
 पइं होइ अडाविठ चंइ-धामु ।  
 तुम्हु वि पसरइ जय जमु रसंत,  
 दस दिवहि मयल अमहण हंमंतु ।  
 तं जिमुणिवि एट्टलु भणइं साहु,  
 महुपाली पिय धम तणउं साहु ॥

भणु रंउ रसायणु मुइ पयामु,  
 रच्छइ य कामु हपणु पयामु ।  
 एणंतरि सिरिहक युत्त तेणु,  
 एट्टलु यामेण मणोहरेण ।  
 मो तहु महु पयट्ठिय येहभाउ,  
 तुहुं पर महु परिवाणिय सहाउ ।  
 तुहुं महु जय मरसीरइ मुमाणु,  
 तुहुं महु भागहि एं गुण-विहाणु ।  
 पइं होतएण पामहो अरिणु,  
 आयएणमि पयट्ठि पाथरिणु ।  
 तं जिमुणिवि विमुणितं करिउरेण,  
 अयवरउ लइ-भरमहु-अरेण ।

पद्य-—

विरपमि तपणवे पविमल्ल मांये  
 एउ धयणं पासहो चरिउ ।  
 पर दुज्जय विपरहो हयणुमा पयरहि  
 पर पुणु थापरायक अरिउ ॥ १ ॥

× × ×

इय मिरिचानअणिय' रदयं पुइ-विरिहरेण गुण-अरिय ।  
 अणुमरिण्यं मयणोग्रं सइल-यामेण भय्येण ॥ १ ॥  
 विज्जंत-विमादाभो बग्गादेशु चंदयो जाभो ।  
 कएणएणु अविअयं वडमो संयो परिचमणो ॥ १ ॥ सं.प. ११



अन्तिमभाग :—

राहव साहुहें सम्मत्त-लाहु,  
संभवउ समिय संसार-नाहु ।  
सोढल नामहो सयल वि धरिति,  
धवलंति भमउ अणवरउ किति ॥  
तिगिण वि भाइय सम्मत्त-जुत्त,  
जिणभणिय धम्म-विहि करण धुत्त ।  
महिमेरु जलहि सखि सूरु जाम,  
सहुँ तणुरुहेहिं रांदंतु ताम ।  
चउविहु वित्थरउ जिणिद-संबु,  
परसभय खुइवाइहिं दुलंघु ॥  
वित्थरउ सुयजसु भुअणि पिल्लि,  
उट्टउ तडित्ति संसार-वेल्लि ।  
विक्कम एरिंद सुपसिद्ध कालि,  
डिल्ली पट्टणि धण कण विसालि ॥  
सणवासि एयारह सएहिं,  
परिवाडिण वरिसहं परिणएहिं ।  
कसणट्टमीहिं आगहणमांसि,  
रविचारि समाणउ तिसिर भासि ॥  
सिरि पासणाह सिम्मंलु चरित्तुं,  
सयत्तासल-गुण रयणोह दित्तु ।  
पणवीस सयइं गंधहो पमाणु,  
जाणिज्जहिं पणवीसहिं समाणु ॥

घत्ता—

जा चन्द दिवायर महिह रसायर ता बुहयणहिं पडिज्जउ ।  
भवियहिं भाविज्जउ गुणहिं थुण्णिज्जउ वरलेयहिं लिहिज्जउ ॥८  
इय पासचरित्तं रइयं बुह-सिरिहरेण गुणभरियं ।  
अणुमणियायं मणुज्जं एट्टल-णामेण भव्वेण ॥  
पुव्व-भवंतर-कहणो पास-जिणिदस्स चारु-निव्वाणो ।  
जिण-पियर-दिक्ख-गहणो वारहमो संधी परिसम्मत्तो ॥

संधि १२

आसीदन्न पुरा प्रसन्न-वदनो विख्यात-दत्त-श्रुतिः,  
सूत्रं पादिगुरौरलंकृतमना देवे गुरौ भाक्त्रिकः ।  
सर्वज्ञ क्रम-कञ्ज-युग्म-निरतो न्यायान्वितो नित्यशो,  
जेजाख्योऽखिलचन्द्रोच्चिरमलस्फूर्ज्जद्यशोभूपितः ॥९॥

यस्यांगजोऽजनि सुधीरिह राघवाख्यो,

तिरि ...सर्व-दोषः।

अग्रोत्कान्वय-नभोज्ञण-पार्वर्येण्डुः,

श्रीमाननेक-गुण-रंजित-चारु-चेताः ॥२॥

ततोऽभवत्सोढल नामधेयः सुतो द्वितीयो द्विपतामजेयः ।  
धर्मार्थकामत्रितये विदग्धो जिनाधिप-प्रोक्कवृषेण सुग्धः ॥३

पश्चाद्भवुव शशिमंडल-भासमानः,

ख्यातः क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः ।

सदृशनामृत-रसायन-पानपुष्टः

श्रीनट्टलः शुभमना क्षपितारिदुष्टः ।

तेनेदमुत्तमधिया-प्रविचिंत्य चित्ते,

स्वप्नोपमं जलदशेषमसारभृतं ।

श्रीपार्श्वनाथचरितं दुरितापनोदि,

मोक्षाय कारितमितेन मुदं ध्यलेखि ॥५॥

—प्रति आमेर भंडार सं० १५७७

नोट—इसके बादमें एट्टलसाहुके सम्बन्धमें १५-२०  
पंक्तियाँ और दी हुई हैं जिनका सम्बन्ध प्रशस्तसे न होनेके  
कारण यहां नहीं दी गई ।

२६—वड्डमाणकव्व (वर्धमानकाव्य)

—कवि हरिइंद ( हरिश्चंद )

आदिभाग—

परमप्य भावणु सुह-गुण-पावणु णिहणिय-जम्म-जरा-मरणु ।  
सासय-सिरि-सुंदरु पणाय-पुरंदरु रिसहु णविवि तिहुयण-सरणु  
पणवेप्पिणु पुण अरहंताणं दुक्कम्म-महारि-खयंताणं ।  
वसुगुण-संजोय-समिद्धाणं सिद्धाणं ति-जय-पसिद्धाणं ॥१॥  
सूराणं सुद्ध चरित्ताणं-वय-संजम-भाविय-चित्ताणं ।  
पयडिय समग्गसस्तायाणं भव्वयणहो णिरुज्जायाणं ॥२॥  
साहूणं साहिय-मोक्खाणं सुविसुद्धज्जाण-विहि-दक्खाणं ।  
सम्मत्त-णाण-सुचरित्ताणं स-तिसुद्धएण वमि पवित्ताणं ॥३॥  
वसहाइसुगोत्तमाणां सु-गणाणां संजम-धामाणां ।  
अवहारि व केवलवंताणां ..... ॥४॥

× × × ×

अन्तिमभागः—

जय देवाहिदेव तित्थंकर,

वड्डमाया जिणो सब्ब-सुहंकर

णिरुवम करण रसायणु धणायउ,

कव्व-रयणु कंडलु भउ पुणायउ ।

सो रांदउ जो णियमणि मणणइं,

वीर-चरित्तुं वि [मणु] आयणणइं ।

सो खंदूत जो लिहइ लिहावइ,  
रस-रसदूह जो पढइ पढावइ ।  
जो पकथु पचइवि सुभग्गइ,  
मखि मरहणु करइ सुभग्गइ ।  
खंदूत देवराय खंदूत घर,  
होलिवन्मु कएणु च उरयाय कर ।  
पहु घरिनु जेण विप्यारिद,  
खेहारिव गुणियण उव्यारिद ।  
होउ मंति खीमेसइ भग्गइ,  
त्रिय-यण-भत्तइ विपलिय-नाव्वइ ।  
घरिमत मयल-पहुमि घरवारइ,  
मेइ-आणु पावम-यनुहारइ ।  
घरि-घरि मंगल होउ सउरण्यउ,  
दिणि-दिणि घण घणणइ संपुण्यउ ।  
होउ मंति घठगिह जिण-मंघहु,  
देमयान खरणाह हुलंघहु ।  
खंदूत सामणुं वीर-जिखिदहो,  
मंणियराय-पुदि-विशामहो ।  
मंदर-मिदुरि होउ जम्पुण्यउ,  
घरि-घरि हुंहुहि-मदुहु अणुण्यउ ।  
होउ सयल पूंणु मणोरह,  
परमाणंद पण्टउ हइ मइ ।  
अमिय-विइ उमहएवइ खंदूत,  
जगि जगि मिणु वि दुरिय-णिकंडंणु ।  
विण्यणेइ सम्मत्त दय डिज्जउ,  
सामय-सुर-विघानु महु दिग्गउ ।  
आदिहा साहु सारणु महुपंदणु,  
सउउण-अणमण-अणपाणंदणु ।  
होउ विराटस विण-इअ-मंडणु,  
मग्गहा-उण दुइ-सोह विइणु ॥  
होउ मंति मयन्नइ परिभाइ  
भोग पण्टउ गुण-उय-धारइ ।  
पउमणुंदि सुविणार मविणुहु,  
अण मणु गुण बइ हरिइंदहु ।  
जे होदारिद कणु-नमहइ,  
पउ सिद्ध सम्मइ करिणइइ ।

तं मुअणाय-देवि जगसारी,  
महु अराहु स्वमत भंडारो ।

दय-धम्म-पवत्तणु विमल सुकित्तणु विमुकण्हो जिणइंदहो ।  
जे होइ सुपण्णउ हउ मणिय मण्यउ तं सुइ जगि हरिइंदहो ॥  
इति श्री वर्षमानकाल्ये श्री श्विकचरित्रे एकादशमः मंघिः ।  
प्रति जैनसिद्धान्तभवन आरा क्रि० सं० १६००  
२७—भविसयत्त कथा (भविष्यदत्त-कथा)  
कवि भीघर, रचनाकाल सं० १२३०

आदिभागः—

मवि-यह जिणचरणइं सिव-सुइकरणइं पण्यवि विम्मल-  
गुण-भरिउ ।

आहाममि पविमल सुअ पंघमिकलु भविपत्त-कुमरहो चरिउ

× × ×

सिरि चंदवार-णयर-दिण्य,  
जिय-धम्म-करण उचकट्टिण्य ।  
साहूर-कुल-गणय तमोहरण.  
विउदणण सुयण मय घण हरेण ।  
खारायण-देह समुग्गवेण,  
मण-वयण-अय विदिय-अण्येण ।  
मिदि वामुण्य गुरु-भाण्येण,  
मय-अण्यिदि-णियउण-अण्येण ।  
खीसेमे सविलखण गुणालण्य,  
महवर सुपट्ट कालालण्य ।  
विण्यण्य मखिउ ओदेवि पाणि,  
मण्णु कइ सिरिहक भग्गण्यि ।  
इह दुलउहु होइ जोउइ एणु,  
खीसेमहं मं-साहिय परणु ।  
जइ कइव खइइ दइपहो वण्येण,  
अउणइ भमंणु विउ महरण्येण ।  
एण विउउ जाइ मग्गे रि सेणु,  
आपाहउ खदेमर पणु जेणु ।  
अइ खइइ जणु एण अणु-रिहेदि,  
रोपदि पीदिज्जइ हुइ-गिदेदि ।

अइ विदिय भापदि अण-अणोपरि अण्टेरइ विणनिय अणणु  
पय-पाण-रिहीउउ जाणइ पीणउ अणो अरि ओवेइ निणु उउ  
हउं अणइ भापइ मइ महए,  
मइं परिणउउ मंयर-आणु ।

कप्पयस्व विडलासणु सयावि,  
 दुल्लह्णु स्यणु व पुण्णेषण पावि ।  
 जइ पुयहिं चिरयमि खोवयारु,  
 उग्वाडिय सिव सउ हल्लय वारु ।  
 ता किं भणु कइ मइ जायणुण,  
 जम्मण-मह पीडा-कारणुण ।  
 पउ जाणि वि सुललिय पर्याहिं सत्थु,  
 विरयहिं पुण्णय मण्हक पसत्थु ।  
 महु तणिय माय णामेण सुत्त,  
 पायडिय जिणेषर भणिय सुत्त ।  
 वणिवइ भाविसयत्तह । चरित्तु,  
 पंचमि उववासहं फलु पवित्तु ।  
 महु पुरउ समक्खिय वण्ण तेम,  
 पुञ्जायरियहिं भासियउ जेम ।  
 तं णिसुणोविणु कइया पउत्त,  
 भो सुण्णउ पइं वज्जरिउ सुत्तु ।  
 जइ सुउक्क समत्थि णउ करेमि,  
 हउं अज्जु कहय णिरु परिहरेमि ।  
 ता किं आयइ महु बुद्धियाइं,  
 कीरइ विडलाणु स-सुद्धियाइ ।

धत्ता—किं वृहणा पुणु-पुणु भणिणं सावहाणु चिरणुवि मणु ।  
 भो सुप्पढ महमइ जाणिय भवणइ णु णणमि हउं मणो पिसुण-यणु

× × ×

इय सिरि-भविसयत्त-चरिणु विबुह-सिरि सुकइ सिरिहर-  
 विरहणु साहु खारायण-भज्ज-रुप्पिण-णामंकिणु भविसयत्त  
 उप्पत्ति-वण्णणो णाम पठमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि १

अन्तिम भागः—

णरणह विक्कमाहच्च काले  
 पवहतण सुहयारणु विसाले ।  
 वारहंसय-वरिसहिं परिणणहिं,  
 फाणुण-भासम्मि वल्लकल पक्खे,  
 दसमिहि दिणे तिमिरुक्कर विवक्खे ।  
 रविवार समाणुउ णउ सत्थु,  
 जिइ मइं परियाणुउ सुप्प सत्थु ।  
 भासिउ भविस्सयत्तहो चरित्तु,  
 पंचमि उववासहो फलु पवित्तु ।

—प्रति आमेरभंडार लिपि सं० १५३०

२८ संभवणाह चरिउ (संभवनाथ चरित)

कवि तेजपाल

आदिभागः—

पणविश्रिण्णहो चरिम जिणिवुहो वीरहो देसणणाणवहा ।  
 सेणियह्णु णरिदहो कुवल्लयचंदहो णिणुणह्णु भवियहो पवरकहा ।  
 सोणयारायहो लच्छि यथायहो सवल्लु सउणउं सुहयरु ।  
 कुवल्लय आसासणु तम-विण्णणासणु जयउ चरिउ णं हि मयरु  
 यत्तंतिल्लका—संबद्ध सत्तमधरा णियजीवके वि,

सीसेण ..... पाउलहि विवेउ ।

गांशु णिवदु अरुहस्स फलेण जस्स,

तदं सणस्स महिमा पयडेमि तस्स ॥३॥

अहो भवियहो णिसणुणह्णु थिरु कुण्णेहु,

सेणियचरित्तु जइ तह सुण्णेहु ।

चिरु पयटिउ गोयमसांमि जेम,

यहु रस रसउहु हउं भणमि तेम ।

इह दीवि भरु खेत्तंराल,

हिउ मगहदेसु निरि तरि विसाल ।

कणयधिय जो संदण यणेहिं,

तरु सहलिय कुसुमिय पल्लव घणेहिं ।

रयणापच्छ रयणापरेहिं,

उरणय वणुञ्च बहु-जल-सरेहिं ।

कय कणु व बहुरस-पोसणेहिं,

वल्लहदु व कय हल्लकरि सणेहिं ।

कणु व कंसा णिवक्कंदणेहिं,

अरु व सेविदु सक्कंदणेहिं ।

बहुधणवेसुव कय-विक्कणहिं,

मोमंसु व पोसिय तक्कणहिं ।

अज्जव महिव्व जण भोइणहिं,

समसरणु व संठिय जोइणहिं ।

जं सोइइ पुरु तहिं रायणेहु,

.....

जय पास वर भास पूरिय जणाणास,

जयवीर जिणइदु णिइह णिञ्जास ।

वारसंणि समयगय जिणसुहण्णिगय छइ सण पोसिय णिरय ।

दुविहालंकारहिं णेय पयारहिं सा भयवइ सह जयउ सय ॥१॥

पुणु पणवेमि हुण्णि तव-त्तेय-चारु,

चिर चरियकम्म दुक्खावहारु ।

सुणि सहसकित्ति धम्माणुवट्टि,

गुणकित्ति गुणायरु ताह पट्टि ।

वहो मीमु संय-अपद्धी-नियवासु,  
 जसकिच्चि जियापम पद-यपासु ।  
 तहो पदि महासुधि मलवकिच्चि,  
 उरुयिय जेष चारिच्च विवि ।  
 तहो मीमु णइममि खय-मिरेण,  
 परमपवठ म्हाइठ पवर जेष ।  
 हो पडम भाय वूरीकण्य,  
 हो भाणहिं थियमणु दियणु जेष ।  
 गुणभट्टु महामइ महमुणीसु,  
 जिणमंगहो मंडणु पंचमीसु ।  
 जे केवि भव्व कंदोइ-खंद,  
 पणपेय्यिणु तह चरविणु निंद ।

मुण्णि गुणकिच्चि मन्नाठ तत्त्व विचारठ सण्ण सुहंकर विणययल्लु  
 मइ पय पणवणहो भनि कुयंतहो कय-सति मंमयठ कल्लु ॥२॥

इह इणु दीवि भारहि पविदु,  
 षामेय विरिपहु विरि-भामिदु ।  
 दुणु वि सुग्गु जण जणिय-राउ,  
 परिहा परिपरियठ दीहकाउ ।  
 गोउर विर कलमाइय पयंगु,  
 षाया खण्णिणु चालिणि पंगु ।  
 जहि-जण थपण्णदिहाइं,  
 सुणियण-नाण-मंडिय-मदिहाइं ।  
 मोहंति गउर-पर कइ-मण्णहाराइं,  
 मणिय-जडिय कियामइं सुंदाइं ।  
 जहि वणहिं महायण थुय-यमाप,  
 पर-रमणिय परग्गुड सुक मय ।  
 जहि ममय करदि घट घट इउंति,  
 पडिमइं दिणि विदिमा पुठंति ।  
 जहि पणव-भानय धाविय सुरंग,  
 षांवारि-सामि मंगुर-संग ।  
 जो भुणिय येण-मुहायणेहि,  
 मरपमव धरम-गोहय मणेहि ।  
 मययण वि ममांइहिं जहिं मज्जमु,  
 केउंविणु मण्णवठ गुग्गु ।

वेउ-मीम-उरुउणु पविउणु पण्णु विरिपहु षामे इणिय-णिदि ।  
 तदि णिःमइ मदिपइं ऋंण मयपइं कइ-मण्ण-पवठं पयंगु निदि ॥३॥  
 किं कण्णमि कइ वरि-मरिय-जेउ,  
 मदि-महवि वपदां कय विवेउ ।

अउहरवेमि दुग्गह माहि (१),  
 षामे पविदु दुउउइमाहि ।  
 पत्तव षामि मंडणु प्रसेसु,  
 थियवज्जि त्तेहोविणु पुण्वदंसु ।  
 तिहुण्णियणु ए कोवि जे समु पयंगु,  
 वरियणदिदि विणियणु म्णयय दंतु ।  
 पच्छिम दिमि खरवइ जे नियति,  
 संवति चारु चवमर थियंति ।  
 उतर दिम खरवइ सुद वि कण्णु,  
 माथंति चारु होवती कण्णु ।  
 किं किं गुण वरवणि पवठ णासु,  
 षां ठोयविदिहिय मंभीरमासु ।  
 मय हदिदुय-यरु षां कण्णमसु,  
 प्रवदिणु जण वणहो विणुणु दुवणु ।  
 तहि कुउ मयथांगमि थिययंगु ।  
 मममन-कण्ण-भूमियंगु ।  
 विरि अयववाल कल कमल-निणु,  
 कुण्णदेवि मण्ण मिताणु गोसु ।  
 इह लममंवेउ षामेय षावि,  
 अइ थिम्मलयर-गुण-नयण-सावि ।  
 यालहाही षामे सासु भज्ज,  
 मीनाइरणालंकिय मयज्ज ।  
 तहो पडम पुणु जण-मययणामु,  
 हुअ अरकियणु तय जीव षामु ।  
 षामे थियमी जण-जलिय षामु,  
 पोयउ होलू सुग्गामिदु षामु ।  
 तहो बोद वरंगण नि-जयमर  
 षामेय महादिउटो सुनाए ।

नेहमि होहमि सुहज्जमण्णहिं अउउंति मोहइ सेउंठि धरु ।  
 जिम थंइ सुणंइहिं मलहरहिं तिणुउ विणेमर निउय पणु ॥४॥  
 तहं दिउदी पुण वपावि चारु,  
 निपत्तवि दि विविउय-वीर-साक ।  
 दिउमी षामे जण जडिय-मेउ,  
 गुण-भणिय मयउ-वण्णु वेउ ।  
 मग्गामुउ संपउ अयक जाउ,  
 विणुपाउरदाउंठियक काउ ।  
 जो दिणु दासु संदीयणं,  
 विणु वि मासु महायि-मग्गणं ।

जसु तणियकित्ति गय दस विसासु,  
जो दिंतु ण जाणइ सह सहासु ।  
जसु गुण कित्तणु कइयण कुणंति,  
अणवरउ वंदियण गिरु धुणंति ।  
जो गुण-दोसइ जाणइ विचारु,  
जो परणारी-रइ-णिव्वियाह ।  
जो रयणत्तय-भूतिय-सरीरु,  
पढियण-अयण धुर धरण धोरु ।  
रेहइ थील्हा णामेण साहु,  
गुरुभत्ति यविय तिल्लोक गाहु ।  
तत्साणुय अवरवि मल्लिदासु,  
को वरिणवि सबकइ गुण-सहासु ।  
जिणु कुंथुदासु वृष्ठमउ भाइ,  
जिण पुज्ज पुरंदर गुण विहाइ ।  
ता भणइं थील्हु ते धरणवत,  
कुल-वल-लच्छी-हर णाणवत ।  
अणवरउ भमइ जणि जगि जाइं कित्ति,  
धवलंती सयरापर धरत्ति ।  
ता पुणु हवेइ सुकइत्तयेण,  
अहवा सुहि पुत्त सुकित्तयेण ।  
घणु दित कित्ति पसरइ लोइ,  
णवि दिज्जइ तो जस-हाणि होइ ।  
अहं किं पुत्तं धणुहम्मि जाम,  
कित्तणु विहाइ धरणियलि ताम ।  
सुकइत्तं जा गिरि-सरि-धरत्ति,  
सलि सूरि मेरु णक्खत्त पंति ।  
सुकइत्तु वि पसरवि भवियणम्मि,  
संसग्गे रंजिय सज्जणम्मि ।  
अह सावय कुल तो महु पहाणु,  
लेहावमि संभव-जिण पुराणु ।

एतहिं गुण सायरु जण तोल्लायरु जिण सासण भर णिव्वहणु  
सावय-वय पालउ सुद्धु सुहालउ दीणाणाह रोस-हरणु ॥१॥  
धम्मेण तव पुत्तु समसव्व सुहयारि,  
चाणु कणु वल-रूवेण कंसारि ।  
समदिट्ठि वर वंसि णियगोसि णहि-चंदु,  
जिणधम्मवर मुत्ति सावय मणाणुदु ।  
लखमदेव सोभव्व सुप्पुत्तु महि धयणु,  
महादेवही माइवर अंगि उप्पयणु ।

णामेण थील्हा जिणं भत्ति सुत्तासु,  
तं भणिउं कइ इक्क दिव्व हम्मि सिरिवासु ।  
जिणणाह कम मूलि सिरु थोइ विरु संतु,  
अणवेइ णिय कज्ज सिरिमंतु सु-महंतु ।  
भो पंदिया लह वर कव्व-कय-सत्ति,  
अणवरय पइंविहिय आजम्म जिणभत्ति  
भव-दुइ-तरंगाल-सायर-तरंउस्स,  
यां महिय रहयाहु गुणमणि करंउस्स ।  
चहुभेय दुट्ठ-कम्मारि-हय जेण,  
परिधविय भव्वयण दयधम्म अणियण ।  
छंठवि उ ण तव तिव्व दित्ती दिणंदस्स,  
पाहइहि वर कच्छु संभव-जिणिदस्स ।

तं णिसुणि विभासइ सरि विसरासइ तेजपालु जयमि नु वुहु ।  
तव-वय कय-उज्जमु पालिय संजमु अणवहियिण गिहदंठ वुहु(?)।

भो णिसुणि थील्हा वर सुद्धवस,  
णिय-कुल-कमलायर-रायहंस ।  
मणिमलिय वि दुस्समु कालुणुदु,  
दुय क्काण विवज्जिउ दुक्ख-नोहु ।  
णार णारवइ एवहि धम्महीण,  
धहु पावयम्म विहवेण खीण ।  
जो जो गुरु द्वीसय सो दु मित्तु,  
किं अणिय पयइइ मज्जु चित्तु ।  
जिण संभवहो चरिउ एम,  
णायणु कइमवि कइमि केम ।

× × ×

इय संभव-जिणचरिए सावय-विहाणफल भरिए पंडिय-  
सिरितेजपालविरइए सज्जणसंदोह-मणअणुमणियए सिरि-  
महाभव्व थील्हा सवण-भूलये सिरिविमलवाहाणिव-धम्म-  
सवण-वणयो णान पडमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

अन्तिस भाग—

अयरवाल कुल-णहिं दिवलाहिउ,  
भीतरु गोत्तु गुणेण य साहिउ ।  
णावडिकुल देवय संतुठउ,  
धणु.....धणुधार पउट्ठउ ।  
सोता संवाहिउ चिरु हुंतउ,  
णिय विट्तु सिरिहलु भुंजंतउ ।  
चउविह संघभत्ति जे दाविय,  
जे जिणविव पइइ कराविय ।

तेजा तामु पुत्तु घणरिद्ध, जोन्वण सिय लावरण ममिद्ध । तामु-वंगणिय हिय-मिय भासियि, धिर राजही दिठ जिण-सासणिय । लखमदेठ तहो सुअ गुणरिद्ध, खिय रूवोह हणिय मयरद्ध । वाल्हाही तहो यामें पत्ती, मुखिवर धयण जिणागम भत्ती । खिउसी तामु पुत्तु गुणसायर, घरुद्धराजही येह कयायर । योमिदासु तहो सुठ संजायर, देवदातु अरुवि विरुत्तायर । खिउसी धयण होलु तहो भायर, छाल्हाही पिययसु सुवलायर । देवपालु तहो पुत्तु पसिद्ध, आचरइ अवरु गुण-रिद्ध । लखमपय गिह वीय वरंगण, महादेवही णट सुरंगण । दिवसी तामु पुत्तु गुण-सायर, गांगदेवही याइय भज्जर ।

घत्ता—तहो पुत्तु कुमारसीहु अवरु दिरचंडु जाणित्त । एगाराजु चउत्तय घम्ममहु पुणिय पंचायणु पंचमउ ॥२६॥  
दुवई—णियदण कुंठ मंड वि दाणं देइ सहउ लंबये थीरहा ।

तामु यंध कुल मंडण, दुह-सिहि-समणु णवघणे ॥६॥  
कोल्हाही यामें तहो भासियि, सुहलकरण सधम्म रु सामियि । तामु कुन्डिल उप्पणणु मणोहर, तिहुणपाल यामें कुल-ससहर । थीरहा भज्जु अवरु लहुयारी, आसराजही बहुगुण सारी । तामु कुच्छि रयमलु उप्पणणउ, पुणयवंतु महिमंठलि धणणउ । थीरहा लहुउ यंधु गुण-देद्ध, जिणवर मल्लिदामु सुपसिद्ध । मात्रणही तहो तीय महाइय, रेहइ पुत्त चपारि विराइय । हंसराजु पडमवं जण-पुग्गिउ, पुणु जगसी एरपति ती) तहज्जउ ।

तुरियउ महगुसीहु उरणय करु, बांहु ताम जाम ससि दिणयर । लखमदेव सुठ पंचमु सारउ, जिणवर कुंयुदासु इय गारउ । जनु चाणु दुहिय-सोवळ-करु, छियणउ आज्जमु वि जापउ गरु । जा मुत्तउ पेच्छेन्निणु वंगउ, लज्जइ कामु वि जाठ अणु गउ । जसु गंभीरिय गुण अरुवठउ, थंभोपिहि खारतणु पत्तउ । जो जिणमासिय धम्म धुरंधरु, खिय जसिअ धवखिय गिरिवंदरु । तहो पिय धणुयाही धर धरणउ, भोज्जु तामु पुत्तु उप्पणणउ । राजा अवरु जाठ दिहियारउ, सज्जण-जण-भण-णयण-पियारउ ।

घत्ता—पवयण सुवण्यमउ मई रहउ अमलीकय दिमिमंठलु सा थीरहा । मवणिय परिट्टविउ संभवजिणु कह कुंठलु ।  
दुवई—जयगुरवयण सिहिय संजोणं अमुद्धिधणु खियत्तणं । हिय नियत्तारम्म सोवणणं लेहियिकर पवत्तणं ॥६॥

खिय विणुणायणु येवाविउ, सोहेन्निणु सुणिय्याहो दाविउ । साहु साहु तामु यणहो भासिउ, रयणतणु गुणेषु संवासिउ । णाणा-चंदुविद-मणिय-जडियउ, संभवजिणु-गुण-अंचण घडियउ । पट्टु चरिउ कुंठलु सोहिल्लउ, थीरहा सवणाइय अमुल्लउ । वद्धउ जिणवर धम्म धुरंधरु, वणिय वरणीय पयासणु सुंदरु । सम्मइसणु गुणेषु पुरंदरु, खियरुवें सव्वंगें सुंदरु । जिह धम्मु विवदितय दयजुत्तिय, जिण उवसम भवेणु जि खंतिय । जिह पुण्ये दइलच्छिय हुत्तणु, तिह थीरहा संताणु पवत्तणु । अमुण्येणु पट्टु आहासिउ, जिणुण्येणु जो आगम-भ-सिउ ।

मुणिवर गाहेण जि सोहिब्वउ,

महुलहु बुद्धिण दोसु म दिव्वउ ।

वत्ता-जण मंगलयरु एहु मण्णं आदावितउ जियाधम्म पदुच्चण ।

.....पवड्डउ धरणिणियलि सिमल्ल-बोहि-समाहि-महो ॥

इय संभवजिण-चरिणु सावयायार विज्ञाण-फलाणुसरिणु-  
कड्ढेजपाल वरिणदे सज्जण-संदोहमणि-आणुमणिणदे तिरि  
मडाभव-थीलहा सवण भूवणो संभवजिणो सिग्वाणा गमणो-  
याम छट्ठो परिच्छेयो समत्तो ॥संधि ६॥

—प्रति ऐ० प० दि० जैन सरस्वतीभवन व्यावर

लिपि सं० १५२३

२६ वरणाचरित (वरांगचरित)

कवि तेजपाल रचनाकाल सं० १५००

आदिभागः—

पणविचि जिणइंसहो जियवम्मीसहो केवलणाण पयासहो ।

सुर-णर-खेयर-बुद्ध-णुय-पय-पयरुह, वसु कम्मारि विणा ॥१॥

वसु-गुण-समिद्ध पणवेचि सिद्ध,

आयरिय एमो जगि जे पामिद्ध ।

उज्झाय-साहु पणविचि तियाल,

सिध-पहु दरसावेय गुण-विसाल ।

आणसरि होउ पसण्ण-बुद्धि,

जिणवर वाणिय कय-विमल-बुद्धि ।

हउं येहु छंद लक्खण-विहीणु,

वायरणु ए जाणमि बुद्धि-हीणु ।

णउ जाणमि संधि समास किपि,

चिट्ठत्त करेसमि कव्वु तंपि ।

हउं जाणमि जिणवर भत्ति जुत्ति

वित्थरइ जेण पविमल सुकित्ति ।

जे विउल वियक्खण बुद्धिवंत,

जिणभत्ति-जीण पंडिय महंत ।

ते हं गाहिउ पउ मुणिवि कव्वु,

परिट्ठवहु चारु पउ परम भव्वु ।

सुरसरणयरहिं णिवसंत संत,

महु चित्तं वरिणय मणि महंत ।

महु णाम पसिद्धउ तेयपालु,

महं गमिउ णिरत्थउ सयलु कालु ।

एवहि हउ करमि चिरमलु हरमि रायवरंग चारु चरिउ ।

जणु जणिय याणहु तमुहयचंदु कोऊडल-सएहि भरिउ ॥१॥

अंतिम भागः—

सय पमाय संवच्छर खीणइ,

पुणु सत्तमाल सउवोलीणइ ।

वइसाहणो कियइ वि सत्तम दिणि,

किउ परिपुणणउ जो सुह महुर-भुणि ।

विउलकिन्ति मुणिवरहु पमाणं,

रइयउ जिणभत्तिय अणुराणं ।

मूलसंध गुणगण परियरियउ,

रयणाकित्त हूयउ आयरियउ ।

भुवणकित्ति सीसु वि जायउ,

मम-उमवंतु वि मुणि विक्कयायउ ।

तासु पट्टि संपय विणिविहिट्ठउ,

धम्मकित्ति मुणिवरु वि गरिट्ठउ ।

तहो गुरहाइ विमलगुण धारउ,

मुणि मुविमालकित्ति तव सारउ ।

सो अण्णं गुरु जहि महु दिणियय,

पाइय करण बुद्धि मइ गिणियय ।

जिणभत्ति-पमायं मइ अणुरायं कियउ कव्वु कय तमु विलउ

पुणु गुरुणा सोहिउ हरइ तिरोहिउ विउलकिन्ति बुहयण-तिलउ

सर पियवासउ पुरसुत्तिद्धउ,

धण-कण-कचण-रिद्धि-समिद्धउ ।

वरसावउह वंसु गरु धारउ,

जालहउ णाम साहु वरिसारउ ।

तासु पुत्तु सूजउ दयवंतउ,

जिण धम्माणुरत्त सोहंतउ ।

तासु पुत्त जहि कुल उद्धरियउ,

रणमल णामु मुणहु गुणभरियउ ।

तहो लहुयउ वल्लालु वि हुंउउ,

जिया कल्लाणइ जत्त कुणतउ ।

पुणु तह लहुयउ ईसरु जायउ,

सपइ थत्थइ दप गुणरायउ ॥

पोल्लणु णामु चउत्थु पसिद्धउ,

णिय-पुण्णेण दच्च बहुलद्धउ ।

इय चत्तारि वि वंधव जायणु,

वर खंडिलवाल्ल विक्कयायणु ॥

रणमल णंदणु ताल्लुय हुंउउ,

तासु पुत्त हउ कइ-गुणा-जुत्तउ ।

तेयंपालु महु यामुय सिव्वड,  
जिएवर-भत्ति विवुह-गुण-सल्लड ॥

कम्मवत्तय कारण मल भवहारणु अरुहभत्ति महु रइयड ।  
जो पढइ पढावइ शियमणि भावइ येहु चरिउ तुइ सहियड ॥

एहु सत्थु जो सुयइ मुणावइ,  
एहु सत्थु जो लिहइ लिहावइ ।  
एहु सत्थु जो महि विरधारइ,  
सो एरु लहु विरमल भयहारइ ॥

पुणु सो भवियणु सिवपुरि पावइ,  
जहिं जर-मरणु य-किंपि वि आवइ ।

खंदउ खरवइ महि दयवंतउ,  
खंदउ सावय ङणु षय-वंतउ ॥

महि त्रिण-याहहु भम्मु पवट्टउ,  
खेणु मच्च जणावइ परिवट्टउ ।

कालि, कालि वर पावसु वरिसउ,  
सव्व लोउ दय-गुण उक्करिसउ ॥

अजिजय मुणिवर संघु वि खंदउ,  
सयलु कालु जिणवारु ङणु खंदउ ।

जं किंपि वि हीणहिउ साहिउ,  
हीण-वुद्धि कथु वि शिव्वाहिउ ॥

सं सरसइ मायरि खम किज्जउ,  
धवर वि पंडिय दोसु म दिज्जउ ।

जो खरु दयवंतउ पिम्मल चित्तउ शिखु ति जिणु आराहइ ।  
सो अप्पउ आइवि देवहु पायवि मुत्ति-रमथि सो साहइ ॥

इय वरंग-वरिणु पंडियतेयपाल-विरइणु मुणियांडल-  
कित्तिसुपसाणु वरंग-सव्वथसिद्धि-गमणो याम चउत्थ संघो  
परिच्छेओ सम्मतो, ॥संपि ७॥

—प्रति, भट्टारक इपंकीति शास्त्रमंडार, अजमेर  
लिपि० सं० १६०७

३० सुकुमालचरिउ (सुकुमाल चरित)  
मुनि पूर्णभद्र

आदिभागः—

पढमु जिणवरु शचिवि भावे जउ-मउड  
विहसियउ विसय विणहु मवणारि यासणु ।  
असुरामुर-वार-थुय-चलणु सत्त तच्च  
खाव पयस्य खव शयहिं पयामणु ॥  
लोयालोयपयासयरु ङणु उप्परणउ याणु ।

सो पणवेणियु रिसइजियु अक्खय-सोकल-णिहाणु ॥  
धु वक्के—णवेवि भडारउ रिसइ थाहु,  
पुणु अजिउ जियेसरु पुणु सखाहु ।

× × × ×

अन्तिमभागः—

इय भरइखेत्त संपयण देसु,  
ठिउ गुडजरत्तु यामेण देसु ।  
तामु वि मग्गहं ठिउ सुपसिद्धु,  
णायर-मंडल-धण-कण-समिद्धु ।  
तहिं एयरु थाउ संठियउ ठाणु,  
सुपसिद्धु जगत्तउ सिय पहाणु ।  
सिरि वीरसूरि तहिं पवर-आप्पि,  
विणयालंकिउ गुण-रमण-राप्पि ।  
मुण्णिभद सीसु तहिं जाउ संतु,  
मोहारि-विणयासणु यिम्ममत्तु ।  
तामुयि सुकमारुह पयाउ,  
सिरि कुमुमभइ मुण्णिसहु सीसु जाउ ।  
तामुयि भवियण-यण आस वरि,  
संजायउ सीसु गुणभइसूरि ।  
हउं तासु सीसु मुण्णि पुणणभइ,  
गुणालो-विहसियउ गुण-समुद्धु ।  
मइ बुद्धि विहीणियेउ एहु कथु,  
विरयउ भवियण (सिसुखंउ सन्तु) ।

घत्ता— जा मज्जय-सायरु तवह दिवापरु  
जाम मेरु महि-वल्लय थिरु ।

ज इवइ थहंणु ङणमण रंजणु  
ता एउ सत्थु जइ होइ विरु ॥१८॥

इय सिरि सुकुमालसामि-चरिणु भव्येणणंयंयरे सिरि  
गुणभइ सीसु मुण्णि पुणणभइ-विरइणु सुकुमालसामि-सव्वथ-  
सिद्धि गमणो याम वट्टो परिच्छेओ समतो ॥

—प्रति पंचायती मंदिर शास्त्र भंड र दिल्ली ।  
लिपि सं० १६३२

३१ शोभियाह चरिउ (नेमिनाय चरित)  
अमरकीति रचनाकाल सं० १२४४

आदिभागः—

विजयंतु शोभि पद-णह-ससिया पुणण-पहा पवोहंता ।  
कुमुथं याय हरिमउडा सियमणि पडियिग्ग-लक्खणा शिच्वं ॥१॥



तहिं साहि सिकंदरु सामिसालु,  
 शिय पइ पालइ शरियण भयालु ।  
 तं रज्जि वसइ वखियरु पहाणु,  
 दुक्खिय-जण-पोसणु गुण-शिहाणु ।  
 जो अयरवाल कुल-कमल-भाणु,  
 सिवल-कुत्रलयहु वि सेय-भाणु ।  
 मिच्छत्त-वसण-वासण विरत्तु,  
 जिण-सासणि गंधह पाय-भत्तु ॥  
 चउधरिय गाम चीमा सतोसु,  
 जो वंसह मंडणु सुयण-पोसु ।  
 तं भामिणि गुण-गण-सील-खाणि,  
 मल्हाही णामें महर-वाणि ॥  
 तं खंदणु णिरुवम गुण णिवासु,  
 चउधरिय करमचंदु अरुहदासु ।  
 जिणधम्मोवरि जें वद्धगाहु,  
 शिव हियइ इट्ठे पुरयणह ग्याहु ॥  
 जिण-चरयोदणु वि जो पवित्तु,  
 आयम-रस-रत्त जासु चित्तु ।  
 उद्धरिउ चउन्निवह-संधभारु,  
 आयरिउ वि सावय-चरिउ चारु ॥  
 चउदायावंतु णं गंध-इत्थि,  
 विचरेइ णिच्च जो धम्म-पंधि ।  
 सम्मत्त-रयण-लंकिय सरीरु,  
 कयायायलु व्व णिक्कंपु धीरु ॥  
 सुहि परियण-कइरव-वणाहिं हंसु,  
 जिणवर-सहमज्जे लद्ध-संसु ।  
 तं भामिणि दिउचंदहिं मियच्छि,  
 जिण-सुय-गुरु भत्तिय सील सुच्छि ॥  
 तं जायउ खंदणु सील खाणि,  
 चउमहरणा णामें अमिय-वाणि ।  
 धया-कण-कंचणु-संपुणया संतु,  
 पंडियहं वि पंडियगुणं-महंतु ॥

दुहि-यण-दुह-यासणु बुह कुल-सासणु जिण सासण-रह-धुर-धवल  
 विज्जा लच्छी धरु रुवें गयरु अह णिसु किय विह उद्धरण ॥४

तं पणइणि-पणइ-णिवद्ध-वेह,  
 णामें खेमाही पिय-सणेह ।  
 सुर-सिंधुर-गह सेहवइ-विलील,  
 परिवारहुं पोसणु सुद्धसील ॥

यर-रयणह णं उप्पत्ति-वाणि,  
 जा वीणा इव कलयंठि वाणि ।  
 सोहण-रुव-चेलणि य दिह,  
 सिरि रामहु सीया जिह वरिह ॥  
 तहि वीर उयरणा रयण चारि,  
 णं णंत चउक्क सुरुव-धारि ।  
 तम्मज्जि पइसु वियसियसुवत्तु,  
 लक्खण-लक्खंकिउ वसण-चत्तु ॥  
 अतुलिय-साहनु मद्धसेक्खेहु,  
 पाणुण करणु संपइहिं गेहु ।  
 धीरें गिरि गंभीरें सायरु,  
 णं धरणीधरु णं रवि-सति सुरु ।  
 णं सुरतरु पइ पोसणु सुहंहरु,  
 णं जिणधम्मं पयहु थिउ वसु वरु ।  
 निं शियजसि पुरिय दाणि महिं,  
 जो शिव सुह पालउ सुयणसुहि ॥  
 दिउराजु णामु चउधरिय सुहिं,  
 जिणधम्म-धुरंधरु धम्मणिहि ।  
 विणयाण कुमसु वीयउ सुपुत्तु,  
 जो मुणइ जिणेसर धम्मसुत्तु ॥  
 सुपवीरयाय-वाचार-कज्जि,  
 गंभीरु जसायरु बहुगुणिज्ज ।  
 भामू चउधरिय विसुद्ध भाइ,  
 जो णिव-भणु रंजइ विविह भाइ ।  
 अरणु वि तीयउ रिसिदेव-भत्तु,  
 गिह-भार-धुरंधरु कमल-वत्तु ।  
 चुगानाणामें चउधरिउ उत्तु,  
 जो करइ णिच्च उवयारु तत्तु ॥  
 पुणु चउथउ खंदणु कुल-पयासु,  
 अवगमिय सवल-विजा-विलासु ।  
 जिण-समयामय-रस-तित्त-चित्तु,  
 छुट्टाणामें चउधरिय उत्तु ॥

ए चउ भाइय जिणमइ-राइय, दिउराजुणामु गरुवउ सुपइ  
 णाणासुह विलसइ कइयण पोसइ शियकुल कमलज्जु पुहई ॥५

अरणहि दिणि जिणवर गंधदत्थु,  
 सम्मत्त-रयण-लंकियहि पत्थु ।  
 गउ अरुह-गेहि दिउ-राज साहु,  
 चउधरिय रायरंजणपयाहु ॥

भावे वंदित तहं पासणाहु,  
 पुण जिय-गंधारणं एविवि साहु ।  
 सिद्ध-त-अर्थ भाविय मण्येण,  
 पुरयण सुहयारउ सुरधयेण ॥  
 तहं दिट्ठउ पुण सरसह-विवाहु,  
 माणिक्यराज जिय गुरहं श्रेणु ।  
 तेणवि संभासणु क्रियउ तासु,  
 जा गोहि पयासह बहु सुपासु ॥  
 तं जिय अंचण पसरिय भुषेण,  
 अमिलउ सुहसूरा खंदणेण ।  
 भो! अयरवालकुल कमलसूर,  
 सुहयण जयाण मण आस पूर ॥  
 जिणधम्म-धुरंधर गुण-पियेय,  
 जसपूर दिसतर क्रिय ससेय ।  
 चउधरिय खेमहयासुय सुणेहि,  
 कलिकालु पयलु जियमण धरेहि ॥  
 दुज्जण अविषट्ठवि दोस गाहि,  
 वट्ठति पठर पुण पुइह माहि ।  
 हय सुइत्तियि पुण बट्ठणाहु,  
 पिय हियह भरेपिण पासणाहु ॥  
 सत्यथ-कुसल लह रसह भरिय,  
 सिरिअमरवइरसेणु वि चरिउ ।  
 भउ वंसु गरिठ्ठु पुहइमग्गि,  
 यं आइसाह हीणंह दु सग्गि ॥  
 जह जाय पुरिसवर तवहं धारि,  
 वरसीहमल्ल पमुहाइ सारि ।

तं वयण सुणेपिण मणिय पुलपविण अक्खइ देवराज बुहो  
 भो माणिक पंडिय लील अलंडिय वयण प्फु महु सुणहि लउ  
 अन्तभाग :-

शंदहु जिणवर सासण सारउ,  
 जिणवाणीं वि कुमग्ग-विपारउ ।  
 शंदउ बुहयण समय परिट्ठिय,  
 शंदउ सज्जण जेवि सविट्ठिय ॥  
 गंदउ खरवह पय रक्खंतउ,  
 यय-मग्गु लोमहं संदरिसंतउ ।  
 संति विर्यंभउ पुट्ठि विर्यंभउ,  
 सुट्ठि विर्यंभउ, हरिउ णिसुं भउ ॥

सेणिउ णिग्गउ खरय णिवासहु,  
 जिणधम्मु वि पयउउ भव-वासहु ।  
 जि मच्छरु मोहवि पेरिहरियउ,  
 सुहयवग्गिय जं जियमणु धरियउ ॥  
 हेमचंदु आयरिउ वरिदुउउ,  
 वहु सीसु वि तय-तेय-गरिदुउ ।  
 पोमणंद धरणंदउ सुणिवरु,  
 देवणंदि लहु सीसु महीवर ॥  
 प्यारह पडिमउ धारंतउ,  
 राय-नोस-मय-मोह-हणंतउ ।  
 सुहग्गणो उवसमु भावंतउ,  
 शंदउ धंभलोलु समवंतउ ॥  
 तहं पास जिणंदह-गिह-वयण,  
 वे पंडिय णिवसहिं कथयवणण ।  
 गरुवउ जसमेलु गुणगण णिहाणु,  
 बीयउ लहु वंधउ भव्व जाणु ।  
 सिरि संतिदास गंधय जाणु,  
 चव्वइ सिरिपासु विगय-माणु ॥  
 शंदउ पुण दिवराउ जसाहिउ,  
 पुच-कलत्त-पउत्तु, वि साहिउ ।

घत्ता—रोहियासि पुरि वसि, सवल लोउ सह शंदउ ।  
 पास जिणहु पय-सरणु, शया थोत्तहि वंदित ॥ १ ॥

पुण यामावलि भणउ विसारी,  
 दायहु केरी वयण विसारी ।  
 अइरवालु सुपसिद्ध विभासिउ,  
 सिचलं गोत्तिउ सुयण-समाहिउ ॥  
 चूलहा णिवि अहिदाणो भणियउ,  
 जे णिय-तेउं कुलु संताणिउ ।  
 करमचन्दु चउधरिय गुणावर,  
 दिवचंदही मज्जहि वि मणोहर ॥  
 तस्त तणुरुह तिणिय वि जाया,  
 यं पंडव इव तिणिय समाया ।  
 पडमउ सत्य-अत्य-रस-भावणु,  
 महणचंदु यं उहयउ धरइणु ॥  
 लह वणिया पेमाही सारी,  
 पुचपठ किं डुव मणहारी ।  
 अग्गिसु पाणो जिउ तेयंसिउ,  
 उज्जल जसचरिभो वि जयंसिउ ॥

असुवह परहर तियहि विरत्तउ,  
जं असच्च कहया गणउ उत्तउ ।  
दिउराजु जि जिण सहहि महल्लउ,  
गोणाही<sup>१</sup> तिय रमणु वि भल्लउ ॥  
तहु कुन्नि सिप्पि मुत्ताहलाइं,  
उप्पणहं वेसु परिउ सलाहं ।  
पहिलारउ गिय कुलहं वि दीउ,  
हरिवंसु णामु गुणगण विदीउ ॥

घत्ता—तहु भज्जा गुणहिं मणुज्जा, मेलहाही पभणिज्जण ।

गउरि गंगं रां उवहि सुया तहु कस उप्पमं दिज्जहं ॥१२

पुच्चहि अभयदाणु असु दिरणउ,  
तह सुउ अभयचंदु सुणि संणित ।  
अवरु वि गुण-रयणहिं रयणायरु,  
देवराज सुउ सयल दिवायरु ॥  
रतणपालु णामें पभणिज्जह,  
तहु भूराही ललण वि गिज्जह ।  
देवराय पुणु वीयउ जायउ,  
भाभू णामें जग-विक्खायउ ॥  
तह चोवाही भज्ज कहिज्जह,  
तो तेंयहु शेहें जो दिज्जह ।  
पढमउ णायराउ तहु कामिणि,  
सूवटही णामें जणशाविणि ॥  
वीयउ गेल्लहु वि अवरु पयासित,  
भाभू तीयउ पुत्तु पयासित ।  
चाओ णामें जण-विक्खायउ,  
महणासुउ चुगणा पिय भासउ ॥  
डूंगरही तहु भामिणि सारी,  
खेतासिंघ रांदण जुयहारी ।  
सिरियपालु पुणु रायमल्लु  
पुणु कुंवरपालु भासित जडिल्लु ॥  
मइया अवरु चउत्थउ रांदणु,  
छुटमल्लु वि जो धम्महु रांदणु ।  
फेराही अंगण मण-हारउ,  
दरगहमल्लु वि रांदणु रह सारउ ॥

घत्ता—करमचंदु पुणु पत्तु, वीयउ जो जुवि भणित ।

साहा हिय पिय उत्तु गुरु-पय रत्तु वि णाणित ॥१३

तहो अंतहो अंगोभव तिरिण जोय,  
विसुसुय पवणजउ अज्जुणो य ।

पहलारउ रावण तस्स गारि,  
रामाही जाया अहि वियारि ॥  
तहु सरीरि सुथ चारि उवण्णा,  
पुहइमल्लु वि पढसु सुवण्णा ।  
तस्स भज्ज बहु रांहालंकिय,  
कुलचंदही जाया बहु संकिय ॥  
कित्तिसिंधु तहु कुन्नि उवण्णउ,  
गगिर गिरु राव कंचण वण्णउ ।  
पुणु जस चंदुव चंदुभणिज्जह,  
लूणाही पिय यम अणुरंजह ॥  
तह वि तणंधउ लक्खणलंकित,  
मदणसिंघ जो पावह संकित ।  
अवरुवि वीण कंदु वीणावरु,  
पोमाही तहु कामिणि मणहरु ॥  
गारसिंधु वि तउ सुउवि गरिट्टउ,  
लच्छि पिल्लु रां पियरहं इट्टउ ।  
पुणु लाडणु रुवें मयरदउ,  
तहु वीवोकंता वि जसदउ ॥  
पुणु जोजा वीयउ पुत्तु सार,  
णियरुवें जित्तउ जेण मार ।  
दोदाही कामिणि अणुरंजह,  
जें सुहि मरणें सणि गमिज्जह ॥  
जोजा अवरुवि रांदणु सारउ,  
लखमणु णामें पंडिय हारउ ।  
मल्लाहा कामिणि तहु रांदणु,  
हीरु णामें जण-मण-रांदणु ॥

घत्ता—अवरुवि रांदणु तीयउ ताल्लु णामें भासित ।

वाल्हाही मणहार वे सुय ताहं समासित ॥१४॥

पढमउ पोमकंति दामु सुहो,  
इच्छाही भामिणि दिरणउ सुहो ।  
महदासु वि तहु पुत्तु पिचारउ,  
पुणु दिवदासु वीयउ मणहारउ ॥  
साधारणही भज्ज मणोहरु,  
घणमल्लु रांदणु तहु पुणु सुहयरु ।  
जगमल्लही कामिणि तहु सारी,  
चायमल्लु सुय पोसण हारी ॥  
इय दिवराजहं वंसु पयासित,  
काराविउ सत्थु जिं रस सारउ ।

कोह-मोह-भय-माण-वियत्त,  
 जं अक्खरं यं किंपि विण्णसितं ॥  
 सुपसाणं वि विरुद्धं भासितं,  
 .....  
 .....  
 हं सरसइ महु खमइ भंडारी ॥  
 वीर जिण्हो सुहु णिग्गय सारी,  
 जे धारं ते भव-मरि-तारी ।  
 हेम-पोम आयरिय विसेलं,  
 वंशुज्जायं गुण गणियण्होसिं ॥  
 मइ कम वदिय वयणधरेप्पियणु,  
 कअ सुवण्णहु लोह वि देप्पियणु ।  
 मत्त-अत्थ-सोहग्ग खिवेवियणु,  
 अण्य-विरुद्ध किट्टि कट्टेवियणु ॥  
 सोहिउ पुहु वि मणु लाएवियणु,  
 होउ धिराउसु कम्पु-रसायणु ।  
 पिक्कम रायहु धवगय कालइं,  
 जेसु सुणीस विसर अंकालइं ॥  
 धरणि अंक सहु चहत्तवि मासें,  
 सणिवारं सुय पंचमि दिवसें ।  
 कित्तिय अक्खत्तें सुइ जोएणं,  
 हुउ उप्पण्णउ सुतु वि सुइ जोएणं ॥

हो वीर जिण्णेर जग परमेसर एत्तिउ लहु महु दिज्जउ ।  
 जं हि कोहु ण माणु आव य जाणु, सासय-पय महु दिज्जउ ॥ १५  
 ॥ इय महात्ताय-सिरिअमरसेण-चरिणु चउवग्ग-सुकइ  
 क्हासमरसेण-संमरिणु सिरिपंडियमाणिक्खु-विरइणु साणुसिरि-  
 महणासुय-चउपरि-देवराजणामंकिणु सिरि अमरसेणामुनि  
 पंचमवग्ग-गमणवयण्णयो णाम सत्तमं इमं परिच्छेओ  
 सम्मतो ॥ ७ ॥

—प्रति आमेर भंडार सं० १५७७

कार्तिकवदी चतुर्थी रविवार सुवर्णोपथ (सुनपत्त)  
 में लिखित ।  
 ३४—णागकुमारचरित (नागकुमारचरित)  
 कविमाणिक्यराज रचनाकाल सं० १५७६  
 आदिभागः—  
 ग्रन्थ प्रतिमें आदिके दो पत्र न होनेसे उससे आगेका  
 भाग दिया जाता है :—

तहिं जिणमंदिरु धवलु भव्णु,  
 सिरि आइयाइ जिणविय दिव्णु ।  
 तहिं णिवसइ पंडिय सइखणिय,  
 सिरि-जयसवाल-कुल-कमल-तरणिय ॥  
 इक्ख्वाकु वंस महियलि वरिणु,  
 सुइ सूरु खंदणु सुउ गरिट्ठु ।  
 उप्पण्णउ दीवा उरि रवणणु,  
 उहु माणिकु णामें इहहि मण्णु ॥  
 तयंतरि सावउ इक्खु पणु,  
 वय-दाण-सोल-णियमेणु सुत्त ।  
 इहयण रंजणु गुण गण विमाणु,  
 विच्छिण्ण वय दिप्पंत मालु ॥  
 धम्मत्थ काम सेवंतु संतु,  
 तस जीव दयावर सिरिमहेंतु ।  
 मेरुव धीरु गुणगण-गहीरु,  
 जिण-भोगोवप-णिम्मक सरीरु ॥  
 अरवइ सइ मंडणु सव्व भासि,  
 गोहाण गौहु सुय सोल-रासि ।  
 चंडुव सुवण-संतायहारि,  
 वर रुव स उण्णउ यं मुरारि ॥  
 इह अंग विहसित यं महेसु,  
 मंदाय पुज्जउ यं महेसु ।  
 जिण पयसी संकिउ शीलकेसु ॥  
 रस दंतण पालउ सुपण-चोसु,  
 सिरि ठाकुराणि जिणधम्म पुरंधरु ।  
 सुरवइ करभुय सुयलेहि विमलु,  
 सिरि अइसवाल इक्ख्वाकु वंसु ॥  
 सिरि जगसी खंदणु सुदवणु,  
 टोइरुमल णामें वर पयलु ।  
 जं कित्ति तिलोयइ परि पिर ॥

ते आइ वि जिणइरि खयणाणंदणिय आइयाहु जिणवंदियउ ।  
 पुणु दिट्ठउ पंडित भवियण मंडित अइ विणयं अचमरिययउ ॥  
 × × ×  
 इय-वय-पंचमि सिरिणायकुमारचरिणु विवुइ-चित्ताणु-  
 रंजिणे सिरिपंडिय-माणिक्यराज-विइणु चउधरिय-जगसी  
 सुय-राय-रंजण-चउधरि टोइरुमलणामंकिणु जयंधर-विवाइ-  
 वण्णयो णाम पदमो संधि परिच्छेओ सप्तमो ।  
 अन्तिम भाग :—

शंदउ जिणवरिंद जिण-सासणु,  
 दय-धम्म वि भव्वह आसासणु ।  
 शंदउ शरवह पइ पालंतउ,  
 शंदउ मुण्णिगणु सुत-तउ-वंतउ ॥  
 शंदउ जिण सुहमगि चरंतउ,  
 भवियणु दाण-पुय चिरवंतउ ।  
 कालि कालि धाराहलु वरिसउ,  
 दुक्ख-दल्लिहु, दुह्मिक्खु विण्णिरउ ॥  
 घरि-घरि शारिउ रहसं शव्वउ,  
 वरि घरि मंगलु गीउ पदरिसउ ।  
 घरि-घरि संखु समुहलु वज्जउ,  
 घरि-घरि लोउ सुहेहं रंजउ ॥  
 चउविह संघह दाणह पोसणु,  
 जिणवरिंद-सुय-गुर-पय श्रचचणु ।  
 शंदउ टोडरमल्लु दयालउ,  
 पुत्त-कलत्त-सुयण-पइ-पालउ ॥  
 जावहि मेरुचंदु रवि शहयलि,  
 शंदउ एहु गंधु ता महियलि ।  
 भवियण लोयह पाटिज्जंतउ,  
 शंदउ चिरु दुक्खिउ विहुशांतउ ॥  
 विक्कमरायह ववगय-कालें,  
 जे समुणीस विसर श्रंकालें ।  
 पणरह सइ गुणसिह उरवालें,  
 फागुण चंदिण पक्खिससिवालें ॥  
 शवमी सुह शक्खिउ सुहवालें,  
 सिरि पिरथीचन्दु पसायं सुं दरें ।  
 हुउ परिपुणु कब्बु रस-मदिरु,  
 सज्जण-लोयह विणउ करेप्पिणु ॥  
 पिसुण-वयण कइमेण भरेप्पिणु,  
 विरयउ एहु चरित्तु सुवुद्धिउ ।  
 जइ यहु अत्थ-मत्त हीणउ हुउ,  
 ता महु दोसु भव्वु म गहियउ ॥  
 विणवइ माणिकक कई इम,  
 महु खमंतु विवुह गुणमंतिम ।  
 श्रयणुवि असुं शंते हीणाहिउ,  
 महु-जलेण जं कायमि साहिउ ॥  
 तं जि खमउ सुयदेवि भडारी,  
 कइयण-जण तिल्लोयहु सारी ।

बुहयण रंसु वा करहु महु उप्परि,  
 अइ रोसं सोहिज्जहु गंधु वरि ॥  
 विसमउ गामिणि वज्जउ मंदलु,  
 गाच्चउ कामिणि होउ सुमंगलु ।  
 गुरयण वच्चदल्लें पंडिणु,  
 माणिककराज वज्जिय-मणुण ॥  
 तं पुणु करेप्पिणु एहु गंधु,  
 टोडरमल्ल हथें दिणु सत्थु ।  
 णिय सिरह चउविउ तेण गंधु,  
 पुणु तुट्टउ टोडरमल्लु हियइ गंपि ॥  
 दाणें सेयांसह कणु तं पि,  
 पंडिउ घर पट्टिं धविउ तेण ।  
 पुणु सम्माणिउ वहु उक्कवेण,  
 वर वयहं कंका-कुं दल्लेहि ॥  
 श्रंगुलियादि मुदिम णिय-करेहिं,  
 पुज्जिउ आहारहि पुणु पुणु तुरंतु ।  
 हरि रोविउ सज्जिउ विचायं शिरुत्तु,  
 गउ लिचवरि पंडिउ गंधु तेण ।  
 जिण-नोहि णियउवहु उच्चवेण ॥  
 तहि सुणिवर वंदहि सुक्क गंधु,  
 दिणणउ गुर-हथें सिवह-पंधु ।  
 विथारिउ अत्थु विचारि तेण,  
 भव्वयणाह सुदराह दावणेण ॥

पुणु टोडरमल्लहं णियसरि पुणुणह लिहयइ गंधु बहुसुद्धि शिरु  
 जिणगिह सुणिसंघहं तव-वय-वंतहं शायण दाणु तं दिणु वरु ॥

शुभंभूयात् । ग्रंथात् ३३००

प्रति श्रामेरभंडार लिपि सं १५१२

३५-सम्मइ-जिणचरिउ(सन्मति-जिन-चरित्र)कवि रइधु  
 आदिभाग—

जय सररुहभाणहुं वडिदयमाणहु वड्ढमाणतित्येसरहु ।  
 पणविवि-पय-जमलं शह-पह-विमलं चरिउ भणमि तहु हय सरहु  
 वीरस्साणंत वित्ति अमर-वदि-णुदं धम्मभूयादश्रहं,  
 शट्ठा कम्मट्ठविंति परमगुणस्साहिरामं जिणस्स ।  
 वंदित्ता पाय-पोमं ति-जय मणासुयं धम्मचक्काहिवस्स,  
 वोच्छं भव्वत्थजुत्तं श्रणह-सुहहरं तच्चरित्तं पवित्तं ॥१॥

× × ×

केवलशाण-सतणु-पहवंती,  
 साय-वाय-सुह-कमल हसंती ।

विष्टिण्य पमाण्य-स्यण्य-जोवंती,  
दो-दह-णिय श्रंगहं गोवंती ॥  
वे-ण्यय-क्रोमल-पर्यहिं चलंती,  
षडदह-पुष्वाहरण-धरंती ।  
ति-जय-चित्ति विद्ममु विहुण्ती,  
अत्य-वसत्य-वयण-भासंती ॥  
कृण्यथ-विहंडण्य संतावंती,  
शाणा-सद-दसण्य सोहंती ।  
छंद-दुविह-भुयडाल-रवण्यी,  
पायरण्यु णाहिं सुयवण्यी ॥  
जियमय-सुत्त-वत्थ-पंगुरणी,  
सोल-महाकुल-हर-हर-धरणी ।  
दुविहालंकारेण्य पहाणी,  
होउ पसण्य जियोसहु वाणी ॥

सुयदेवि भट्टारी ति-जय पिपारी दुरियवहारी मुद्धमइ ।  
कइयण-यय-जण्यणी सुदफल-जण्यणी सा महु दिज्जउ विमलमइ

संसारोवहि-पोय-समाणा,  
विगय-दोस वे मुणियं पमाणा ।  
याण्य-चउक्को जोय दिवायर,  
धावर-तस सत्ताहं दयावर ॥  
जे हुय गोयमु पमुह भट्टारा,  
ते असेस पण्यवि वि सरहारा ।  
ताहं कमागय तव-तवियंगो,  
ण्यिचच्चमासिय-पययणसंगो ॥  
भव-कमल-सर-योह-पर्यंडो,  
वंदिय सिरि जंसकित्ति असंगो ।  
तस्स पसापुं कच्चु पयासमि,  
चिर भवि-विहिउ असुह ण्यिण्य्यासमि ॥  
अइ कइ भवि मण्यपत्तण लद्धउ,  
देस-जाइ-कुल-वस-विसुद्धउ ।  
तं हेलाइ विहलउ य गमिज्जइ,  
सय्यवभासे सहलो किज्जइ ॥

गोवगिरि दुग्गमि णिवसंतउ, यहु सुहेण तहिं ।  
पण्यंतउ गुरु-पाय पायदंतु जिण्य मुत्तु-महिं ॥३॥  
जिण्य-धम्म कम्ममि कय उज्जमो जाम,  
ण्यिय गेइ सयण्य यलि सुहि सुत्तु यहु ताम ।  
सिवायंतरे दिट्ठ सुयदेवि सुपसण्य ।  
आहासण्य तुग्ग (१) इउं जायसु पसण्य ॥

परिहरिहिं मण्य चितकरि भवणिरु कच्चु,  
खलयण्यहं मा डरहिं भउ हरिउ मइ सच्चु ।  
तो देविधयणेया पडिउ विमाणाहु,  
तस्सल्लेण्य सयणाउ उट्ठिउ जि गय-तंडु ॥  
दिसवहणियतोय पुण्य तुट्ठ चित्तमि,  
संपत्तु जिण्यगेहिं सुहगइ णिमित्तमि ।  
पण्यवेवि जिण्यणाहु बहुविह विसंयुत्ति,  
मुण्यिपाय वंदेवि जायक्कु जसमुत्ति ॥  
ता तमि खण्यिबंध-वय-भार भारेण्य,  
सिरि अइरवालंकवंसम्मि सारेण्य ।  
संसार-तत्तु-भोग्य-ण्यिव्वियण्यचित्ते ण्य,  
घरधम्म-आणामपण्येव तित्ते ण्य ॥  
सत्थत्थरयणोह-भूसिय-सदेहेण्य,  
दहपुग्ग पडिमाण्य पालण्य स-शेहेण्य ।  
खेल्हाइ हाणेण्य णमिधुण्य गुरुत्तेण्य,  
जसकित्तिविण्य्यात्तु, भंडिय गुणोहेण्य ॥  
भो मयण्य-दावणिग-उल्लहवण्य-वण्यदाण्य,  
संसार-जलरासि-उत्तार-धर-जाण्य ।  
अग्गह पसाण्य भव-दुह-कयंतस्स,  
ससिपहजिण्योदस्स पडिमा विसुद्धस्स ॥  
काराविया मइ जि गोवायले-त्तु'ग,  
उडुचायि णामेण्य तित्थमिं सुह-संग ।  
आजाहििया हाण्य महु जयाण्य सुपवित्त,  
जिण्यदेव मुण्यि पायगंधोयसिरसित्ति ॥  
दुल्लंतु थर-जम्मु महु जाइ इहु दिण्य,  
संगहिंवि जिण्य-दिबल मयण्यारि जि द्विण्य ॥  
तहिं पडिय उयवारं कारणेण्य जिण्य-मुत्ति,  
काराविया ताहि सुखिमित्त ससि-दित्ति ॥  
फलि-कालु जिण्यधम्मधुर धारपूढस्स,  
तिज्जयालपु सिहरि जस सुग्गच्छस्स ।  
सिरि कमलसीहरस्स संचाहिवस्सेव,  
सुसहायण्यणावि तं सिद्धं इह देव ॥

जण्यणी चवयारहु थर-भययारहु, हुयउ तस्स ण्यिण्यमार इउ ।  
एव्वहिं मुण्यि-पु'गम बहु-सुय-संगम आहासमि ण्यिहवियगय-भउ ॥  
महु मण्यमि सल्लेक्कु पयइइ,  
तुग्ग पसापुं सोउ इट्ठइ ।  
चित्ति परमु वहराउ धरिंतें  
सु-तव-भारि विग्गहु धारंतें ॥



प्रमाह बहु वयिय-कुल भूरि पिवसंति,  
जिय-प्य-उच्छ्वन सुदाणाहं ववसंति ।

विम्मल कुलुन्भय जुवईठ जियाहम्मि,  
कर प्य संरुति कय जंति सुहकम्मि ॥

तं शयर को वय्यायेई सुकइलोइ,  
सुरगुर वि वय्यांगु संदेह मह होइ ।

तहि पट्टिण अरिदल धट्टिणि जिया-पय-पयरुह-भमरणिहु ।  
सुदिण मेहव थिरसहजपालाणिरअयरवालाकुल गयथाविहु

तहु शंदणु सुशियया-पायभत्तु,  
विहलियजयासपूरया सुमत्तु ।

संघाहितं सहएव जि पसिदु,  
षउविह-भंवहं चापं सणिन्दु ।

शियकुल-कुवलप-अरणीस-गुरलु,  
पर-उयपारहं जो मणिया अमुल्लु । सु

काराविवि जियाहु पइह जेण,  
सच्छिहिं फलु गिण्हिहउ सुहमयेण ।

तिथयर गोत्तु दुसलहु शियदु,  
महिंमंडव शिम्मलु मुजम खदु ।

तोसउ थांमं तहु लहुडं थंधु,  
सत्थरथ-कुमल जो सन्वमंधु ।

जियाचरयाकमल-गंधोवपूण,  
तणु सिंचिवि कलिमलु हणितु जेण ।

संसार-महावय-शामणाई,  
पविहियई जेण सुह-भावणाई ।

सग-पमण-तिमिर-घण-वंदरोइ,  
जियाधम्म-धुरंधर पत्तु लोइ ।

मम्मत्त रयण-भूसिय-विंयंगु,  
जे पालित मावय-वय धमगु ।

सुहयण-जयाण जो भत्तिंरतु,  
बहु सील-मउपेणं अइमहंतु ।

दायेण गुणेण वि चइपरोण,  
धम्मामण्य जणु पित्तु क्षीणु ।

आजाही पियवम-सुह-विहाण,  
पवियर-रिदं अं लखु माणु ।

जहं पयपास-जिणेंदह केरं,  
चरिउं रहउं बहु सुखल-जणेरउ ।

पुण मेहेसर चमुवइ चरिउं,  
सोय पयासिउं बहुरस-भरिउं ।

खेमसीह वणियाहहु थांमं,  
किं पइं प्रिय चित्तहु कामं ।

पुण तेसट्टि पुरिस-रयणायरु,  
पयर महापुराणु महसायरु ।

कुंधु यास विण्णनिवसें जिहं,  
पइं विरयउं पुणु भो पंडिय तिहं ।

सिद्धचक्कविहिं पुणु जि पठत्ती,  
हरसीसाहु णि मत्त पिरत्ती ।

पुणु धलहइ-चरिउं सुक्खासिउं,  
तहेव सुदंसण-सीलकहासिउं ।

घणयकुमार-पमुह बहु अरियइं,  
जिह पय विहियइं भूरिस-भरियइं ।

तिह कर वड्डमाण जियाणाहहु,  
चरिउं जि केवलयाण पवाहहु ।

महु वयणे तोसउहु णिमित्तं,  
अयहिं तं दु मणिया विहिय ममत्ति ।

तं थिसुणिवि हरसिंहहु पुत्तं,  
खण-भंगुर-संपार-विरत्तं ।

गुर-पय-कमल-दत्थ धारेणियु,  
कइया थोजित ता पयवेणियु ।

हउं तुपइमई कणु किह कीरमि,  
विणु वलेण किम रयमहि धीरमि ।

यो आणियणाय वायरण तवक,  
सिद्धं त अरिय पाहुड अयचक ।

सुद्धायम परम पुत्ताय गंय,  
मायल-संसय-तम-तिमिर-अंध ।

किह कणु रयमि गुण-भाव-समुप,  
को उग्याइहं गिण-समप-गुर ।

अगहारिसेहिं पिय घर कइंदि,  
सुह-कुलहं मज्जि उगिण्य-मइंदि ।

यामस्त वि धारणि गहणु भणु,  
भो किं कीरिउणइं चाइ कणु ।

उहुं पुव तहो भणुहुं विपत्तिव गणुहुं सामु चहावहिं कणु विरु  
जेम जि चार्जंवरि, इह भरहंनरि परिचट्टं मो तं जि चिर तान





खंदत राखत.शीहविवाशंठ,  
 पय पुण खंदत पाठ-किंदत ।  
 सावय बग्गुवि पुण्य समग्गुवि,  
 ..... ।  
 धरि धरि धीयराउ अंचिज्जठ,  
 मिच्छतम भरु भन्वहं.खिज्जठं ।  
 सुणि जसकित्तिहु.सिस्त गुणायरु,  
 खेमचंदु हरिसिणु तवायरु ।  
 सुणि व्हं पाल्लवंसुप खंदहु,  
 तिण्णि वि पावहु भारु-खिकंदहु ।  
 देवराय संघाहिव खंदणु,  
 हरिसिणु बुद्धपथं कुल-भाणंदणु ।  
 पोमावइ-कुल-कमल-दिवायरु,  
 सो वि सुखंदत पृथु जसायरु ।  
 जस्म धरिज रइधू बुहु जायठ,  
 देव-सन्ध-मुह-पय-अणुतायठ ।  
 धरिठ पहु खंदत चिरु भूयलि,  
 पाविजंतु पयट्ट इह कळि ।

घत्ता—गोवगिरि-दुग्गहिं, स्वय भसि गाहिं, सुवळपर ।  
 गोठर चढदारहिं, तोरण-फारहिं, सुहयण-मण-संतोस-न्यरे । २४  
 अयलिह मेहहिं, जिणवर गेहहिं,  
 मयिगय चंदिरि, यणयाखंदिरि ।  
 जिण पुजिज्जइ, धम्म-सुणियजइ,  
 खिच्च जि जण्यहिं, धक्क अण्यहिं ।  
 तठ वा विज्जइ, भय-भल्लु-खिज्जइ,  
 णइ पुण धरि धरि, धण कंचण भरि ।  
 मंगल गिज्जहिं, उच्छइ किज्जहिं,  
 सावय कोपहिं, मणहु पमोपहिं ।  
 ठिविहइ पत्तइ, गुण-गण-जुत्तइ,  
 दापइ दिज्जहिं, पुण्यणं खिज्जहिं ।  
 धरि धरि मइ मणु, भाविज्जइ मणु,  
 तणु भावणइ, कम्म-भल्लु-खिज्जइ ।  
 धावणि धावणि, धर कंचय मणि,  
 विवकहिं यणियर, ख्वं जिपमर ।  
 करि-वर-दाणं, जहिं अण्णाणं,  
 रंणइ मित्ताइ, इत्थि धामत्ताइ ।  
 इह दिन धाविय, कण्य वा पाविय,  
 तणं पुह-इंमर, पाइं मुरेसर ।

ख्वं यं सरु, कंतिय ससहरु,  
 लसिद्धि आयरु, याणइ सायरु,  
 कर करवाले, धरि-सत्य काले ।  
 तोमर धंसहु, ति-जय-पसंसहु,  
 उज्जोयणयरु, कुल संतप धरु ।  
 यामं डोगरु, धरि-अण-स्ययवरु,  
 तासु जि रज्जहिं, मइ.खिरवज्जहिं ।  
 जिणहरि. एते, मुहमइवंते ।  
 विरयठ कण्वे, पहु जि.भय्ये ।  
 पुन्वापरियहिं, पट्टि गुणायरु,  
 अणुक्रमेण संठिठ, धयसायरु ।

मिच्छच्च-विमिर हह-याइं सुहायरु, धायमत्थहरु तव-खिलठं  
 यामेय पयहु जणिय देवसेणु णियि, संजायठ चिरु बुह-तिलठं  
 तासु पट्टि णियेवम गुण-मंदिरु,  
 खिच्च भन्वज्जय-चित्ताणंदिरु ।  
 विमल मइ केट्ठिय मल-सगणु,  
 विमलसेणु यामं रिणि-पुग्गणु ।  
 वणु-सरुव धम्म-पुर-धारठं,  
 इह-विह-धम्म सुवणिय जिण्यारठ ।  
 धय-तव-सील-गुणियि ले सारठ,  
 वज्जमत्तर संग-खिजारठ ।  
 धम्मसेणु सुणिय भवसर तारठं,  
 ..... ।  
 भायसेणुपु णु भाविय णिय-गुणु,  
 दंभण-णाय-धरणु तहं चेषणु ।  
 दोविह तविय जेय ताविठ-तणु,  
 धम्मामइं पोसित भण्णइं गणु ।  
 नुल्लतर-गुणोहिं जो पावणु,  
 सुदण्णु ससुठ संमावणु ।  
 कम्म-कलंक-पंरु-सोसणु इणु,  
 सहस्राकत्ति उरवातिय-भव-वणु ।  
 तासु पट्टि उदयदि-दिवायरु,  
 वज्जमत्तर-तण-अण-धायरु ।  
 बुद्धयण-मण्य-अण्य-धित्तानियि,  
 निरि गुणुकित्ति-मूरि पायठ जणिय ।  
 तहु मिहाणियि मिहरि परिट्टिठ,  
 सुत्ति-मणियि राप्पोक्कटिठ ।

खीसी शामा वरसील थत्ति,  
को-कहं वरणइं तर्हि गुणहं-कित्ति ।  
सा परिणिय तेण गुणायरेण,  
बहुकाले जं तें सायरेण ।  
णिय भायर रांदण गुण णिउत्त,  
माणेप्पिणु गिण्हइं कमलवत्त ।  
हेमा णामे परिवार-भत्तु,  
तहो धरहो भारु देप्पिणु विरत्तु ।  
विसयहं सुहु मणि वि दुह-णिमित्तु,  
..... ।  
जिण-त्रय-धारण-उक्कंठण,  
संसार-असारउं सुणिमणेण ।  
जणणी जणणुवि परिवार-लोउं,  
सयलहं वि स्वमावणु करिवि सोउं  
अप्पणु वि स्वमेप्पिणु तन्नखणेण,  
जिणवेसु धरिउं णीसरलणण ।  
जसकित्ति सुण्हइं णविवि प्राय,  
अणुत्रय धारिय ते विणाय-माय ।  
तोसउ रांदणु दिवराज अणुणु,  
साधाहिय पिय रोहें प्रसणुणु ।  
परिवार-भत्तु गुणसेणि-जुत्तु,  
णिय-त्रस-नायण-उज्जोइ-मित्तु ।  
सच्चावभासि सच्चेयलीणु,  
जिणधम्म-कम्म कारण पवीणु ।  
तहु रांदणु जाया दुणिय वीरु,  
जिणधम्म-धुरंधर गुण-गहीरु ।  
चंदुव्व कलायरु सिहरुचंदु,  
पढमउं सज्जणजणइं अणुणु ।  
वीयउं पुणु णामे मल्लिदास,  
वीसेगुणहं जिणवरहुं दास ।  
तोसउ हु पुत्ति तुणु विणिय जाय,  
जिणधम्म-कम्मि रय विणाय-माय ।  
जेठी णामे जीवो जि उत्त,  
जिण-पय-भंधोवह शिच्च-सित्त ।  
वय-णियम-सील-पालण-समण,  
जिण-समयहुभरु धरणि अभग्ग ।  
लहुदी णामे सेलही पवित्त,  
विहु परिवारहं जा शिच्च भत्त ।

सीले सोहगें सिय-समाणु,  
णिरु पत्तहं चउव्हिह देय दाणु ।  
तर्हि रांदण हूया विणिय सज्ज,  
भाइ भोजा णामे मणोज्ज ।  
पंच-जि भायरहं वि अणण सुय,  
जाल्ही वीरो पसुहाइ हूय ।

इहु परियणु वुत्तउं, सजस पवित्तउं, जा कणयायलु सूर ससि ।  
जावहिं महिमंडलु, दिवि आहंडलु, रांदउ तावहिं सजसवसि ॥३४  
इय-सम्मइ-जिण-चरिए, णिरुव्वम-संवेय-रयण-संभरिए,  
वरचउव्वगपयासे, वुहयण-चित्तस्स जणिय-उल्लासे, सिरि-  
पांडिय-रइधू-विरइए, साहु सहजपालु-सुय-सिरि संघाहिव  
सहएव-लहुय-भायर-सहाभव-तोसउ-साहुणाम-णामकिय-  
कालचक्क तहेव दायारस्स वसणिहे स-वरणणो णाम दहमो  
संधी परिच्छेओ समत्तो । संधि १० । लिखितं पांडे केला ॥

वि० सं० १६०० प्रति सिद्धान्त भवन्त, आरा,  
नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली ।

३६ सुकोशल चरित्र रचनाकाल सं० १४६६  
(सुकोशल चरित्र) पंडित रइधू  
आदिभाग—

जिणवर-मुणिविदहु थुव-सय-इंदहु चरण-जुवलु पणवेवि तहो  
कलिमल-दुहनासणु सुहयण-सासणु चरिउ भग्गमि सुकोशलहो  
तिहु भेय पसिद्ध जि भुवणि सिद्ध,  
णिकल तहं सयल विसह-रिद्ध ।  
वसुगुण-समिद्ध वसुकम्म-मुक्क,  
वसुमी वसुहहिं जे शिच्च थक्क ।  
परमाणुदालय अप्पलीण,  
उप्पत्ति-जरा-मरण-त्ति-हीण ।  
वर णायमणु गरसेण शिच्च,  
ते शिक्कल सिद्ध णवेवि शिच्च ।  
जे धायइं कम्म विणायणेण,  
महि विहरहिं केवल-लोयणेण ।  
अट पाडिहेर अइसय सु-सोह,  
भावत्थि विभासणि भवणिरोह ।  
अहि-णर-सुर-वइणा णमिय-पाय,  
सव्वहं हिय भागहि जाह वाय ।  
ते सकल सिद्ध तहं पुणु णवेवि,  
पुणु चारसंग सुय पय सरेवि ।

जिण-वयण-विनिगगट वयण-पिड्ड,  
 तं सर सिद्धु आहवि अज्जं ।  
 ए सिद्ध तिबिह पणविनि विरोह,  
 निच्छत्त-माय-विहल्लय-मोह ।

तद् गणदर सामिय सुह गद्द गामिय भव-सर सोस-दियेसर ।  
 जे सत्त सत्तसय पयदिय महिदय, तेवण्य हियं यिहय सर ॥१

ते पणविनि बहु मत्तिए गणदर,  
 ताहं पट्टि पुण जे हुव सुणिवर ।

• विजयसेण पमुहाय गुणापर,  
 धायम-सत्य-अत्य-रयणापर ।  
 तेहि अणुअकमि सूरि पदायतं,  
 छुंद-तत्रक-वायरथाहं टायतं ।  
 खेमकित्ति यामेण जईसर,  
 महित जेण दुम्महु विरई सर ।

तामु पयासयि कल्लिमज-घत्त,  
 यिच चित्त भावित रयणत्त ।

यारह-विह-तव मेय-सुहकर,  
 हेमकित्ति अहिहाणु दुरिय-हर ।

तामु पट्टि तव जच्चिद्धि मंदिर,  
 अद् अकंयु थां छट्ट मंदिर ।

दुहम-इंदिय बल-दमयायर,  
 भग्गह-मण-संसय-तम-भायरु ।

मणसिय-विमहर-विस-विणियारत,  
 तेरहविद् चारित्त जो धारत ।

आयम रम रसेय जो सित्तत,  
 अहणिसु जे भावित रयणत्त ।

कुमरसेणु यामे कल्लि गणदर,  
 पणविनि निय-आण सुदिए भव-हर ।

अपर वि जे जिगोय महाणुणिय,  
 यवसोदि नि निद्द उविय थहु गुणिय ।

अपणहिं दिणि जिणहरि धपलमांरि रइधू थहु-सुह-आण-रमो  
 दिणयर दिट्टट गयय मणित्ठट मिर, धर धरियय वाट कयो ॥२

तहि थदित गच्छुहं परमेसर,  
 कुमरसेणु पुण परम जईसर ।

आयोवाठ दिणु कट्ट राप,  
 वेहु ममणिय वि अविरेत्त वाए ।

पुण गुरुवा अणित्त मो पडिय,  
 रइधू यिसुणहिं सात्त अखंडिय ।

तव जुगठ भवेमि हट पेसणु,  
 तं करणिज्जु अक्खु दुह-आसण ।

जहं पद्द एमि जिणिदट्टु केरत,  
 चरित्त रइधु थहु सुक्क जयोरत ।

अणुणिय पासिहु चरित्त पयासित,  
 खेऊ साहु यिमिच सुहासित ।

बलहहहहु पुराय-पुणु तीयेय,  
 यियमण अणुरायं पद्दं कीयत ।

तहु सुकोसल चरित्त सुहकर,  
 विरयहिं भव-सय-दुक्कल-अयकर ।

तं यिसुणियि हरसिपहु थंदणु,  
 पट्टिअपद्द किम जिण-पय-यंदणु ।

सत्त-अत्य-हीणत्त हट सामिय,  
 किम-पंगुल हयंनि थह गामिय ।

किम अतरंहु तरई पुणु सायर,  
 किम अरिभइद्द रणं गणिय-आयर ।

वोक्कड्ड धुए-करिहु कि बोएलह,  
 किम अत्तट्ट-अवल हर भर भिएलह ।

आसि-कइंदहिं चरित्त जिं मासित,  
 कइ निरयमि छतं तं गोहासित ।

पिंगल छट्टु विहत्ति या जाणवि,  
 किम अण्यट्ट कइत्त गुणिय माणवि ।

अहं तुम्हह वयणहिं करमि सणु सुहमय-वरणु ।

पर कारण सामिय तव पद्द गामिय, एकु अण्य संसय-हरणु ॥३

अंतिमभाग—

जं गय मत्ताहीणत्तं चरित्तु,  
 मम मणित्त किपि इहु गुण पविणु ।

तं कोमलसुह यिग्गय सुवाणिय,  
 महु समहु मंदातो अत्य-आणिय ।

गुहयय मा गियइहु किपि दोमु,  
 सोहेज्जट्टु एहु चण्णिय रोमु ।

भवि भवि होज्जत महु धम्म बुदि,  
 संपज्जत तह दंमय-विमुदि ।

भवि भवि दुक्कभ ममाहिं बोहि,  
 मंदज्जत महु भय-तम-विरोहि ।

राणत्त पंदब सुहिं वमत देसु,  
 जिण-मायल-अणुणिय-पिय-जेण ।

सावय-वयण शंदहु किय सुकम्म,  
जे वय-भरु धारहि शण्ड-कम्म ।  
शंदउ रणामलु पुणु साहु धरणु,  
जि चरिउ कराविउ इहु रवणु ।  
मुणियण सहसारहो तव-वयधारहो  
मरुसेण सामिहु तणओ ।  
उवएसमुहं करु शासिय-भव-दुहु  
महु मणि शिचच थुत्ति कुणओ ॥२॥

सिरि विक्कमं समयंतरालि,  
वटं तइं दुस्सम विसम कालि ।  
चउदह सय संवच्छरइ अरण,  
छरणउव अहिय पुणु जाय पुणण ।  
माह दुजि कियह दहमा दिणम्मि,  
अणुराहु रिक्खि पयडिय सकम्मि ।  
गोवागिरि (गोवगिरि) डूंगर शिवहु रज्जि,  
पइ पालंतइ अरिराय तज्जि ।  
जिण-चरण-कमल शामिय सरीरु,  
सावय-वय-रहधुर-धरण-धीरु ।  
सिरि अयरवाल कुल गयण चंदु,  
सघवोर विधा जण जणिय शंदु ।  
वे पक्खुज्जल सात शिय भज्ज ?,  
अभणी शामा वय-सील-सज्ज ।  
तहि उवरि उवरणउ शर-पहाणु,  
अह-णिसु भाविउ जि धम्म-भाणु ।  
महलगि दिउ शामें साहु धरणु !  
णिय जसेण महि वीठ छरणु ।  
तहु भज्जा दुक्खिय-जण जणोरि,  
मह सील तीर वहणेक्क धीरि ।  
वीरो शामा वर चाय-लीण,  
गइ हंसिणोव सहेण वीण ।  
तहु पुत्तु पढमु जिण-पाय-भत्तु,  
आणाहिहाणु गिह-धम्मि रत्तु ।  
तहु धरिणि गुणायर सुद्ध सील,  
जिण-धम्म-रसायणि जाहि कील ।

ॐ— सिरि अयर वाल वंसहि पहाणु,  
सिरि विधा संवइ (ई) गुण शिहाणु ।  
सुकौशल चरित १-४

वीधो शामा गेह-लच्छि,  
चउविह-संघह दाणेण दच्छि ।

तहि उवरि उवरणा गुण संपुण्णा, पुत्त-तिण्णि लक्खणहि उवा  
ताह जि पुणु पढमउ शं ससि पढमउ, पीथा शामें दीह भुवा  
तासु पिया पियचित्त सुहायरि,  
भणिय कुवेरदेव शं सुरसरि ।  
बीयउ शंदणु फुहु जस जसयरु,  
णिय-कुल-कमल त्रियासण-भायरु ।  
पल्हण सी (सा) हु वसण-मण-चत्तउं,  
जिण-चरणारविंद-रय-रत्तउ ।  
कउर पालही तहु [सुह] भामिणि,  
शाहहु चित्त शिचच अणुगामिणि ।  
तीयउ सुउ पुणु बहु लक्खण धर,  
जो आराहइ अह-णिसु जिणवर ।  
देव-सत्य-गुरु पायहि लीणउ,  
कहमवि वयणु श जंपइ दीणउ ।  
रणामलु शामु महिहि विक्खायउ,  
जालपही पिययस-अणुरायउ ।  
ति सुक्कोसल चरिउ कराविउ,  
शिचच चित्त पुणु तहु गुण भाविउ ।

जामहि रयणायरु शहि ससि भायरु, कुलगिरि-वर-कणायहि वरा  
तावइ जं तउ बुहहि शिरुत्तउ चरिउ पवट्टउ एहु धरा ॥२३  
इय-सुकोसल-मुणिवर-चरिण शिरुवम-संवेय-रण-  
संस (भ) रिण सिरि-पंडिय-रइधू-विरइण सिरि-महा भव-  
आणासुत-रणमल-शाम-शामकिण सुकोसल-णिव्वाण-  
गमणं शाम चउत्थो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥ छ ॥ संधि ४॥  
प्रति देहली पंचायती मन्दिर लिपि सं० १६३३  
सिरि पासणाह चरिउ (पार्श्व पुराण)  
प० रइधू

आदिभाग—

पणविवि सिरिपासहो, सिवउरि-वासहो,  
विहुणिय पासहो गुण-भरिओ ।  
भविहं सुह-कारणु, दुक्ख-णिवारणु,  
पुणु आहासमि तहु चरिओ ॥

पुणु रिसहणाहु पणविवि जिणिणु,  
भव-त्तम-णिव्वाणसणि जो दिणिणु ।  
सिरि अजिउ वि दोस-कसायहारि,  
संभउ वि जयत्तय-सोक्ककारि ।

अहिपदंशु जिणु पुणु खाण-चवसु,  
मिरि सुमहदंशे पोसिय-सपवसु ।

पठमपणु पठमाऽऽलिमि श्रंणु,  
सिरि जिणु सुपामु पुणु विगय-संणु ।

चंदपणु जिणु चंदंसु वाणि,  
मिरि पुण्यंतु तित्यपरु खाणि ।

सीयलु वि सील-वय-विहि-पवीणु,  
सेयंसु वि सिव-पय-शिरच-सीणु ।

वासयेण महिउ जिणु वासुपुञ्ज,  
विमलुवि विमलपर गुणेदि सुञ्ज ।

तित्यपरु अणंतु वि श्रंत चुचकु,  
अरि-कोह-भाण-मय-समल-मुचकु ।

मिरिधम्मु वि धम्मामय-णिहाणु,  
पुणु संति जियेमरु जय-पहाणु ।

सिरिकुंशु वि शंत-चउकटाणु,  
अरखाहु वि लोयालोय-जाणु ।

सिरि मल्लिखाहु तित्यपरु संतु,  
सुणिसुपणउ अइमय मिरि महंतु ।

सह रामि जिणेषु पावांदि मंतु,  
पुणु रिदुणेमि राहमह-कंतु ।

मिरि पायखाहु विगंल-पोरि,  
पुणु वइउमाणु दुग्गाइ-खिवांरि ।

तमु तित्य पवहह भरह तेसि,  
पयटिय चम्माहम्म जुसि ।

ये मयल जियेमरु, हुव होमहि धर, ते मयल वि पणवेरि धरा  
पुणु जिणपर-वाणीं होय-सहाणीं, शियमणिय धारिंरि परमपर

पुणो वि मोयमो सुयो पणामिपा जिणउणुणी,  
पयय जेल मामिथा सुमच जीव मामिथा ।

अणुवकमेण नामु जे, उंटे वि जाय सच ते,  
याविदि खाण-पारया भवरणुणोदि-तारया ।

सुणिदु ताहं संवेइ, विराय-नोमं संजइ,  
जियेम सुल आमओ गुणाय भूरियामओ ।

सुचेयणाय तम्मओ खवेण मोमिओ पओ,  
माहम्मकित्ति पटि ओ गुणामुकित्ति पाम मो

सुणामु पटि भयरो वि खादमयं-मायरो,  
भिसीमु गरुपायको जयसविमय-दायओ ।

जसक्कुफित्ति सुं द्रो अकंणु वाय-मंदिरो,  
सुसिस्तु तत्स जायओ समणुखेय राहओ ।

सुखेमचंद पायदो जिणो जिणि जाओ भओ,  
रिसीम मच्च मणु पु मइ विसाल दिंतु ते ।

महिवीदि पहाणउं शं गिरि रायउं, सुरहं वि मणि विभव जणियं  
कउ सोमहिं मंडिउ शंइहु पंडिउ, गोयायलु पातें मणियं ॥२

जहि सहहिं शिरंतर जिण-निकेय,  
पंदुरसुवयणधयवमु समेय ।

सटाल-सतोरण जय हम्म,  
मण्यमुह संदायण सं सचम्म ।

घउहइ चच सहाम जय,  
यणिवर ववहरहिं वि गहिं पयय ।

मगण टाय कोलाहल समय,  
जहिं जय शिवसहिं परिपुणण अय ।

जहिं आचणम्मि पिय विविह भंद,  
कमवटहिं कसियहिं भम्मसंद ।

जहिं वमहिं महापण सुदुबोह,  
यिणचंचिय पूया-दाण सोह ।

जहिं शिवरहिं धर घउवणण खोय,  
पुणयेय पयाविय दिवभोय ।

ववहार-पार-संपयण मच्च,  
जहिं सत्त-वमण मय-हीण मच्च ।

सोवयणपूढ मंडिय विसेत,  
मिणार भारकिय गिरवसेस ।

सोउग-निलय जिणधम्मणील,  
वहिं माणियि माण महव लील ।

जहिं चरइ चाउ कुमुमाल दुट्ट,  
दुज्जण समुह मल निमुण चिट्ट ।

यवि द्रोमहिं कहिंमिउ दुहिय हीण,  
नेमाणुणु मच्चजि पनीण ।

जहिं ररहिं हय-वय-दसिय-भग,  
तंबोल-वंगरगिय-धरग ।

जहिं मच्च अणुवचयइं विहाइ,  
दुग्गाहु अयइं बइ पटयाह ।

सोपयणेण शं उवाहिं जाय,  
सं सोमर विव पुणयेय चाय ।

ताइ विसोहिउ गोयायलककु,  
यां भज्ज समाणउं णाहु दक्खु ।

हत्ताच्छि जसायरु यां रयणायरु, बुहयण जुहुण इंदउरु ।  
त्यत्थहिं सोहिउ जणमणु मोहिउ, यां वर रायरहं एहु गुरु ।३

तहिं तोमर कुल सिरि रायहंसु,  
गुणगण रयणायरु लद्धसंसु ।  
अरणायाणाय णासण पवीणु,  
पंचंग मंत सत्थहं पवीणु ।  
अरि-राय-उरत्थलि-दिएण-दाहु,  
समरंगणि पत्तउ-विजय-लाहु ।  
खग्गिगि डहिय जें मिच्छ-वंसु,  
जसऊरिय ऊरिय जे दिसंतु ।  
णिव-पट्टालंक्रिय विउल भालु,  
अतुलिय-बल-खल-कुल-पलय-कालु ।  
सिरि णिवगणोस रांदणु पयंडु,  
यां गोरक्खण विहियउ वसंडु ।  
सत्तं गरज्ज भरदिणण खंधु,  
सम्माण-दाण-तोसिय-सवंधु ।  
करवाल पट्टि विप्फुरिय जीहु,  
पवंत णिवइ-गय-दलण सोहु ।  
अइ विसम साह सुहाम थामु,  
सायरु तीर संपत्तु णामु ।  
कृत्तोसाउह-पयडण-पसिद्ध,  
साहण-सायरु जस-रिद्ध-रिद्धु ।

र-चल-सेतासणु णिव-पय-सासणु यां सुरवरु बहु-धय-धण्डं  
एव जलहर खस्सरु पहुपहुई धरु, डोंगारिंदु णामें भण्डं ॥३

तहु पट्ट महापवी पसिद्धु,  
चंदादे णामा पणयरिद्ध ।  
सयलंतें उर मज्झहं पहाण,  
णिय-पइ-भण-पोसण-सावहाण ।  
तहु रांदणु णिरुवम गुण-णिहाणु,  
तेयगलु यां पचक्खु भाणु ।  
यां रावउ जसंकुरु पुहमि जाउ,  
यां जय-सिरीपु पयडियउ भाउ ।  
सिरि कित्तिंसिंधु णामें गरिट्टु,  
यां चंडु कलायरु जय मणिट्टु ।  
सिरि इ गोरसीह रांरिद रज्ज,  
वणियवरु णिवसइ पुणु बहु दु सज्जि ।

दुक्खिय-जण-पोसणु गुण-णिहाणु,  
जो अयरवाल-कुल-कमल-भाणु ।  
मिच्छत्त-वसण-नासण-विरत्तु,  
जिण सत्थ णिगंधहं पायभत्तु ।  
सिरि साहु पहुणुजि पहसियासु,  
तहु रांदणु णिरुवम गुणणिवासु ।  
सिरि खेमसीह णामेण साहु,  
जिण धम्मोवरि जें बद्ध-गाहु ।  
जिणचरणोदएण वि जो पवित्तु,  
आयम-रस-रत्तउ जासु चित्तु ।  
उद्धरिउ चउत्विह संघ भारु,  
आयरिउ वि सावय चरिउ चारु ।  
रिसि दाणवंतु यां गंध-हत्थि,  
वियरेइ णिच्च जो धम्म-पंधि ।  
सम्मत्त-रयणलंक्रिय सरीरु,  
कणयायलुव णिकं पु धीरु ।  
सुह-परिवण-कइरव-वण-हिमंसु,  
उद्धरिउ पुणण पालहु जि वंसु ।  
धण-कण कंचण-संपुणु संतु,  
पंडियह वि पंडिउ गुण-महंतु ।

दुहियण-दुह-णासणु बुह-कुल-सासणु जिण-सासण-रहधुर-धरणु  
त्रिजालच्छीधरु रुवेणं सरु अहणिसु-क्रिय-विह उद्धरणु ॥३

तहु पणयणि पणय णिवद्धदेह,  
णामेण धणोवइ सीलगेह ।  
सुर सिधुरगइ पायडिय लील,  
परिवारहु पोसण सुद्ध सील ।  
रां रवणहं यां उप्पत्ति खाणि,  
गय-हंसिणीव कलयंठि-वाणि ।  
सोहग्ग-रुव चेल्लणि व दिट्ट,  
सिरि रामहु जिह पुणु सीय सिट्ट ।  
तहिं उवरि ठवरणा रयण चारि,  
यां रांत चउक्क सरुव धारि ।  
तह मज्झि पढमु वियसिय सुवत्तु,  
लक्खणं लक्खंकिउ वसण-चत्तु ।  
अउलियसाह सहसेक-गेहु,  
सिरि सहसराजु णामें सुणेहु ।  
वियणाण-कुसलु वीयउ सुपुत्तु,  
जो मुणइ जिणेस-भण्डं सुत्तु ।

सुपवीणाराय वात्रार-कर्मि,  
गंभीरु जनायक बहु-गुणमित्री ।  
पहराजु पहायर पुहमियाई,  
जो खिब मणु रंजइ विविह माई ।  
अयणु वि तीयठ रिमि-देव-भक्तु,  
गिह-भार-धुरंधर कमल बत्तु ।  
मिरि देवसीहु देवावधार,  
जो करइ शिचठ उवधार सार ।  
चठयठ खंदणु पुणु कुलु पयाभु,  
अवगामिय पिहिल-विज्जाविलासु ।  
जिय समपामय-रस-ठित्त पिचु,  
सिरि ह्योलिचम्मु यामे पविचु ।

एमहिं चहुं सहियठ गुणगण अहिचठ खेउंसाहु जसायर ।  
याणामुइ विलमइ जइयण पोसइ गिय-कुल-कमल दिवायर  
अणणहिं दिविय आयम सत्यदत्तु,  
ममत्त-नयणलकिय समत्तु ।  
गठ जिय-हरि खेउं साहु माहु,  
भावे वंदित्त छहिं शोमियाहु ।  
पुणु पाल्हचंभु पणवियठ तेणु,  
मिदरय भाव भाविय मयेण ।  
पुणु तहिं दिट्टठ सरसइ-खिचैठ,  
रहू पंडित पयदिय विचैठ ।  
तेणु वि मंभासणु कियठ तामु,  
जो गोटिठ पयामइ बहु सुपासु ।  
ता जिय अरुचण पसरिय सुयेण ।  
जपिठ हरमिय मंचरी सुयेण ।  
भो अयरवाल कुल कमलमूर,  
वंदिय-जणाण मण-आमपूर ।  
जिणधम्म-धुरंधर गुण-खिचैय,  
जम-पमर-दिमंतर किय ममेय ।  
मिरिपजणुसाहु खंदणु मुखेदि,  
कजिवालु पयडु विच-मपि मुखेदि ।  
दुज्जण अविपदइ वि दोमणाहि,  
यटंति पठर पुणु पुहइ भाहि ।  
मई मुइइणणि पुणु बइउणाहु,  
पयविच अणुणार् पामणाहु ।  
गुह मणु कुलु खेउंदि मार,  
मिरि पामपचिउहु जण-ठार ।

तहु वचण सुयेपियणु मणि-पुलपुपियणु, जंपद खेउं तामु पुणु ।  
भो रहूधू पंडिय सील अलीदिय, तहु वि एक्कु महु वयणु सुणु ।

खिय मोहि उवणणठ कय-रुवत्तु,  
तहु फलु को खउ वंदइ ससुवत्तु ।  
पुरयेण पत्तु जइ कामयेणु,  
को यिस्सांयइ पुणु विगय-रेणु ।  
तह पइ पुणु महु किठ मई पसाठ,  
महु जम्मु सयत्तु भो अज्जु जाठ ।

तहु धणु जासु पुरिसठ चित्तु,  
कइयण-गुण दुल्लहु जेण पत्तु ।  
यहु जोणि अणंताखंत कासु,  
भवि भमहं जीउ मोहेणु थालु ।  
कहमवि पावइ खउ मणुव जम्मु,  
अह पावइ तो पयइइ कुक्कम्मु ।

यालत्तणि असइ अमन्तु-भयत्तु,  
रंगह महि मइइ अणंत हुवत्तु ।  
कहमवि पावइ सारण भाठ,  
वम्मह-वसेण सेवेइ पाठ ।  
ए विघ्णाखइ उताजुत्त-भेठ,  
खउ सत्तु ख मरु अरहंत देउ ।  
घावइ दइदिदि दविचत्ति मियत्तु,  
खउ भावइ चेषणु परहु-मियणु ।  
लोहं यदहु अलिपठ रसंतु,  
पर-धणु-पर-उरइं माण सतंतु ।  
मिच्छत्तु विसम-रस-पाण-ठत्तु,  
खउ कहमणि जिखवर धम्मु पत्तु ।

अहवा विपणु खउ मुणइं तत्तु,  
विहलठ हारइ पुणु थाण रत्तु ।  
रयणुव दुल्लहु मावयहु जम्मु,  
मह पुणुणं मई लउठ सक्कम्मु ।  
भो वंदिय मिरि पामहु खरित्तु,  
पभणहिं हठं सुखमित्तु पयचिचु ।  
ते मणणणि मुखाहिं जिण्णि-याणि,  
मंदहु कियि मा विण्णि ठाणि ।

इय माहुहु वयणं त्रियमियययणं वंदियत्तु हरिमेषियणु ।  
तं कय रमाणु सुहमयदायणु पारदठ मणु देणियणु ॥२॥



प्रन्तिमभाग :—

सिरि अयरवाल-कुल-लद्ध-संसु,  
ए'डिल नोत्ते वरणाहं हंसु ।  
जोइगिणपुरम्मि शिवसंतु आसि,  
सिरि देदासाहु स पुण्य-रासि ।  
पुण तासु अणुक्कमि लच्छिकोसु,  
महियाणामें जण जणिय-तोसु ।  
तहु एदणु पैरूपावहीणु,  
पुण तासु तणुभउ धम्मि लीणु ।  
अच्चियति जिणवर चरणारविंद,  
मह दाणें पोसिय वंदिविंद ।  
शामेण पुण्यपालु जि पउत्तु  
चाहडिय शाम पुणु तहु कलत्तु ।  
तहु पुत्तु विणिय चंदवक सोह,  
जिणधम्म धुरंधर पयड गोह ।  
तह गरुवउ साहु जा पउत्तु,  
नाथू साहु वि पुणु तासु पुत्तु ।  
नाथूसुसाहुहु सुव विणिय हूव,  
भाभरणु वीधा गुणसारभूव ।  
वीयउ जि पुण्यपालहु जि पुत्तु,  
जायउ भावियउ जिणिंद सुत्तु ।

जिणवरपयभत्तउ गिह-वयरत्तउ, जसु जसु वंदियणहि गुणिउं ।

रियण-सुह-दायणु गुणसय भायणु पजणसाहु शामें भणिउं

तहु पिय वीहही शाम गुणायर,  
पिययम चित्तहो शिच्च सुहायर ।  
ताहि तणुभउ महि विक्खावउं,  
अहणिसु पवयण-गुण-अणुरायउ ।  
चउविह-संघ-भार-धुर-धारिउ,  
जें मिच्छत्त-महागउ मोडिउ ।  
संसारहु संसरणे भीयउ,  
दाणेणं सेयंसु जि वीयउ ।  
खेउं शाम साहु विक्खायउ,  
देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ ।  
तासु धणो शामा पियवहं महं,  
जिम राहवहु सीय वम्महुं रइं ।  
शंदण चारि तासु जय सारा,  
संजाथा गुणियणहं पियारा ।

ते चत्तारि वि चहु दिस्सि मंडण,  
जाचय जण-मंण-रोस विहंडण ।  
सहसराजु पढमउ तहं सच्चइ,  
जो संघवी गिरनारहु वुच्चइ ।  
स-रतनपालही शामा तहु पिय,  
उधरण सुव उच्छगिरमियमिय ।  
पहाराजु जि वीयउ ससिकर-पहु,  
दाण भोय उवमिज्जइ सो कहु ।  
मयणपालही तहु पिय धणणी,  
सोणपाल शंदणेण सउणणी ।  
तीउ-पुत्तु पुणु रइपति भासिउ,  
गिह-भर-भारु वहणु जसु भासिउ ।  
कोडी शामा तासु जि भामिणि,  
अहणिसु संघव-चित्तमण-रामिणि ।  
ताहि पुत्तु लोहगु णं ससहर,  
वंजण लक्खण चच्चिव मणहर ।  
चउयउ सुउ विज्जारस भरियउ,  
होलिवम्मु शामें विप्पुरियउ ।  
तहु कलत्त सरसुत्ती शामा,  
दाण सील सुंदर अहिरामा ।

तहु पुत्तु गुणायरु शाउं कलायर, चंदपालु शामेण सिसु ।  
इहु वंसु पवित्तउ जिण-पय-भत्तउ, शंदउ महि-धण कण-वरिसु

एयहं सव्वहं जो मज्झि सारु,  
खेउं सुसाहु कणणावयारु ।  
तें काराविउ पासहु पुराण,  
भव-तम-णियणासणु शाहं भाणु ।  
कइणा विरएप्पिणु सुह मणेण  
रइधू शामेण विक्खणेण ।  
संपुण्य करेप्पिणु पयड अत्थु,  
खेउंसाहुहु अप्पियउ सत्थु ।  
वहु विणए त गिणियउ तंण,  
तक्खणि आणंदिउ गिय-मणेण  
दीवंतर-आणय-विविह-वत्थु,  
पहिराविउ अइसोहा पसत्थु ।  
आहरणहि मंडिउ पुणु पवित्तु,  
इच्छादाणें रंजियउ चित्तु ।  
संतुट्टउ पंडिउ गिय-मणमि,  
आसीवाउ वि दिरणउ खणम्मि ।

अविरल-जल-धारहिं सपह विवाराहिं तप्यत मेद्विषि विच्यवरा  
 कन्न-मल-दुह विज्जु मंगल गिज्जु पास-भसाए धरि जि धरा  
 विरवहन् विवसत सयलु देसु,  
 पय पाळत खंदत पुण खरेसु ।  
 त्रिष-सामणु खंदत दोस-सुवक,  
 सुखिगणु खंदत तहिं तिसय-सुवक ।  
 खंदहु सावय-यय गलिय-भाव,  
 जो विमुचहिं जीवाजीव भाव ।  
 सिरि खेऊंसाहु सुधम्मि रत्तु,  
 खंदवाहिं समठं खंदत बहुत्तु ।  
 खंदत महि विरमिय अरुह कम्म,  
 जो जोत्र दयावरु परम धम्म ।  
 अहि खंतत पास पुराणु पट्ट,  
 सज्जय जयाह जि जयित्ठे रोह ।  
 कंचय महिहरु जा ससि दिंखिदु,  
 जा पुण महियलि कुल महि हरिंत्तु ।  
 जा सवक सांगि सुरसिय समिदुधु,  
 ता साथ पवट्टे अत्थ विदुधु ।

मच्छर-नय-हीयाठं सथ-पवीयाठं पंडिय-मण-खंदत मुचिर ।  
 पर-गुण-महसायारु वय-विपमायारु, त्रिणपयपयरुह खाविप सिरु  
 ह्य मिरि पासणाह-भुराणे आयम-अत्थ-सुपिहाणे  
 मिरि-वंदिय-रयधु-विहए सिरि महामव-खेऊंसाहु  
 यामंरिप सिरियापत्रिय-ईचकल्लाए-त्रयणयो तहेव  
 दायार-वंम-खिहे मो याम सत्तमो संधी परिच्छेत्तो सम्मतो  
 ॥५॥ मंथि ० ॥५॥

प्रति तेषाम्ब्यी वक्षामिन्दिर जयपुर, लिपि सं० १६२४  
 ३८—पउमचरित पद्य पुराण) कथि रइधू  
 आदिभागः—

पर एय-विद्धं सणु मुखिसुन्वय त्रिणु,  
 पएविवि बहू-गुण-गण-भरित ।  
 सिरिरामहो केरत मुचल अयेरत,  
 सह-लक्ष्मणप पयवनि धरित ॥  
 सिरि आइयाड-भन्वयणु इट्टु,  
 पएवेपियणु सोपत्तय-अरिट्टु ।  
 पुण सनि-यहु धम्मामय मयंतु,  
 भन्वयसहं भवतरुं संमत्तु ॥  
 तहिं मंडिक्कि जीव-दया-पहाए,  
 जि भासिठ महियलि विमल-पाणु ।

पुण वडडमाणु चरमित्तल देद,  
 सो सखहे जीवहं करय-खेठ ॥  
 पुण वाहं वापि ज्जाए विचिच,  
 सोपत्तय-भासिणिय वयण दित्ति ।  
 पुण ईदभूइ गयहरु खवेवि,  
 सोधम्मु वि जंयुंसाभि तेवि ॥  
 पुण ताहं अणुत्तमि देवसेणु,  
 इंदिय-सुखंग-विहलए-वेणु ।  
 पुण विमलसेणु वह धम्मसेणु,  
 सिरिभावसेणु गय-भाव-नेणु ॥  
 वह सहसकित्ति आयम-पहाए,  
 तहिं पट्ट-विस्सएणत गुण-विहाए ।  
 गच्छह यायक सिरि गुणसुखिदु,  
 सहय-पयासणु विणय-नेट्टु ॥  
 तहु पट्ट जइसर पिहय-रइसर जसकित्ति सुखियए-त्रिलत्त ।  
 वह सिस्स पहाएवं तव-वय-टाएवं खेमचंत्तु आयम-चिलत्त ॥ १

गोवगिरि यामे गदु पहाए,  
 यं विहिया चिमिठ रयए-आणु ।  
 अह उच्च धवलु यं हिमगिरिदु,  
 जहिं जम्मु समिच्छइ मणि सुरिदु ॥  
 तहिं हुं गरिदु यामेश राठ,  
 अरिगए-सिरिगण-संदिणए-वाठ ।  
 तुं वर-वर-वंसहं जो दिपिदु,  
 जि पयलहं निच्छहं खयित्ठ कंत्तु ॥  
 वह पट्ट धरंयि यं रूव-अरिदु,  
 यामे चंदादे अइ-सुखिदु ।  
 तहु सुत्त कित्तिसिणु जि गुणिरुत्त,  
 जो रायपीह-आएण-अहरत्तु ॥  
 पिट-भाय मत्तु पच्चक्ख मार,  
 पज्जुएण व महियलि कुमर सार ।  
 तहिं रजित्ठ वयोमरु मुद्विचु,  
 संविपत जेए त्रिकधम्म-वित्तु ॥  
 जमु चित्तु सु-यसहं दाए-रत्तु,  
 जिदुवाह-यय जो विच्य-मत्तु ।  
 आदानएव अह-विमिहि सीणु,  
 काठसग्गे तणु कियंठ सीणु ॥  
 आयमु-पुराण-वडवाहं ममणु,  
 दिण-मणुए-जम्मु जि कित्ठ कदायु ।

जो अयरवाल-वंसहं मयंकु,  
विहु-पक्ख-सुद्ध सो शेय वंकु ॥  
वाट्टसाहुहु रांदणु पवीणु,  
णिय-जणणिह-लोइय-विणय-लीणु ।  
जिण-सांसणु-भत्तु कसाय-खीणु,  
हरसीहु साहु उद्धरिय-दीणु ॥

तहो भज्जा गुण-गण-सज्जा चोचंदही णामें भणिया ।  
मुण्णिदाण-पियंकर वय-णियमायर णं पवित्ति रुवहो तणिया ॥ २

वीई तिय वील्हाही गुणंग,  
अहसील-विसुद्ध वि णाय-गंग ।  
जेठिहि रांदणु सिरि करमसीहु,  
गिह-भारु धुरंधरु बाहु दीहु ॥  
मुणिसह णिवसह जसु पढम लीह,  
जाचय-जणाण पूरिय-समीह ॥  
तसु भज्जा जौणाही पवीणु,  
गुरुदेव सत्थ-पय-भत्ति लीण ।  
तहु वहणींणंतमती पहाण,  
मह-सील-लीण गिह-लद्ध-माण ॥  
चउविह दाणें पोसिय-सुपत्त,  
अह-णिसु जिणवर-कम-कमल-भत्तु  
लहुईहिं पुत्ति रुवें सुतारु,  
णामेण ननो नेहें सुसारु ॥  
जिण-चरण-कमल णाविय-सरीरु,  
वय-तरु-णिग्वाहण-धीरु वीरु ।  
अणणहिं वासरि चित्तियउ तेण,  
हरसीहु णाम इच्छियं सिवेण ॥

किं किज्जह चित्तें विहिय ममत्तें जेण ण दीणु भरिज्जह ।  
किं तेण नि काए' पयडियराए' वय-तरु जिण ण धरिज्जह ॥ ३

णारभउ पाविव करणीउ एम,  
भवदहि णिवडणु णो होइ जेम ।  
चित्तिव्वउ दंसणु णाणु इट्ठु,  
चरणु वि पुणु लोयत्तय-वरिट्ठु ॥  
धम्मु जि दहलक्खणु लोयसारु,  
सेधिंउ एत्थु भवणणतारु ।  
विणु धम्में जीउ ण सुक्खि थाइ ।  
त्तं विणु कर चडिउ वि सयलु जाइ ॥  
इय चित्तिवि पुणु गठ साहु तत्थ,  
अच्छइ पंडिउ जिणगेह जय ।

वहु विणए' पुणु विणणत्तु तेण,  
कर आरौप्पेविणु णिय-सिरेण ॥  
भो रइधू पंडिय गुण-णिहाणु,  
पोमावइ-वर-वंसहं पहाणु ।  
सिरिपाल बम्ह आयरिय सीस,  
महु वयणु सुणहि भो बुह-गिरीस ॥  
सोढल-णिमित्त रोमिहु पुराणु,  
विरयउ जहं कइ-जण-विहिय-माणु ।  
तहं रामचरित्तु वि महु भणेहिं,  
लक्खण समेउ इउ मणि मुणेहिं ॥  
महु साणाराउ तहु मित्त जेण  
विणणत्ति मज्झु अरुहारि तेण ।  
महु णामु लिहहि चंदहो वि माणि,  
इय वयणु सुद्ध णिय चित्ति ठाणु ॥

इय णिसुणिवि वयणइं, जंपिय सवणइं पंडिएण ता उत्तउ ।  
हो हो किं वुत्तउ एत्थुं अजुत्तउ इउं गिह कम्में गुत्तउ ॥ ४ ॥

घडएण मवइ को उवहि-तोउ,  
को फणि-सिर मणि पयडइ विणोउ ।  
पंचाणण-मुहि को खिवइ हत्थु,  
विणु सुत्तें महि को रयइ वत्थु ॥  
विणु बुद्धिए तहं कव्वहं पसारु,  
विरएप्पिणु गच्छमि केम पारु ।  
इय सुणिवि भणइं हरसीहु साहु,  
पावियउ जेण महि धम्म लाहु ॥  
तुहं कव्वु धुरंधरु दोसहारि,  
सत्थ-कुसलु बहु-विणय-धारि ।  
करि कव्वु चित्त परिहरहिं मित्त,  
तुह मुहिं णिवसइ सरसइ पवित्त ॥  
त्तं वयणु सुणिवि भणियउ तेण,  
पारद्धु सत्थु पुणु पंडिएण ।  
तह विहु दुज्जण महु भउ करंति,  
धूयड जह दुमणिय भय उवंति ॥  
जहं काय-विद मडयहु सरीरु,  
सेयंति पेय-वणि लोय भीरु ।  
तहं अचगुणु गुणु ते पाव लित्ति,  
णिय पयडि सहाउ जि पायडंति ॥  
सज्जण अट्ठमत्थमि हंड सतुमह,  
एत्थेव खमेवउ दोसु अरुह ।

इह तुम्ह पसापं करमि कम्बु,  
हवं मह-विहीणु सोहेहु सन्धु ॥

जसु मह इह जोत्तिय सो पुणु तेत्तिय पयउठ दोसु थ अत्थिय इह  
क्विय धणु अणुमारें सहु परिवारें ववसाउत्रि सो करउ विहा ॥१२

× × ×

इय वलहह-पुराणे सुदयणविदेहि लद्ध-सम्भाणे  
तिरिपंडिय-नह्पू-विरहणु पाइय-बंघेण अत्थिय विहि-सहिणु  
मिरि हरिसीहु साहु-कंठ-कंठाहरणे उदय-लोय-मुह-सिद्धि-  
करणे संस-खिहै स-तावण उष्मत्ति-वपणणे याम पढमो संधि-  
परिच्छेयो समत्तो ॥

चरम भाग :-

भग्गहं गुणु थंदउ किउ सुकमु,  
अरु थंदउ जिणवर-भणिय धम्मु ।  
राउ वि थंदउ मुहि पय समालु,  
थंदउ गोवगिरि अचलु ठालु ॥  
सावय जणु थंदउ धम्म-लोणु,  
जिणवाणी आयणणय पवीणु ।  
दोसु वि थिरवहउ मुहि-वसेउ,  
धरि धरि अत्थिज्जउ आहदेउ ॥  
थंदउ पुणु हरसीसाहु प्पथु,  
जि भाणिय चयण-गुणु पयथु ।  
सहं अंगिमंनु जसु पुणु चित्ति,  
कलिकाल-धरिय जि भाणु सत्ति ॥  
मिरि रामचरित्तु वि जेणु पहु,  
काराणिय सग्गहं जणिय थोहु ।  
तहु थंदउ यामें करमसीहु,  
मिच्छत महागय-दलण-सोहु ॥  
सो पुणु थंदउ जिण-चलण-भत्तु,  
जो राय महापणि माणु पत्तु ।  
मिरि पोमावइ परवाल वंनु,  
थंदउ हरिसिंयु सधवी जाणु संसु ॥

वादीलु माहणसिद्धि थिर थंदउ

इह रइधू कइ तीयउ विपरा ।

मोलिकक समाणउ कल गुणु जाणउ

थंदउ महियल्लि सोवि परा ॥ १७ ॥

इय वलहह-पुराणे सुदयण-विदेहि लद्ध-सम्भाणे  
मिरि वंघिय-नह्पू-विरहणु पाइय-बंघेण अत्थिय विहि-सहिणु  
मिरि हरिसीहु-साहु-कंठ-कंठाहरणे उदय-लोय-मुह-सिद्धि-करणे

मिरिराम-णिव्वाण-वमथो याम एकादसमो संधि परिच्छेयो  
समत्तो ॥ ११ ॥

प्रति आनेर भंडार, लिपि सं० १२६१

( सं० १२४६ की लिखित नया मन्दिर धर्मपुराणी  
अपूर्ण प्रतिसे संशोधित )

३६—मेहेसर चरिउ

( मेवेरवर चरित ) कवि रइधू

आदिभाग—

मिरि रिसह जिणेंदहु थुवसय इंदहु भवतम चंदहु गणुहरहु ।  
पय-अणुलु थोयेंपिणु चित्ति थिहयोपिणु चरिउ भणमि मेहेसरहु

जय रिसहयाह भव-तिमिर-सूर,

जय खात्तिय तात्तिय कुमह दूर ।

जय करथ हरण गणुहरि अथाव,

जय ति-जय-मुहंकर सुद्धभाव ॥

जय तियस-मउठ-मणि-धिदु-पाय,

जय आइ जिणेरर वीयराय ।

जय थिम्मल केवल णाण वाह,

जय अउदह दोस-विगय अथाह ॥

जय भात्तिय तच्चं रुवसार,

जय जणुयोवहि थिरु पत्त पार ।

जय वाणुमरि वह हिम-गिरिद,

जय धरुद निरामय महि थणियेद ॥

जह निहय पमाय भयंत संत,

जय मुत्ति-रमणि-रंजण-मुकंत ।

जय धम्माम्पय मत्ति सुजस सोह,

जय भग्गहं दुग्गह-पद-निरोह ॥

पुणु मिरि वीर जिणेंदु पणुविधि भत्तिपु सुद्धउ ।

सम्महंसणु सार जाणु तिस्सं मह लद्धउ ॥११

साध-वाय-मुह-कमल-हंसंणी,

वे पमाण-थयणहिं पेच्छंती ।

पवणण अग्ग भणइ गिरि कोमल,

याथा सह दसण-पद-थिम्मल ॥

वे उवघोय कणण सुणु संणिय,

गासा वंम सुचरित्तु परिट्टिय ।

रेहा विग्गह सह गउ कंदुलि,

वे थय उररह सहइ उररथलि ।

वापरणुं उयक थिरु दुग्गमु,

एहि अत्थ गंभीर मणोरणु ।

दुविह छंद भुयदंड स्वराणी,  
जिण मय सुत्त सुवत्थहिं छरणी ॥  
सुकह पसारु णियंबु विसालउ,  
अंग पुच्चओ तसु रमालउ ।  
संधि-विहत्ति-पयहि णिरु गच्छइ,  
रस एव णट्टभाव सु पयच्छइ ॥  
पंचणाण आहरणहिं लंकिय,  
मिच्छावाइहिं कहि व ण पंक्रिय ।  
विमल महाजस पसर विहूसिय,  
जम्म-जरा-मरणत्ति अटूसिय ॥

सा होउ महुप्परि तुट्टमणा, कुमइ-पडल णिरणासणि ।  
तिल्लोय पयासणि णाणधरा. रिसहहु वयण णिवासिणि ॥२

पुणु सिरि इंदभूइ गणसारउ,  
पणाविनि जिण-णाहहु गिरिधारउ ।  
तासु अणुक्कमेण पुणि पावणु,  
जायउ बहु सीसु वि ण उ रावणु ॥  
णं सरसइ सुरसरि रयणायरु,  
सत्य-अत्य-सु-परिक्खण-णायरु ।  
सिरि गुणकित्ति णामु जइ-पुंगसु,  
तउ तवेइ जो दुविहु असंगसु ॥  
पुणु तहु पट्टि पवर जस-भायणु,  
सिरि जसकित्ति भव्व-सुह-दायणु ।  
तहु पय पंकयाइं पणमंतउ,  
जा बुइ णिवसइ जिणपयभत्तउ ॥  
ता रिसिणा सो भणित्त विणोणं,  
हत्थुणिए वि सुमहु तेजोणं ।  
भो रइधू पंडिय सुसुहाणं,  
होसि वियक्खणु मञ्जु पसाणं ।  
इय भणेवि मंतक्खरु दिरणउ,  
तेणाराहिउ तं जि अच्चिरणउ ॥  
चिर पुण्ये कइत्त गुण सिद्धउ,  
सुगुरु पसाणं हुवउ पसिद्धउ ।

एत्यत्थि वि सुंदरु रयणाणिहिं भूयलि पायडु सुक्खयरु ।  
दे यट्टहु कूडव अयलु पारु गोपायलु णामे णयरु ॥३॥

णार रयणाहरु णं मयरहरु,  
अरियण भयहरु णं वज्जहरु ।  
णं णाय कणय कसवट्ट पट्टु,  
णं पुहइ रमणि सिरि सेहरहु ॥

वण उववण छरणउ णाइ भइ,  
णयणहं रुहदातण णाइणडु ।  
सोवणण रेखणइ जहिं सहए,  
सउजण वयणु व सा जलु वहए ।  
उत्तु गु धवलु पायारु तसु,  
णं तोमर णिव संताण जसु ।  
जहिं मणहरु रेहइ हट्ट पट्टु,  
णीसेस वत्थु संचय जि बहु ।  
वर कणय रयण पह विप्फुरिउ,  
णं महियलि सुरधणु वित्थरिउ ।  
जहिं जण णिवसहिं उवयार-रया,  
धण-कण-परिपुणण-सधम्मसया ।

तहिं राउ गुणायरु पवर जसु अरियण-कुल-संतावरु ।  
सिरिइ गरिट्टु णामे भणिकु स-पयावे जित्त सहसयरु ॥४॥

णीइ तरंगिणि णावइ सायरु,  
सयल-कजालउ ण वि दोसायरु ।  
वे पक्खुज्जलु णिय पय-पालउ,  
म्लिच्छ-णरिद-वंस-खय-कालउ ।  
एयच्छत्तु रज्जु जि जो भुंजइ,  
गुणियण विदह दाणे रंजइ ।  
सयल-तेउराह णिरु सेवी,  
पट्ट महिसि तहु चंदाएवी ।  
तहु णंदणु भूयलि विक्खायउ,  
रयदाणे कलिकरणु समायउ ।  
कित्तिसिह णामेण गुणायरु,  
तोमर-कुल-कमलायर भायरु ।  
सिरि इ गरिणिव रज्जि वणीसरु,  
अत्थि दुहियजण-मण-चित्ताहरु ।  
अयरवाल वंस वर-भायरु,  
दाण-पूय-वहुविहि-विहियायरु ।  
पजणुं साहु जिणपय-भत्तिल्लउ,  
पर-उवयार-गुणेण अमुल्लउ ।  
तहु णंदणु दमवल्ली सुर-तरु,  
जे णिव्वाहिउ जिणसंघहु भरु ।  
अप्पा-पर सरुव-गुण-जाणणु,  
कणय-गइंद-विद-पंचाणणु ।  
गुणमंडिय विग्गहु जस-लुद्धउ,  
रयणत्तउ मणि भावइ सुद्धउ ।

बुद्धयणहं विदहं एण सम्माणइ,  
पवयण--अत्थ सच्चित्ति पमाणइ ।  
खेमसीहु एामेण पवित्तउ,  
वीयंगाय-कम-कमलहि भत्तउ ।

पत्ता—

तद् भज्जा सीलगुणेण जुपां, मुद्ध-सलवधण ललिय-गिरा ।  
जाणइ वसणाहहु भत्तियरा पयडधणोरु एामेण वरा ॥५॥

एंदसु चारि ताह सजाय,  
दाण चार ए महि विवखाया ।  
पढमु ताहि परिणारि सहोयक,  
विणयकिउ एियकुलमिह-सेहव ।  
गिरणारहु संघाहिउ वंधक,  
सहसराजु एामे एर-सिपुह ।  
पुणु वीयउ आणदिय सज्जणु,  
किउ ववमाणे जेण धणज्जणु ।  
जाणि विवुद्धि विसालु एरदि (दे)  
धण्णित्त अपपासि अण्णिदि (दे) ।  
पहराजु जि वि एामेण पसिद्धउ,  
जो जिणवयणु य मण्णइ सुद्धउ ।  
पुणु तीयउ णंदणु गुणमंदिह,  
सज्जण-जणमण-एयणएणदिह ।  
बुद्धयण-त्तव्वर-पोसण-कंधक,  
रउ(ह)पति-गिहभर-धरण-पुंरंधक ।  
विज्जा कोसुदसु अइ दुल्लह,  
तुरियउ सयल-बंधव-जण-वल्लह ।  
जे अयगमित्त सुयंगु अमंगउ,  
बुहूडामणि वियण वगंगउ ।  
होत्तु साहू एिहित्त-गुण-भायणु,  
जो सेवइ एिय-धम्म-रसायणु ।

पत्ता—

एवहि चउमुउहि पसाहियउ खेउ साहू पसण-मणु  
सुहु भुंजइ रंजइ परियणहं विलसइ धम्म एिणोय घणु ॥६॥

अण्णहि दिणि सो पुणु मिहि थक्कउ,  
एिय-मणि चित्तइ साहु गुक्कउ ।  
पाविवि वित्तु पवक जो माणउ,  
धम्मि ए सेवइ सो जि अयाणउ ।  
सो अण्ये अण्णाणउ वंधक,  
जो घणु महियुलि सोहं संचइ ।

दाणु ए देइ ए मिट्टउ भवत्तइ,  
एिय-पाणहु स भूमि एिणिलव्वइ ।  
धिण्णइ परियणहि वलि मंडइ,  
लेइ चोव अह एणउ दंडइ ।

दहइ अग्नि अहठाणु जि मुल्लइ,  
इह अत्थहु गइ कहव ए चत्तइ ।  
इ एउ जाणे वि सहिउ एिह किजइ,  
पत्तहु दाणु एिरंतइ दिजइ ।  
सइं विट्तु एिय सत्थे एिजइ,  
कि पि ए पत्थलि तं पाविजइ ।  
इम चित्ति वि जिणमंदिर पत्तउ,  
तहि बुह दिट्टउ विवसिय वत्तउ ।  
संधवीय हरसिंघउ एंदणु,  
मिच्छतावलि वलि-एिकंदणु ।  
मण्णं साहु भो सुणि सुय-सायर,  
विमलचित्त गुहमत्ति-कयायर ।  
कि एिय काणु गमहि अविणोएं,  
मज्जु वयणु अवहारहि मोए

पत्ता—

करिकव्णु गुणायर भव्वएिह मेहेसर रायहु चरिउ ।

जि कलिमलु खिज्जइ मुहु हवइ जो धम्मामय विष्फुरिउ ॥७॥

इय एिणुएिवि जंपियउ गुणालें,  
कइणा वियण गुणेण रसालें ।  
भो सहंसण मणि रयणायर,  
पुणएणपाल कुलकमल-दिवायर ।  
जिणधम्मालकिय एिम्मच्छर,  
बुद्धयण-जण-मण-रंजण-कोच्छर ।  
सयल-जीव-रवखण सुदयावर,  
एिणुएहि खेउसाहु सुहंकर ।  
पचम-काल-पहाउ गुह्वणउ,  
धम्ममणि जणु अह-एिणु वंकर ।  
धरि धरि दुज्जणु जणु धकयायर,  
विरलउ दीसइ कुवि सज्जण एण ।  
हउं पुणु छंडु विहत्ति ए जाणउ,  
यायरणोवहि-त्तरण अयाणउ ।  
साहामहहु भेउ ए बुज्जमि,  
एणपत्ता भेउ ए मणि सुज्जमि ।

पराविवि सद्दंसगु दुग्गय-भंसगु विद्वृणिय-जम्म-जरा-मरगु ॥

× × × ×

वीयराय-मुह-कमलहु रिग्गय,  
वहु-वण्णकिय अत्थ-समग्गय ।  
छंदालंकारेहि रवण्णी,  
सा भारइ महु होइ पसण्णी ।  
संसारोवहि-पोय-समाणा,  
विगय-दोस जणि मुग्गिय-पमाणा ।  
मइ-सुइ-आभिरा-णाण-दिवायर,  
तस-थावर-सत्ताह-दयावर ।  
जे ह्य गोयम पमुह भंडारा,  
ते परावेप्पिणु तिहुवण-सारा ।  
तह पुरु सुतव-ताव-तवियंगो,  
भव-कमल-संवोह-पयंगो ।  
शिच्चोन्भासिय पवयण-अंगो,  
वंदिवि सिरिजसकित्ति असंगो ।  
तासु पसाए कवु पयासमि,  
आसि विहिउ कलि-मत्तु शिण्णासमि ।

घत्ता—

एत्थु जि भारहि खेत्ति जणि पसिद्धु णं इंदउह ।  
गापायलु णामेण तं जइ वणइ तियस्स गुरु ॥२॥  
जहि उवणाइ ( उववणाइं ) रय-परिमलाइं,  
कइ कलहाइं मुहलंडिय फलाइं ।  
जहि सरवराइ शिम्मल जलाइं,  
पोसिय-मराल-सारस-कुलाइं ।  
जहि दोहयाउ बहु जलयराउ,  
जल-कीलिय वर शिव रारवराउ ।  
जहि मंदिराउ बहु भोमयाइं,  
छुह-पह दित्तीए रहिवोमयाइं ।  
जहि आवणाइं मणि सामलाइं,  
वित्थरिय-रथण-पुंजुजलाइं ।  
कत्य वि वणि-कुल विक्किय स-वत्थ,  
मूइव सह विक्कय सण्ण हत्थ ।  
सिहि तावें सुज्झइ कुणइ केम,  
मह तव-संतत्ता भवु जेम ।  
जहि पुण्ण पंजरिय पण्णसाल,  
णामर-एरेहि भूसिय विसाल ।  
जिण सिव विवुज्जल णियय सम्म,  
अधग्ग-धयावलि-रद्ध-धम्म ।

संतिकक एह वण महिमा स-सोह,  
सावय जणाह पयणिम-पवोह ।  
चउसान्ण एयं तोरण महार,  
जहि सद्दहि सुद्ध सोहण विहार ।

घत्ता—

जह जिणहरि जिण्णमडिम चंदकति-विह, म-वडिया ।  
सोहेत्ति शिच्च दुहयण-महिय भव्वहं शिव-संपय-प्रडिया ॥३॥  
जहि धरि धरि सुम्मइ वर मंगलु,  
जहि धरि धरि अन्निय अविज्जइ गयमत्तु ।  
जहि धरि धरि पोसिज्जइ टुत्थिउ,  
जहि धरि धरि जग्गु दोसत्तु मुत्थिउ ।  
जहि धरि धरि पविहिय सम्माणाइं,  
पत्त जि भेवहि दिज्जहि दाणाइं ।  
जहि धरि धरि दंसग्गु गाइज्जइ,  
धरि धरि सद्दंसग्गु वणिज्जइ ।  
धरि धरि सद्दंसग्गु सुमियारउ,  
धरि धरि जग्गु सद्दंसग्गु धारउ ।  
जहि णारीय नुत्तोत्त अलंडिउ,  
धरि धरि सद्दंसग्गु गुण-मंडिउ ।  
अविहव-सूहव णाह-विवज्जउ,  
वाल विद्ध जे तरणि सलज्जउ ।  
तेहि जि सयलहि दोस-अच्छिण्णउ,  
सम्मदंसग्गु दिहु पडिवण्णउ ।  
डिभ ति दंसग्गु दंसग्गु घोसहि,  
चच्चरि चच्चरि वुह संतोसहि ।

घत्ता—

तव-ताव-पवित्ता विगय-रया पवयणत्वमणि गण-उवहि ।  
दोविह-संजम-भर-धरण-खमा रिसिवर जिणहरि वसहि जहि  
जिणवर-सासण-सरवह-पयंग,  
भवियण-कइरव-वण-सिय-पयंग ।  
मिच्छत्त-महदिय-वज्जदंड,  
परिपालिय-दुद्धर-वय-अत्तंड ।  
णिच्छम्म धम्म पइउण अमंद,  
भव्वेहि णिच्च पय-कमल-चंद ।  
एरिस जइवर जहि णिच्च ठंति,  
सम्माइ भाण कम्मइ हरांति ।  
तहिं डुं गरेंदु णामें एरिदु,  
तोमरकुल कमलायर-दिण्णदु ।

मुणिय इणं भुयवल पमाणु,  
समरंगणि भणणु ए तहु समाणु ।  
णिएवम-अविरल-गुण-मणिए-णिकेउ,  
.....

साहण समुदु जयतिरि-णिवासु,  
जस ऊपरि पउरिय दह दिसासु ।  
करवाल-णिएहाएं अरि-कवालु,  
तोडिवि पल्लित एं कमल-एणु ।  
दुमिच्छु मिच्छ रणरंगु मल्लु,  
अरियण-कामिण-मण दिण्णु सल्लु ।  
सपवाने जिय एं तरणिए जेण,  
जमु रज्जि पपावट्टिय सिवैण ।

घत्ता—

उब्वासिय परमंडलु रामयंद संका जसु ।  
छलवल साम छहुएणो इणियछ हो कवरु राउ उवमिय तसु ॥४

तहु रज्जि महायण वहु धणहु,  
गुरु-देव-सत्य विणएं वियहु ।  
जहि संति नियनलण मखुव सव्व,  
धम्माराउरत वर गलिय-गव्व ।  
जहि सत्त-वसण-अय-सावयाइं,  
णिवसहि पानिय दो-इह-वयाइं ।  
सम्महंसण मण ( णि ) भूसियंग,  
णिएवोब्भासिय-पवयण-सुयंग ।  
दारापेखण विहि णिच्च नीण,  
जिए-महिम-महुच्छव णिर पवीण ।  
चेयण-गुण अण्णारुह पवित्त,  
जिए-सुत्त-रसायण सवणित्त ।  
पंचमु दुस्समु अइ विसम कालु  
णिएद्विवि सुरिउ पविहिउ रसाउ ।  
धम्मज्जाणें जे कालु लित्त,  
णवमारमंतु अह-णिसु गुणंति ।  
संसार-महणणव-वटण,मीम,  
णिएसंक-पमुह-गुण-वण्णणीय ।  
जहि णारीयण दिउ-सील-उत्त,  
दाणें पासिय णिय तिविह पत्त ।  
तियमितेण सच्छि अवरिय एत्थु,  
गयरुव ण दोसइ वि कावि तल्लु ।  
वर-अेवर-कणयाहरणःएहि,  
भंडिय-तणु सोहहि मणि-जडेहि ।

जिण-गृहवण-पूय-उच्छाह-वित्त,  
भव-तरु-भोयहि णिच्च जि विरत ।  
गुरु-देव-पाम पंकयहि लोण,  
सम्महंसण-पालण-पवीण ।  
पर-पुरिस स-वेषव सरिस जाहि,  
अह-णिसु पडिवणिय णिय मणाहि ।  
कि वणगमि तहि हउं पुरिस-णारि,  
जहि डिमवि सग-वसणावहारि ।  
पव्वहि पव्वहि पोसहु कुणंति,  
घरि घरि चच्चरि जिण-गुण युणंति ।  
साहम्मि य वच्छु णिए वहंति,  
पर अयगुण भंपहि गुण कहंति ।  
एरिस सावयाहि विविहिय मारु,  
रोमीसर जिए हरि वट्टमणु ।  
णिवसइ जा रइधू क व गुणाणु,  
सुकवित्त रसायण णिएह रसाउ ।

घत्ता—

तास जस पसर-पूरिय-एहेण संग-भार-धुर-घरिय सिइ ।  
सिरि कमलसीइ सधादिवेण युहयणु त्ति विणत्तउ ॥६॥

× × × ×

अहंहि किपि धम्मु चित्तज्जइ,  
तं ए करहु सक्कमि संकिज्जइ ।  
पडि दिणम्मि इय चित्त कुणिएज्जइ,  
तुग्हाएसे तं संपरज्जइ ।  
जस कित्तणु तउ णिएवइ सइं,  
पुणु अलंडु अणंतु हवे सइं ।  
हउं वराउ महियलि अरसमत्यउ,  
मणुव-जम्मु कि रोमि णिरत्यउ ।  
तं णिसुणेणियणु पुलइम-कायें,  
कित्तिचंद कुमरहु पुणु तायें ।  
वियसि विजपिउ उंगरारयें,  
कमलसीइ वणिवर संपायें ।  
पुणु कज्जु जं तुव मणिए वच्चइं,  
तं विरयहि साहु समुच्चइं ।  
जे पुणु अणुण कैवि सु-सहायण,  
करहु करहु ते धम्म महायण ।  
कि पि संक मा किज्जइ चित्तहि,  
संतुट्टउ हउं धम्म-णिमत्तहि ।



ता गुरुभरिणात्ताव सुणेप्पिगु,  
रइधू वुहु जंपइ परावेप्पिगु ।

त्ताः—

महं आएसं कव्वुधिसेसं करमि ए संसउ धरमि मणि ।  
रकारण वट्टउ चित्ति पवट्टइ सेयोरुण कुवि त्तिायमि जिणि॥२

तं सुणिवि भयाइ गुणाक्कित्ति एम,  
भो पंडिय तुह एउं मुणहि केम ।  
गोवागिरि शिवड पएसि धम्मू,  
पुरुपाल संडु रामेण मणु ।  
इत्तथाइ वंसि तहि चिर वणुंहु,  
अगणिय जाया पणविय जिणुंहु ।  
जसवालु जसायर गुण-महंतु,  
करमू पटवारि जणि महंतु ।  
तुह एंदगु शिवमू गुण-शिवानु,  
अहणिसु जो अच्चइ जिणवरानु ।  
चउविह संघ विणयागुरत्तु,  
सिरि पूनउ साहु सधम्मि वत्तु ।  
तुह भज्जा सील गुणस्स खारिण,  
सव्वहि य एणइ तित्थयर-वारिण ।  
तिहुवण सिरि मुणियण-पय-विणीय,  
सिरिहरसिरि जिम राहवहु सीय ।  
एयहि संजणिया चारि पुत्त,  
लक्खण-लक्खंकिय विणय-जुत्त ।  
णिय-कुल-मयंकु पुरा पडमु ताहं,  
भुल्लणु जि साहु पयडहु जणाहं ।  
वीयउ पुरा वुहयण-जण-निवासु,  
सिरि रूले एणमे जस-पयासु ।  
तइयउ णंदगु मयणावयाह,  
सिरि कामराजु रामेण साहु ।  
चउयउ णंदगु आसणिए वासु,  
आलु एणमं सो कुल-पयासु ।  
एयहि जो पडमउ गुण-गरिट्टु,  
सिरिभुल्लणु एणमं साहु सिट्टु ।

धत्ताः—

आरउण पुरवरे मुह लच्छिधरे, तहिं पहुवइरि-णिकंदगु ।  
तीमरकुत्त मंडण अरि-सिर खंडगु, सिरि इंगरिदं णंदगु ॥३॥

×

×

×

इय सिरि धणुमार-वरिए कय सुह-भावण-फलेण  
विष्फुरिए सिरि पंडिय-रइधू-विरइण सिरि पुण्णपाल-मुत्त  
साधु सिरि भुल्लण-एणमंकिण धणयत्तजम्म वण्णणो एणम  
पडमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

एंदउ महिपउ एण पवीणु  
एंदउ सज्जण यणु सरिय-दीणु ।  
एंदउ स-धम्मू सिव-सीकखवारि,  
एंदउ जइवर वट्टय-भार-धारि ।  
इत्तथ कु वंस-मंडण-मयंकु,  
सिरि पुण्णपाल-नुअ विणय-संकु ।  
एंदउ भुल्लण एणमंणु साहु,  
णिएउरादे वत्तह दीह-वाहु ।  
महु होज्जउ विमलसमाहि-वोहि,  
जा दुग्गइ-गमणहु पह-णिरोहि ।  
णिय-काले धरसिउ मेवमाह,  
गिहि णिहि संमूहु मंगल वं माल ।  
वहु-अत्थ-समिद्धह चरित्त एहु,  
परिपुण्ण करिवि संवेय-नेहु ।  
पणिएण समपउ पाव-एणसु,  
भुल्लणु हु हत्थिय पयडिय-पयासु ।  
तेण जि एणय सीसि चडाविएण,  
पुरा पंडिउ पुज्जिउ पणमिएण ।

धत्ताः—

गुण मुणिएह पत्ताएं पयडिय-राएं सिद्धउ कव्व-रसायरु ।  
सो पाइज्जंतउ अत्थ-समतउ वट्टउ सुह-सय-भावणु ॥१६॥

जिण गुण गणाराएं वज्जियमाणं,  
चरिउ कराविउ एहु वइ ।  
तहु वंसु पसिद्धउ सुह जण रिद्धउ,  
पयडमि जणमण-सुक्ककर ।  
धण-कण-जण-पुण्णउ सुह-शिवानु,  
पुरुपालि संडु अरि विहिय तासु ।  
तहि वणिवरु जिण-पय-चंचरीउ,  
भव-भमणहु जो मुणिए शिच्च भीउ ।  
करमू पटवारिउ गुण-गरिट्टु,  
सोई सुणाइं मुणिए-दाण इट्टु ।  
तहु भज्जा रुवा रुवसार,  
एणं सील-वयहु पडमिल्लकार ।  
तहु एंदण एव एं एव-पयत्थु,

गोवद्धणाइ मणिए मुणिय-सत्तु ।  
 उद्धरणु पढमु उद्धरिय-दीणु,  
 साधारणु सावय-धम्म-लीणु ।  
 तीयउ खल्लउ खम-गुण-महंतु,  
 तुरियउ पुण्यउ पुण्यो महंतु ।  
 मल मुक्क मल्लिह पंचमउ वुत्तु,  
 जो परियणंइ आयमु पवित्तु ।  
 रयणत्तय-मत्तउ रयणु साहु,  
 हरि मुत्ति हृष पुणु दीह-वाहु ।  
 भट्टमउ धिरराजु गुणोह डायु,  
 धूवल्लि नवमउ तुग्गिय पमाणु ।  
 एहं जि मग्गि चउत्तयउ जि वुत्तु,  
 सिरि पुण्यपालु मणिए मुणिय सुत्तु ।

घत्ता—

तद्दुपढमोभामिणिकुलमिह-सामिणित्तिहृषणसिरिणामंभणिया  
 बीई पुणु मणिसिरिणं पीयउसिरिअह पवित्तु रूवहु भणिया ॥

पंदण य चारि तद्दु विणयवंतु,  
 पं पंतचउवक जि जणि सहेतु ।  
 ताहं जि गुप्पं नतणि भ मुत्तु,  
 सिरि भुल्लणु एणामणे जि अतुल्लु ।  
 तद्दुभय चउविह-पत्त-भत्त,  
 एणउरादे शामा गिह महंतु ।  
 बीयउ एंदणु सुत्तेसु वाणि,  
 तद्दु भज्जा महासिरि रोह खाणि ।  
 तद्दु तिणिए पुत्त कुल-भवणु दीउ,  
 .....काम दीउ ।  
 अमरदिउ लाडमत्तु .....? ...  
 एं रयणत्तउ जायउ पयवत्तु ।  
 तीयउ एंदणु पुणु कामराज,  
 कल्लाणसिरि भज्जा सराज ।  
 चउत्तय मुउ आमलु विगम-पाउ,  
 परिवार-वहु एंदउ सराउ ।

घत्ता—

एयहं सव्वहं पुणु पयडिय बहुपुणु एंदउ भुल्लणु गुणु मरिउ  
 धणु यत्तकुमारहु सुहकन सारहु कारिवभो वड इहु चरिउ  
 ह्य सिरि घणकुमार-चरिए कय-सुध-भावणु-फलेणु  
 विष्कुरिए सिरि पंडिय-रद्ध-विरद्धेणु सिरि पुण्यपाल-सुय-  
 साधु मरि-मुक्कण-एणामंकिए भव्वजीवाणुमणिए  
 पणकुमार-णिग्वाण-गमण-वणुणो एणम चउत्तयो संधो  
 परिच्छेभो समतो ॥४॥

४३—जसहरचरिउ (यशोधर-चरित)

कवि रद्धु

आदिभागः—

सिरि रिसह पवित्तहु केवल-रोत्तहु सिव-सिरि-पत्तहु कम-जुयनं  
 पणविवि तिजईसहु विजिदर ईसहु जसहर-कह पयडमि विमलं

जाम सुक्कइ जिण-पय-पणु मंतउ,  
 अच्छइ चेईहरि एिवसंतउ ।  
 ताम ईसि विहवेवि पयत्ते,  
 एिग्वाराहिम मणिए रयणत्ते ।  
 दो-विह-सुनव ताव-संतत्ते,  
 एिम्मन-मुणु-मणाय एिणु पत्ते ।  
 कमलकित्ति एामेणु जि पुत्तणु,  
 तेणु पवत्तउ मह सुद्ध-मुणुणा ।  
 भो भो सुणुहि रद्धु पंडिय,  
 पइ कइत्त बुहयणु सह-मंडिय ।  
 दय-गुण-पारं जसहर-चरियउ,  
 विरयहि धम्म रसावणु-भरियउ ।  
 अचरवाल-वंसंवर-समहुर,  
 जिणु-पय-कमल-दुरेहु दुरिय-हर ।  
 व मलसीह-साहुह जो एंदणु,  
 एिच्च तियाल-विहिय-जिणु-यंदणु ।  
 मिच्छा-समय-परम्महु संतउ,  
 एिम्मल-जत्त-भूसिय-जोयत्तउ ।

छह-कम्मणुरत्तु गुण-मंदिह,  
 रायहंस गणिए तेयें वदिह ।  
 कंचणु दाणे परिलिय बुहयणु,  
 हेमराय एणं भाव [हि] मणु ।  
 सो सोयाह पयडु जणिए जाणुहि,  
 तामु एणु सुकइत्तिए ठाणुहि ।  
 सो कइत्त आयासु पमाणुई,  
 अइसएणु तुम्हहं सम्माणुई ।  
 तव-वय-सम-दाणाइ गुणावर,  
 जीव-दया-विणु सयल अहलयर ।  
 इदि सिरि गुणुणा देसिउ जामहि,  
 कइणु सव्वय मणिएउ तामहि ।  
 हेमणामु एिणु तुम्हाएसे,  
 कव्व सुत्तयलो टवमि विसेसे ।

४५—अप्यसंबोधकत्वं (आत्मसंबोध काव्य)

कवि रघू

आदिभागः—

जय मंगल-नारड वीर भयारड भुवण-नारडु केवल-शुभणु ।  
लोगीतमु गीतमु संजण नीरामु आराहमि तहं जिग-नगणु

चउवीरमु जिगु हय-पंच-वाणु,  
तिहुवण-गिरि-नेहण चहुसाराणु ।  
चउगद-नमणाममण- चुणु,  
कम्मदु-निविड-चंगणु-विमुणु ।  
गुव-भावजोगि-उपासि-गीणु,  
परमपाय-मुन महण-वीणु ।  
परिसोसिय-पंच-सरीर-भान,  
पापिय संसार-नमुद-भान ।  
आवरणु हीणु भय-पंगणु,  
शाउगु-विमुणु हय-सोहणीउ ।  
पुवनाम-गोतु तिगदवराउ,  
परिगलिय मुहणु-गुणु-पाउ ।  
अवहदिय पंच-भगार-दुणु,  
नंपतु महोत्वापंत-मुणु ।  
चुव जोगि-लणु चुनसीदि कम्मु,  
संसार षडेशावद भणणु ।  
शासिय तिलिणु पञ्चसिद्धणु,  
सीणाउयाल-तय-पयडि चणु ।  
अणु-गंग-दव्व-संबंध-चणु,  
तय-केवल-अण-सख-पतु ।  
फेडिय अट्टारह-दोस भाउ,  
धोविय-अणाइ-दुन्दार-राउ  
छद्दव्व-सख फुरंत गणु,  
सहजाणंदाचल-मुह-गिणुहाणु ।

घत्ता—  
सो वीरु जिगोसर भुवण-दियोसर हियइ धरेविणु भव-हरणु ।  
जह बुद्धि पयासं करमि समासं शिय-संबोह-पवित्तरणु ॥१॥

अन्तिमभागः—  
इय संखेवें हय-गव्वयाइं पंचवि भासियइं अणुव्वयाइं ।  
जो पालइ सो तिहु गई न जाइ, उण्णजइ सुरगइ विमल ठाइ  
वउ हवइ तामु इय पंच भेउ,  
जो अरहागमि बुजभेवि अणोउ ।

मुणुमइ परमाणु पुणुवि सोड,  
जमु तन्पथणइ सइहणु होड ।  
तन्पथणं पुणु गम्मणु जाणु,  
विणु सन्मणं ए वि होड गणु ।  
विणु गणं पाणिणु वि पत्तणु,  
विणु चारिणं मणुमइ न मोवणु ।  
विणु मोवणं मुह वेस विणु होड,  
हेस वि गम्मणु महंणु सोड ।  
विणु करि मम्मणु सहेवि गणु,  
चउ विउहइ कय विणुउ विहाणु ।  
सिय सहाइं अणुमारणु सोड,  
पानिउहइ विउ पउ गुण-सिणोउ ॥

घत्ता—  
सम्मसावणेणु गणु सहेवि चरेवि मम्मणु ।  
साहिउहइ मोवणु भविणु भय-मुह पणुणु ॥१॥  
इय अप्यसंबोधकत्वे जय-भय-भय-भय-भय-मुहवे  
मवता-भान - मुहबुजम-पयउसं तदपं तपि - परिच्छेपं  
तपसो ॥

४६—सिद्धतत्त्व-सार (सिद्धन्तार्थसार)

कवि रघू

आदि भागः—

मुनि-रमणि-कताणं परिहंताणं सुवेवि संताणं ।  
शिरयणगुणहुताणं पायबुसुहं पवित्ताणं ॥१॥  
सिद्धं उ-अत्यसारं भव-भव-हारं गुणदु-साहारं ।  
वण्णातीद-महणं सिद्धवणं पापि पायउं दुच्छं ॥ २ ॥  
मुद्धणभावणाभवसुहेण तित्तस्य भव-विरतत्त ।  
पत्तस्य पम्मलाहं जिण-मुद-गुणि-पायभत्तत्त ॥ ३ ॥  
वत्तत्त तोमराणं वणिवरणाहत्त खेमसीहत्त ।  
तत्त एणिसं किज्जइ रघुणामा बुहेणेदं ॥ ४ ॥  
दंसण-जीयसरुवं गुणठाणाणं पि भेय किरियाव ।  
कम्मं सुपंग लढी अणुवेहा पम्म-भाणं च ॥ ५ ॥  
एयाणं हि सरुवं पयडंताणं छलं ए नाहिव्वं ।  
जइ चुनकमि ता भव्वा कायव्वं [सुद्ध] भव्वेहि ॥ ६ ॥

इति श्रीसिद्धांतार्थसारे शुद्धात्मतत्त्व संबित्पावारे श्री  
पं० रघू [रघू] कृती [कृते] संसार-सरण-भय-  
भीतेन क्षेमसीताधुनानुमोदितो सम्यग्दर्शन-कथनमुह्यत्वेन  
प्रथमोज्ज्वः ॥ १ ॥

नोटः—प्रति में अन्तिम भाग उपलब्ध नहीं है ।

५७-वित्तसारं (ब्रजमार्गं) कवि रङ्गधू

५८-पुण्यासवकहा (पुण्याश्रय कथा) कवि रङ्गधू

आदिभागः—

सासययपत्ताणं वसुगुणञ्जुत.एकम्वत्ताणं ।  
 एमिऊणं सिद्धाणं भणामि एं वित्तनारवत्सं ॥ १ ॥  
 भरहाइ परमेद्वीणं बारस-ग्रंगाण सुरिदिवाणं ।  
 तवरण-मुद्धीए पय वह पणवेप्पिणु ति-र्यय ऋणाणं ॥ २ ॥  
 अगोयवंस-एह-ससि दाण विहाणेण एाइ-सेयंसो ।  
 कइयण मण-ऊन-तोसो हालू साहुस्स ग्रंगमो विदिदो ॥ ३ ॥  
 परमेद्वि-नायमत्तो चत्तो विसणाण रत्तु पत्ताणं ।  
 णिद्धंमो सुविणीमो आदू अहिहाण साहु सीलंगो ॥ ४ ॥  
 तेणाऽविय भव-भोए णाविय सीसेण चम्मराएण ।  
 भण्णिमो सुकइ-पहाणो लहिवि खणं पावणं खेमं ॥ ५ ॥  
 भो सत्थोवहि-पारय रङ्गधू कइ-तिलय पइजि बहु भेयइ ।  
 चरिय पुराणइ विरइवि सज सरत्तं पीणिमो भुवणो ॥ ६ ॥  
 मह्ठ पुण म.एस-वत्तं संकुइमो धरिय जणण-भय-भीमो ।  
 तुह वयण-सूर-किरणहि तं वियसइ शिञ्च कालम्मि । ७ ॥  
 जइविह्ठ धरिय प्रणग्घो सम्मतो वय-तवाण धुउसारे ।  
 तहवि ङ्ठु सेण जुदो कुवि वढाउमु जाय एारयम्मि ॥ ८ ॥  
 जइ पुणु चरिय-पउत्तो सम्मतो होदि भव्वजोवाणं ।  
 ता पुग्गइ एहु गच्छइ एरिमु माहणु वित्तस्स ॥ ९ ॥  
 जह-ऊणय-ऊढय-उडिमो रयणो दोसइह शिखवमो लोए ।  
 तह संजमेण सहिदो सम्मतो भव्व-सत्ताण ॥ १० ॥  
 तनहं चरित्त सारं सोऊं वेच्छेमि तुम्ह वयणादो ।  
 जि हवदि जम्मु सहलो सासय-पह-संजलो चेव ॥ ११ ॥  
 इदि वाया श्रवसाणे कइएण भण्णिदो विभ्र-उडवयणेण ।  
 अइमव्वं अइमव्वं स-पर-हिद तुम्ह वयणेदं ॥ १२ ॥  
 जगमल्ल ताप-पावण सुहमावण मुड-धित्त कइ-रंजण ।  
 जपइ एउ पउत्तं तं वसिदं माणवे अम्ह ॥ १३ ॥  
 जो कवि चरित्तसारं पुच्छदि भणदोह सुणदि कयराधो ।  
 सो भव्वत्ताणगुणञ्जुमो हवदि कयत्थो जणे-मुज्जो ॥ १४ ॥  
 भणमोह वित्तसारं स मइ विह्वरंए दोससगहरो ।  
 मा होणु जणा तप्पर सोहिं वि सुद्धं हि नायव्वं ॥ १५ ॥  
 अन्तिमभागः—  
 हरसिध संपाहिव-मुग्घो कइत्त-पव्वमार-बूढणिय-खंधो ।  
 गुरुवण मत्ति कुणंतो ष एउंद उदयरएण ॥ १३४ ॥  
 गुणियण-पविहिय-राधो सुपत्तचाधो सदिट्ठि णिम्माधो ।  
 आदूसाहू चिर इह जीवडु तिय-सुत्त-पोत्तोहि ॥ १३५ ॥

आदि भागः—

पणविवि सिरिबीरं गण-गहीरं भव-वत्तणहि-भरतारपयं ।  
 पुण्यासव-सत्थं सुरहर-यंयं भणमि कहाणुउत्त्वमयं ॥ १ ॥  
 वंदिवि पुणु अरहताण पयं,  
 दंसिय-सासय-णिल्लेव-ययं ।  
 वसु कम्म-पयडि-उय-सिद्धाणं,  
 सम्मत्ताइयणुए-रिद्धाणं ।  
 सोयणसिहरि ट्ठिदि-पत्ताणं,  
 उच्चत्ति-भरण-जर-चत्ताण ।  
 छत्तोस-गुणायर-सूरीण,  
 रायाइदोस-कय-दूरीणं ।  
 दो-उह-मुपंग-अज्जयणिययं,  
 वज्जिय-सग-भय-पाडय विरयं ।  
 स-यक्ख मुहायर साहणं,  
 परि सेसिय-चउ-विक्कहा-कहणं ।  
 विद्दु म इव णिय रसरत्तयह,  
 एयहं वि संमाणसुकमत्तिण्ह,  
 तिरयण सुद्धिए धारेवि यिहू ।  
 घत्ता—  
 जिण हिमभिरिवयणं पोमदहहो सरसइं सुरसरि शिगमिया ।  
 जासा फिडेप्पिणु मत्त-पव्वलू मुमइ पयत्थर रणमिया ॥ १ ॥  
 हो-विह-त्तव-पह अग्गेशरेण,  
 खंडियं माणा सिरईसरेण ।  
 पण-इदय-उरय-दियेशरेण,  
 भव्वहं मयाकंज-दियोसरेण ।  
 गोयम-भणि-भणुकम्म-ययट्ठिएण,  
 सिरि कमलकित्ति गुरणा जवेण ।  
 एकहि दिण्णि धम्माएणु दिणु,  
 भो सुह कि वासर गमहि गुरुणु ।  
 स-कइत्त-विणोएं जाउ कालु,  
 पुणएणःसउ विरवहि जणि विगालु ।  
 पुण्णा सवेण सुह सिद्धि होम,  
 त विणु माणुम भउ विहणु लोय ।  
 सुह माउ पवट्टइ जेण जेण,  
 तं तं कायव्वउ इह वुट्ठेण ।  
 अइकामिऊण तारिसि वयणु सेण,  
 तं पडि वण्णउ पणमिय सिरिण ।

घत्ता—

सकरत्त महाभरु भव-भव-समहक दुद्धरु होइ जयम्मि सिय ।  
जो तहो शिवाहाइ नउप्रवनाहइ सो कुधिरीसइ विरकु सागा॥२

इय चित्तति तहु विपकुसियउं,  
भव्व विगाउ सिय मासति तरियउं ।  
पल्लु-दीधि मारहं वरिसंतरि,  
विसय कुतवलिदो रवि पहपरि ।  
चंदवाउ पट्टण विपतापउ,  
तियस राय तुणं (शिलय एं) बुइ मुह-यापउ ।  
कालेंदो सरि चठदिनु रुद्धउ,  
एं भजइ पिउ पणाय पमुद्धउ ।  
धरा-कण-कंचण-तिरि-संपुण्णउ,  
एं कयपुण्णु महासक धण्णउ ।  
सइं चित्तु व परणारहं भग्म्मो,  
सव्वहं सुहयस एंदय धम्मो ।  
वायरगु व परिहा-सालकिउ,  
पर-विदाय-चरिविद-भ्रसंकिउ ।  
पंडुर पायाराजय चित्तउ ?,  
एं शिव स-वर-जनेण सुपवितउ ।  
घवलहरइं घवलइं एं सुर-हर,  
दासुण्णाय कर जाण रिद्धीसर ।  
वावारागुरत्त जहि वशिदर,  
वसहि शिव्य शिव्य सम्भाणेंवर ।  
जहि जिणविच समुज्जल पुज्जय,  
मंडपसिहरिधयावलि-सज्जय ।  
तोरण पउलि पयार दुरिय-हर,  
सोहण पउर-विहारि मखोहर ।

घत्ता—

तहि शिउ शिवलीइं तरंगिणीहिं सायर पवर रज सालउ ।  
सिरि चाहुवागिण कुल-गयण-रवि सत्तितय गुण-पालउ ॥३॥  
सिरि रामइंदु वद्धिय विवेउ,  
दालिइं भोगिहि-तरण-सेउ ।  
तं शिय-हत्थें जाणिवि समुत्थु,  
एंदसुरजजारुहु गुण-महत्थु ।  
शिव पट्टय धप्पिउ वइरिअ-मवुदु,  
महिवइ शाभेण पयावरुइ ।  
गंभीरत्तण रणि दुद्धरात्ति,  
तेणं दिणवइ सण्णय पयासि ।

भेवपि वीरत्तं सउ कडनु,  
सव्वेणा त्तुं वि गहिय-गत्तु ।  
सउ भोद वि जो भाइवे धमणु,  
रिउ सीस शिभेय शिविय-गत्तु ।  
धवमिउ-कुल सल-वद-पलय-कात्तु,  
मुत्तियस-संदोह-समाहि कात्तु ।  
पउ-सावर-उदि संपत्त-गत्तु,  
अतुलिय-साहस उदान धामु ।

घत्ता—

जय-सच्चि-शिवासउ मुग्गुण-पयागउ चारं कण्णु व विमनमई  
गिरिराज-पभउउ भाजम-पत्तउ मइ व पयगुण जग्गुलियई,  
तहो रविउ वशिवा सउ-मागु,  
शिवधम्म-रसायण-निउ-पागु ।  
शिरि पउमाउइ पुर्याउ वंत्तु,  
उदरिउ विण जय-मद-त्तु ।  
जोइशिपुयाउ निर पतिविभाउ,  
सोसउ शाभेण विमुद्ध माउ ।  
तहो एंदस [पउ] जणिया एंदगु,  
चारिसाण पा वउ पधितगु ।  
जायाणंनउवक मुत्त,  
एं पुग्गु शिभोय चारि वि समुत्त ।  
तइ पट्टमित्तउ जस-भर-शियागु,  
संपाहिय शाभें शोमिदासु ।  
भग्गेसर-शिव-वावार-कज्जि,  
मुमहंत-पुरित्त-पहु-रुइ रज्जि ।  
जिण विव-प्ररोय-विमुद्धवोह,  
शिम्माविचि दुग्गइ-पह-शिरोह ।  
सुपइट्ट कर विउ सुह-मणेण,  
तित्थेस गोत्तु वंघियउ जेण ।  
पुग्गु सुर-विमाण सनु सिह रोऊं,  
शिय-पह-कर-विहियउ-चंद-तेउ ।  
काराविउ जि जिणणाह-भवणु,  
मिथ्यामय-मोह-कसाय-समणु ।  
दुहियण-चित्तमणि जस-मयंकु,  
वंघियण विद-पुउ त्तलअसंकु ।  
तहो एंदसु पुग्गु वीयउ गुणिल्लु,  
परणारि परम्मुह सुद्ध सीउ ।  
अतुलिय-साहस सहसेवक-धामु,

साधारण्यु ग्रामे स्व-नामु  
पुणु तोयउ सग-वसखा वहारि,  
जिएण-भणिय-सत्य-प्रत्यावहारि ।  
शिएण-सवण-पय भति लीणु,  
शामेण होलि उदरिय दीणु ।

घत्ता:—

तुरियउ गुण-पावरु कम-सुह-भावगु जसवली आहारतउ ।  
गुणियण-कय-भित्ति शिएवम भत्तो चारसिधु एं कुसमसर

एयहं...सगरीय शेण,  
सोभसिदि जराणि गन्हु-वेण ।  
मि सत्त-वसण-शिएवम-भुएण,  
.....

सत्यतथ-परिवरा-शापरेण,  
कुल-कुमुम-विधासणि सामरेण ।  
शिय-जस-धवनिम-महिबीदएण,  
सम्मत्त-पमुह-गुण दूदएण ।  
काइया वच्छलत-परायणेण,  
परियाशिय-सारासार एण ।  
पं रोभिदास संघाहि वेण,  
सह्र आमेरण परामिय-सिरेण ।  
एकहि दिणि हउं संठिउ सलीणु,  
शुवि शतु तेण वहु करिवि मारुणु ।  
भो रइधु बुह वड्डिय-पमोय,  
.....

संसिद्ध जाय तुहु परम-भित्तु,  
तउ वपणाभिय-भाणेण तित्तु ।  
पइकिम पइठ्ट मह्र सुहमणेण,  
जाजम-पूरिय-धण-कंचरोण ।  
पुणु तुव उवएसं जिएविहार,  
काणाविउ मइं दुरियावहार ।  
पइं होंति.....  
एकज्जि चित्ता वड्डइ पस ।  
तुहु सकइत्तए फल कामधेणु,  
महु साणु रायमणु पुणु भरेणु ।  
पइं विरयाइं शाणा पुराण,  
सिद्धंताम जित्तिए पहाण ।  
पुणयासउ हउ वयणाउ तुज्जु,  
सोहं वट्टमि इय चित्तं मज्जु ।

सकयत्ते [ यापहि ] मज्जु गामु,  
जिह होइ ध्रयउ सासउ सधामु ।  
इय संघाहि व विण्णंति वाय,  
तहि कालमुणेविणु मइ अमाय ।  
संघाहिउ वुराउ विवसिएण,  
पइ जुत्तु भणिएउ सण यज्जुवेण ।  
परकारणु वट्टइ दुममु कालु,  
परदोस गाहि लनयण कराणु ।  
ते दुमहि कव्वु सहाम्र सुट्टु,  
कालाहि जेम वि सुखि विविदुदु ।  
दुज्जए परगुण ए सहनिपाव,  
साणे जिजि पुण्णएणम समि-भयाव ।  
जइ विदु एरिस ते तह वि कव्वु,  
तं उविराणं (वणिय ?) पेरिउ करमि भव्वु ।  
सज्जए दुज्जएणं शिममगहोति,  
गुण-दोनगाहि पवडिउए भति ।  
पुणयासव विरयमि पुण्ण होय,  
तव जनु वित्थारमि एणु सोय ।

घत्ता—

तइया पडिबण्णएउ मइ जि प्रतियण्णएउ एंतिउ कालुजि वंजिएरु  
वीसरिउं सुहावउं नय सुहभावउं एवहि महु भणियवकुमिरु ॥६

अन्तिमभाग—

घत्ता—

तहि सोमवंसि पुण गुणहं शिहि जोइशिएपुरि संजोउचिह  
तेज्जु ग्रामे तयाहिपउ बुद्धिए कयाया यनु व पिर ॥१॥

जिहं मुण्हं खमासुह गइ सहिज्ज,  
एं ग्रामेण कलही तिहं ताणु भज्ज ।  
तहि उवरि उवण्णएउ कुल-पयासु,  
जसु जसु वित्थरियउ दह-दितासु ।  
चरह ? इहि हाणं विइउ सोइ,  
धण-नाण-विहाणं सुह पमोइ ।  
साइति पिपयम तहु विमल चित्त,  
एं सोल-वित्ति सुहगद-शिमित्त ।  
तहु सुउ जिएण-पय-पयरह-पुरेहु,  
शिममल-भणु कलमावास-गेहु ।  
परियण-सुह-पोसण-कप्परवणु,  
निरियउउ दुरासउ जि विववसु ।  
शामेण साहु सोसउ भलेउ,

पविमाग्निउ जि जिग्ग-समय-भेउ ।  
 तहु पिय पद-वय-वर-सन्निद-गंग,  
 मलयासिगि सायद तरा भेग ।  
 एं एर-रवमहु उपाति रागि,  
 अइ सोममुत्ति सोनाहि गगि ।

घत्ता—

तहि गम्भ-उपपत्ता कपसाग-पुष्पा दुष्पाय-यत्ता-विमल-मया  
 वृत्तिय (विप)क कस-पोनगा गिग-कुल-भूनागु पत्तारि जिगु  
 यजिगुचरगा ॥१॥

चारि भाषा एं मुह-पय-भापर,  
 ठिय-मजजाय चारि ए सायर ।  
 ताहं पदमु बुहुयगु तदसागिउ,  
 शिव पयावरुद सम्माग्निउ ।  
 बहु-विह-भाउ-फनिह-दिदुम-मउ,  
 कारायेपिगु घनगिगुय पटिमउ ।  
 पतिदुावियि मुहु सायजिउउ,  
 सिदि नित्येवर-गोत्तु गमजिउउ ।  
 जि राह-जग सिहह चेईहह,  
 पुगु गिग्माविय ससिकर-पह-रह ।  
 रोमिदासु गामें संघाहिउ,  
 जि जिग-जंघ-भार-गिग्वाहिउ ।  
 तस्त पिया लच्छी पगुहायर,  
 गाम भिखी वणिणय विगुपायर ।  
 अवर वि मणिगो सुदपइव्यय,  
 एं धम्मह सह्यादि वरदय ।  
 तिणिया तानु एंदण संजाया,  
 एं लवणकुस जय विक्काया ।  
 जो इच्छिय-दाएँ सुर-भूवह,  
 जो चित्तमणिव्व पोत्तिय सुहु ।  
 जो पर सुव्व कराय दाणेहुउ,  
 रिसराम गामें सो जेहुउ ।  
 तस्त पिया गइसिदि संजाया,  
 गिय-पिययम-भत्तिए अगुराया ।  
 जनु जम्मागमि जिग-र-विबहं,  
 तिलउ पदिणणउ दुरिय-गिगु भहं ।  
 कुलहु तिलउ तिलकू ति पुत्तउ,  
 तोसउ साहहु पुगु वीयउ सुउ ।  
 अइरावइ करि कर सणियाह भुउं,

.....  
 परदुवईस गिगुय परममुह,  
 दह-वदलक यमोहु गिगु यमहु ।  
 संकुलिय साहय यय साहारउ (गु),  
 साह सभू यामें यं यारगु ?

घत्ता—

तहु पिय कुवहर-संजग गगता भिखी गामें मुह मरय ।  
 सोई पुगु वापयु मन्वरया भसियं न दीगुगि-भनि-हुवा ॥१॥

अउजुगा गामें गहु मुउ पुत्तउ,  
 यौरदासु पुगु लवणग-हुत्तउ ।  
 जनु जन्मगि पुरणासउसरथी,  
 हनि भउउ पदउउ परमरयो ।  
 सोसाग्ग पुगु वीयउ पयगु,  
 पदविह-संघ-गिग-सगरंजगु ।  
 होतिवधुसु यजउ य मुगु साहिउ,  
 देवगिदि भउउ गिय मोहिउ ।  
 वाभदेव हरपति येयंभग,  
 तागु पदिउ। उयगु पंयगु ।  
 पुगु उरियउ मुउ मुकुरिया मुक्कउ,  
 गिरगारहु संघाहिउ पुक्कउ ।  
 वीरसिधु वीरमहुहि पुत्तउ,  
 भवदा कन्धी वन्नं अगुस्ताउ ।  
 योत्तहा गंयरोय मंयंतउ,  
 रेहइ जिगुवर-पय-वंदंतउ ।  
 अह पुगु तोलसइ इवकोयर,  
 वंयव तिणिया अत्तिय रोहावर ।  
 देल्ला तावभा (य) वय तोहिउत्तउ,  
 पुगु साहहे गामेय गुणित्तउ ।  
 कमलसीहु वीयउ जिग-भत्तउ,  
 मिच्छा-धनय-परममुहु संतउ ।  
 हंसराजु गामें देल्लु मुउ,  
 साहहे पुत्त अजु जिग-य-गुउ ।  
 महिपति कमलसीह कुल मंडगु,  
 विगएं गुह्यसाहं आणंदगु ।

घत्ता—

इय-परियण-जुत्तउ सोम-कलत्तउ रोमिदास सुय-भाय-हुउ  
 एंदउ जा रवि सति राहि कय दिराणिसि जाकरणायउ  
 अयलु घुउ ॥१२॥

पादत्र त्रिण्णसासणु सुगङ्ग-ठाणु,  
 तिल्लोप, गरुण-पयास-भाणु ।  
 एण्डह्णु गुरुपण एण्णंय ऋच,  
 जे भाणे षक्क पलंठ-भूय ।  
 एण्डत्र चिरुरात्र पयात्ररुद्ध,  
 श्रवणाहिव जि श्राहव-समुद्ध ।  
 भव्वयण वि पांदह्णु सच्च भासि,  
 सिरि चंदवाह पट्टण-णिवासि ।  
 पांदत्र बुहियण सत्त्वत्थलाणि,  
 पयडी कयत्रेह्णु जिणिदवाणि ।  
 सिरि पोभावइ पुडवार-वंसु,  
 एण्डत्र महिमंठल विगय-पमु ।  
 एण्डत्र सवि हूइ ए उदयरत्र,  
 रद्धू कइ जाणु पसिद्धु तात्र ।  
 पांदह्णु सज्जण कय सव्वमिति,  
 परिमनिउ रोमिदाससा किति ।  
 णिय समए सया वरिसंतु मेह,  
 मंगल हवं तु णिर गेह वेह ।  
 तह सयल पया सुक्केण ठात्र,  
 संपज्जत्र बोहि-विमुद्ध-भात्र ।

घत्ता—

सवेया एण्डहि बुहियण विदंहि पयडिज्जंतउ भंयुद्ध ।  
 एण्डत्र चिरु सायड ह्छिच्छय ससुह्र कुमइ-तिमिर-भर-दलण-  
 विद्ध ॥१३॥

इय-पुण्णासवसत्त्वे पयडिय-मुह-हेउ-परम-भरमत्त्वे  
 सिरि पंडिय-रद्धु-वण्णिए सिरि महाभव्व-संपाहिव-रोमि-  
 दास-भ्रंणुमणिए ए पत्त-दाण-कल-वण्णएणो एणम तेरहमो  
 संघो परिच्छेपो समत्तो ॥१३॥

४६—जीवंधरचरित (जीवंधर चरित)

कवि रड्ढ

आदिभागः—

सिव सिरि रयणयड सव्वदयावड भूरि गुणायड जय तिल्लो ।  
 पणविवि तित्थेससज्जिणु जीमंधरचरित्तभणमित्तह्णुसुहणिल्लो ॥  
 जय आइदेव तियत्थेसत्थेव,  
 जय अजियसामि लोयग्गयामि ।  
 जय संभवेस ह्य भव-किलेस,  
 अहिएण्णएणवज्ज जयअजय पक्क ।  
 जय मुमइ संत त्तियज ह्णु भंत्त,

जय पदमणाह गय सयलवाह ।  
 जय जिण सुपास पूरिय-जण्णस,  
 जय णिसिवई संसय तिमिरिरासि ।  
 जय पुण्णयंत पडिय सुत्त,  
 सीयल जिण्णैद जय कुण्ह कंद ?  
 सेयंस संस जय कुण्ह-मंस,  
 जय वामुपुज्ज हरि सयहि पुज्ज ।  
 जये विमल सुद्ध भय्णं मुवुद्ध,  
 जय पट्ट भ्रणंत गुणगण भ्रनंत ।  
 जय धम्मधार भव उवहि पार,  
 जयदेव संति ह्य लोय-मंति ।  
 जय कुंभ कुंभ पमुहइ भ्रमंय,  
 जय अर ह्यारि तच्चहं वियारि ।  
 जय मल्लि मल्ल चूरिय-तिसल्ल,  
 मुणिए सुव्वयंक जय भव भ्रसंक ।  
 जय सानि णिरौह पायड णिधीह,  
 जय रिट्टोमि सुद्ध सुरह रोमि ।  
 जय पासणह्णु णाणे यथाह,  
 जय जयहि वीर मुरगिरिब वीर ।

घत्ता—

ए ए तित्थया त्तियज महिया णाण्णं भोणिएहि विगय मला ।  
 मह्णु पणमंतह्णु भत्तोभरि (रे) ए सुमइ पयासह्णु ते सयला ॥१॥  
 सरस्सई सुसामिणो सु सत्त्वपाय गामिणो,  
 जिरोस वत्त वासिणो पमाण-वाय-भासिणो ।  
 सुवण्ण वण्ण देहया कईय ए ए मोहया,  
 कुमगज्जाण रोहिणो जडाण वित्तबोहिणो ।  
 सुमायरी महंसया ह्वेउ रोह संजुवा,  
 सुभव्व कट्ठभोयणं जराण वित्त गोयणं ।  
 पयत्थियज्जण पीणं ह्णवामि जिय वीणउ ?  
 णिगंथमग्गचारिणो सुयंग संग पारिणो ।  
 कसायचक्कहारिणो मुज्जम्मसिधुत्तारिणो,  
 सुयम्मरुवज्ज वारिणो दुहंग ज्ञाण सारिणो ।  
 सुगोयमाइ मूरिणो णिरास भास दूरिणो,  
 सुताह पायकंजयं एवेवि पाव-अंजयं ।

घत्ताः—

इह गोपापसिजणणएण पउरे मदिर-सिर-भय-छिद्विम-गहे ।  
 ह्य-गय-पड-संकड-हट्ट-वहे सेविम-मंडलीय-णिवहे ॥२॥  
 तहि णिवसत्तं जणियाणदे,  
 पोभावइ सुवंस-णह-भदं ।



हरिसिंघ संघाहिव तगुआणं,  
 रइधू कइयां विगविय माणं ।  
 तेखेवकहि दिगि जिगुहचिंदे,  
 गुणयण लख पमाखु मुणपणं ।  
 सिख विगवउ भवयेगि सिवारउ,  
 रिगह पमुह कह गुणुण पियारउ ।  
 गहापुराणु वकसाणिज्जंतउ,  
 सिगुणिउ तेख जि गुण मुह होंतउ ।  
 तह मम्मदंनणु पह पारउ,  
 को मुह कह पवधु जव सारउ ।  
 इय वणियाजंतउ सिगुणोधिगु,  
 सिख मणि अइय पमोउ दहेणिसु ।  
 जिगु गुण वण्णसि महरिसुणामो,  
 घलउ जाउ पोंसिय वुह कामो ।

इय जंपत्तउ जण पुरयो कइ अछय काम सिगुणुणउ ?  
 भाणियव दोनु फेउकुमखे चितइ बहु गुण पुणुणउ ? ॥३॥

सह पुराण सिरि तेहरु चरियउ,  
 को मुह कह कुंडन पुणु वडियउ ।  
 कुंधुदास दाहिए कण्णंतरि,  
 मइ पहिराविउ तं इच्छंतरि ।  
 जइ पि गुणुण रयणहि सोहिल्लउ,  
 तहि वि रा सोहइ सो इयकल्लउ ।  
 नणायजहु एम भाम (स?) हिजण,  
 एक्कु सुरु (सूर?) कि देइ पयवणण ।  
 पउ (त) सचित्ति चितेणिसु कइया,  
 भासिउ वणिवरस्त सुहयइया ।  
 भो भो कुंधयास आयणणहि,  
 जइ वि अमहं वुहु किपि रा भणणहि ।  
 तह विवाम कण्णहि तउ संघमि,  
 जीवंधर गुण चरिउ पवंधमि ।

घत्ता—  
 इय सुकइ पउत्तउणोह-जुओ सिगुणिवि आणदियसमणु ।  
 वियसंति वयणु कुंधु जि भणइ विणयरायभरण वियत्तणु ॥४५०-सवणवारसि विहाणकहा (श्रवणदादशी विधानकथा)  
 अन्तिमभागः—

तहो पाय कमल तत्ती जुवेण? मइ हरिसिंघ संघाहिव सुवेण । आदिभागः—  
 सोलहकारण वय फलु बहुत्तु, थो उविअकिलउ सत्तिणिरुत्तु ।  
 घत्ता—  
 जाणारि अहव पुणु कोविणरु सोलहकारण वउ करइ ।  
 सो तिच्छयरत्तु लहेविणरु, पच्छइ सिउपुरि संचरइ ॥२६॥

कुंधयास साहुह निरि मेहुर,  
 कविउ मङ्गपुराण, दुविअय हर ।  
 दाहिए तवसि मुवणणहिमिउउ,  
 मम्मदंनणु रयणु विगवउउ ।  
 को मुह कह पसाय वउ कुंडनु,  
 पहिराविउ पह जिगु रणिमंडनु ।  
 मोलह-भायण-भणिसण-अडियउ,  
 जीवंधर-गुण-जंनणु-वडियउ ।  
 वीणउ मवणाएणु अणुल्लउ,  
 वाम लवणि मणियउ सोहिल्लउ ।  
 रइधू कइया सिख विण्णणणं,  
 पणियाणिय तववरण-पहाणं ।  
 गुण-वण्ण-विहिया संजीणं,  
 अमुहि धम्म-जज्जायण-मोणं ।  
 हियव मूमि पविउउ, मुणुणुइ,  
 वेहियि हउपउ तेख पसणुइ ।  
 धरि रिज्जा सो वणिवर भूणियउ,  
 साहु साहु ता मोयहि धानिय ।  
 गुणइ गारि विच्छियि अणुरत्ती,  
 अच्चइ तरत्ता निगणिय सत्ती ।  
 तेह जि भूणियउ सो इह साउउ,  
 चिय एणउ होउउउ वीहायउ ।

घत्ता—  
 तयतीस पमाण सलोयाहि जि वण्णियउ जीवंधर चरिउं ।  
 कुंधयाइ जीवहं सिच्च हिओ रांदउ रइधू गुणभदिउं ॥२७  
 इय जीमंधरजिणचरिण सोलहकारण विहाण फल  
 तरिए सिरिमहाकइ-रइधू-वण्णियदे सव्वेहि सवणि-अणुण-  
 णियदे सिरिमहाभव्व-कुंधयास-सवणभूतखे जीवंधरजिण  
 विहारवण्णणं गाम तरहमो संघी परिच्छेओ समत्तो ॥१३॥  
 जा सुरगिर कणयंणो जा ससि सूरुो महीवलं उवही ।  
 तज्जीवंधरचरिओ स एणउ कुंधयासेण ॥१॥  
 इत्याशीर्वादः

कर्ता—भट्टारक गुणभद्र

वदिवि वाएसरि सहसाणि, अणुसरि गोयम सेणियहो वाणि  
 पभरोमिसवणवारसिविहाणु, भव्वहं सिव-साहणु सुह-णिहाणु  
 नोट—प्रति बहुत ही अशुद्ध लिखी हुई है ।

अन्तिमभागः—

मुण्डि पय पण्डिवि परि गय प्रराव, जाणिय-चउगइ-दुह-  
मुहसद्दाव  
सो नवइ एवउ किउविहिय जेम, मुण्डि भावित सव्वहं हुवउ तेम  
पय्णु विभो एरणारी करेइ, मो एरिणु फलु भयसं सहेइ ।  
सारंग साहु मुउ मुण्डिविनामु इय कह मणि भायइ देवदासु  
पत्ताः—

विरोमुण्डभइ मुण्डिउरेण यह कह किय पवयणु भणुउरेण  
त्रिए एति उमविउ देहिउदु जर-इम्मपं-भरणु हरेहि लहु  
५१—पक्खवइ थय कहा (पात्तिकमतकथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

वंदिवि विरि धोरहो पय पुयलु नत्तिए शातिय कम्ममलु ।  
पक्खवइथयहो वह वहमितिहा, गणहूर पयठिय पुब्बजिहा

अन्तिमभागः—

पत्ता—

पव नोइवि मणु पिर ठाविवि पुवरपूरि-विरइय-कहा ।  
गुणभइ कोमनसइ पयठिय एणंउ भुवणि इह ॥८॥

५२—आयासपंचमी कहा (आकाशापंचमी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

निदि विलाविलि कंनु पण्डिवि भावें ह्य मरणु ।  
वीरजिणु महेनु कम्म-महिपण-दवजतणु ॥

एहपंचमिविहि विरयमि पउव्व, जिह पुब्बापरिपहि रइय भव्व  
अन्तिमभागः—

पत्ता—

कह पविसय जिहमइ लविउय मलयकित्ति पयभरें ।  
गुणभइ कोमलमइ मुत्तिमुहा-मय मरें ॥६॥

५३—चदायणवय कहा (चंद्रायणमत कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

एविवे रिविहंसइ परमजिणु, एणिय भवियणु हुरियरिणु ।  
फनु पनइमि चंदायणवयहो शारिय जन्म जन्महि जणहो ॥

अन्तिम भागः—

पत्ताः—

इय चदायणवउ पविगय कयविउ मलयकित्ति पय-नत्तिए ।  
गुणभइ गणीसं विगलमणीसं भव्वपरहें शिय-नत्तिए ॥२॥

५४—चंदण छट्टी कइ (चंदनपंठी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

पण्डिवि जिणपवपुयलु जम्म-जरा-भरणु-उय पयडियउव्व  
सहिट्टिहि ।

पणु पनसमि सव्वउ दसमि भवियहं चंदण छट्टिहि ॥

अन्तिमभागः—

पत्ता—

विरि मलयकित्ति मुण्डिवरहु पयारिय मणि भाइवि विगयय  
गुणभइ गणीसं रइय इह चंदण छट्टिहि सरत्त कइ ॥१॥

५५—नरफउतारी दुग्धारस कथा

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

वंदिवि विरि पामु कय-दुह-गामु विरइय मो-वउणिवामु ।  
वरणाणुविलामु ह्य सनयामु विगिय तामरसामु ॥

अन्तिमभागः—

विरो धीधू पदणु संहणपालु, वें नाराविय इह वह गुणगु ।  
पंडउ मो एहि जा मूर-चंडु, एणव-गुण मंडगु कित्तिइ कडु ॥

पत्ताः—

विरोमलयकित्ति पय-वंवइ नउलें गुणभइ मुण्डिउरेण  
वरइय कह इह भवियणु गणहू किय मणु इणुमारें इय परेण

५६—शिंदुर लुत्तमी कहा (निंदुरम सप्तमी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

गासंय विरिउतहो पगहिययंगहो पण्डुतहो कतिउतहो ।  
णिज्जिय एणपउतहो मइसयवतहो पण्डिवि पयउय संतहो ॥

अन्तिमभागः—

पत्ता—

गोवगिरिणुयारि यउवएण मलयकित्ति पय-भनएण ।  
गुणभइसूर एणिय इय शिंदु, मि उलमी रइया ॥१॥

५७—मउउत्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

पण्डिवि विरि रिगहंडु पयउयलु जम्म-जरा-भरणुतिहव ।  
भाहासमि जिम डिणु लउ फनु मउउत्तहि सतामिहिवव ॥

अन्तिमभागः—

पत्ता—

विरि मलयकित्ति गीणु इह विरमइ गुणभइ गुणह ।  
शियभइ भणुमारें विहिय विव सोहइ मुत्तिउर रइयकिय ॥

५८—पुष्पंजली कथा (पुष्पांजलि कथा)

कर्ता—भ० गुराभद्र

आदिभाग—

सिरि अरुहुणेवप्पिरु हियइधरेणिरु सासयमिब-मुहकारणु ।

णियगुरु कम वंदिवि मणि अहिणंदिवि भवदुह-भूरुह-वारणु

अन्तिमभाग—

सिरि लक्खणीह कुल-कमल-चंधु,

वहु भीमसेणु गुण-रयण-सिधु ।

तहु उवरोहें कहकहिय एह,

एंदउ चिरु पसरउ कह सुमेह ।

घत्ता—

सिरि मलयकित्ति पय-भत्तिमइ, रइय कहाणिय सत्तियइ ।

गुणभद्द गणीसें अप्पहिय भव्वहं लोयह अइमहिया ॥८॥

५९—रयणत्तयवयकथा (रत्नत्रय व्रतकथा)

कर्ता—भ० गुराभद्र

आदिभाग—

पणविवि जिणइंदु णिहणिय तंदु केवलणण दिवायरु ।

संसारहु तारु कय सुहसार रयणत्ताय रयणाथरु ।

पुणु पणविवि सिरिपरमेद्धि पंचणियमणिवरिगुरु-पय-हय-पवंच

रयणत्ताय कह विरियमि विचित्ति सेणियहु जेम गोयमेण उत्त

अन्तिमभाग—

सिरि मलयकित्ति पय-भत्ताएण जिणवर-गुण-अणुरत्ताएण

गुणभद्दें विरइय एह कहा णंदउ णासिय जम्म-दुहा ॥७॥

६०—दहलक्खणवय कथा [दशलक्षणव्रतकथा]

कर्ता—भ० गुराभद्र

आदिभाग—

सिवसिरि भत्तारहो णिहणियमारहो विय लियहारहो सीयलहो

परमप्पयलीणहो दुह-सय-खीणहो पणविवि पयगिरि सीलहो

अन्तिमभाग—

पढइ गुराइ सद्दहइ खु भावइ,

मुत्तिसिरि अवसें सो पावइ ।

लक्खणासीह चउधरिय सुपुत्तहो,

भीमसेण णामहो गुणजुत्तहो ।

तह उवरोहें गुणभद्द मुणीसें,

विरइय इह कह विगय मणीसें ।

मलयकित्ति मुणियाहहो सीसें,

मण मह लेलिहाण वरवीसें ।

सावय लोयह होउ सुमंगलु,

वरिमउ पायमु वज्जइ महुनु ।

घरिघरि गाच्चइ कामिणि सहरणु,

घरिघरि रिद्धि विद्धि जायउ वणु ।

घत्ता—

जिणयाह काहि दयमहकिज्जउ मयाएत्ति उलहु संपज्जउ ।

रयणत्तउ सारउ भवदुहताउउ जिणवर सासिय दिज्जउ ॥७

इति दशलक्षणाव्रत कथा समाप्ता

६१—अणंतत्रय कथा (अनंतव्रत कथा)

कर्ता—भ० गुराभद्र

आदिभाग—

पणविवि सिरिजुत्तहं गुत्तित्ति गुत्तहं पंचगुरुहुं पय-पंकयइ ।

आहासमि नुकय पयासमि भवियहं पाविय संपवइ ।

अन्तभाग—

सिरीजयसत्ताल-कुल-गयण-चंदु,

चउधरिय लक्खणु घम्माहिणुहु ।

सउ पंडिय सिरिमणि भीमसेणु

कलि-कलिल-पय-संदोह-सेणु ।

तहो अणुरोहें किय कह अपुव्व,

आइरियं गुणभद्देण दिव्व ।

जो पढइ पढावइ एयचित्त,

तं णाण पयासइ णाइमित्त ।

णंदउ जिणधम्म सुदया-समेउ,

णंदउ एरिदु अरिणण-अजेउ ।

एंदउ चउविहु संघु वि सु-भव्वु,

णंदउ मुणि-णियरु विणहु-गव्वु ।

ससेवें वित्थर परिहरेवि,

णियगुरु-पय-पंकयमणिवरेवि ।

मइ हीणें भत्ति-विसालएण,

सिरिजय अणंतकय जिय-मएण ।

घत्ता—

एत्तिउ महु बुज्जउ लहु संज्जउ केवलणण मरणु विमलु ।

णउ अणु जि मग्गमि जिण-पइ लगमि भवि भावे बोहिहोउ

सयलु ॥८॥

इति अनंत व्रतकथा समाप्ता

६२—लद्धिविहाणकथा (लद्धिविधान कथा)

कर्ता—भ० गुराभद्र

आदिभाग—

पणविवि जिणसामि सिव-पय-णामि सग्ग फलोह तरु ।

वउ लद्धि-विहाणु सुवड-णियाणु भणमि जण-मण-णंदियह ।

अन्तिमभाग—

उपग्रह संवत्तु त्रिणाजयस्मि,  
शिवमने गुणभद्रं सुप्रथमि ।  
इय कइ विरडयं वदिडियबंध,  
समेवें कम जण पुण्यबंध ।  
सारांग मोहं सुउ गुणदिनामु,  
इय कइ मणि भावइ देवदासु

पता:—

गिरि गोयन सामि एतित नहु महु देहि तुहु ।  
जइ जम्मु ए गामि मइ विराणाहि तिलु तहु ॥८॥

६३—सोलह कारणवयकइ। (पोडरा। ११ए वन कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

अदिभाग:—

वदि अपवग मणु पण्यहु जेण होइ जणु मुत्ति पहु ।  
मोन्हकारणवयकिइ कहमि जें भवगापर तहु परिलुभिय ॥

अन्तिमभाग:—

पता:—

जीयंवरसोमि शिवउरगामि एतित नहु महु डिग्गइ ।  
जइ गउ तहुं ठाणि मइ वि पराणिसण्यु ए मग निविजइइ ॥

६४—सुगंधदहमी कइ। (सुगंधदशमी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

अदिभाग:—

... ..  
... ..

अन्तिमभाग:—

गिरि मलयकिचि गुरुणय लविवि तिति गुणभद्रं रडय कइ  
संसेवें कइ जिह गणहृति ए रिउ-मइ-प्रणुमारेण तिहा ॥८ ॥

६५—अणुनवयकइ। (अनन्तवन कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

अदिभाग:—

सुमो विग पाय पमुरग सुबंध,  
सुमो पदमेकरडविच-वय ।  
सुमोबर.....पुत्रिय देह,  
सुमो मरणगि-विजभवगु-मेह ।

अन्तिमभाग:—

ओ पडइ पडावइ गुदमणु निहइ निहावर रिण्यउ ।  
सो पण्य भदंउरे गुणमहिउ रिण्य पावइ मणुवदिउ ॥

६६ आराहणासार (आराधनासार)

आदिभाग:—

—वीर कवि

एणपिइ गुण सायर भुवणदिवायर पणविवि सिद्ध जिणोसर ।

बोच्छमि आराहणु शिव-मुह-माहणु जइ अरिसय निणवर

भरहेसर पुच्छियउ जिणोसर,

आहणाहु जो जग परमेसर ।

जहं तहं सेणिय पुच्छिउ सम्पई,

एणणु दिवायइ चत्तउ दुम्मइ ।

मोवसइ वारणु अरिसय सांभेय,

भवइवि तहु पणु सिक्कइ गामिय ।

संसारइ भय-भीरु एरेसर,

पुछिय सेणिय जो जगंसर ।

वीर भणुइ चउविह आराहणु,

जा दुह-यांसण-सिक्क-मुह-माहणु ।

सो रिण्यउ-ववहार मुण्णिजइ,

सो भविमणु जिणुवइ भासिजइ ।

दंसण एणणु चरितु पमासर,

महणुव सारउ जग विवगायइ ।

जे तच्चहइ सम्मत भण्णिजइ,

आण्णिजइ सो एणणु मुण्णिजइ ।

जो पिइ भावइ पर विवजइ,

सो चारितु मणहि भाविजइ ।

तेरह विहि जिणवर अविजइ,

ववहारइ मु कुह आण्णिजइ ।

जो वारइ विह तउ जिण सामणु,

भवणहि कुह सो मुणहि विवस्तणु ।

पर दुण्येहाणिविचि जो विजइ,

सो तउ रिण्यउ कुह आण्णिजइ ।

इय चउविह आराहणु आण्णिहि,

ववहारेण परहं वगणणहि ।

रिण्यउ आहइ जिणवर कुह भाणहि-

पणा अणउमाण उचउणणहि ।

आराहण पणु निणुवर भावइ,

वैशतणणु पणउ पमायइ ।

पता:—

इय आराहणासार वारणु-वज्ज विचारियहं ।

जो अण्णहि जगणहू आणि विरिय मरिमाणियइ ॥१॥

अन्तिम भागः—

अहो अहो सत्यवाहि कुलभूषण,  
 शिखुरिण वम्मु तज कहमि अरिसणु ।  
 विराकज्जेण जीउ जे मारहि,  
 कुंतलवडि असियाय [ प ] हारहि ।  
 ते दालिहिम- दुह उप्पज्जहि,  
 एणइ ( य ) पडंता केण धरेज्जहि ।  
 जे अहिलास जाहि परयारहि,  
 जाहि पुरिस ते संढ ! वियारहि ।  
 जे पेसुवण भासंरय अणुदिसु,  
 सुह जणि गिणदा करहि जि कुम्मणु ।  
 गिणच्च गुत्ति उप्पज्जहि ते एण,  
 हीण सत्त बहु दुक्ख परंपर ।  
 दउलायंति भमहि परिदें,  
 ते जम्मंति इत्यु विण विधे ।  
 खास-सास बहु चाहहि गीडा (हा)  
 भवि भवि हुंति पुरिसभइ मूडा ।  
 छिदह दहहि विविह जे तर वर,  
 कुदूवाहितहु दो सइ एणवर ।

घत्ताः—

जे कहहि अदिहु विदिदुउ,  
 असुवउ सुवउ कहंति ।  
 ते अंधवहिर एण पाविय,  
 दुविकय भमंति ॥२०॥

(गुटका आमेर भंडार)

## ६७ हरिसेण चरिउ (हरिषेण चरित्र)

आदिभागः—

भावे पराविवि मुणिए सुव्वय हो चरण कमल भवताव महा ।  
 नि ( गि ) सुणहु भवियहु बहु रस भरियहु हरिसेणहु  
 पयडेमि कहा ॥  
 जिण सासणि दुरिय परासणि अहो जण कण्ण महोच्छउ  
 दिज्ज हो ।  
 विमलुज्जलु तव निम्मलुयउ हरिसेण हो चरिय  
 मुणिएज्ज हो ॥

अन्तिमभागः—

बुहयणाह एण परियव्वहो गुण उवएसि जालिययो ।  
 कायिज्जीयइ जिणु परावेण्णिणु ते हरिसेण सम्भायिओ ।  
 महा चप्रवर्त्तो हरिषेण चरित्रं समाप्तं ।

## ६८ मयण पराजय (मदन पराजय)

कवि हरदेव

मंगलाचरणः—

कमल-कोमल-कमलंक तिल्लोक मल्लिक्य कमल गय ।  
 कमल हूणण सिहरेण अचिय, कमलपिय कमलपिय ।  
 कमल भवहि कमलेहि पुज्जिय ।  
 ते परमपपय पय कमल परामवि कलिमलचत्त ।  
 मयद जिणदह जेमरणु पयडमि साजइ वत्त ।

× × × ×

अन्तिमभागः—

विसयसेण मुणिवर अच्चेसइ, तंचारित्तनयर रक्खेसइ ।  
 इम भणेवि गउ मोक्ख हो जिणवर विसयसेणु पालइ  
 संजमभर ।  
 अमुणंतहं का इवि साहिउ, मुणिवरतं लमतु उणाहि उ ।  
 जिण वरि दे पये पकय भसलि-नाविज्जाहर गणहर कुसलि  
 मयण पराजएण विरइय कह, हर एविरेति विघुहयण सह  
 गुणदोस पयाउ अक्खिउ भाउ महु छलेण विरइय कह ।  
 भव्वयण-पियारी-हरिसंजणेरी नं (एणं) दउ चउविह संघहं ॥२  
 इय मयणपराजयचरिए हरिएवं कइ विरइए मयण  
 पराजयएणम दुज्जओ परिच्छेओ समत्तो ॥

प्रति आमेर भंडार, सं० १५७६

## ६९ सिद्ध चक्क कहा (सिद्धचक्र कथा)

पं० नरसेन

आदिभागः—

सिद्धचक्कविहि रिद्धिय गुणहि समद्विय पराविवि सिद्धि  
 मुणीसर हो ।  
 पुण अक्खमि भव्वहं वियलिय गव्वहं सिद्धि महापुरि  
 सामिय हो ॥

× × × × × × × ×

पता :—

जो जिए गुणमान पडेसइ मणि नावेसइ रिद्धि बिद्धि जमु  
लहइ पउ ।  
जो सिद्धि वरंगण शारिहि ह्यजर मारिहि सुहु एरसेणहं  
परमपउ ॥१॥

जिण वयसाउ विणिमय सारी,  
पणविधि सरसइ देवि मठारी ।  
सुकइ करंतु कच्चुरसवंतउ,  
जमु पसाय बुहयणु रंजंतउ ।  
साभय वय महु हाउ पसण्णी,  
सिद्ध चक्क कह्मि रवण्णी ।  
पुणु परमेठ्ठि पंच पण वेण्णियु,  
जिएवर भासिउ धम्मु संरेण्णियु ।  
विउल महागिरि भायउ वीरहो,  
सदवसरणु सामिय जयवीर हो ।  
तहो पय वंदणु सेंगिउ चलिपउ,  
चेत्तणाहि परिवाट्टु मिनिपउ ।  
तिण्णियु पचाहिण देवि पसंसिउ,  
उत्तमगु भूरोवि शर्मसिउ ।  
जाय ति भा मरि देविणु पाह हो,  
पणविधि बहू भाविहि ह्यमोहहो ।  
गणुहरु सियगंधहं पणवेण्णियु,  
अज्जिययाहं वंदणइ करेण्णियु ।  
सुल्लय इच्छाकारु करेण्णियु,  
सायहारु सावय पुच्छेण्णियु ।  
निरियहं उवसम-भाउ गरि ठुउ ,  
पुणु रारिडु एरफोठ्ठे विविठ्ठु ।  
पुच्छइ सेंगिउ वीर जिएमर,  
सिद्ध चक्क फलु कहि परमेसर ।  
ता उच्छंतिय-याणु सधरंघहो,  
सुय-नायर-नवरि तरंगहो ।

पता—

गावमु मणि गाहइ पणु परिपाहइ ए उरेंडे पयामर ।  
सिद्ध चक्क विहि दट्टिम निमुणु मरिट्टिउ सेणिय कहिय  
यनामइ ॥२॥

× × × ×

अन्तिमभाग:—

पता—

सिद्ध चक्क विहि रइयमइ एरसेणु भणइ सियंसतिणु ।  
भविण्यु जणमणु भासांदयरे करिणियिजेमर-भतिणु ॥३६

इम सिद्ध चक्क कहाणु पयडिय-धम्मतर-काम-भोनसाए  
महायय चंपा-हिब सिस्सिपाल देव-भयणामुं दरिदेवि-परिए  
पंडिय निरिएरसेणु विरइए इहनाम-नरनाम-मुहु फल  
कराए रोर-दुह-धोर-कोट्ट-वाहि-भवणामणाए गिरिपाल  
गिण्वाण-नमणोणाम बीमो वंधि परिच्छेपो नमत्तो ॥  
संधि २ ॥

७० अणत्थिमिय क्हा (अनस्तमित कथा)

कर्ता—हरिचन्द्र कवि

आदिभाग:—

वासरि मेलंतहं सिसि भुंजंतहं पाव पिसाएं गाहिय मणु ।  
गुण-दोम-वियाणु सुह-दुह-एरणु न परमत्यु कहमि जिणु ॥  
भाइ जिणुडु गिणु पणवेण्णियु,  
चउवीसहं कुममंजलि देधिणु ।  
यट्टमाणु जिणु पणविधि भावे,  
कलिमल-वसुम-विविज्जिउ पावे ।  
संवातिवि भाइरावउ गर्दु,  
जमु जम्म ठहवणु भायउ मुरिडु ।  
एणउ मेरु चिहरि तिल्लोक गाहु,  
भाइ-विसम-वम्मवणु-उरणु-दाहु ।  
कत्तेहिं श्वायउ गिहामणत्त्यु  
वन चामरोहि विज्जिउ पसत्यु ।  
धातउ एणएवि इंदसम ताम,  
जन संकरइसइ हियइ ताम ।  
सा अक्कहिणामु पणिकपियउ,  
ते मेरु अगट्टइ चणियउ ।  
घर-हरिय धरणि बनेहु गमिउ,  
गिरि डोळ्णियु मुर-गमूह तमिउ ।

पता—

परमेठ्ठि पणामणु गिरवम तामणु इदि वणिन्द जामु गुणा  
निरु कवेयि पदमे कहमि रिपो पुर धणपमिय सुरोहु  
अणा ॥१॥

अणा ॥१॥

जय बहुमाणा सिव उरि पहाणा,  
 तइल्लोय-पयासणा-विमलणाणा ।  
 जय सयल-सुरासुर-णामिय-पाय,  
 जय धम्म-पयासणा धीयराय ।  
 जय सील-भार-धुर धरणा धवल,  
 जय काम-कलंक-विमुक्क अमल ।  
 जय इंदिय-मय-गल-वहणा ब्राह्म,  
 जय सयल-जीव-असरणा-सणाह ।  
 जय सोह-लोह-मच्छर-दिणास,  
 जय वुट्ट-धिट्ट-कम्मट्टणास ।  
 जय चउदह-मलवज्जिय-सरीर,  
 जय पंच-महव्वय-धरणा-धीर ।  
 जय जिणवर केवलणाणा-किरणा,  
 जय दंसणा-गाणा-चरित्त-चरण ।

घत्ता—

जिणवर वेदे विणा गुग्गु रावेविणु भाव वाएसरि संरिवि ।  
 अणथमिउ पयासमि जणा उक्कासमि णियमणा सुद्ध भाव  
 करिवि ॥२

अन्तिमभागः—

पुणु पाव्विट्टह हउ आसक्कमि,  
 धम्मकहा पयडे विणा सक्कमि ।  
 तेण समुच्चएणा मइ जंपिउ,  
 भव्वयणाह उवसंतह जंपिउ ।  
 इउ अणथमिउ जिणागमे उत्तज,  
 एव्वहि मइ हरियंद णिवुत्तज ।  
 इह अणथमिउ जु पढइ पढावइ,  
 सो णरु-णारि-सुरालज पावइ ।  
 जो पुणु अविचलु मणि णिसुरोसइ,  
 तहो सुह विमल बुद्धि पयडेसइ ।  
 जो अक्खलिउ अणथमिउ करेसइ,  
 सो णिव्वाण णयरि पइ सेसइ ।  
 मइ पुणु भावे कव्वु चडावइ,  
 सुणअ सुअणा बहुगुण अणुरायइ ।  
 पाविउ वील्हा जंडू तराणं जाणं,  
 गुरु-भत्तिणं संरसइहि पसाणं ।

गाथा—

अयरवालवंसे उन्नणाइ मइ हरियंदेण ।  
 भत्तिणं जिणु पयावेवि पयट्टिउ पढडिया छंदेण ॥१॥  
 इय अणथमो कहा नामत्ता ।

७१ चूनडी (रास)

कर्ता—मुनि विनयचन्द्र

श्रादिभागः—

दिणणं वेदिवि पंचगुण,  
 गोह-महा-तन-तोण-दिणयर ।

वेदिवि वीरणाह गुण गणाहरे तिहुवणा सामिउ गुण गिलउ  
 मोरुह भग्गु पयासणा जगगुर,  
 शाह निहावहि चूनडिय,  
 मुद्धउ पभणइ मिउ जोडिवि कर ॥१॥ ध्रुक्क  
 पयावउ कोमल-कुवल्लय-णयणी,  
 लोया लोय-पयासणा-वयणी ।  
 पसवि वि सारद-जोणइ जिम,  
 जा अ धारउ सयलु विणासइ ।  
 सा मह णि-वसउ माणसहि,  
 हंसवधू जिम देव सरासइ ॥२  
 माधुर संघह उदय मुणीसरु,  
 पण विवि वालइडु गुरु गणाहरे ।  
 जंपइ विणय मयकु मुणि,  
 आगमु दुग्गमु जइ विण जाणउ ।  
 मालेज्जउ अवरहु मह,  
 भवियहु इह चूनडिय वत्ताणउ ॥३

अन्तिमभागः—

तिहुमणि गिरिपुरु जमि विक्कायउ,  
 राग खडुगं धरयलि आयउ ।  
 तहि णिवसतं मुणिवरेण,  
 अजयणारिद हो राय-विहारहि ।  
 वेगं विरइय चूनडिया सोहह,  
 मुणिवर जे सुय धारहि ॥३॥  
 इय चूनडीय मुणिद-पयासी,  
 संपुण्णा जिण आगम भासी ।

पदहि गुगहि जे सद्धहि,  
तेगु निवमुद्ध सर्हि पयत ।  
विगए बंदिबि पंचगु ॥३३॥

विहि घ्रापविनु जिगु भणइ  
चउहिमि होइ उवगानु गिहएह ।  
पहवा सपतह खवपविहि  
विगएचंडु मुनि कहिउ समतह

इति श्री भट्टारक विनायक विरचित कल्याणक विधि समाप्त ।

७२. गिञ्जर पंचमी कहा (निर्भर पंचमी कया)

कर्ता—मुनि विनयचन्द्र

प्रादिभागः—

पगवित्रि पंच महागुरु परिके मगुं,  
उदयचंद गुरु गुमोर विवदिबिबाल मुगुं ।  
विगए पंडु कनु अत्रउद गिञ्जर पंचमिहि,  
निगुएहं भूमकहाणउ कहिउ जिगामिहि ॥

प्रतिमभागः—

तिहुअणगिरि नव रट्टिय दृ रामउ रइउ,  
माथुरसंधहं मुणिया विणयचंद कहिउ ।  
भविमदु गडः पडाअ दुखियहं देहु जलु,  
मागाम करहु मगुनहु मगुएवचहु अचलु ।  
जे (जि) पा भगनि भडाग पंचमि पंचपदु,  
अन्हहि दरिनावहु अविचनु मिडि मुहु ।

७३ कल्याणक रासु

कर्ता—विनयचन्द्र

प्रादिभागः—

मिडि-मुहंकर मिडि-यदु पपाविबि ति-उप-नपामण ।  
केवसिमिडिहि कारणि मुनिमि हउ, समय विजिप कल्याण  
पिहियमल ।

मिडि मुहंकर मिडि-यदु ॥१॥

पदमं पकिर दुहउरहि घामाउहि  
रिगुह गणुनहि दूतर साउहि ।  
अ-विनागे एट्टिहि नोहिमि (हउ)  
चंदमि रागुगुअ गधुअउउ ।  
विगए मुगिउउ पट्टिमिहि वनमिहि  
पामि विन जम्मगु मह ताउ ।  
मिडि मुहंकर मिडि पदु ॥२॥

प्रतिमभागः—

एवमगु एअरि गन्नाणउ मिबि  
विनयचंद अहंकर ताणउ ।

७४ सोखचह विधान कया

कर्ता—विमलकोति

प्रादिभागः—

पगविबि तिदंकर मिडि मुहंकर मुहु सांडविहि मगुहर ।  
गुए मगुहर विरयंतह वर दिनु बोहि महु मुन्दर ॥

प्रतिमभागः—

रितिहेम विगुवद मुणि विम नकित्ति ।  
तदु देहिउ सत मम मिडि रूपनि ॥

घटा—

जे पउइ मुगुइ मणि भावउ  
जिगु आउहइ मुहु मंपद गोणए सहइ ।  
जागु वि पउउइ मक-मुह-रिबउउइ  
मिडि विनागणि सो रमइ ॥

७५ चंदणएट्टी कहा (चन्दनपट्टी कया)

कर्ता—पं० लागू (नधमगु)

प्रादिभागः—

पणवेणिए भावें विमनमहानें पाव पीम परमेट्टिह ।  
अवममि निय-सतिए अविपण-अतिए उ पनु चंदण-एट्टिह ॥

प्रतिमभागः—

इय चंदणएट्टिहि जो पाणउ यदु तत्रगु ।  
सो दिबि भुजिवि गोणु मोवाउ पाणें तत्रगु ॥

७६ गिहू बखसत्तमी कहा (निदुःखसत्तमी कया)

कर्ता—मुनि वानचन्द्र

प्रादिभागः—

मनि विनि दृ पय-अमनु भव-अउ-अनु म-अउ-अविग ।  
उदयचंद गुरु परेवि मणे बाणउदु मुनि पकिवि निरएउ ।



रांउ दिट्टाणउ सेविय मुसेय,  
मइं सट्ट-सत्य-जाणिय ण भेय ।  
णो कता कम्ममु ण किरिय जुत्ति,  
णउ जाइ धाउ णवि संधि उत्ति ।  
लिगालंकाह ण-पय-समत्ति,  
ण बुज्झिय मइ इक्कवि वि विहत्ति ।  
णिग्घट्टु वि यो जो अमरकोसु,  
.....।

× × ×

घत्ता—

भो सुणु बुद्धीसर वरमहि दुहुहर,  
इल्लराज सुअणा खिख्खइ ।  
सण्णाण सुअ साहारण दोस  
णिवारण वरणरेहि धारिज्जइ ॥

इय सिरि संतिणाह चरिए णिग्गम गुणरयण संभरिए  
अण्णाणमयो (?) इल्लराजसुअ-महिदु विरइए सिरिणाणा  
सुअ-संघाहिव-महाभव्व साहारणस्स णामंकिए भव्वयण  
जण-मणासांदयरे सिरि इट्टुदेव-णमांयारकरणां सेणिय  
महाराय सिरि वड्डमाण समवसरण गमणां-धम्मवखाण-  
निसुणणां पढमो इमो परिच्छेओ समत्तो ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

अहुणा णामावलि, वण्णवि आउलि पभणउ अइसुहयारी ।  
सिरि वीरु णवेपिणु हियइ धरेविणु सुद्धविदा पहुकेरी ।

पद्धडी—

इह जोयणिएपुरु पुरवरहँ सारु,  
जहु वण्णणि इह सक्कु वि असारु ।  
सालत्तय मंडिउ सो विभाइ,  
कोसी सहि परिहा दुग्गणाइ ।  
जो वण-उववण-मंडिउ विचित्तु,  
णं मेरुवि चेईहर-पवित्तु ।  
तण्णियड वि जउणा-णइवहेइ,  
णं गंग वि ईसहु सहु वहेइ ।  
खंड गोउराइं अइ जिगि मिगंति,  
खण मुहहु वि णं अरवयारु दिति ।  
जह्ण रक्खइ गोउरु वंडधारि ।

अरियण-गणाह जो संपहारी  
पच्चंत णिवउ संगहइ दंडु,  
रायाहिराउ वव्वरु पयंठु ।  
मिच्छाहिउ अइव विणाय जाणु,  
महसूलणोव्व जणदिण्णमाणु ।  
जहिं चाउवण्ण पय सुहि वसंति,  
णिय णिय किरियाइविरत्तचित्ति ।  
तहिं चेतालउ उत्तु ग सहइ,  
धयमंडिय भोक्ख [सु] मग्गु वहइ ।  
जहिं मुणिवर सत्यइं वायरंते,  
मह जण्ण-पूय सावय करंति  
तहिं कट्टसघ माहुर वि गच्छि,  
पुक्खर गण मुणिवर चइविलच्छि ।  
जसमुत्ति वि जसकित्ति वि मुणिदु,  
भव्वयण-कमल-वियसण-दिणिदु ।  
तहु सीसुवि मुणिवर मलय कित्ति,  
अणवरय भमइ जागि जाह कित्ति ।  
तहु सीसु वि गुण गणरयण भूरि,  
भुवणयलि सिद्धु गुणभइ सूरि ।

सोरठा—

तहु पय भत्ताउ साहु भोमराउ जाणिज्जइ ।  
गुण वट्टियइ णिवाम जोयणिएपुरि णिवसज्जइ ॥१॥

चौपाई—

जें तित्थयर वि गोत्तु णिवद्धउ,  
करि पयट्टु सुह-पुण्ण वि लद्धउ ।  
संघाहिउ गयपुरि संजायउ,  
अयरवालु संघह सुह-भायउ ।  
गग्गोत्त-णिम्मल गुण सायरु ।  
सुधिरें मेरुवि तेय-दिवायरु ।

पद्धडी—

तहु भज्जवि घोत्हाही विसार,  
णाहहु गासिणि रां गंगफार ।  
तहु पुत्ता पंचणं मेरुपंच,  
मह-वयइ पंच णं समिइ पंच ।

पहिमारत मंपहु भारपरणु,  
 चउभेय संप बहु भति-करणु ।  
 मंपाहिउ खीमविचंद सार,  
 तहु विणि भज गुणगणु विमार ।  
 पउम वि धीकाही गुणवरिदु,  
 खीई नानिगही पदव इदु ।

तहु पुत चपारि वि चउ गिणभोस ।  
 छीया पउमउ भज वि धमीय ।  
 तिहुएाही पामें ऐमिदासु,  
 सोउ वि जायउ मीन किरणहंसु ।  
 तहु कामियो वि गज्जो वि पाम,  
 बीयउ मुउ पिरयो मल्लु नामा  
 तहु पिययन हितगही पमिद,  
 तहु पुत चपारि वि गुण-ममिद ।  
 पउमउ उधरणु रणणउ विनीउ,  
 गुण गण गरिदु पणराउ सोउ ।

चोपाई—

चउत्यउ मानसिमु वि भनिज्जद,  
 खेमचउर मुउ नीयउ गिज्जद ।  
 इदेव कीउ मो इंदराउ,  
 रावएही कामिनि जो मराउ ।  
 तहु पुत विणि पं मच्छिभिल्ल,  
 मंकीविणु तारणु रमित्त ।  
 पुणु चउवउ चंदु वि चंदहाणु,  
 दोसाही पदु मुउ सामिदाणु ।

पता—

भोयहु मुउ बोयउ मुण गण बुचंद,  
 एणणचंदु पभनिज्जद ।  
 गदु भासिनि गुण-गण-ममिनि,  
 सउराजही किरिज्जद ॥२॥  
 गदु विणि चंगु विणि। रमण,  
 पं विणि मंग ने मुउववण ।  
 पउमउ मग्मेय वि रण करणु  
 सारणु विणुमं मुउ करणु ।  
 तहु मणणु तिसोकाही गुण,  
 गण-मग्मेय-विरण-भान ।

बीयउ मंपउ भार पुरंपद,  
 देवसत्प गुण भति वि धायद ।  
 जिण सह पेमिनि महिरायहंसु,  
 पावारिणाय जो पवरहंसु ।  
 जुण्ण-सेनु जय जत्तकारि,  
 विहवेण विजित्तउ जे मुरारि ।

चोपाई—

पंडियसमूह दणणु गिज्जद,  
 पंडिपाह गुणएणय भणिज्जद ।  
 साधारणु एामें सो भानिउ,  
 उवना रहिउ वि जण-महि-मारिउ ।  
 तहु वणिमा सीवही एामें,  
 एं मरघोरणि पेमिद-कामें ।

पदडी—

तहु चारि तणुव्वव गुण महल,  
 खेहवि मुप धमयहु चंदु मंत ।

चोपाई—

चंदणुही भज्जि रणणणु,  
 बीयउ जेट्टवि मल्लु गुणिल्लउ ।  
 पर भदासही भज्ज धनविउ,  
 तीयउ जित्तसुत्तो वि धमविउ ।  
 मो पिवा वि मंमदो रद माणद,  
 पुणु चउवु सोहिलु पिउ भाणद ।  
 तामु एारि भीखणही दावण,  
 एं मदीवरि भोयहु भाणण ।  
 मपाहिउ पापातीउ पुणु,  
 मपाहिउ तात्हणु सुसंविचित्तु ।  
 संपवद वि भोयहु धीउ सोउ,  
 सिरियचदुमाणु सोउ ।

पता—

गदुभग्ग गुणणि मग्गेयरा हरराजही य भणिज्जद ।  
 सोहिलु वि सोसा धरण विणोपा एण गुणाय जय गिज्जद ॥

पदडी—

तहु भुल्लणु एामें सोउ (य) राउ,  
 ने कामिणीवि परिणउ वण ।

विज्जाणंदिय दंसण साहारण भणिया ।

पंडिय सोहि पयासहु कोइल पंचमिया ॥

इति श्री नरेंद्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत कोकिला

पंचमी कथा समाप्तः ॥

६१ मउडसत्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)

ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

दंसण गुणसार हो केवलधार हो तिहुवण कंज दिगोसर हो ।

कलिमल पिण्णासहो धम्म पयास हो पणविवि वीर  
जिगोसर हो ॥

जिण वयणुंभव सरसइ पवित्त,

भुवणत्तय दंसण सट्ठित्त ।

सिरि कुंदकुंद गणि रयण क्कित्त,

पहसोम पोमणंदी सुवित्ति ।

हरिभूसण सीसु णरिद कित्ति,

विज्जाणंदिय दंसणवरित्ति ।

वंदे वि पयाममि सुह-णिहाण,

पुब्बुत्त मउडसत्तमि विहाणु ।

अन्तिमभागः—

अण्णजि पाले सहि वय-विहाणु,

ते पावेसहि अमरत्त ठाणु ।

घत्ता—

जे किरीड सत्तमि विहि सुह मंगल णिह पालहि भवसरि  
तारण ।

ते णरिदकित्ती धर खयर पुरंदर होति वंभसाहारण

इति श्री नरेंद्र कीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत मुकुट  
सप्तमी कथा समाप्तम् ।

६२ दुद्धारसि कहा (दुग्ध द्वादशी कथा)

ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

जिण सिद्ध भडारहो तिहुअण सारहो आयरियहो पुणु  
उज्जयहो ।

वंदे वि मुण्णिद हो कुवलयचंद हो दुद्धारसि पयडमि  
जणहो ॥१॥

जिण वयण कमल र्हदिव्व वाणि,

पणमामि जगत्तय पुज्ज जाणि ।

णिग्गंथ रावण णिय गणि धरे वि

पहचंद भडार हो थुइ करे वि ।

दुद्धारसि कह फलु सावयाह,

जह गोयम भासित्त सेणियाह ।

तह भासमि जइ हउं मंद बुद्धि,

सर सइहि पत्ताएं कच्च मुद्धि ।

अन्तिम भाग :—

अण्णुवि जो इय विहि पालेसइ,

गरु तिय सो सुरलोय गमेसइ ।

जिणवर दंसण मूल गुणायर,

पोमणंति हरिभूसण भायर ।

सोसु णरिदकित्ति भवतारण,

विज्जाणंदि वंभ साहारण ।

पयडिय एह कहा जणमणहर,

एंदउ ताम जाम रवि सत्तहर ।

घत्ता—

जे पटहि पटावहि भव्वयण णियमणि णिक्कउ भावहि ।

ते वंभ सहारण वय फलेण, अमर लोय-सुह पावहि ॥५॥

इति श्री नरेंद्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारणकृत  
क्षीरद्वादशी कथा समाप्तः ।

६३ रविव्रय कहा (रविव्रत कथा)

ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

केवल सिरि सारहो गुणगणधारहो कम्मकलंक विचारहो

उवसण णिवारहो एयसुयर सारहो पणविवि पास  
भडारहो ॥१॥

वंदि वि परमेसर वडुमाणु,

जसु तित्थे धम्म पवट्टमाणु ।

सुर असुर एमंसिय परम वाणि,

पणविवि गोयम गणि दिव्व णारिण ।

जिण समय मूल सिरि कुंदकुंदि,

पहचंद मुणीसर पोमणंदि ।

हरिभूसण सीस णरिदकित्ति,

गुरु चरण एमंसि वि पयड कित्ति ।

पुणु दिणायर वासर कह करेमि,  
भवयणहो मणि मंसउ हरेमि ।

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जो रविवासर-वउ करहि गलिय-मउ दंसणुत्त वय  
धारणु ।

ते एरिदकित्तिए लहहि सुरत्तणु परम बंभ  
साहारणु ॥५॥

इति रविवासर कया श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म  
साधारण कृत समाप्तः ॥

६४ तियाल चउवीसी कहा (त्रिकाल चौवीसी  
कया) ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

निहुवण निरि तिलयहो गुण-गण-खिलयहो भविय  
कुमुय-वणचवहो ।

रणत्तय-जुत्तहो कलिमलचत्तहो पणविधि परम  
जिणियहो ॥१॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जे तियालचउवीसहे णिहय रईसहि विरयहि विहि  
गुण धारणु ।

ते एरिदकित्ती पउ धमरेसर जउ लहहि वम  
साहारणु ॥१॥

इति श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारणकृत त्रिकाल  
चउवीसी कया समाप्तं ।

६५ फुमुमंजलि कहा (पुष्पांजलि कया)  
ब्रह्मसाधारण

आदिभागः

परमपम सारहो गुणगणधारहो, पयडिय तच्च  
वियारहो ।

पतिय वय बभहो दुवय णिनुंभहो पणविधि वीर  
भडारहो ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जे फुमुमंजलि विहि विरयहि कयदिहि पाव-किलेसरिण  
वारण ।

ते एरिद कित्तेसर धमर सगेमर पवड वंभ  
साहारण ॥५॥

इति श्री नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत  
पुष्पांजलि कया समाप्तः ॥

६६ णिहू सी संत्तमिवंय कहा (निर्दोष सप्तमी  
व्रत कया) ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

रणत्तय धारहो भवसरिताहो समय कमल सरणे  
सरहो ।

गुणगण संजुत्तहो सिक्कपुरत्तहो वंदिवि वीर जिणे  
मरहो ॥

अन्तिम भागः

घत्ता—

जे णिमल भावहि वज्जि य गावहि पडहि पढावहि  
एह कहा ।

ते पर मुर सुक्कइ लहहि अत्तपइ वभ सहारण  
कहिय जहा ॥५॥

इति नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत निहुं  
सप्तमी कया समाप्ता ।

६७ णिजभर पंचमी कहा (ब्रह्मसाधारण)

आदिभागः—

पणविधि परमेसर वीर जिणेमर वाए मरि सियमणि  
धरि वि ।

पहु-वित्ति पणाय मणि अणुगणं णिजभर पंचमी फणु  
कह्मि ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

सिरि मूलगंभ उदयदिगिरि मुणि पट्ट किन्नि  
दिणुसर ।

तहो सीमु महारणु वंजवर तें पयडिय पणवेधि  
गुण ॥५॥

इति श्री नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत णिजभर  
पंचमी कया समाप्तः ।

## ६८ अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा) ब्रह्मसाधारण

आदिभागः—

वंदिवि जिणवर वाणिगुरुं पयडि तित्थ बहु सत्थ  
पयासिणि ।

पंडिय लोयहो जडमइ णासिणि सरसइ होउं पसण्ण  
महु ॥

सुरणार खेयर णमिय भडारी वंभ सहारण विण्णवइ ।  
जह अणुवेहा कव्वु पयासमि । वंदि वि जिणवर  
वाणि गुरु ।

अन्तिमभागः—

परम तच्च सिद्धं त पयासणु,  
गोयम कुंदकुंद गणि सासणु ।  
पहससि पंकयणंदि गुरु,  
हरिभूषण एरिदकित्ति तणु ।  
विज्जाणंदिय सीसभरु,  
परम वंभ साहारण पणविय वंदिवि ।

इति श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत  
अनुप्रेक्षा समाप्ता ।

## ६८ सिरिपाल चरिउ (सिद्धचक्रव्रत कथा)

कवि रइधू

आदिभाग—

सिद्धहं सुपसिद्धहं वसु-गुण-रिद्धहं  
हियम कमले धारे वि निरु ।  
अक्खमि पुणुसारउ सुह-सय-सारउ  
सिद्धचक्क-माहप्य-वर ॥  
छांगे साहु हु वंस अलंकिउ,  
मुणिवर गुण भावइ निसंकिउ ।  
वाटू साहुहु पुत्तु धुरंधरु,  
जिणणाहहो पय-पयरुह-महुयर ।  
दारों तिविह-पत्त-पोसणयरु,  
दिउचंदही भज्जहि पुण जो वरु ।  
करमसिह एांदरोण समाणउ,  
सोहय महियलिउ नय-माणउ ।  
सो हरसीहु साहु विक्खायउ,  
जो-जिण-पय-पंकय-अणुरायउ ।

जो सावय-वय-दिठधरकंधरु,  
जो गुणियण तरु-पोसण-कंधरु ।  
जो चेरणु सु एकु मणि भावइ,  
भाणों चेरण जो पुणु भावइ ।  
तिण्ण काल रयणत्तउ अंचइ,  
जो णिउय चारिवि सं सुच्चइ ।  
जो परमेद्धि पंच आराहइ,  
जो पंचेदिय विसयहं साहइ ।  
मिच्छामय पंचवि अवगण्णइ,  
जो वासरु छह कम्महं मण्णइ ।  
जो छद्व-भेय सुणिहालइ,  
सत्त-तच्च-सदहइ रसालइ ।  
सग-दायार-गुणहि अणुरत्तउ,  
सत्त-वसण-वासणहि विरत्तउ ।  
अट्ट-सिद्ध-गुण-चित्तण-तप्परु,  
णिस्संकाइ अट्टगुण सुंदरु ।  
अट्ट-दव्वजिण-चरणहं पुज्जइ,  
पत्तदारु दें विसयइं भुंजइ ।  
णव-पयत्थ-भेये जो जाणइ,  
दहविह धम्महं जो रइ भाणइ ।  
तहु विण त्तिवसें भव-हारी,  
अक्खमि सिद्धचक्क कह सारी ।

घटा—

भव-भय-सयहारी तिहुवणसारी  
सिरिपालें जा विहिय चिरु ।  
सा रुय-णिण्णासरिण विग्घ विणासरिण  
भणमि लोयमणुधरि वि चिरु ॥

× × × ×

इय सिरि सिद्धचक्क सुविहारो महा मंडलेसर सिरि-  
पाल-आयसुपहारो सिरि महाभव-हरसीसाहु एामंकिए  
मयणसुंदरि-विज्जालाहो नाम पढमो संधि परिच्छेओ  
समत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिमभागः—

घटा—

पुणु देवि सरासइ णविवि समासइ  
रोमिति हु वंसु जि भणमि ।

पुणु जा मुहिरज्जे दुण्णयवज्जे  
 हुवउ सत्थु पुणु धुण्णिमि ॥  
 गोपाचलु दुग्गु पसिद्धु, एणमु,  
 धव-कंचण-रिद्धु, जणाहिरामु ।  
 गोउर-पायारंकेउ सुवित्तु,  
 पर नर भ्रगमु न सयहि चित्तु,  
 सहि भ्रतिय राउ भ्ररि कुल कयंतु,  
 तोमर-कुल-पायडु मह महंतु ॥  
 सिरिद्धं गरिदु रामेण भूध,  
 विष्फुरिय पयावें एाईं सूह ॥  
 तद्दु किन्तुपालु एांदणु गरिद्धु,  
 एां रुवि कामु सन्वहं मणिएद्धु ।  
 तद्दु रायरज्जि सन्माएावंतु,  
 सिरि अयरवाल वंसहि महंतु ।  
 सावय-वय-पालण-विगय-तंतु,  
 रिसि दाण पहावें जो भ्रमंतु ।  
 वाटहु जि साहु हुउ भ्रासि धण्णु,  
 गिय जसेण जेण दिसि मग्गु छण्णु ।  
 तद्दु भज्ज जसोवद्ध कमलवत्त,  
 तद्दु उवरि उवण्णा विण्णि पुत्त ।  
 गुण गण भायण राहु मुजेद्धु,  
 जिण चरण कमल जो भसलु सिद्धु ।

घत्ता—

वीयउ एांदणु पुणु भाविय  
 जिण गुणु सकल कलाउ मुद्धमणु ॥१॥  
 तद्दु नियसीव विमुद्ध पउत्ती,  
 असपालहिय णाम मा उत्ती ।  
 पंदणु चारि ताहि उर जामा,  
 चारिदारु एां पायउ नाया ।  
 पदमु साहु पायणसिद्धु पउत्तउ,  
 एाणमग्गु जि मुणिएउ रिणरत्तउ ।  
 विजयपालहिय तामु पुणु भामिणो,  
 गुहम-शील-महाघण सामिणी ।  
 वाट्टु साहु हु वीयउ तण्णुद्धु,  
 घण एामु मुपरियण-किय-मुहु ।  
 वील्हाही पिय पय-भ्रणु-पायउ,  
 पुत्तहु अयलु ताहि उर जामउ ।

घत्ता—

जाटा एाणें पडम भणिएज्जइ,  
 गायणें जो भ्रहणिएमु मिज्जइ ।  
 जोल्हाही तद्दु पियय मउत्ती,  
 सा गोविद मुवेए पउत्ती ॥  
 गोविदहु तिय धोल्ही बुच्चइ,  
 तद्दु नंदणु तुणु चेचा गुच्चइ ।  
 धणसीहहु सुवीयउ माला,  
 तद्दु तिय चाडो भ्रद मुकमाता ।

वाट्टु साहु हु सुउ वीयउ पुणु  
 हूमो बोहिय नामें दीहि-भुभो ।  
 गुणगण रयएायर जिणवयणायर  
 नानिगही पिय भज्ज जुभो ॥२॥  
 जो पुणु वाट्टुसाहु पयासिउ,  
 तद्दु चउत्थएांदणु विजयासिउ ।  
 हरसीसाहु नामु महि पायडु,  
 जो जिणभणिय सत्थ-भ्रत्थहु पडु ।  
 तद्दु कलत्त परिपएाहं पहाणी,  
 जिह सिरि रामहु सीया जाणी ।  
 देव-सत्थ-भूवयण-कलायर,  
 दिव बंदही नामें नेहावर ।  
 वीजी भज्जा पुणु वील्हाही,  
 णं गोविदहु लच्छि पयाई ।  
 तद्दु नंदणु पुणु कइयण वणिएउ,  
 जो इंगर रायं निरु मणिएउं ।  
 नामें करमसीहु सो नंदउ,  
 भ्रह-निमु जिनवर चरणइं वदित ।  
 जउएाणी तिहु तियमु पसिडो,  
 विद्धुकुल मुद्धरूव गुण-रिद्धो ।  
 पुणु हरसीहहु पुत्ति पउत्ती,  
 नामा नंतमई गुण-वुत्तो ।  
 जाइ भ्रयंतु शीवुवउ पासिउ,  
 कलि-मलु भ्रमुहु गचित्तु सामिउ ।  
 पुणु विननो तद्दु तद्दु गुय सारी,  
 मयलहु परिशारु सुणियारी ।  
 एह गोत नंदउ महि मडलि,  
 जा रवि-समि निवसहि ध्रांइलि ।

एयहं सव्वहं मज्झि पहाणउ,  
 सत्य-पुराण-भेय-वहुं जाणउ ।  
 कलिकालेजि आणुद्धरियउ,  
 चेयण गुण अखंडु विप्फुरियउ ।  
 तिण्णिकाल रयणत्तउ अंचइ,  
 सुद्ध धम्म जो अह-गिणु संचइ ।  
 जेण लिहाइ पुराण सुहं कर,  
 काराविउ अपमत्ते मणहह ।  
 सो हरुसीह साहु चिर णंदउ,  
 सज्जण चित्तहु जणिया णंदउ ।

घत्ता—

पोमावइ पुरवाड वंसिउ वणिउ कुल-तिलउ ।  
 हरसिध संघविहु पुत्तु, रइधकइ गुणगण गिलउ ।  
 इति श्रीपाल चरित्र पंडित रइध कृत समाप्तम् ।  
 आमेर भंडार प्रति सं० १६३१  
 (दिल्ली पंचायती मंदिर प्रति सं० १६७३ से संशोधित)

### ६६ पाइवपुराण

कवि तेजपाल

रचना काल सं० १५१५

आदिभाग—

गुण-वय-तव-सायर उवरि जसायर णिरुवम सासय-सुह  
 गिलओ ।  
 पणविवि तित्थंकर कइयण सुहयर रिसहु रिसीसर  
 कुल तिलओ ॥  
 देविदेहिं गुओ वरो सियरो जम्मंवुही पारणो,  
 कम्मारीणवि इसणो भय हरो कल्लाण मालायरो ।  
 भाणो जेण जिओ चिरं अणहिओ कम्मट्ठु पुट्टासवो,  
 सोयं पास जिणिट्ठु संघवरदो वोच्छं चरित्तं-तहो ॥  
 (इसके आगे चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन है) —

घत्ता—

संसारो वहि तारण कुमइ णिवारण  
 विगय दोस गुण गण गिलया ।  
 गीयम पमुह भडारा णिज्जियसारा  
 पणवेप्पियु तिहुवण तिलया ॥२॥  
 जो पंच महव्यय धरणधीर,  
 सुइ समिति गुत्ति भूसिय सरीर ।

मुणि पउमरांदि तिरयण णिहाणु,  
 सिवणंदि सीसु तहो गुण पहाणु ।  
 तहो रांदणु मुणियणपायभत्त,  
 वुच्छिय जणाण पूरण सुसत्त ।  
 पढमउं भीखमु परियण सहार,  
 णिव्वाहिउ जे चउ संघ भार ।  
 पुणु तहो अणूउ आणुदु जाउ,  
 जिणधम्म धुरंधर विगय पाउ ।  
 जिणदासु पुणु वि सव्वहं समत्थु,  
 सिवदासु अवर णामेण सत्थु ।  
 पंचमु रुकसुखु गुणगण पवीणु,  
 छट्ठमउ चित्तु जिण समय लीणु ।  
 पुणु सत्तमु उत्तम जीव दुक्ख,  
 अवहत्थिय विहल जणाण दुक्ख ।

घत्ता—

जो तुरियउ भायर धम्म कयायर  
 रेहइ जिणमइ मत्ति रउं ।  
 सावय-वय उत्तिउ वसण विरत्तउ,  
 सेवदासु वणि विगय-भउ ॥३॥  
 तहो णंदण णियकुल कमल मित्तु,  
 सव्वासा पूरण जासु चित्तु ।  
 जटुकुल कुवलय रयणीस तुल्लु,  
 पर उवयारहं जो मणि अमुल्लु ।  
 काराविय बहु संतीय जेण,  
 लच्छिहि फलु गिण्हउ सुहमणेण ।  
 जिण चरण कमल गंधोवण,  
 तरांसिचिवि कलि-मलु-हीराउ चित्तिजेण ।  
 सम्मत्तरयण भूसिय णियंगु,  
 जो पालिय सावय वय अभंगु ।  
 दाणेहि गुरोहि विअइ पयीणु,  
 वुहयणंभत्तिणं जसु चित्तुलीणु ।  
 मायरिहि लोभेण जे पूरियासु,  
 अवगणियाय वहदुज्जणु दुरासु ।  
 रामेण मदो पिय सुह-णिहाणु,  
 सम-वसण-तिमिर-हरणकू भाणु ।  
 रियजस धवलिय जे भुवण सत्थु,  
 जे विद्ध सि णामें परम भव्वु ।

घणमण्डं मुह व भाग्यमुत्तानु,  
ने गात्रं रुचिपत्रं मुह तेजपालु ।  
भो परम मिहः पुनः गरय मेह,  
धरयानिय यवावमुविमुह देह ।

दादे मनवत नरय भावि ।  
निरि पागलाह भव-वर्हि जागु,  
महो एतिउ दिउउउ विमनपालु ।

पता—

जिनवय धु निरुवराण ? मुहवातसराण निर मुकयतु  
यवावहि ।

निरिपागलाहं मुकयनिरनर, महोविरएवि समावहि ॥४॥

× × × ×

गिरिपागवरितं नदवं बृह तेजपाल सागुदं ।  
मणु मन्निवं मुहदं पूषति गिवदान पुतेग ॥१॥  
देवान रयण विद्वो यम्माएवीए भोजनोविद्वो ।  
कय मन्म मोहणःभं पडमी संधि इमो जापो ॥२॥

घता—  
बद्धरण मिगु भापरि भुषण मुहापरि परमिदु हो मुह  
निरिपागलाह भव-वर्हि जागु,  
महो एतिउ दिउउउ विमनपालु ।

गामें गुरजण साददवावर,  
लंबकंनु जगुमणु मोनायक ।  
घणसिरि रमणि मुहवरोहासिय,  
गिय जम पसरदि मरमुह वागिय ।  
लेःमवर पदव्यम गावर,  
मयपंडण मुगमनि रयगावर ।  
गुरजणसाहू गामियग हुनउ,  
मच्छर घनि मुहि गियनवउ ।  
ता संगाए गिए वि विरनउ,  
नामणु चारह मनि मुमरवउ ।  
वेगाए पाउगिय घर सठिउ,  
मुनि रयनि गामुनवठिउ ।  
पनविधि पोमणाः मुनिगारउ,  
दिवपठिउ निवरादि भडारउ ।  
गुरजन पनवमि दिग्गाणउ,  
कय गामोचवान दिव्याणउ ।  
बद वम वरिय मणु परिपणउ,  
घरुनरोमणमु मुएवि मुविस्तउ ।  
पम्पज्जातो भड-मावर-गारउ,  
पउ गुर हरि निवराणु भडारउ ।

अन्निमभाग—

गुरगणु फरिउ पददिववंधु, पूषनिवाता विवरवीणवदु ।  
कम्मराय कारण जिनकरिनु, विरपउ भवमावर जाणवतु ॥

पता—

घाउच्छण मुच्छण मुच्छनई, वउ-न-मंनम-गियम-वहा ।  
ममुएवं परएवह वरिपवदु, पाग जिचिद घणिद हो ॥३॥

जिगु सामण बडुउ मयणु काव,  
जगु बडुउ वरिगाउ मेह गाल ।  
गुरपाणउ माणउ महि मुहिरणु,  
गम बडुउ दडुउ रोए डुवरु ।  
जिगु पागु हरउ ज-जम्पवहि,  
महो देव मुद मुदर ममाहि ।  
गंडउ वरिपनि गियदागु गाह,  
ममइद विमणु मम्मभवाह ।  
पूषति गाह भो कय मुपनमिनि,  
परवणिय भमउ परनिपवे विनि ।  
महि मेह जवहि रवि-वंधु काम,  
दिवदाग वणु चंडा वि काम ।  
दिवदम मग्गाह पमिउ कायि,  
परिपणवट्टि पण-कण-विपानि ।  
पणह मव पणह पठिपणहि,  
एविमद वि मरपण पणहि ।  
ए वमिय विहउ कविपरो वादि,

घता—

महो गुरण धाणुद मल घणिपदु महि विरवमय ।  
गाह जिगानावनि निग्मणमि गणव-विपपम्पववा ॥३॥  
भीयगु मणु पावविउमुणउ,  
पुणु प्राणुंनु मुनरिपण डुणउ ।  
परणि उदवीगिदि मेह पणो,  
सं ई हरमिदि म दंशो ।  
देवराजु म्मो मंरगु जावर,  
रयणु गुरजण जनि दिवपाणउ ।



तइयउ रोमिदासु जगि सुहियरु,  
 आराणंद हो जिणदासु सहोयरु ।  
 तासु महादे रमणि पउत्ती,  
 साजिणपाय सरोरुह भत्ती ।  
 तासु पुत्तु मण सुक्ख मणोज्जउ,  
 लहु भायरु मारिणक्कु दुइज्जउ ।  
 सा सुरजणहु पुत्तु चउत्थउ,  
 सेवदासु भुवणयलि पसत्थउ ।  
 गेहिणिहलो सुभत्त जिणिदंहो,  
 णाइं सुलोयण जयहु णरिदहु ।

घत्ता—

तहो कुच्छि उ वण्णउ लक्खण पुण्णउ कुलसुहयंरु पुत्तत्तउ ।  
 रां जिणवर सासणि दुरिय पणासणि सहइ परम

रयणत्तउ ॥४०

पढमउ घूघलि गुणसंपुण्णउ,  
 णररुवे जिणधम्मु उवण्णउ ।  
 जिणपूया विहि करण पुरंदरु,  
 सील णिहाण सव्वजण सुंदरु ।  
 कम्मक्खय कारण मणि भाविउ,  
 जेण जिणिद चरित्त कराविउ ।  
 तित्थयरत्त गोत्तु णिरु बद्धउ,  
 मांडणि रमणिहि पिउ जस लुद्धउ ।  
 रांदणु तहो दसरहु पिउभत्तउ,  
 सिरिचंदु वि रांदउ गुणवंतउ ।  
 सा घूघलिहि धरा लहु भायरु,  
 गेहिणि दीयाणेह कयायरु ।

पुणु विसणहु बुच्चइ लहुयारउ,  
 कुमु सिरिहि घरिणिहि मणहारउ ।  
 पंच.....

(Incomplete meeter.)(१०२वां पत्र नहीं)

प्रति—भट्टारकहर्षकीर्ति भंडार, अजमेर

पत्र १०१

१०० सिरिपाल चरिउ (श्रीपाल चरित्र)

कवि दामोदर

आदिभाग—

.....  
 .....  
 .....  
 .....  
 .....

सो कुं दकुं द मुणिवरु जियक्खु,  
 दिवि दिवि धुयमाणुणय विवक्खु ।  
 दीसइ पर्सतु जगि कयकयंतु  
 सरतिय रंडत्तणु रय महंतु ।  
 मयंइ गोरसु मिण्हइ ण तक्कु,  
 परित्तवइत्तवणु गच्छइणवक्कु ।  
 रयणायरु णउ पय पुण्ण देहु.  
 गंभीरुण सरयव्भुवि सुमेहु ।  
 मंतोवहि वदण पुण्णिमिदु,  
 पहचंदु भडारउ जगि अणिदु ।  
 तहो पट्टंवर मंडल मियंकु,  
 भव्वाण-पवोहणु विहुय संकु ।  
 सिरिपोमणंदि णंदिय समोहु,  
 सुहचंदु तासु सीसुवि विमोहु ।  
 परवाइ मयंगय पंचमुहु,  
 परिपालिय सजम णियम विहु ।  
 तह पट्टं सरोवर रायहंसु,  
 जिणचंद भडारउ भुवणहंसु ।  
 वंदिवि गुरुयण वरणाणवंत,  
 भत्तीइ पसणायरु सुसंत ।

घत्ता—

महो कव्व करणि गुरुयण,  
 सयला करहुं सहाउ जि महुरसरा ।  
 भव्व कुमुय वोहरा दिणयर  
 णिण्णासिय कंदप्प भरा ॥२॥  
 बुच्छामि पापभंजणु पवित्तु,  
 सिरिपाल णराहिव वर चरित्त ।

तिरि सिद्धचक्रक वर वपहसाय,  
 मुक्तिपि य माणग हरण पाय ।  
 पुत्रिस्त सत्तु विविगवि मणुज्ज,  
 विरइउ कर भूमो सगहि सग्दु ।  
 जिणचंद सोमु भो वंमचारि,  
 दामोयर वदवर भयचारि ।  
 इकनुवाय वंग संभूयएण,  
 मुहिला विणीम मइणा विएण ।  
 कुत्तिउ दिवराजह वर मुएण,  
 एणकरत्तसाहू गाहिय भएण ।  
 पुत्तिन मयंक वणो बरेण,  
 परिवत्त पाय नारे परेण ।  
 कहि रम्मु कहेत्त पुण्ययामु,  
 संजणिय मणोहर फत्तु मुकामु ।  
 जागु मु त्रिमुत्तं भव्वमणवोव,  
 पावंवि परम गद विणय-गोय ।  
 भायणहो इच्छमि धम्मठान,  
 तिरि सिद्ध चरत वह जणि पहाए ।  
 एण मइ करे विविर भयणान,  
 मयन जण पोमरा वयर बाव ।  
 सहो वयणु मुत्ति वि हरसिउ वहेइ,  
 गिरि सिद्ध चक्रक वह मुत्ति सहइ ।  
 निदिउहि दुयवण मुकइ वणु,  
 गउवणु सुत्ति मण्णान वणु ।  
 मण्णानउ गण्डान ते मुवत्ति,  
 गउवणु-दुग्गणु जणि कसिय भंवि ।  
 वडमाणउ उर मणउ वाउ,  
 हरिणकु त्रि मीयनु सिद्धपाउ ।  
 इव ते वि मरावे वत्तमणि,  
 दुग्गणु गिहणु परत्ति ।  
 पाउवणइ कर गिरि सिद्धचक्र,  
 मानविण चिउत्तिय वावचक्र ।  
 वडमाणि मयःओ पुण्यपाय,  
 गिरि कणम भव्व मुत्ति कण मुपाय ।  
 पाउ गहिय वणु त्रि पाणु,  
 मणिय विण-उत्तं भव्वहणु ।  
 त्रिणु त्रि वरिउत्तं मण्णानु,

मह मग्गउ छ मांमए मुवानु ।  
 पउमित्तु लोउ मुणियर वरवि,  
 विवरीय मगणए तिहू कहनि ।  
 बीयउ वज्जामाणु वि कुइंद,  
 सीयउ मुयंग गिरि मुवि धाएण ।  
 वेणुवि वरिउत्तु धरिउ पुत्थ,  
 रविणउत्तनेण मण्णम भव्व ।  
 मयमेवसिद्ध, तह लोउ गहू,  
 भामित पुत्तानारियणि मणोह ।

× × × ×

प्रतिमभाग—

दिवराज गाहू वर एउण्णेण,  
 तिरि णवसत्तु भयं मुहमणेण ।  
 सिरिपाल एउणहोमुहचरित्तु,  
 धम्मएण-नाम-सिध कहएणु ।  
 मं मह विरयउ दामोयरेण,  
 जिणचंद चरण भतीपरेण ।  
 राउउ तामा वि तिरि सिद्धचक्र,  
 वउएउ सिद्ध पट्टियारि वरवु ।  
 वं सरमु यधि वरएण विहोणु,  
 सवत्तए उदायनार मीणु ।  
 महिहाण वदएण विचार भाणु,  
 धायम विरएणु उ मण गाहू ।  
 गोजन वरिगर तं चरिणु,  
 एह परिउ होणु परवणि वरिणु ।  
 गिणु म होणु मणोउणउ ठेवि,  
 उवणार वरण धायन त्रि वेवि ।  
 जे निहट्टि विहायहि मुहमणीग,  
 वण्णवणइ वरहि विरया मणीग ।  
 गहुरहि वणायर जे धणर,  
 वरिणारहि धणुवि मणु गहिर ।  
 ते मण्णवि एउहू जणमण्ण,  
 मण्णर मुवणारा धम्ममण्ण ।  
 व वण मुणु कुउ गिरिउ ताम,  
 तिरि सिद्धचक्रक व वउहू एणु ।

पत्ता—

मदु ममह विणोण वडण एह मार मण्णार सिद्धमण ।  
 बाए गहिय ते पुणेणहो दामोयर वरिण कर वडण ।

इय सिरिपाल महाराय चरिए जय पयउं सिद्धचक्क  
परमात्तिसय विसैस गुण णियर भरिए बहुरोर-घोर-डुट्ट-यर-  
वाहि-पसर-णिण्णासरो । धम्मइं पुरि सत्थपय पयासणो  
भट्टारयसिरि जिगाचंद सामिसीस बह्म टामोयर विरइए  
सिरि देवराज रांदण साहु राकवत्त णामंकिए सिरिपालराय  
मुक्क गमण-विहि वण्णणो णाम च उत्थो संधि परिच्छेओ  
समत्तो ॥

### १०१ पाश्वनाथ चरित्त

कवि असवाल

(रचनाकाल सं० १४७६)

आदिभागः—

सिव-सुह सर सारंग हो सुय-सारंगहो सारंग कहो गुण  
भरिओ ।  
भरणमि भुञ्जण सारंग हो खमसारंगहो पणविधि पास  
जिण हो चरिओ ॥

भाविय सिरि मूलसंध चरणु,  
सिरि वलयारयगण वित्थरणु ।  
पर हरिय-कुमम पोमायरिउ,  
आयरिय सामि गुणगण भरिउ ।  
घरमचंदु व पहचंदायरिओ,  
आयरिय रयण जस पह धरिओ ।  
घरपंच महव्वय कामरणु,  
रणुकय पंचिदिय संहरणु ।  
वरधम्म पयासउ सावयहं,  
वयधारि मुणीसर भावयहं ।  
भविण मण पोमारंदयर,  
मुण्णिपोमणंदि तहो पट्ट वर ।  
हरि समउ णं भविणणु तुच्छ मणु,  
मणहरइ पइट्ट जिणवर भवरणु ।  
वर भवरण भवणि जस पायडिउ,  
पायडु ण अणंग मोहणडिउ ।  
णडिया वय रयणत्तय धरणु,  
घर रयणत्तय गुणवित्थरणु ।

घत्ता—

तहो पट्टंवर सत्ति णामं सुहसत्ति,  
मुण्णि पय-पंकयचंद हो ॥१॥

कुणुवित्ति पयासमि पह आहासमि,  
संधाहिद हो बहो अग्गिद हो,  
इयं जंवीवहं पहाणु,  
भरहंकिउ णं पुर एव णाण ।  
वेत्तंतिरि देसकुसट्टु रम्मु,  
दो वीसमु जिण कल्लाणु जम्मु ।  
कालिदिय मुण्णारि मज्ज गाई,  
दस्ता छणयंतिरि पवत्तु णाट्टं ।  
करहल्लु वरणयण करहल्लुसुम्म,  
यणिव परिपालणि पयलहइ सम्मु ।  
चहुवाराण वंति अरि कुरहण्णइ,  
भोइव भोयंकिउ भोयराउ ।  
णाइतकुदेवि सुअ अरिगयंद,  
चंदुवकुवलय संसारचंदु ।  
जसुरज्जि पुव्व परिमाहि माणु,  
संधाहिवेण विज्जइ पमाणु ।  
सयचउदह इगहत्तारि समेय,  
माहव धरण सणिवासर पमेय ।  
रयणमय विव जिण तिलक मिदु,  
तित्थयररणु कुल आउ वदु ।  
तहो जय रज्जिउ कय पुहइ रज्जु,  
अरिकुव कयंतु पुह पुहइ रज्जु ।  
तहो समइ रएउ गुणगण पसत्थु,  
लेहाविउ संधाहिवेण गंयु ।  
जदुवंस विकासणुभाणु सेउ  
वंभुवत्थेय पालउ बह्म एउ ।

घत्ता—

एहु रज्जि धुरंधर उण्णयकंधर णिव कुवेर पहचंद गुरु ।  
णयकयसुज्जिणालउ चउवीसालउ मंतत्तरिण पह संतियउ ॥२॥

तहो भज्जा तिण्णि कुसुवा पहिल्ल,  
सुअकरम समरासह गुण गरिल्ल ।  
सूहव वीई राकवत्त कुमर,  
मायरि पउमा लक्खणहे रावर ।  
हुव पंच पुत्त गुणगण मंहंत,  
धीरत्तखेण रां मेह संत ।  
करमसिह समरणकवत्त सीहु,  
तुरियउ सुअकुमर अमरसीहु ।

शिव भोयमंति मंतण वियद्ध,  
 लक्खणो जेट्ट भायर गुणद्ध ।  
 कमलसिरि जाय तहो तरिय भज्ज  
 पद्दवय-वयधारिणि पिय सलज्ज ।  
 तहिउ धरि पुत्तउ (अ) तिग्णि केय,  
 जि गवणिहि रयणइ तिण्ण जेम ।  
 पडमउ मण रांदणु रांदणवियु,  
 सोरिण्णु धीउ सघवइ दवसु ।  
 सहभाइग लूणि व कज्जि दत्थु,  
 जिण जत्त पवित्त ण वित्त सत्थु ।  
 बहू विहू विहाण उज्जावणामु,  
 कइहल्ल कवित्त पसंसणामु ।  
 जिण भल्लचरित्त एामकियासु,  
 मुअ तिलयताय जस पूरियासु ।  
 अट्टविह पुज्जसुहदाणयासु,  
 जो भाइ जेट्ट उवममधरामु ।

घत्ता—

गुणियणहं गुणायर मंतण कुलपूर जिण गिहणुं ग  
 विसालउ ।

कारावण तप्पर संघाहिउ गुरुदारणं मयपालउ ॥४॥

तहो रामाणमं रामलच्छि,  
 सुरवइ सईव कुल कमललच्छि ।  
 सुउ गुण संघट्टवघाट मुक्खु,  
 एिव पयह पियस्सर मयल चक्खु ।  
 इवकहिं दिणि जिणहरि उंतएण,  
 जिणसत्थतच्च पयढं तएण ।  
 घाटेम्मताएं एह संतएण ?  
 दह लक्खण धम्मासत्तएण ।  
 जिणजत्ता-पइट्ट कयायरेण,  
 सयत्ता रयणा रयणायरेण ।  
 सोणासिहू भाइ शिव बुल्लहेण,  
 बोलिज्जइ रामावल्लहेण ।  
 महो पंडिय लक्खण गुणगुलंग,  
 गुलराउ यंसि पयवड महंग ।  
 कि धम्मे ग्रहणुणि गिणगुणेण,  
 रयणोहें बुह शिव फणुणेण ।

कीरइ जाणे विणु मणुयजम्मु,  
 सहलउ पयडेवि अहिसधम्मु ।  
 संसार असारउ मुणहि एउ,  
 सारतए बुद्धिहि तच्च हेउ ।

उक्तंच—

‘बुद्धेः फलं तत्र विचारणं च,  
 देहस्य मारं व्रत धारणं च ।  
 अर्थस्य सारं किल पात्रदानं,  
 वाचाफलं प्रीति करं नराणां ॥’  
 रयणोहें कि कर जंपिएण,  
 कि बुद्धिएं तच्च अ जंपिएण ।  
 इउ मुणिवि मज्जुमोसेहि चित्तु,  
 करि कब्बु पासणाहो चरित्तु ।  
 ते गिसुणवि कच्चहं तणउणामु,  
 बुह आसुवालु हउ जो सधामु ।  
 खणु इक्क विसंविधि मणइं तामु,  
 कि कुणमि कब्बु संघाहिवानु ।

घत्ता—

हउं मुख गिरक्खर भनुणिय सक्कर चिह महकइ कह  
 सोहणु ।

पारमि किरणोहें रविससि चोहें खज्जोवय कि बोहणु ॥६॥

१०२ सांतिनाह चरिउ (शांतिनाथ चरित्र)

कवि ठाकुर

रचना-काल १९५२

आदिभागः—

घति अनुपम धंगु जित्त धनंगु,  
 सांति सदा जगि सांतिपरो ।  
 रवि जिम कमलाई भवि जन भाई  
 तह गुणकित्ति उछाह करो ॥१॥

दुवई—

जिनगुण चरित्त उदित उगत रवि,  
 जगि भवि कमल केवलं ।  
 बोहीत भवि-समूह सरमंडनि  
 दोय म वहति घति फलं ॥२॥

गाथा—

सो जग सांति चरित्तं पुन्वायरिर्एहि परिभउ लोए ।  
तहु कह कहण रिगमित्तें ठाकुर कवि आयर कुणए ॥३॥

दीहडो—

वाणी रिगम्मल रीरवहि, आगमु सरिसु पयट्ट ।  
सागर वीर जिनिन्द भरि सेणिक सबणि सुइट्ट ॥४॥

× × × ×

भट्टारक पणमि रामों जति सासरिण,  
सासरिण जे चंदकित्ति हि लार ।  
पणमो पुहवि अवर महिमंडलि,  
भवणकित्ति पट्टि जे सार ॥  
मानो मंडलीइ मोरिय महि,  
कित्ति वंत जगकित्ति विसास ।  
अनेकान्त आचार अधिक मति,  
नेमिचंद सासन रविपाल ॥

× × × ×

अन्तिमभागः—

दुवई—

एयहि अवर अवर गुण संतति,  
जिण सोलहम सुह-यरो ।  
ता गुण चरण चारु चित्तवनि महि,  
ठाकुर किय कवि-सरो ॥५८॥  
संवत सोलासइ सुभग सालि,  
वावन वरिसउ ऊपरि विसालि ।  
भादव सुदि पंचमि सुभग वारि,  
दिल्लीमंडलु देसु-देसहु मभारि ।  
अकबर जलालदी पातिसाहि,  
वारइ तहु राजा मानसाहि ।  
कूरमवंसि आंवरि सामि,  
ठूठाहड देसहु सोभिराम ।  
कइ इणि णरिदु जो अखयराज,  
भगवानि सुत न कूरम सुसाज ।  
सिरि मूलसंघ नंघाम नाइ,  
सुरसइ गच्छि सासन सुभाइ ।  
कुंदकुंदाचारिज अनुकमेण,

सिरि पदमनंदि भट्टारकेण ।  
पट्ट सुतासु सुभचंददेव,  
जिणचंद भट्टारक सुभगसेव ।  
सिरि पहाचंद पापाटि सुमत्ति,  
परिभणहु भट्टारक चंदकित्ति ।  
तहु चारइ किय सुकहा-पबंधु,  
सुसहावकरण जगि जेम बंधु ।  
आचारिय धुरि हुउ रयणकित्ति,  
तहु सोसु भलो जग भुवणकित्ति ।  
ता कय सिक्ख-साखा बहु गुजति,  
नामाय नाम गणती अमिति ।  
सिखि हूवउ मुमम साहण सु-सत्ति,  
हुव सासन कमल-विकास मिति ।  
दिखा-सिक्खा-गुण-महणसार,  
सिरि विसालकित्ति विद्याअपार ।  
तहु सिखि हूवउ लक्ष्मीसुचंद,  
भवि-वोहण-सोहण-भुवण मिदु ।  
ता सिक्ख सुभग जगि सहसकित्ति,  
नेमिचंद हुवो सासन सुयत्ति ।  
अज्जिका अन्नतिसिरि ले पदेसि,  
दाभाडाली वाई विनेसि ।  
की कथा सुभग आगम-पमाण,  
सासय ललोय बुज्झहि अयाण ।  
पुविल्लि कथा जु हती अछूट,  
किम् वाणइ बहु जगि जटाजूट ।  
सांसारि कथा किय सुगमसारि,  
साह ठाकुर कवि मंडी विथारि ।  
संवारहु संज्जन विविह-छंद,  
मत्तागण लगिलंकार छंद ।  
जिणवारिण अण्णु गति लव्वपार,  
संतिगाहकथा जलणिही अपार ।  
जाणहु जिणसासरिण जैनधम्म,  
कुलि जेणो दे साधुसुकिय कम्म ।  
खडेलवाल साल्हा पसंसि,  
लोहाडिउ खेत्तात्तणि सुसंसि ।  
ठाकुरसी सुकवि णामेण साह,  
पंडितजन प्रीति बहइ उछाह ।

तद्द पुत्रा पयड जगि जसु मईय,  
मानिसालोय महि मंडलीय ।  
गुर्यण सुमत्ता गोविददास,  
जिणघम्म बुद्धि जगि घम्मदास ।  
सुंदह लुवायणिपुर लोपविद,  
पंदह जिण सासण जगि जिणिदु ।  
चंदप्यहु जिनमंदिर विसाल,  
सुंदह पाति मंडल सामिसाल ।  
सुंदह जातिवाइ बह्मचारि,  
सुंदह पडित सावय सुधारि ।  
राजा सुकलत्ता तहपुत्तजुत्ता,  
वासक विनोयकता कलत्ता ।  
कीर्त्ति विलासरणि रमउ बाल,  
गायति घवल मंगल विसाल ।  
वासौ मुमेध रतिरति पमारिण,  
सत्त ईति जगति मा करहु पाणि ।  
दुरभिक्ष पणासउ चोर-भारि,  
मा होसहु पीडा-रोग-भारि ।  
जिण-घम्म-चक्र सासणि सरंति,  
गयणय लहु जिम ससि सोह दिति ।  
जिण घम्म-गाण केवल रवीय,  
तह घट्ट-कम्म-मल-विलयकीय ।  
एत्तउ मांगउ जिण संतिणह,  
महु किज्जहु दिज्जहु जइ वोहि-साह ॥५६॥

पता—

कवि कला कवितणा पयडय कियउ  
गुणु चिर किय कम्म पणासणे ।  
दुग्गम जो कव्य कये किय सुगमा  
भुवे ठहुर पसन् जिण सासणे ॥६०॥

दुवई—

संवारहु कवित्त बुद्धयण जण मत्ताकल वि छंदय ।  
य कियउ भ्रप सोह तात्तच मय भाणुंदहु भाणियं ॥६१॥  
इति थो मांतिनामचरित्रे आचार्य विद्यालकीति  
गिण्य ठाहुर विरचिते श्रोत्रांतिनाय साण-निव्वाण कारणं  
पंपमो मंथि ममत्तं । संपूर्ण ।

अ० हर्षकीर्ति भंशर, राजमेर

१०३ मल्लिणाह कव्य (मल्लिनाय काव्य)

(जयमित्रहल)

आदिभाग—

(प्रथम तीन पत्र न होने से नहीं दिया गया ।)

अन्तिम भागः

मुणि पहचंद पट्ट मुपहावण,  
पउमणुदि गुरु विरियउ पावण ।  
घरि घरि जएह मएणह-पुज्जहु,  
घवल मंगलुच्छव माइज्जहु ।  
पंच सदराय हरिसु मुणएइ,  
हुं तुंगिच्छह कर दाणुणइ ?  
चउविह सधु महग्घम पावउ,  
बुहमए जए वट्टउ भणु रापउ ।  
चिउ णदहु कइ हल्लइ रादण,  
आह्मसाहु साहमु अरि वदण ।  
वच्छउ बाह्मसाहु कुल सारउ,  
तुंवर रतएउ सज्जए मएहारउ ।  
गल्हू गटिहु अंसंखुण संदण,  
होउ चिराउसु कलुस-णिणंदणु ।  
मल्लि-चरिउ जेए वित्पारिउ,  
लेहाविदि मुणिएणि वित्पारिउ ।  
ते सुंदहु जे लिहहि निहावहि,  
मणिमाएउ जि पडहि पडावहि ।  
ते सुंदहु जे णियमणि भावहि,  
सत्य-पसत्य वि जे जण दावहि ।

पता—

चिर सुंदउ देमु पुहमिणरेमु,  
जिण साणु वच्छलु पारहु ।  
महु वयणु सुहावउ गय परतावउ,  
कुणउ चित्त संतोमुरणा ॥२०॥  
इय मल्लिणाह कव्यं रयणत्तय  
रयण कुंडलु महग्घ ।  
जय मित्तहल्ल कइणा  
अणग्घमइणा वि जिम्मियं भव्यं ॥-

× × × ×

इति सिरि जयमित्तहल्ल कइणा रइयं मल्लिणाह  
कव्यं समत्तं ॥

(अन्तिम पत्र नहीं)

धामेर भंडार

इसके बाद पंचपरमेष्ठियों का स्तवन है—

दुवई—

अन्तिमभागः—

गण जि बलातकार वागेसरि,  
गच्छ पसिद्ध जाय ओ ।  
तहं पोमणादि गुरु गणाहर,  
बहु-सुद-तवणु रायओ ।  
तह बहु सिस्स जाय गुणवंतइं,  
विज्जा विणइ सीलमइ वंतइं ।  
मुणि देविदकित्ति अहिहाणइं,  
मालवदेस पसिद्ध पहाणइं ।  
जहसु पवाहिय सावय वगइं,  
तिहुवणकित्ति सिस्समइ उगइं ।  
ते मंडलायरिय विक्खायइं,  
सिस्सवग्गतह धम्मणुरायइं ।  
पुण सुदकित्ति पयडु अहिहाणइं,  
आयम-भेय किंच सो जाणइं ।  
धम्मपरिक्खा गंधु खडकम्मइं,  
पत्त परिक्ख तहय मुणिए धम्मइं ।  
तं हरिवंस सगंधु चिर पिक्खउ,  
पद्धडिया छंदेण पलक्खउ ।  
पुणु परिमिट्ट पयासु तदंतर,  
सिद्धचक्क कह वहव् महत्तर ।  
पुणु वर जोय-भाणु तद अक्खउं,  
संकर चिर पारंभिवि रक्खउ ।  
जोय-भाणु मणिए सो अणुरायउ,  
णाणाणउ णिए वि विक्खायउ ।  
तह सुत्ताणु सार पारंभिय,  
पद्धडियां छंदे मणिए विभिय ।  
गिह वावार तेम सो रहियउ,  
सोवइ मरु सुदकित्तिहि कहियणउ ।

गाराण वरण कम्मखय-कारण  
तं सुदकित्ति उत्तमवइ ।  
सुक्क-भाणु जिण सासणु  
तव पय पुर पवित्त ओ ॥  
चेवि सहस मुणि अत्य अउव्वइं ।  
जे सदहइ ते गइ सुह गच्छइं ।  
अत्य जि दय-धम्मह मण लीणइं ।  
ते सासय-सुह लहहि पवीणइं ।  
विक्कय रायहु ववगइ कालइं ।  
पण्णारह सय ते वावण अहियइं ।  
रयउ गंधु तं जाउ सउण्णउ ।  
सेय पक्खु मगासिर मणुण्णउ ।  
पंच..... दासरू जायउ ।  
[सद् अत्य पुण जग विक्खायउ ।  
मंडवचलगढ जो सु पसिद्धउ ।  
साहि गयासु जयम्मि राण्डिउ ।  
साहि रासीरु ताहि सुइ रांदणु ।  
दुदु दमणु सिद्ध ति आणंदणु ।  
पुं जराज वणिए मति पहाणइं ।  
ईसरदास गयंदइं आणइं ।  
वत्याहरण देस बहु पावइ ।  
अह-णिसि-धम्महु भावण भावइ ।  
(सावय-धम्म) मगाहि अणुरायउ ।  
तह जेरहद रायरु विक्खायउ ।  
चेईहर सावय मणिए हिट्टइं ।  
णेमिणाह जिणहर मुट्टिइं ।  
तह यहु गंधु जाउ परिपुण्णउं ।  
णिसुण्णउ सखय-संघ मणुण्णउं ।  
मरा आणंदिय सावय वगइं ।  
जयसिंघ रोमिदास सु-हगिसंगइं ।

घत्ता—

तं किय उस उण्णउं बहु पय पुण्णइं  
जं चिर आयम सदहि ओ ।  
जायहु गुण अक्खउ भाणु पलक्खय  
संकर अणु लोएं महिओ ॥७१॥

घत्ता—

अवर जि अणु राइय गंण लिहाइय  
पुण्ण पवि ढप्पिय तह घणउ ।  
कुण्णारु विहट्टइ राणु पवट्टइं ।  
सो सिव संपइ सुह जणउं ॥७२॥

दुवई—

देसहं भरहे गामणि वरिद्वहं, वउ विह संघ भव्वहं ।  
रिसह जिणंद पमुह वीरंतई मांति करेहि मव्वहं ।  
द्वयजोग भाणारुसारे चिरमूरि पउत्तियाएु भणुसारे ।  
वहु जोयस्स विसेमो पढमा रंणेण मंकरु हेमो ।  
कय मुयकित्तिसउण्णो भविवा भायणिए चित्त संतोमो ।  
सो बुहयणु गुरयय भत्तो गाम विदीपो परिच्छेओ ॥  
ममत्तो ॥

तेरापंथो मंदिर प्रति त्रयपुर सं० १५५२

१०७ मउड सत्तमि कहा (मुकुट सप्तमीकया)

भगवतीदास

आदिमंगल—

पपविधि पंच परम गुरु मारद धरि वि मखे ।  
सत्तमि मउड तएउ फलु भासमि भेउ जखे ॥  
अन्तिमभागः—  
भण्णुवि जो णरु एारी करगो भाउधरे ।  
गो एरिमु फलु सहमो वसु धरि निहाणिए के ।  
गुरु मुणिए माहिंदसेण चरणयुग धर विमणां ।  
दामुभगौती भासं निमुपहु भविकजएणां ॥१४  
पढहि गुणहि जे बुहियएण मुणहि मुजाण परा ।  
राज रिद्धि लुमंगलु दिए दिण ताह धरा ॥१५  
इति मउडमत्तमि बह्ना ममत्ता ।

१०८ सुगंधदहमी वय कहा (सुगंधदशमी  
व्रत कया रासु)

भगवतीदास

आदि—

वीर जिणिए चरण जुग परणविवि गोयमु ज्ञान विमाता ।  
वउ सुगंधदसमी गुरु निम्मल भासमि रागु रसाता ।  
भविकजएण यहु दसमो वउ कीजइ, दुक्क जलंजलि दीजइ  
अन्तिमभागः—

गुरु मुणि माहिंद सेणु

भट्टारउ चरण कमल नमि तातो ।

रुहतग वीर जिनालय मणिएहरि

भएत भगौतीदासो ॥

भविक जएण यहु दसमी वउ कीजइ ।

खर पारि जो गावाहं मन वचि

मुणिए चतुर मनि धारी ।

राज रिद्धि गुर नर मुहु भूजिवि

मुकति वरहि वर नारी ।

भविकजणु यहु दसमो वउ कीजइ,

वुक्क जलंजलि दीजइ ॥२७

इति सुगंध दशमी बह्ना ममाता ।



## परिशिष्ट १

### कुछ मुद्रित ग्रन्थ प्रशस्तियाँ

२०६ स्वयंभुच्छंद (अपभ्रंश)

महाकवि स्वयम्भू

आदिभागः—

जो पाउअस्त सारो तस्त मए लक्व लक्वणं सिद्धम् ।  
एताहे अचहंसे साहिज्जन्तं गिसामेह ॥१॥  
इहि आरा विन्दु जुआ पआवसाणम्मिजह हुवन्ति लहू ।  
तह कत्य वि छन्द वसा का अवा उहुह आरावि ॥२॥  
उआरो विन्दु जुओ पआवसाणम्मि लहू चउमुहस्त ।  
× × × ×

अन्तिमभागः—

पदडिया पुण जेइ करेन्ति,  
ते सोउह मत्तउ पउ धरेन्ति ।  
विहिपअहि जमउ ते रिम्मअन्ति,  
कडवअ अट्टहिं जम अहि रअन्ति ॥३०  
आइहिं पुणु घत्ता समाभणन्ति,  
जं आवसाण छडुणि भणन्ति ।  
संखारिणवद्ध कडवेहिं संधि,  
इह विविह पआरहिं तुहं विवन्धि ॥३१  
संधि भेआइं ते रइअ एअ,  
छडुणियावि घत्ता भण सु भेअ ।  
अण्णाउ विविह पआरिआउ,  
घत्ताउ छडुणि विआरिआउ ॥३२  
तोए सुण वि वज्जन्ति ताउ,  
लोएहिं केण विण्णाण ताउ ।  
सालाहरोण धवलाइं जाइं,  
विरइ आइं अणो आइं बहु विहाइं ॥३३  
इअ एअ असेसव वज्जन्ति,  
सअल उणा अरिअ ।

सुपत्तिद्धा लोए पंडिअ,  
जरोहिं समाअरिअ ॥३४  
संधिहिं आइहिं घत्ता,  
दुवई गाहाडिल्ला ।  
मत्ता पदडिआए, छडुणिआं वि पडिल्ला ॥३५

संधिघत्ता जहा—

जिणु पच हूं रत्तुपलहिं, दीवा वे विणुवारि ।  
एक्कमि जम्मणु पुणु माणु, छिण्णहुअट्ट पहा (या) रि ॥३६  
अह दुवई—  
पडिहिं अमिण्ण कण्ण गंडत्यले विउरगो विट्ट पुच्छओ ।  
एिद अवलिअकर पहर परिअर धिरकअणिज्ज सरीरओ ॥  
छल दलिवलय मधुर भंकार विराजित कुम्म मंडलं ।  
तव नम नेन नाथ नाक्रामत्ति परि कु पितोपि केसरी ॥३७  
अह गाहा जहा—  
तुम्ह पअ कमल मूले अम्हं जिण दुःख भावत विआइं ।  
ढरु डुल्लिआइं जिणवर जं जाणसु तं करेज्जासु ॥३८  
अह अडिल्ला जहा—

अक्क पलास विल्लुअड रूसउ,  
घम्मिअ एअ एअ महु अरु तूसउ ।  
डुद्धाइच्च वद्द हारिसंकर,  
जे मेराउ देउ हारिसंकर ॥३९

मत्ता जहा—

जअहिं जिणवर सोम अकलंक, सुरं सण्णाअ विगअ भअ ।  
राअ-रोस-मअ-मोह वज्जिअ, मअण णासण भव-रहिअ ॥४०

पदादिया जहा—

जिण रामे भग्नगाल मुमइ दणु,  
केसरि वसहो एण थणइ मणु ।  
जिण रामे एण दहइ धम धमन्त,  
हूम वह जातसेध पञ्जनन्त ॥४१॥  
जिण रामे जलमिहि देइ थाह,  
भारणो वणुण ण वचइ वाहु ।  
जिण रामे भव सबसम संतलाइ,  
दुट्टन्ति होन्ति सण मोक्कनाइ ॥४२॥  
जिण रामे पीडइ गहु ए को वि,  
हुम्मइ पिमाउ भोनरइ सो वि ।  
जिण रामे हुगाम्प स हिज्जन्ति,  
भणुदिण वर पुण्णइ उच्चवन्ति ॥४३॥  
जिण रामे छिदे वि मोहजालु,  
उपुज्जइ देवल्ल सोमि सालु ।  
जिण रामे कम्मइ तिहले वि,  
मोक्कसणो पदासिध सुह लहे वि ॥४४॥

छहुरिया जहा—

जिण नाम पवित्तं, दिवमुज्जन्तं, पाउ भनेसु वि छम्बइ ।  
जं जिण मणो भावइ, तं मुह पावइ, दीणु ण कामु वि  
किज्जइ ॥४५॥

संगी भवज्ज भहिणमं सहत्तं तालिमे भमिहं गुणुसु ।

सत्तच्छन्दो रुमं सत्ततालं हुवे कब्बे ॥४६॥

पंचच्छन्दो रुमं पंचतालं च होइ कब्बेमिं ।

तेहि रूप्हि रदधं तितालं तं मुण्णिज्जावु ॥४७॥

छन्दो रूप्हि विहिं जुमत्तं चकत्तलभमेव च जज्जहि ।

हुत्तमं सेवेहि हुवे अक्के रोमे तेहिं तेहिं ॥४८॥

घत्ता—

छहुरिमाह पदादिमा (हि) मुमणं रूप्हि ।

राना वणो कब्बे जणमणं महिरामणो होइ ॥४९॥

एकं वोस मता पिहणवे उट्टाम गिद ।

पउदसाइ विम्भामहो भणणं विरइ विरु ॥

रागाबंघु गमिदु एउ छहिरामं घत्त ।

सत्तुप तिपण भवणारा विरइ भणुदुर धम ॥५०॥

जहा—

गुर परणार वरएभउर भवणं निपउ चरणं कम (?)

मणए महुण जलहिण धरोसं ज्ञाप गमदम ।

परापीर जिण एव जधग्निहि वरसर गिलस ।

पहय दुरिध संतावहरण गुण मोह विलस ॥५१॥

जहा—घ—

जइ विण वमुमइ भणहं इह को वि संतरइ ।

भइ किलेसे ससिग्नि मुहं भ वि जइ फुरइ ।

तो वि एह मोरी वाणि विलट्ट कना गवइ ।

अहियव धण यम पररहं यवहंसे हि रसइ ॥५२॥

पंच संसार हूमं वहुपत्थं लक्कं चकखण विमुदम ।

एत्यं सद्यंमुच्छन्दं यवहंसत्तं परिसमत्तम ॥५३॥

संवत् १७२७ वर्षे प्रादित्तव मुदि पंचम्यां गुरी रामे  
नगरे लिखित मिदं कृष्ण देवेन ।

Journal of the University of Bombay,  
Vol. V, November, 1936, Part III.

११० भविसयत्त कहा (कवि धणवाल)

आदिभाग—

जिण वासणि सा तु सिद्धुम पाववत्तकमणु ।

सम्मस वित्तु निमुणहं गुण पंचमिहि फलु ॥

पण विविणु जिणु तइसोप वंघु,

इत्तरतर भवं गिक्कड खंघु ।

अध्वणं वणणं पंचम पंचु,

कव कमाण मोह तिमिरोह भणु ।

× × × ×

इय भविसयत्त कहाए पयडिय धम्मतेय केममोक्क्याए  
सुह धणवाल कयाए पंचमि फल वणणयाए भविसयत्त जम्म-  
वणणणो नाम पट्टमो मंधो सम्मतो ॥१॥

अन्तिमभाग :—

घत्ता—

धक्कहयणिवंसि माएसरहो ममुम्भविणं ।

धणुसिदि देवि गुणं विरदउ मरसइ संभविणु ॥५१॥

दूरवरं पणोसिंय पावरेणु,

एहं जो सीं बुक्कइ पामधेणु ।

फणु देइ पहिण्ठिउ मत्तसोइ,

पितामणि बुक्कइ तेण सोइ ।

एह जा गा बुक्कइ भवणउत्त,

अह मरण हो मह सोवाण वंघिण

नर नारिहि विग्घइं अक्करेइ,  
जो जं मग्गइ तहो तंजि देइ ।  
निब्बाहइ जो निय सिवि भरेण,  
सुपुन्नवंतु किं वित्थरेण ।  
उववास करइ जो सत्तसट्ठि,  
उज्जमणिं तहो सुहि तुट्ठि पुट्ठि ।  
जइ भज्जइ अंतरि विग्घु होइ,  
तहु सद्दहाणि फलु तं जि तोइ ।

घत्ता—

अहो कि बहुवाया वित्थरेण, एक्कवि चित्ति महत्तरिण ।  
अणुमोएं ताहि तिहुं संपन्न गुणंतरिण । १०।

अरि उरि अइरायइ दीहरच्छि,  
धरायत्तहो गेहिणि धणयलच्छि ।  
उज्जमिय ताएं चिरे संजुण्ण  
भाविय धणमित्तें तहि सुएण ।  
तह कित्ति सेण नामुज्जयाइ,  
अणुमोइय वज्जोयर सुआइ ।  
तहो फलिण ताए तिण्णमि जगाइ  
चउं थइ भवि सिवलोयहो गयाइ ।  
पहिलइ धणयत्त हो धणयदित्ति,  
इयरइ विन्नि वि धणमित्तु कित्ति ।  
विज्जइ भवि पकयसिरि सरूअ  
सुउ भविसयत्तु भविसाणु रूअ ।  
तिय लिगु हणि वि तिन्निमि सुतेय  
पहचूल रयण चूलाइ देव ।  
तइ यइ भविसत्तु वि करण तेउ  
हुउ दहमइं ताइ जि विमाणि देउ ।  
चउथइ भवि सुव पंचमि फलेण  
निइइहु कम्मु भाणानलेण ।

घत्ता—

निसुणंत पढंतहं परिचितंतहं अप्पहिय ।  
घणवारिं तेण पंचमि पंच पयार किय । ११।

इय भविसयत्त कहाए पयडिय घम्मत्थ काम मोक्खवाए  
बुहघणवाल कयाए पंचमि फल वण्णणाए कमलसिरि  
भविसदत्त भविसाणुरूव मोक्ख गमणोणोम वावीसमो संधी  
परिच्छेओ सम्मत्तो ।

१११ महापुराण

महाकवि पुष्पदन्त

आदिभाग—

सिद्धिवहू मणारंजण परमणारंजण भुवण कमल सरणोसर ।  
पणविवि विग्घविणासणु गिक्कवमसासणु रिसहरणाहु  
परमेसर ॥ ११ ॥

सुपरिक्खिय रक्खिय भूय तणु,  
पंचसय धराणाय दिव्वतरणु ।  
पयडिय सासण पयणयर वहं,  
परसमय भणिय दुण्णयर वहं ।  
सुहसीलगुणोह णिवास हरं,  
देविदं थुय दिव्वास हरं ।  
जुइ रिणज्जय मंदर मेहलयं,  
पवि मुक्क हार मणि मेहलयं ।  
सोहंता सोयरमिय विवरं,  
उववासिय बहुणारय विवरं ।  
सुरणाह किरीट पहिट्ट पयं,  
अइ पउर पसाय पहिट्ट पयं ।  
णवतरणि समप्पहभावलयं,  
गिर दुस्सह दुम्मण भावलयं ।  
हरि मुक्क कुसुम चित्तलियणहं,  
अरुहंत मणंत जसं अणहं ।  
सीहासण छत्त ताय सहियं,  
उद्धरिय परं स किवं सहियं ।  
दुहुहि सरपूरिय भुवण हरं,  
बंधूअ फुल्लसं णिहराहरं ।  
पुरुए व जिणं जिय कामरणं,  
दूरुज्जिकय जम्म-जरा-मरणं ।  
विरयं वरयं शिणय मोह रणं,  
उद्धय भीम णिय मोह-रणं ।  
पणमामि रवि केवल किरणं,  
मत्ता समयं भणिय किरणं ।

घत्ता—

अवरु वि पणविवि सम्मइं विरिणहय दुम्महं कोव पाव  
विद्ध सणु ।

आमु तिरिथमइं लद्धउ णापसमिद्धउ एिम्मलु

सम्मइंसणु ॥१

× × × ×

इय महापुराणे तिसट्ठि पुरिमगुणालंकारे महाकइ  
पुप्फयंत विरइए महाभव्व भरहाणु मणिए महाकव्वे  
सम्मइसमागमो एाम पढयो परिच्छेभो समत्तो ॥१

अन्तिमभागः—

सिद्धि विलासिएण मण हर दूए,  
मुद्धएवी तरु मंभूए ।  
एिद्धण सपण लोय सम चित्तं,  
सव्वजीव णिवकारण मित्तं ।  
सद्धसलिल परि वड्हिय भोत्तं,  
केसव पुत्तं कासव गोत्तं ।  
विमल सरासय जणिय विलात्तं,  
सुण्ण भवए देवलय णिवात्तं ।  
कलि-मेल पवल पडल परिचत्तं,  
एिग्घरेणु एिण्णुत्तकलत्तं ।  
णइ वा वीतलायकयण्णहारेणुं,  
जर चौवर वक्कल परिहाएणुं ।  
घोरं घूलिय धूमरियंणं,  
दूरय शज्जिम दुज्जए संगे ।  
महि सय णमत्तं करि पंगुरएणुं,  
मणिय पंडिय पंडिय मरएणुं ।  
मणए खेड पुरवरि णिवसत्तं,  
मणि भरहंत धम्बु भापंते ।  
भरह सण्ण एिण्णं णय णितए,  
कव्व पवंय जणिए जण पुत्तए ।  
पुप्फयंत कइएणु चय पंके,  
जइ अहिमाण मेरु एामंके ।  
कणठ कव्व मत्तिट्ठं परमत्थं,  
त्रिए पय पंकर मत्तालय हत्थं ।  
कोट्टण संवच्छरि भाणाडइ,  
दह मइ दिवहि चइ दइ रडइ ।

पत्ता—

मिण निरहंहु भरहहु कहु मुणहु कइकुल त्रितए भणियत्तं ।  
सुपहाणु पुगणु तिसट्ठिहि मि पुरिमहं चरित्तं समागि  
संत ॥१४

इय महापुराणे तिसट्ठि महा पुरिम गुणालंकारे महाकइ  
पुप्फयंत विरइए, महा भव्व भरहाणुमणिए महा कव्वे  
जिण्णिद णिव्वाएण गमणं णाम दुत्तरसय परिच्छेदाण महापुराणं  
सम्मत्तं ॥१०२

११२ जसहर चरिउ (यशोधर चरित)

महाकवि पुप्पदंत

आदि भागः—

तिहुवणनिरिकंतहो मइसयवंतहो भरहंतहो हय  
यम्मह हो ।  
पणविवि परमेट्ठिहि पविमल दिट्ठिहि चरण जुयल णय  
मय महहो ॥

कोंडिल्ल गोत्तणह दिणयरामु,  
वल्लह शरिद धर महयरामु ।  
एण्णहो मंदिरि एिणवसंतु संतु,  
अहिमाण मेरु कइ पुप्फयंतु ।  
चित्तइ य हो घए णारी कहाए,  
पज्जत्त उ कय दुक्किय पहाए ।  
वह धम्म णिवदो वा वि वहमि,  
कहिपाइ जाइ सिव सोक्खु ल्हमि ।  
पंचमु पंचमु पंचमु महीणु,  
उप्पज्जइ धम्मु दया सहोमु ।  
धुउ पंचमु दसमु विणागु जाइ,  
कण्णधिवरइ पुएण पुणु वि होइ ।  
काला वेक्खइ पडमिल्लु देइ,  
इह धम्मवाइ गिय वमह केउ ।  
पुरुएउ सामि रायाहिउउ,  
अएण्णदिउ चउतुररर णिवाउ ।

पत्ता—

पत्ताणुट्ठारणं जणुपणदारणं पइं पोमिउ तुहं मत्तघरं ।  
तव चरण विहाणं नेवतणारणं तुहं परमपत्त परम पण ॥१

× × × ×

अन्तिमभागः—

चिउ पट्टणे छरो माहु माहु,  
तहो मुउ मीला गुणवंतु माहु ।  
तहो तागुरु वीसलु एाम माहु.

वीरो साहु णियहि सुलद्धु साहु ।  
 सोयारु सुणाण गुण गण सराहु,  
 एककइ या चितइ चित्ति लाहु ।  
 हो पंडिय ठक्कुर कणहपुत्त,  
 उवयारिय वल्लह परममित्त ।  
 कइ पुप्फयंतु जसहर चरित्तु,  
 किउ सुट्टु सद्द लक्खण विचित्तु ।  
 पेसहिं तहिं राउलु कउलु अज्जु,  
 जसहर विवाहु तह जणिय चोज्जु ।  
 सयलहं भव-भमण भवंत राइं,  
 महु वंछिय करहिं णिरंतराईं ।  
 ता साहु समीहिउ कियउ सव्वु,  
 राउलु विवाहु भव-भवण-भव्वु ।  
 बक्खाणि उ पुरउ हवेइ जाम,  
 संतुद्धु वीसल साहु णाम ।  
 जोयगिा पुरवरि णिवसंतु सिट्ठु,  
 साहुहि धेर सुत्थियणहु घुट्ठु ।  
 पण सट्ठि सहिय तेरह सयाइं,  
 णिव विक्कम संवच्छर गयाइं ।  
 वइसाह पहिल्लइ पक्ख वीय,  
 रविवार समित्थिय मिससतीय ।  
 चिरवत्थु वंधि कइ कियउ जंजि,  
 पद्धडिया वधि महं रइउ तं जि ।  
 गंधव्वे कण्हड रांदणेण,  
 आयहं भवाइं किय थिर मणेण ।  
 महु दोसु ण दिज्जइ पुत्विं कइउ,  
 कइ वच्छराइं तं सुत्तु लइउ ।

घत्ता—

जो जीवदयावरु णिप्पहरण करु वंभयारि हय-जर-मरणु ।  
 सो माण णिसंभणु धम्मु णिरंजणु पुप्फयंतु जिणु महु  
 सरणु ॥३०

पावणि सुभणि मुद्धावंभणि,  
 उयरुप्पणो सामलवणो ।  
 कासवगोत्तिं केसवपुत्तिं,  
 जिण पयभत्तिं धम्मासत्तिं ।  
 वय संजुत्तिं उत्तम सत्तिं,  
 विमलियसं किं अहिमाणं किं ।

पहिसिय तुं डि कइया खंडे,  
 रंजिय वुह सह कय जसहर कह ।  
 जो आयण्णइ चंगउ मण्णइ,  
 लिहइ लिहावइ पढइ पढावइ ।  
 जो मणि भावइ सो एरु पावइ,  
 विहुणिय घणरय सासय संपय ।  
 जण वय एीरसि दुरियिमलीमसि,  
 कइ रिणदायरि दुसहे दुहयरि ।  
 पडिय कवालइ णर कंकालइ,  
 वहु रंकालइ अइ दुक्कालइ ।  
 पवरागारि सरसाहारि,  
 सण्हिं चेलि वरतंवोलि ।  
 महु उवयारिउ पुण्णिं पेरिउ,  
 गुण भत्ति ल्लउ णण्णु महल्लउ ।  
 होउ चिराउसु वरिसउ पाउसु,  
 तिप्पइ मेइरिा घण कण दाइणि ।  
 विलसउ गोमिणि णच्चउ कामिणि,  
 घुम्मउ मंदलु पसरउ मंगलु ।  
 संति वियंभउ दुक्खु रिणु भउ,  
 घम्मुच्छाहिं सहं एरु एाहिं ।  
 सुहु रांदउ पय जय परमप्पय,  
 जय जय जिणवर जय भय भय हर ।  
 विमलु सु केवलु एाणु समुज्जलु,  
 महु उप्पज्जउ एत्तिउ दिज्जउ ।  
 महं अमुणांति कव्वु करंति,  
 जं हीणाहिउ काइ मि साहिउ ।

घत्ता—

तं माय महासइ देवि सरांसइ णिहय सयल संदेह-दुह ।  
 महु खमउ भडारी तिहुवरासारी पुप्फयंतु जिण वमण  
 कह ॥३१

इय जसहर महाराय चरिए महामहलराण्ण कण्णा  
 हरणे महाकइ पुप्फयंतु विरिए महाकव्वे चंडमारि देवय  
 मारिधत्तरायवम्मलाहो णाम चउत्थो परिच्छेऊ  
 समत्तो ॥४

११३ णाय कुमार चरित (नाग कुमार चरित)

(महा-कवि पुष्पदन्त)

आदिभागः—

पद्मवेष्मिणु भावै पंच गुण कलिमलवज्जित गुणभरित ।

महासमि सुय पंचमिहे क्लु शायकुमार चारुचरित

॥ध्रुवकं

दुविहालंकारे विष्करंति,  
 सीला कोमलई पमाई दिति ।  
 महव्वधिहेतुणि संचरंति,  
 बहू हाव भाय विभ्रम धरंति ।  
 सुपसत्थे भ्रत्वे दिहि करंति,  
 सव्वई सिष्साणइ संभरंति ।  
 पीसिसदेसभासउ चवंति,  
 सवसणइ विसिद्धइ दक्खवंति ।  
 अइरेद छंद मग्गए जंति,  
 पाणेहि मि दह पाणाइ जंति ।  
 एवहि मि रसेहि संचिज्जमाण,  
 विग्गह तएण निर सोहमाण ।  
 चउदह पुब्बिल्ल दुंवालसंगि,  
 जिग्गवयण विणिगये सतभंगि ।  
 वायरण विति पायट्ठियणाम,  
 पसिमउ महु देवि मणोहिउत्तम ।

पता—

सिरि कण्ठराय करयलि निहिय अमिउत्तवाहिणि

दुगायरि ।

पवल हरसिहरि हममेह उलि पविउउ मण्डसेह

णयरि ॥१

मुदाई केमव भट्ट पुत्तु,  
 कागव रिमिपोत्ते विमान चिन्नु ।  
 णण्णहो मंदिरे पिक्कंत्तु गंतु,  
 महिमणमेद सुणसंगमहेणु ।  
 परिधउ महियणविग्गमिणएण,  
 विणएण महोउहि मीमएण ।  
 दूग्गिउत्तु दुक्खिण मोहोण  
 एणभमेमं अयउर ति मोउत्तु

मो पुष्पयंत पड्विष्णुपराय,  
 मुदाई केसवभट्ट तणय ।

तुहुं वाई सरिदेवोणिकेउ,

तुहुं अम्हं पुण्ण सिवंधहेउ ।

तुहुं भव्वजीव पंकरुह भाणु,

पइ धएण मणि मण्णउ तिएण समणु ।

गुणवंत भन्नु तुहुं विणयगम्मु,

उज्जमाय पयासहि परम धम्मु,

पता—

श्रीलंगित भावै दिणिजि दिग्गे णियमए पंकइयिह पविउ ।

कइ कव्वपिमल्लउ जस धवलु मिमु जुयलेण पविष्णवित ॥२

मएणु भग्गु गिरिपंचमिफल्लु गहीरे,

आयण्णहि णायकुमारवीर ।

ता वल्लहरायं महंतएण,

कलि विनसिय दुरिय कयंतएण ।

कोण्डिण्णगोत्तु गृह ममहरेण,

दासिह कंद कंदल हरेण ।

X X X X

इय णायकुमार चारुचरिए सण्णोमंकिए महाकइ  
 पुष्पयंत विरइए महाकव्ये जयंधर विवाह वल्लभाणवण्णो  
 णाम पढमो परिच्छेउ समत्तो ॥

अंतिमभागः—

गोत्तमं गणहर एवें मिद्धउ,

सूरि परंयराए उव इट्टउ ।

णायकुमार चरित्तु पयागिउ,

इय सिरि पंचमिफल्लु मइ भासिउ ।

सो एणंदउ जो पइइ पडावइ,

सो गंदउ जो तिहइ तिहावइ ।

सो गंदउ जो विवरि विरावइ,

सो गंदउ जो भावइ ।

गंदउ-अम्भइ माणगु गम्भइ,

णंदउ पम मुहु एणंदउ एणवइ ।

चित्तउ चिन्तउ चरिणउ पाउमु

गंदउ सण्णु होउ दीहाउमु ।

णण्णहो संभुवंतु सुवविनादं,

विष्णुवत्तु अण्णु गण्णु सविण्णु

गण्णहो होंतु पंचकल्लाणाहं,  
 रोय-सोय-खयकरण विहाणइं ।  
 गण्णहो जसु भुअणत्तए विलसउ,  
 गण्णहो घरिवसुहार पवरिसउ ।  
 सिवभत्ताइं मि जिणसण्णासें,  
 वेवि मयाइं दुरिय गिण्णासें ।  
 वंभणाइं कासवारिसि गोत्तइं,  
 गुरुवयणामय पूरिय सोत्तइं ।  
 मुद्धाएवी सवणासइं,  
 महु पियराइं होंतु सुहधामईं ।  
 संपज्जउ जिणभावे लइयहो,  
 रयणत्तय-विसुद्धिदंगइ यहो ।  
 मज्झु समाहिबोहि संपज्जउ,  
 मज्झु विमलु केवलु उप्पज्जउ ।

घत्ता—

गण्णहो मज्झु वि दयकरउ पुष्फयंत जिणणाह पियारी ।  
 खमउ असेसु वि दुव्वयणु वसउ वयणे सुयदेवि भडारी ॥१  
 सुहत्तुं भवण वावारभार णिव्वहरण वीर धवलस्स ।  
 कोडिल्लगोत्त णहससहरस्स, पयईए सोमस्स ॥१  
 कुड्डु दव्वा गव्भ समुवभवस्स, सिरिभरहभट्टतणयस्स ।  
 जस पसरभरियभुअणो यरस्स, जिणचरणकमल भसलस्स ॥  
 अणवरय रइयवर जिणहरस्स, जिणभवण पूयणिरयस्स ।  
 जिण सासणाय मुद्धारणस्स, मुण्णि दिण्णदाणस्स ॥३  
 कलिमल कलंकपरिवज्जियस्स, जिय दुविहवइरि गियरसस्स ।  
 कारुण्णकंदणवजल हरस्स, दीणायण सरणस्स ॥४  
 गिणव लच्छी कीलासरवस्स, वाएसरि णिवासस्स ।  
 गिणस्सेसविउस विज्जा विणोय णिरयस्स सुद्ध हिमयस्स ॥५  
 गण्णस्स पत्थणाए कव्वपिसल्लेणा पहसिय मुहेण ।  
 णायकुमार चरितं, रइयं सिरि पुष्फयंतेण ॥६

११४ करकड चरिउ (करकुड चरित)

मुत्ति कनकामर

आदिभागः—

मण-मारविणासहो सिवपुरिवासहो पाव-तिमिर-हर-  
 दिणायर हो ।

परमप्पयलीणहो विलय विहीणहो सरमि चरणु सिरि  
 जिणवर हो ॥

जय अणुवम-सिव-सुह करण देव,  
 देविद फणिद णरिद सेव ।  
 जय गण्णमहोवहि कलिय पार,  
 पारा विय सिव पहे भवियसार ।  
 जय कम्म भुवंगम दमणमंत,  
 मंताण वीज मण गह कयंत ।  
 जय चउ गइ डरिय जणोक्कसरण,  
 रण रहिय सुयण-दुहणिव्वह-हरण ।  
 जय संयम सरवर रायहंस,  
 हंसोवम बुहयण कय पसंस ।  
 जय कोह-हुआसरा पडर वारि,  
 वारिय-तम केवल णाण धारि ।  
 जय सासय संपय हियवास,  
 वासव सय सेविय सुह णिवास ।  
 जय भविय सरोरुह कमल वंधु,  
 वंधुर गूण णियरस बहुलसिधु ।

घत्ता—

जयदेवणिरंजण भव-भय भंजण मंडण भुवण महाघर हो ।  
 तव चरण एमंत हो मणे सुमरंतहो होइ समिच्छउ  
 फलु णरहो ॥१

मणि धरि वि सरासइ दिव्वदाय,  
 तह पंडिय मंगल एव पाय ।  
 जण सवण सुहावउ महरुललिउ,  
 कल्लाणाय विट्ठिर यणेण कलिड ।  
 पुणु कहमि पयडु गुण णियर भरिउ-  
 करकडणरिदंहे तणउ चरिउ ।  
 जइ दुज्जण वंकुड मणि णिरुत्तु,  
 जइ जणवउ णीरसु मलिण चित्तु ।  
 वायरणा ण जाणमि जइ वि-छंडु,  
 सुअजलहि तरेव्वइं जइ वि मंडु ।  
 जइ कह व ण पसरइ ललियवाणि,  
 जइ बुहयण लोयहो तणिय काणि ।  
 जइ कवियण सेवहु मइं ण कीय,  
 जइ जडयण संगइं मलिण कीय ।

तो सिद्धसेण सुसमंतभद,  
अकलंकदेव सुभ्रजल समुद् ।  
जयएव सयंमु विसालचित्तु,  
वाएगरि घर सिरि पुष्फर्यंतु ।

धत्ता—

इष हियए सरंतहो वियाउ करंत हो मह मंजायउ जंजि फलु ।

तम्हा सुह भरियउ दुह परिहरियउ पयडमि वंछिउ परिय छनु ॥२

× × × × ×

इय करकंड महा चरिए मुणिकणायामर विरइए भव्ययण

कण्णा वयंसे पंच कल्लाणविहाण कप्पतरु फुल संपत्ते  
करकंड जम्मोपत्ति वष्णणो गाम पट्टमो परिच्छेउ  
समतो ॥ संधि १ :

अंतिमभागः—

चिर दियवर वमुष्णण एण,  
चंदारिसि गोत्तं विमलएण ।  
वद्धराइं ह्यइं दिपंवरंण,  
मुपसिद्धणाम कणयंमरेण ।  
बुद्ध मगलेएव हो सीमएण,  
उप्पादय जग मण तोमएण ।  
आसाइय सुंयारि संपत्तएण,  
जिया चरण मरोहं भत्तएण ।  
पच्छं नइं तहिं मइं चरिउ एह,  
पर पयडिउ भविपणि विणउ पंहु ।  
मइं सत्य विहीणइं भंदिउ किपि,  
सोहिविणु पयडउ विवुहं तं पि ।  
परकज्ज करण उज्जुप मरणाहं,  
अर्थाणउ पयडिउ मज्जाणहं ।  
कर जोइविं मणित इउ वरंनु,  
महो दीणहो ते सयनु वि समंतु ।

धत्ता—

जो पदइ मुणइ मण पितवइ जणयाग ताउउ इउ चरिउ ।  
तो णक भुवणो मंडणउ लहइ मणित्णु मुण भरिउ ॥२८

जो एवजोव्वणे दिवसहि चडियउ,  
अमर विमाणहो एं मुह पडियउ ।  
कगायवष्णु अइमण हरगतउ,  
जमु विजवालु एराहित रत्तउ ।  
धम्म महानर मिचिय अण्णुणु,  
जो विजवालहो एं मुहदप्पणु ।  
जो अरि पिहणइ दुस्सह नीलइं,  
जमु मणुरजित कुंजर कीलइं ।  
वयव इट्ट मिता जण रोहणु,  
एण भूवालहो जो मणु मोहणु ।  
दीणाणाहहो जो दुह-मंजणु,  
कण्णारिउ हो आसवरंजणु ।  
जो वोलंतउ गिय संखोहउ,  
जो ववहारइं एरवइ मोइइ ।  
जो मुह सगरि अइमय धीरउ,  
जो जण पयइ ए वीयर हीरउ ।  
जो चाभीयरं कंकण वरिसणु,  
जो वंदीयण सहलउ करिसणु ।  
जो जिए पाय मरोगेहं मट्टयर,  
जो मज्जंणु वि णयणहं सुंइह ।  
जो वामणिहि मणम्मि णं मुंक्कइं,  
जो जण सील तरंगिणि उक्कइं ।  
वित्ति भमविय वइ व ए पयवइ,  
जमु गुण नित्ती सरमइ संकइं ।  
तहो मुय आहलु रत्तहो राहुल,  
मुणि काणायामर पय उक्काहुल ।

धत्ता—

तहो अणुराए उउ चरिउ मइ जणवइ पयडिउ मणहरउ ।  
ते वंधव पुत्ता कलत्तसहु चिर णदहु जा रवि-सति हरइं ॥२९

इय करकंड महा राय चरिए मुणि कणायामर विरइए  
भव्ययण कण्णा वयंसे पंचवत्ताण कप्पतरु पालसंपने करकंड  
सव्यत्य मिडिसाहोणाम पट्टमो परिच्छेउ समतो ॥१०





माशिक माणिणि भं कामिमल्लि,  
 लक्षणसिरि पाम एारी मत्तलि।  
 घेरणा धरणिउ एं काम भत्तु,  
 संगहिउ जांहि जिण धम्म वत्तु ।  
 मयणा भज्जो यति भाह भोय,  
 एामेण सया सीलेण सोय ।  
 सत्ता पिय मणसिरि पढम धण्ण,  
 पट्टो मंगा त्रिवसो सुजण्ण ।  
 सुय रामचंदु कुन कमलनंदु,  
 एंदउ विह इह एं वीरचंदु ॥१५६  
 नंदा पूना वे भज्ज जुत्त,  
 विहजीवउ वीह कमलवन्तु ।  
 एवाहि मज्झिं सिरि पोमिसिह,  
 जिण सासण एंदणवण सुंसिह ।  
 विज्जुत्त चंचलु लच्छी सहाउ,  
 धालो इवि हउ जिण धम्मभाउ ।  
 जिणगंयु सिहावउ लवणु एवकु,  
 सावय लक्खा हारीउ रिक्ख ।  
 मुणि भोजण भुंजाविय सहायु,  
 चउवोस जिणालउ किउ सुभायु ।  
 पेता चाउपरियनिमित्त दब्बु,  
 तेणज्जिउ लाइवि जें भउव्व ।  
 पुण एव जिणा म्दणु जि विचित्तु;  
 ममिहह सुपाडि हेरुत्तु पुत्तु ।  
 निम्मविउ भवं बुहि जाणवुत्तु,  
 रयणसय पुप जुप पास जुत्तु ।  
 कारिय पइत्तु जिण ममय दिट्ठ,  
 धवलोप एणाव सयन सचिचि हिट्ठ ।

पत्ता—

एंदउ गिरि हंसराउ मुहउ, एंदउ पउमसिह सुसउ ।  
 एंदउ परिवार सचिं कविउ एंदउ सोउ गुणोह पुउ ।  
 धामामम्म त्रिपम्म य जिह धंत्तं को वि सहइ न गुणस्स ।  
 निरिउोमगिह जिहने को पउरइ मुए णिहालस्स ॥१  
 निरिउउहमसिह पउमं इह मोए उइ ए होंत्तु वा पउमा ।  
 कोना उदय उरंठी मुदानु पूया विओएहि ॥२

(जैन साहित्य संशोधक सं. २ खं. १, पृष्ठ ८०)

विबुध श्रीधर के भविष्यदत्त चरित  
 (की लिपि प्रशस्ति)

सं० १५३०

माहुरकुल गहलच्छरा ससंकु,  
 जिण भाविय धम्मं विमुक्कं संकु ।  
 वुह णियर दाएविहि करएयुत्तु,  
 पाय-मगाणि रउ वज्जिय भउत्तु ।  
 तहो भाठी एामें धरिणि जाय,  
 एावइ लच्छी सयमेव भाय ।  
 कोइल इव मुहुर सलियवाणि,  
 पवि रइय कज्ज जाएं वि जाणि ।  
 तहो गम्भं समुप्पण्णउ रवण्णु,  
 साहारणु सुउ राय कएयवण्णु ।  
 पउमउ परिव्याणिय पाय भग्गु,  
 जिण धम्म-कम्मं साहिय सुमग्गु ।  
 बीयउ एणारयणु एणणिउत्तु,  
 मग्गे परिव्याणिय जिण माणिय मुत्तु  
 एिम्मलयर जमलच्छी सिहाणु,  
 माहुर गयणहयल सेय-भाणु ।  
 मइवंत संतु पाविय पसंमु,  
 जिणवर कह कम कण्णावत्तंमु ।  
 कएणालउ किरियावंतु साह,  
 मुदानउ मयउहइय-भग्गुह ।  
 तह वप्यिणि पामें जाय-भज्ज,  
 सिरिहहो सिरि व जाणिय सकज्ज ।

पत्ता—

सज्जण सुहयारिणि पाव-ण्णिवारिणि  
 पविमल मीत्ता लंकरिया ।  
 बंपवहं पियारी भोयणसारी  
 विण पाइय गुणमग भरिया ॥२  
 तहो पउमु सुउ पट्टु पामें, ।  
 हउ एं धण्णउ दरसित कामें ।  
 माणवकूयु सएण्णुत्तु सोयहा,  
 धम्म पहावें माणियं भोय हो ।  
 बीयउ धासंणुत्तु संभावउ,  
 यामुण्णउ जिह विह विक्खेपायउ ।



घत्ता—

चेयालयेवि ध्रुव उत्तम विसाल ताहि ।  
 धवलिय सिहरम मंडिय कंषण कलस जेहि ॥११  
 खांदणवणु वसवण धनु मंडिय,  
 धम्मनिलय पावारि विहडिय ।  
 धय-तोरण-उत्तवीय सोहिय,  
 पिच्छ महुच्छउ मुर गर मोहिय ।  
 कित्तिययणिमउ कित्तिय मनेहिय,  
 जिम कहलासहु दोसहिं तेहिय ।  
 मंगलीय महुच्छउ किजइ,  
 दुहुंहे मुर वहु धुइ विर इजइ ।  
 एककु कट्टुसंघचेइहइ,  
 धम्मसंघु पिण्णासिय भवनइ ।  
 सत्थ-पुराण-भूयजिण्णाहउ,  
 किम वणमि सिवलच्छि सणाहउ ।

घत्ता—

सावय पुरवाउ एण्वाहिय गिह-धम्म भर ।  
 वय चाइ समस्य तिदिह पत्त उण्णकर ॥१२  
 तहि बोयउ पसिदु जिण्णमंदिर,  
 भविण्ण-नेण-मण पयखाणदिर ।  
 मूलसंघ जिण सासण सारउ,  
 रवि-विबुध-उम-एणपर-एणवारउ ।  
 गुज्जर गोट्टि धम्म भर संबउ,  
 णिय धनु-पुण्ण एणित्तें संबिउ ।  
 सोहइ सहवउ संघ सामिदउ,  
 मुणि तय-तेयव रिदिय रिदउ ।  
 चिरु सामिउ तिरि गोवमु गणहइ,  
 तहु संतउ धनेय निज्जप सइ ।  
 कुंद कुंद धायरिय गरिदुहइ,  
 मंग पुखपध धायम सिदुउ ।  
 तामु पट्टि धणु धमेण कूहकउ,  
 धम्मकित्तिय मुणिवध मत्त-मुक्कउ ।  
 तामु सिवल-निक्कणिय धणुय वि,  
 महवय-मणुवय-मुह वहु भेय वि ।  
 तहि चेयालइ विव गिरोमणि,  
 भविण्ण-भमत्त-भोहण-दिणमणि ।  
 पीमावइ पुरवाउ मुरवउ,  
 वय-मय-विमल-भमाय-विमवकउ ।

सोखम (?) विवसंखुंयु मह पंडिउ,  
 एण्मल विज्ज चांरि-वह-मंडिउ ।  
 धागम-वेय-पुराण-एहाणउ,  
 जोइस धरय सस्य गुण जाणउ ।

घत्ता—

चामह सुपहाणु चाइमल्लु सरसइ णित्तं ।  
 पण थासएणाइं सोहइ बुहयण कुल तितउ ॥१३  
 गुज्जर गोठि गुट्टि सुपहाण वि,  
 सेयंयु व पयडे चउ दाए वि ।  
 धम्म जुत्त सम्मत्तावकिय,  
 पुण्ण पविता णाम चदं किय ।  
 रज्ज-कज्ज-सज्जण मुह-थाइण,  
 विदवि चच्छि चेईहर ताइय ।  
 पूय पतिट्ट इदु मुह णिमित्तें,  
 णिय उण्णय कर-मुत्तकल चित्तें ।  
 मंगल-गोय-सह-पाठय-रत्त,  
 एण्णव महच्छय पुण्णहु सरहस ।  
 जिण कलत्ताए मित्ति वि खारीएर,  
 तए खिगार सार सोहं धर ।  
 हाव-भाव-विमम धइ कुच्छर,  
 चउ-एणिकाय मुरणावइ सच्छर ।

घत्ता—

कि वण्णमि ताहं गुज्जरगुट्टि समस्य जेहि ।  
 जिण धम्मपहाणुं पयइ पहावण धम्मु तहिंवे ॥१४  
 जेण तिहाविउ भंम गरिदउ,  
 पयडमि तामु वंयु मु विमिट्टउ ।  
 गुज्जरगुट्टि धातिव पयडियनम,  
 पीणिय भव्यतोय चांपंस ।  
 हरसा साहु खामु सुगरिट्टउ,  
 सहुराज्जो वि वत्त मण इट्टउ ।  
 हरसो भग्ग लच्छि कमलच्छिय,  
 गिह-धम्महु परिपालण दच्छिय ।  
 तामु उवरि खांदण उण्णयउ,  
 ऊपू खामु जसरासि मणुण्णउ ।  
 शास सरो वेहिणिय गय-णामिणिय,  
 धम्मलोण परिवारहु सामिणिय ।  
 तामु पुत्त चंहु धंदाणुणु,  
 भविय चित्तिय सच्छराज माणण ।

घत्ता—

तहो धम्मणिमित्त हो दिढ-सम्मत्त हो सासयसुह तह कारण हो,  
वण्णामि मगहाहिउ भव्वयणहं पिउ भव्व कव्व रयणायरहो ॥५॥  
अन्तिम भाग—

इय रोमिणाहचरिए महामुणिए कमल भद्द पच्चक्खे  
महाकइ कणिठ्ठ दामोयर विरइए पंडिय रामयंद आएसिए  
महाकव्वे मल्ह सुअ रागएव आयणिए णेमिणिन्वाण  
गमरां पंचमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥१४५॥

वारह सयाइं सत्तासियाइं, विक्कम रायहो कालहं ।

पयारह पट्ट समुद्धरणु एरव्वइ देवंपालहं ॥

तहं तराइं मति सुर गुरु सवाणु,  
धम्मेउ धम्मु गुण गण णिहाणु ।

गुणहइहं पट्ट समुद्धरणु,  
मुणिए सूरिसेण कोले-मल हरणु ।

तहं तराउ सीसु मुणिए कमलभद्दु,  
भव्वयणाविदं जण मरा अणडु ।

तहि वणिवर एकु पसण्णुचित्त,  
रागगेउ राम भव्वयण-मित्तु ।

मेउत्तय वंस उज्जाण करणु,  
जे हीण वीण-दुह-रोय-हरणु ।

मल्हहं रांदणु गुण गण पवित्तु,  
तेणिए भणिएउ दल्ह विरयहिचरित्तु ।

मइं सलखणपुडि णिवसतएण,  
किउ भव्वु कव्वु गुरु आयरेण ।

पिहिमी घर रांदणु गयणिचंदु,  
उवएस करइ महु रामयंदु ।

जस एवहं रांदणु जस णिहाणु,  
वच्छल्लउ अइ मह एउ जाणु ।

इस ग्रन्थ की प्रति क्षुल्लक सिद्धिसागरजी और पं० कस्तूरचन्द जी शास्त्री एम. ए. के सौजन्य से प्राप्त ।

जिए एवहं रांदणु कइ करिणु,  
दामोयर सुजस णिहाणु दिठ्ठु ।  
तिए विरयउ रोमीसरचरित्तु,  
स भलइ जु कवि साणंद चित्तु ।  
जो पठइ पठावइ लिहइ वि देइ,  
सो मोक्ख महा पुरिपइ सुरेइ ।

घत्ता—

जगि सन्ति समिच्छओं जण सुद्धइ छओ अठ्ठकम्म पयडउ  
विलउ ।

सलखणपुडि दिठ्ठओ चित्तिगविठ्ठओ वीरणाह तिहुवण  
तिलउ ॥१४६॥

देसहं रायहं पुरवरहं सति सयलद्धि भव्वयणु ।

पडइ सुणइं जो एककमण तहो होउ सति सव्वपरिण ॥

चउविहि संघहं सुह-सति करणु,

रोमीसरचरिउ-वहु दु ख-हरणु ।

दुज्जीह जि किरिण वय गुणइं लेहि,

भविभाव सिद्धि संभवउ तेहि ।

विसहर जिम जे पर छिहणियहि,

ते कम्म कलंकिय दुट्ट-भवहि ।

जे सुवण सुणहिं घरि साहिलासु,

ते लंहहि सगिण सुहमइ णिवासु ।

पोसियइ सप्पुघिय दुट्टएण,

परिणवइ होइ वि सुतक्खणेण ।

दुज्जण जं किज्जइ विणय सति,

तं तहं गुणस्स तह होउ सति ।

सं० १५५२, जयपुर शास्त्र भण्डार

और टोडारयसिंह राजस्थान

## परिशिष्ट ४

जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के ग्रन्थ और ग्रन्थकार

१ अजिम पुराण	विजय सिंह	११७	३३ गिज्जर पंचमी	कहारागु विनयचंद मुनि	१०६
२ अखंतवय कहा	×	१०५	३४ गिद्धूह सत्तमी कहा	वाल चन्द मुनि	१०७
३ अखंतवय कहा	म० गुणभद्र	१०५	३५ गिद्धूह सत्तमी कहा	म० गुणभद्र	१०६
४ अणत्वमिम कहा	हरिवन्द कवि	१०७	३६ गिद्धूह सत्तमि वय कहा	साधारण	१२१
५ अणयमी कथा	रङ्गू कवि	६५	३७ शोमिणाह चरित	कवि लक्ष्मण	५६
६ अणुवेनखा	अरू कवि	१११	३८ शोमिणाह चरित	अमर कीर्ति	५५
७ अणुवेनखा	ग्र० साधारण	१२२	३९ तियाल चववीसी कहा	ग्र० साधारण	१२१
८ अणुवेनखा दोहा	लक्ष्मीचंद	१११	४० दहलकवण वय कहा		१०५
९ अणुवेनखारासो	जह्निग कवि	११०	४१ दुदारास कहा (दुग्धारस कथा)	म० गुणभद्र	१०३
१० अणुसंबोहकव्य	रङ्गू कवि	६६	४२ दुदारासिकहा	ग्र० साधारण	१२०
११ अमरसेन चरित	माणिक्यराज	५७	४३ दुदारासिका	वालचन्द मुनि	११०
१२ आयास (आकश) पंचमी कहा		१०३	४४ धाणकुमार चरित	रङ्गू कवि	६१
१३ भारहृणासार	वीर कवि	१०५	४५ धम्म परिवत्ता	वृच हरिपेश	५
१४ कल्याणकरागु	विनयचंद मुनि	१०६	४६ पउम चरित	स्वयंभूदेव	१
१५ कहाफोसु	श्रीचंद	७	४७ पउम चरित	रयगू कवि	७३
१६ कुमुगंजलि कहा	ब्रह्म साधारण	१२१	४८ पकनवइ कहा	गुणभद्र	१०३
१७ कोइल पंचमी कहा	ब्रह्म साधारण	११६	६ पंडव पुराण	ययः कीर्ति	३८
१८ चंदणछट्टी कहा	लाल् या लक्ष्मण	१०६	५० पञ्जुण चरित	सिद्धवा सिंह कवि	२०
१९ चंदणछट्टी कहा	म० गुणभद्र	१०३	५१ परमेष्ठि पयास सारो	श्रुतकीर्ति	११२
२० चंदायणवय कहा	म० गुणभद्र	१०३	५२ पासचरित	असवाल कवि	१२८
२१ चंदणह चरित	म० यशःकीर्ति	३७	५३ पासणाह चरित	श्रीधर कवि	४५
२२ चूनडी रास	विनयचंद मुनि	१०८	५४ पासणाह चरित	रङ्गू कवि	७२
२३ छक्कममोवपस	अमरकीर्ति	१३	५५ पासणाह चरित	देवइद (देवचंद)	२३
२४ जंबूमामि चरित	वीर कवि	५	५६ पास पुराण	पद्मकीर्ति (पद्मसेन)	४
२५ जसहार चरित	रङ्गू कवि	६३	५७ पास पुराण	तेजपाल कवि	१२४
२६ जिणदत्त चरित	(पं०) लक्ष्मण	१५	५८ पुण्णासव कहा	रङ्गू कवि	६७
२७ जिणरत्त कहा	म० यशःकीर्ति	४४	५९ पुण्णजली कहा	गुणभद्र	१०४
२८ जिणरत्त विहाण कहा	नरसेन	१२३	६० पुरन्दर विहाण कहा	अमरकीर्ति	१५
२९ जीवंधर चरित	रङ्गू कवि	१०१	६१ बारह अणुवेनखा रासो	योगदेव	१११
३० जोगसार	श्रुतकीर्ति	१३३	६२ बाहू जलिदेव चरित	धनपाल	३२
३१ नागकुमार चरित	माणिक्यराज	६१	६३ भविसयत कहा	श्रीधर कवि	४६
३२ गिज्जर पंचमी कहा	वु० साधारण	१२१	६४ मटठ सत्तमी कहा	गुणभद्र	१०६



परिशिष्ट ५

संघ, गण, गच्छ

		उम्मत ग्राम	३८
		कांचीपुर	२६
बट्ट संघ (काष्ठा संघ)	११४	करहलु (करहल) ग्राम	१२८
काष्ठा (काष्ठा) संघ	११६	काविट्ट काविरथ देस (कांपल्य देस)	३५
काष्ठा संघ	४१, ४३	कालिन्दी (यमुना नदी)	१२८
सुंदि संघ	१११	कुंभण्यर (नगर)	१११
देसी गण (देसी गण)	८	कुमार एयरि (कुतार नगरी)	३
देसिय गच्छ	२३	कुसुं खेत (कुसुंखेत)	६६
पुरवाह संघ (पठरवाल)	५६	कुसुं देस (कुसात देस)	१२८
पुष्करगण	४१, ४३, ११४, ११६	खंभात पट्टण (खंभात नगर)	३३
बल्लयारगण (बलात्कारगण)	१२८	गमपुरि (हस्तिनापुर)	११४
बनात्कारगण	१३४	गिरण्यरह (गिरनार)	६४
वालगण	१११	गिरनार	६६, ७६
मायूर गच्छ	४१, ४३, ११६	गिरण्यरह (गिरनार)	८१, १००
मायूर संघ	१४, ५६, १०८, १०९, ११०	गुज्जर (गुज्जर) देस	३२, ३८
माहूर (गाधुर) गच्छ	११४	गुज्जर विसय (गुज्जर देस)	१३
मूल संघ	५४, ६०, १२१, १२८, १३०	गुज्जरत्त (गुजरात) देस	५५
सालवग्ग (सालवागड गण)	६	गुडपेठ देस	६
वागेशरि (सरस्वति) गच्छ	१११, १३४	गुंदिज्ज नगर	२४
गुरमड गच्छ (सरस्वतिगच्छ)	१३०	गोदहय (गोघ्रा) नगर	१३

परिशिष्ट ६

देश, नगर, पुर, ग्राम आदि

ग्रं देस	१११	गोपाचल (ग्वालियर)	१२३
अचल उरहो (अचलपुर)	५	गोपायलि—गोपाचल	१०१
अणहिल्लपुर	७	गोपायलु (गोपाचलु) ग्वालियर	८०, ८६, ८७
आराम (ग्राम)	३	गोपाचल (ग्वालियर)	१२३
अवन्ती (देश)	३	गोवागिरि (गोपाचल)	३
अवन्ती (विषय)	२५	गोवागिरि (ग्वालियर)	६३, ७२, ७७, ७९, १०३, १३२
भारतथपुर (आरोन)	६२	गोवागिरि नयरि (गोपाचल नगरी)	१०३
भावेरि (भामेर, जयपुर) नगर	१३०	गोवागिरि दुग्ग (ग्वालियर दुग्ग)	५७
उदयहि गिरि (उदयाद्रि गिरि)	१२०	गोवागिरि	६२
		चंद्रवाड	४६
		चंद्रवाड (नगर)	३०, ३३, ३६



चंद्रवाड पट्टण	६८, १०१	मंडवचल गढ़	१३४
चित्तउड्डु (चित्तौड़) (मारवाड)	५	महासेन (उद्यान)	५६
जउण्णा णइ (जमुना नदी)	२७	महीयड्डु (प्रदेश)	१३
जेरहड्डु णयर (जेरट नगर)	११२	मग्गह (मागध—मगध देश)	२८
जेरहद	१३४	मालव देश (मालवा)	५६, ११२, १३४
जौइणिपुर (योगिनीपुर—दिल्ली)	२३, ३६, ४३, ७६, ८६, ८६, ११४	मालव (नगरी)	६
जोइणि पुरि	६६	मेघवन पट्टणे	६
जोयणि पुराउ (योगिनीपुर)	६४, ६४, ६८	मेरुह पुरे	११८
भुण्णभुण्णु	८६	मेवाड (देश)	५
दिल्ली	४८	रायवहिय नगर (रपडी-ताय भा०)	२७
ढंढाहड्डु देश	१३०	रहियासु (रोहतासु नगर) रोहतक	५७
तिहुअणगिरि (त्रिघुवनगढ़)	१७, १०६	रहियास पुर (रोहतक नगर)	५६
तिहुयणि गिरि पुरु	१०८	लाहडपुर	६५
तिहुवणगिरि (तहनगढ़)	१७	लुवाथणपुर	१३१
दिल्ली मंडलु	१३०	वणिप्पुर (वणिकपुर)	११७
देवगिरि (दौलतावाद)	३३	वराडदेश (वैराट या वराड देश)	२७
धारणमरी (धारानगरी)	३	विडलमहागिरि (त्रिपुलाचल)	१०७
धाराउर (धारापुर)	२६	विदेह (देश)	१
धारा नगर	३३	विपुलगिरि	२१
पत्तहणपुर (प्रह्लादनपुर)	३२, ३३	विलराम	१८
पाटलिपुत्र (पटना नगर)	१७२, १७३	वैशाली (विशाला नगरी)	१
पोमावती (पञ्चावती)	६	सम्मैय (सम्मैद शिखर)	११५
दम्हण बाड	२१	सूरस्थ (शूर देश में स्थित)	७
वलडड्डु (ग्राम)	६	सूरिपुर	२३, ३६
वालपुर (चालपुर)	६	सूरिपुर	३५
विनराम नगर (जि० एटा में मौजूद है)	१६	सेत्तुंजय (शत्रुंजय) तीर्थ क्षेत्र	११५
भमियापुह	४	सोरट्टि (सोरठ देश)	८६
भरह खेत (भरत क्षेत्र)	५५	हिसार (नगर)	३६, ४३, ६४
मंडवगड्डु (मांडू या मांडवगढ़)	११२	हिसार कोट (हिसार किला)	११७
		हिसार पट्टण	६८

परिशिष्ट नं० ७

वंश, गोत्र, अन्वय आदि

ध्रुवहृद वंस	५१
अग्रणीय वंस (अग्रवाल वंश)	८६, ६०, ६४, ६७
अग्रवाल (अग्रवाल वंश)	३६, ४१, ४३, ५२, ५८, ५९
अग्रवाल वंश (कुल)	६३, ६४, ६५, ६८, ७२, ७५, ७५, ७६, ७८, ८०, ८२, ८७, ९३, १०८, १२३
अग्रवालु	११४
इक्ष्वाकु वंस (इक्ष्वाकु कुल)	६१, ६२
ऐंडिल गोत्र	७६
कुंदकुन्दाचार्यान्वय	७
कूरम वंस	१३०
संडिल्लवाल (कुल)	५४
संडिलवाल कुल	११८, १३०
गग्ग गोत (गगं गोत्र)	११४
गर्गगोत्र	४३
गुञ्जर कुल	२२
गुञ्जर पुरवाट वंस	३७
गुलराड वंस (गोलालारे)	१२६
गोयल गोत (अग्रवालों का एक गोत्र)	६८, ६०
गोलाराडिय	१३२
गोलालाडिय वंस (गोलालारे)	१३३
चालुष्य वंस	१३, २०
चाहूवाण कुल (चौहान वंस)	६८
चौहाण वंस (वंश)	२८, ३०
जहुकुल	१२४
जदुवंश	१२८
जयसवाल	६१, १०४
जमुवाल	६२
जायव वंस (यादव वंस)	३३, ३६
जायस वंस	३१
तुंभर (तोमरवंश)	१३१
तोमर (शत्रिय जाति)	७३
तोमर कुल	७५, ८४, ९२, १२३, १३२

धनकड-कुलि (धकंट कुल)	५
धनकड वंस (धकंट वंश)	६
नंशाम्नाय	१३०
नायर (नागर) कुल	१४
परमार वंस (परमार वंश)	८, २५
पुरवाड वंस (पोरवाड वंश)	१०, १६, ३३
पोमावइ कुल	६७
पोमावइ पुरवाल वंस (पद्मावतीपुरवाल वंश)	७६, ६५
पोमावइ वंस (पद्मावतीपुरवालवंश)	६८, १०१, ११८, १२४
प्राग्वाट वंश	७
मीतरणु (मित्तल गोत्र) अग्रवालों का एक गोत्र	५२
वरसावडह वंस	५४
विणय वंस	५९
लवकंचुक कुल (लमेचू)	३०, ३१
लंत्र कंचू (लमेचू)	१२५
सिधल (संगल) गोत्र	५६
सेट्टि वंश (श्रेष्ठि वंश)	६६
सोम वंस (चन्द्र वंश)	६६
हरिवंस	२, ३
हुंबड कुल	३७

परिशिष्ट नं० ८  
राजा, मंत्री आदि

अंध वृष्टि (अंधक वृष्टि)	३५
अकबर जलालदी (जलालुद्दीन)	१३०
असपरराज	१३०
अजयणरिद	१०८
अभय वालु (अभयपाल राजा)	३०
अहमल्ल (आहवमल्ल राजा)	२८, ५६
आहवसन्तल (राजा)	१
ईसरदे (पट्टरानी)	२८
कण्णदेव (चौहान वंशी राजा)	३६
कण्टुद, सोडुसाहू द्वितीय पुत्र	३०
कण्टुद (कृष्णादित्य मंत्री) आहवमल्ल	३१
कर्ण नरिन्द्र (राजा)	६, १३, ५६
करमसीह (राजा)	११८

कित्तिचंद्र (डूंगर राजा का पुत्र)	५५	मम्मल नृप	१८
कित्ति सिधु	६०, १३२, १३३	महमूद साहि (बादशाह)	३३
कित्तिसिह	७४, ७७, ८०	मानसाहि राजा	१३०
किन्नुपाल (कीर्तिपाल)	१२३	मुमारख सुलतान (मुबारकशाह)	३६
कुमर सिह	३७	मूलराज (राजा)	७
कुसुराज	१३३	वीसलणिव (वीसलदेव राजा)	८६
गणोसणिव (राजा गणपति)	७४	वीसलदेव (राजा)	३२
गयासु साहि (गयासुद्दीन)	११२, १३४	रणघोरिय (राजा)	२१
चंदाद (पट्टरानी राजा डूंगर सिह)	७४, ७७	राम इंदु (रामचन्द्र राजा)	६८
चंदाएत्री (चन्दा देवी)	८०	रामचन्द्र (पुत्र अभयचन्द)	३६
चेल्लणाहि	१०७	रुद्रकोटि (शिवकोटि)	२८
जलाल खान (बादशाह)	४२	वंदिगदेव (राजा)	१११
जयश्री		वासाहर (घर) मंत्री	३६
जय सिध	१३४	विक्रमादित्य (राजा)	२६
जाहउ नरिद	३०	श्रीपाल राजा	१२६
डूंगरिन्दु (तोमर वशी ग्वालियर का राजा)	७४, ७७, ८०, ८४, ६२, १२३	श्रीपाल नरेख	१२७
डूंगरणिव (डूंगरसिह राजा)	७२, ८०, १३२	श्रीप्रभ (राजा)	५१
डूंगरराय (राजा)	८५, ८७	श्रेणिक राजा	२१, ४२, १३०
णसीरु साहि	११२, १३४	श्रेणिक नरेन्द्र	५०
दाऊद साहि	५१	संभरी राय	३३
पवणजय	६०	संभरीनरिन्द्र	३६
पुंजराज (मंत्री)	१३४	समुद विजय	३६
पयावरुद (प्रतापरुद्र)	६८, १०१	सारंग नरेन्द्र	३४, ३६
पेरोज साह (दिल्ली का बादशाह)	८६	सिकंदर साहि	५८
पेरोज साहि (फीरोजशाह)	६४	सूरसेन (राजा)	३५
प्रतापरुद्र	१००	सेणिउ (श्रेणिक)	१०७
प्रद्युम्न कुमार	२१	सेणिक	१०२, १०४, १०५, ११०, १२०
फार (फीरोजशाह तुगलक)	३६, ४३	सेणियराय (श्रेणिक राज)	११
वध्वर (बाबर बादशाह)	११४	सोणिगु (श्रेणिक)	१२६
वल्लाल (रणघोरिय पुत्र राजा)	२१, ३०, ५४	हम्मीर वीर	२८
भरहवाल (भरतपाल राजा)	३०	हरिपेण (चक्रवर्ती)	४
भरहेसर (आदिनाथ पुत्र भरत चक्रवर्ती)	१०५	हेमराज (मंत्री मुबारकशाह)	४०
भोजदेव	३, ७, २६		
भोजमंति	१२६		

परिशिष्ट नं० ६

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित आचार्य,

विद्वान् और भट्टारक

अश्वमेध	११	कामद	२५
अश्वमेध	५६	कामराय बृह	११७
अश्वमेध गरी	३५	कामराय पंडित	११८
अश्वमेध (मुनि)	१५	कालिदास (कवि)	८, १७, १६, २५
अश्वमेध (गुरु धवल कवि)	१२	कालिदास (कीर्तिघर)	१
अश्वमेध	२६	कुन्दकुन्द	१२६
अश्वमेध	३८	कुन्दकुन्दाचार्य	८, १३०
अश्वमेध	८, १७, २५, ११३	कुन्दकुन्द गणि	३७, ११६, १२०
अश्वमेध	८	कुन्दकुन्द गणिणा	१११
अश्वमेध	८	कुमारसेन	५७
अश्वमेध	२, १२, ४२	कुमुदचन्द्र (कुमुदचन्द्र)	२३, १३३
अश्वमेध	२१	कुलभूषण	१०६
अश्वमेध	२३	कुलभूषण मुनि	८
अश्वमेध	१३, १४, १५, ५५, ५६	कुसुमभद्र (मुनि)	५५
अश्वमेध	१४	कोतुहल (कौतुहल)	९५
अश्वमेध (महामुनि)	१५	सेता (पंडित)	११७, ११८
अश्वमेध (अश्वमेध मलघारिदेव)	२२	सेमकिति (क्षेमकौति)	५७, ७१
अश्वमेध कवि	१११	गंगाराम	११७
अश्वमेध कवि	१२, ३५	गंड विमुक्त	२०
अश्वमेध	१२८	गुणकिति (गुणकौति मुनि)	३, ४५, ६७, ७३, ७७, ८०, ८८, ६१, ६२, १२६
अश्वमेध (बृह)	१२६	गुणकौति	८, ४१, ४३, ५०
इंद्र	२	गुणमद् (गुणमद्र)	१०५, १०५
इंद्रादि महाकवि	११३	गुणमद्र	८, २५, ४१, ६८
ईशरदास	१३४	गुणमद्र आचार्य	१०४
उदयकौति	८	गुणमद्र मुनि (मलयकौति शिष्य)	४१
उदयचन्द्र	१०६, ११७	गुणमद्र मुनीश्वर	१०३
उदय मुणीश्वर	१०८	गुणमद्र सूरि	५५, ११३, ११४
कसांचार्य	१२	गुणाकरकौति	८
कवडि (पंडित)	११८	गोविन्द कवि	१६, ३५
कनककौति (मुनि)	६४	गोविन्द कवि (श्वे०)	१२
कमलकौति (कमलकौति)	८८, ६१, ६३, ६५, ६७	गोविन्दचन्द्र	६५
कमलकौति (कमलकौति)	६६	चन्द्रमह (जगुमह)	१, २, ४, ८, ११, १२, १७, १६, २५, ३५, ६६, ८२, ११३
		चंद्रकिति	१३०
		चन्द्रकौति (चन्द्रकौति)	१४१

चन्द्रकीर्ति (संघाचार्य)	५६	तिहुअण सयंभु (कवि स्वयंभूपुत्र)	१, २, ३
चन्द्रसेन	४, ८८	तेजपाल कवि	५०, ५४, १२४, १२५
छीतु (पंडित)	११८	त्रैलोक्यनन्दी (गुरु माणिक्यनन्दी)	३
जगत्कीर्ति	१३०	दंडी (कवि)	२, २५
जडि (टि)ल मुनि	११	दरगहमल्लु	६०
जडिल मुनि (जटासिंह नन्दी)	३५	दामोदर कवि	१२६
जयकित्ति (जयकीर्ति)	२७	दामोदर (दामोदर)	१२७
जयदेव	२५	दिनकर सेन	११, ३५
जयपाल	१२	दिनकर सेन (अनंगचरित कर्ता)	८२
जयमित्रहल (हल्ल कवि)	१३१	देवइंद (देवचंद)	२३
जयसेन	१२	देवकीर्ति मुनि	२३
अल्लिगि कवि	११०, १११	देवचन्द	८, १३३
जसइंधु	२५	देवदत्त (कवि)	६
जसकित्ति (यशःकीर्ति)	३, ४०, ४५, ५१, ६३, ६७, ६८, ७०, ७३, ७७, ८०, ८४, ८८	देवनंदि	११, ३५, ३८, ५६, ८८
जसकित्ति (मुनीन्द्र)	११३, ११४	देवनंदिगणि (जैनेन्द्र व्याकरण कर्ता)	८२
जसकित्ति रिसि (ऋषि यशःकीर्ति)	११६	देवसेन गणी	१८
जसमुनि (यशःकीर्ति मुनि)	४३	देवसेन	४१, ४३, ६७, ७७
जिनसेन (पुत्राट संघीय)	११, १२, १३, ३५, ४१	देवसेन मुनि	२०
जिनसेन	४	देविद कित्ति (देवेन्द्र कीर्ति)	११२, १३४
जिनसेन (श्रादिपुराणकर्ता)	८, १६, २५, २७, ३८, ८८	दोण (द्रोण)	३५
जिनचंद गणि	११२	दोण कवि	१२, १७
जिनचन्द (भट्टारक)	१२६, १२७, १३०	घनदत्त (कवि)	११
जोईदास (जोगीदास ब्रह्मचारी)	११७	घनजय कवि	२७
जोगदेव पंडित	१११	घनपाल कवि	३२, ३७
ठाकुर कवि	१२६	घणवाल (घनपाल)	३४
ठाकुरसी	१३०	घम्मसेणु (घमसेन)	६०
डूंगर पंडित	४३	घरगांद (मुनि)	५६
णरदेव	३५	धर्मकीर्ति	५४
णरसिध	६०	धर्मचंद	१२८
णरसेणु (नरसेन)	१०७	धर्मसेन	१२, ४१, ४३
णरिद कित्ति (नरेन्द्र कीर्ति)	११६, १२०, १२१, १२२	धीरसेन	११, ३५
णोमिषंद	११३	धीरसेणु (कवि चक्रवर्ती)	८२
णोमियंदु (नेमचन्द्र)	११०	ध्रुवसेन	१२
तिहुअण कित्ति (त्रिभूवनकीर्ति)	११२, १३४	नंदिमित्र	२, १२
		नयनन्दी मुनि	३, ४, ५५, २६
		नयपाल	१०

नरदेव	११	प्रभाचन्द्राचार्य	१२८
नरसेन कवि	१३२	प्रवरसेन	२५
निबन्दिदेव	२०	प्रोष्ठिल्ल	१२
नेमचन्द्र	१२८, १३०	वाण (भट्ट कवि)	१७, १६, २५
नरेन्द्र कीर्ति	१२०, १२१	बालइंद (चंद)	२७
पंकयर्षदि (पद्मनन्दि)	११६, १२२	बालइंदु (मुनि)	१०८, १०६, ११०
पंडु (पांडवसेन)	१२	बाल्मीकि	१७
पद्मपर्षदि	१२४, १३१	भगवद्भद्रदास	११७
पद्मकीर्ति (पद्मसेन)	४	भगवतीदास	११६
पद्मनन्दि (भट्टारक)	४६, १२८, १३०	भगोवीदास	१३५
पद्मनन्दी	८	भद्रमुनि	५५
पद्मसेन (पद्मकीर्ति)	११, ३५	भद्रबाहु	२, १२
पविषेण (वपसेन—पट्टदर्शन प्रमाण ग्रन्थकर्ता)	८२	भद्रबाहु श्रुतकेवली	४२
पह्लचन्द्र (प्रभाचन्द्र मुनि)	३३	भग्मह (भागह)	२
पह्लचन्द्र (प्रभाचन्द्र भट्टारक)	१२०, १२६	भरत कवि (नाट्यशास्त्र के कर्ता)	२३
पह्लचन्द्र गुप्त (प्रभाचन्द्र)	१२८	भामह (कवि)	२५
पह्लसि (प्रभाचन्द्र)	११६, १२२	भारवि (कवि)	२५
पहाचंद गणिएणा	११२	भारह	२५
पह्लकिति	१२१	भायसेन	४१, ४३, ६७, ७७
पातंजलि (पतञ्जलि)	२५	भीमसेणु (पंडित)	१०४
पादपुञ्ज (पूज्यपाद-देवर्षि)	८	भुवनकिति (भुवनकीर्ति)	५४, १३०
पाय पूज्य (पूज्यपाद)	११३	भूपाल कवि	१६
पालिष्ठ	२५	मयूर कवि	१६, २५
पालहर्षभ (मु) (श्री पालब्रह्म)	६७, ७५	मलयकिति (मलयकीर्ति)	६८, १०३, १०४, १०५
पुष्कर्यंत (पुष्पदन्त)	४, ८२, ११३	मलयकीर्ति (मलयगो)	४३
पुष्करंत कवि	६६	मलयकीर्ति (महामुनि)	५१
पुष्पदन्त (कवि)	८, १७, १६, २५, ३५, ३७	महाकीर्ति	२७
पूर्णेन्द्र (मुनि)	५५	महासेवमुनि (मुलोचना चरित्रकर्ता)	११
पोम (—आचार्य, पद्मनन्दाचार्य)	६०	महासेन	३५
पोमर्षिदि (पद्मनन्दि)	५७, ५६, ११२, १२५, १२६, १३४	महिंदसेण (दिल्ली भट्टारक)	११६
पोमणदी (पद्मनन्दी)	३, १२०	महिन्दु (महाचन्द्र कवि)	११३
पोमापरिच (पद्मनन्दि आचार्य)	१२८	मारिक पंडित	५६
पोमसेण (मुनि)	१०	मारिक बुध	६१
पोम (पद्मनन्दि)	६०	माणिक्य (माणिक्यचन्द्र)	१२५
प्रभाचन्द्र	२५, ३७, १२०		

माणिककण्ठि	३	लोहाइज्ज (लोहार्य)	१२
माणिक्यनन्दा	२६	वज्रसूरिगणि	३५
माणिक्यराज	५७, ५६, ६१	वज्रसूरि मुनि (नय-प्रमाण-ग्रन्थकर्ता)	११
मारुचन्द्र	२३	वम्भीय (वामोय)	१६
मारुतदेव (पिता-स्वयंभूदेव)	१	वररुचि	२५
माहव (माधव) चंद (मलधारि)	२१	वामरा	२५
माहवपेण (माधवपेण)	४	वामीय-वास	२५
माहुरे (मायुर) (संघायरियहो—संघाचार्य)	५६	वारायण (वादरायण)	२५
माहिंद सेणु (भट्टारक)	११७, १३५	वासव मुनि	८
मुनिदेव	१३	वासवचन्द्र	२३
मेरुकिति	११८	विज्जाणंदि (विद्यानंदि)	११२, ११६, १२०, १२२
मौनिदेव	४३	विजयसिंह (बुध)	११७, ११६, १२३
यशःकीर्ति (भट्टारक)	३७, ३८, ४१, ४२, ४४	विजयसिंह (पंडित)	११८
रङ्गू (महाकवि)	६४, ६६, ६७, ७१, ७७, ७६, ८३, ६१, ६५, ६७, १०१, १०२, १२४	विजय (सेन)	१२
रङ्गू पंडित	७०, ७५, ७६, ७८, ८८, ९३, ९६, ११३, १३२	विजयसेन	७१
रङ्गूबुह	६२	विणय मयंकु (विनयचन्द्र)	१०८
रत्नकीर्ति	५४	विण्णहेण	११६
रयणकिति (रत्नकीर्ति भट्टारक)	३३, १३०	विनयचंद्रु	१०६, ११०
रयणु (पंडित)	११६	विपुलकीर्ति (मुनिवर)	५४
रविपेण (आचार्य) पद्म-चरित्रकर्ता	१, ११, १८	विद्युध श्रीधर	६
राजशेखर	२५	विमलकिति	१०६
रामनन्दी	३, १२	विमलसेणु	६६, ७७
रामभद्र	२०	विमलसेन	४१, ४३
राहव (पंडित)	११८	विमलसेन (मलधारी देव)	१८, २०
लक्ष्मण (लक्ष्मण कवि)	१६, २७, २६, ६०	विशाख	१२
लक्ष्मण पंडित	१२६	विसालकिति (विशालकीर्ति)	१३०
लक्ष्मणीह	१०४	विशालकीर्ति	५४
लक्ष्मणु (लक्ष्मण कवि)	१०६	विश्वनंदी	३
लक्ष्मण (कवि)	६, ३१, ५६	वण्णकुमार	२
लक्ष्मीचन्द्र	१३०	विष्णुनदि	३, ४२
लखनदेव (लक्ष्मणदेव)	५१	विष्णुसेन (ऋषि)	११, ३५
लाखू (लक्ष्मण)	६०	विसयसेणु (विषयसेन मुनिवर)	८८, १०६, १११
		वीर कवि	६६, १०५
		वीरिदु (वीरचन्द्र)	८, ९
		वीर कवि (वीर)	३५, ५६

वीरसूरि	५५	सिद्धसेन मुनि	६४
वीरसेन	८, १६, २५, २७	मिढायंसेन	१२
सुभमनन्दी	३	सिरिचंद (श्रीचन्द)	११५
सुमचन्द्र	८	सिरिहरस्स (श्रीहर्ष)	२
सुमचन्द्रदेव	१३०	सिवण्णदि	११४, १२५
सुमचन्द्र भट्टारक	६०	सिहकवि	२०, २२
शान्ति कवि	६	सिहजन्दी	११, २५
श्रीकिति (श्रीकीर्ति)	८	सिहजन्दी मुनि	३५
श्रीकीर्ति (मुनि)	७, २३	सुवमाल स्वामि	१०
श्रीकुमार	२५	सुदकिति (श्रुतकीर्ति)	११२, १३४
श्रीचन्द्र	७, ८, ९, २५	सुदकिति (श्रुतकीर्ति)	१३५
श्रीचन्द्र	१२६	सुयंभू	११३
श्रीधर	८, १०, १६, १७	सुहचन्द (सुमचन्द्र)	८८, ९०, ९१, १२६
श्रीधर कवि	४, ४७, ४८, ४९	सुहचन्ददेव (सुमचन्द्रदेव)	११२
श्रीपाल (ब्रह्म) (ब्रह्म श्रीपाल)	७८	सुरसेण (देवसेन) (मेघेश्वर चरित्र-कर्ता)	८२
श्रीपेणसूरि	१४	सूर्य (बृह-पंडितसूरदास)	५६, ६१
श्रीहर्ष	१६, २५	सेदु कवि	३५
श्रुतकीर्ति	७, ८, १११, ११२, १३३	सेदुमहाकवि	१२
संतिदास (शान्तिदास)	५६	सोमपूव (सोमदेव)	३३, ३४
संतिसेण (शान्तिपण)	१४	स्वयंभू	१७, १६
संमन्तभद्र (पाचार्य)	८, २५, ३८	हरदेव कवि	१०६
सयंभू (स्वयंभू)	१, ४, ८, २५, २७	हलिप	१६
सयंभू (कवि)	३५, ६६	हल्लकह	१२८
सयंभू महाकवि	८२	हल्लकह	१३१
सखबलप	१०	हरिचंद (हरिचंद)	४८
सहसकिति (सहसकीर्ति)	८, ६७, ७३, ७७, ९१, १३०	हरिचन्द कवि	४६
सहसकीर्ति	४१, ४३	हरिण्णदि (मुनि)	८
सहसकीर्ति (मुनि)	४०	हरिभूषण	११६, १२०, १२२
साधारण ब्रह्म (ब्रह्म साधारण)	११६, १२०, १२२	हरियंद (हरिचन्द अग्रवाल कवि)	१०८
साधारण (साधारण कवि)	११४, ११५, ११६	हरिसागर मुनि	२५
साधारण (मुनि प्रभकीर्ति दिग्ध)	१२१	हरिपेण	५
सालिहल्य (भद्र) कवि	३५	हरिसेण	१६
सालिहद (शालिभद्र)	१२	हेम (हेमचन्द आचार्य)	६०
सिद्ध कवि	२१	हेमकिति (हेमकीर्ति)	५७, ७१
सिद्धसेन	५, ११, ३५, ३८	हेमचन्द	५७



प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित जिन-जिनालय  
अंगपाठी मुनि आदि

अजिय जिरोस (अजित जिनेश)	११८	ध्रुवसेण (ध्रुवसेन)	१२
अज्जियाहं (आर्यिकाएँ)	१०७	नक्षत्र	१२
अरहंत देव	३६	नाग (नागसेन)	१२
अरुह-नोह (अरिहंत मन्दिर)	५८	नेमि जिन (नेमिनाथ बावीसवें तीर्थंकर)	१३
अरुहदेव (अरहंत देव)	६०	नेमिणाहु (नेमिनाथ)	७५
अवरज्जिय (अपराजित)	२, १२	पंडु (पांडवसेन)	१२
आइ जिणिंद (आदिनाथ जिन)	१०७	परियार (चैत्यालय परियार)	३
आइनाह तित्थंकर पडिमा (आदिनाथ तीर्थंकर प्रतिमा)	८६	पासणाहु (पार्श्वनाथ तेवीसवें तीर्थंकर)	७५
इन्द्रभूइ (इन्द्रभूति)	१, ७७	पोठिल्ल (प्रोष्ठिल्ल)	१२
इन्द्रभूति (गणधर महावीर)	३६	वुद्धिल्ल	१२
कसाचार्य	१२	भट्टवाहु (भद्रवाहु श्रुतकेवली)	२, १२
खत्तिय (क्षत्रिय)	१२	महावीर (चौबीसवें तीर्थंकर)	१, ५, ७
खुल्लय (धुल्लक)	१०७	रिसह (ऋषभ)	५
गगदेव	१२	रिसह जिणंद (ऋषभ जिनेन्द्र)	१३५
गणधर	३७, १०७	रिसहेसरु (ऋषभेश्वर)	१०३
गीतम (इन्द्रभूति)	१२	लोहाइज्ज (लोहार्य)	१२
गीतमेण (गीतमेन)	१२	वड्डमाण (वर्धमान तीर्थंकर)	६२
गीयम (गीतम)	६३, ६१, १०२, ११०, १३५	वड्डमाण जिणु	१०७
गीयमसामि (गीतमस्वामि)	१०५	वड्डमाण तित्थंकर (वर्धमान तीर्थंकर)	१३२
गोवद्धण मुनि	६३	वड्डमाण (जिणहरि) (वर्धमान चैत्यालय)	११७
गोवड्डणासु (गोवर्द्धन)	५	वड्डमाण भवन (वर्धमान मन्दिर)	११६
गोवर्द्धन (श्रुतकेवली)	१२, ४२	विजयदेव	१२
गीतम (गीयम)	४२	विजयसेण	७१
चंदप्पहु जिन मन्दिर (चन्द्रप्रभ)	१३०	विणहु (विष्णु) कुमार	२
चेईहरु (चैत्यालय)	५६, ६४	विणहु (विष्णु) मुनि	१२
चैयाल (चैत्यालय)	११६	विष्णुनंदि	३, ४२
जंबूसामी (अंतिम केवली)	१२	विसाहु (विशाख)	१२
जंबूस्वामी (केवली)	४२, ७७	वीर जिन	६१
जयपाल	१२	वीर जिणिंद (वीर जिनेन्द्र)	२१, ११०, १३५
जयभद्र	१२	यिष्णु सेन (ऋषि)	११, ३५
जसभद्र	१२	वीरहो	१०७
जिराचेईहर (जिन चैत्यालय)	११२	श्रुत केवली	३७
जिणवर	५३	संतिहुतित्थणाह (शांतिनाथ तीर्थंकर)	११३
जिराविहार (जिनमन्दिर)	६६	संभवजिन	५३
जिराहर (जिनमंदिर)	११७	सन्मति	१७
जिनालय (उद्धरण संघवइ का)	१०५	ससिपह (चन्द्रप्रभ) जिनेन्द्र	६३
नंदिमिच्च (मित्र)	२, १२	सिद्धार्थ (सेन)	१२
राहेयहो णिकेउ (आदिनाथ मंदिर) (जिसको नट्टल साहु ने बनाया)	४७	सुधम्म सुधर्म	६१
रामीसर जिणहर	११२	सुधर्म (सोहम्म) गणधर महावीर	२, ४२, ७७
धम्मसेण (धर्मसेन)	१२	सुभइ (सुभद्र)	१२
धियसेण (धृतिपेण)	१५	समवशरण (तीर्थंकर सभा)	१०२

## प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित ग्रन्थ

अंबादेविरासत	६	धवल (ग्रन्थ)	२७
अष्टांगचरित	११	पंचमिचरियं	१, २
अणुपेहा	३५	पंडवहिचरित	३६
अणुवयरयणपईव (अणुवतरत्नप्रदीप)	३१	पठम चरित	११, ३५
अणुपेहा (अनुपेदा)	११	पञ्जुष्ण चरित	२२, ७७
अमियाराहणु (अमृताराधना)	११	पञ्जुष्णहो चरित	२१
अरिदुर्गेमिचरित	८६	परमिद्विपयासु	१३४
कंदम्पचरित (कंदपंचरित)	३५	पासचरित (पासवंचरित)	८६
चंदम्पहचरित (चन्द्रप्रभचरित)	११, ३५	पासजिगेंदह चरित	६५
छत्रम्मुवएस	१४	पासहो (पासणाह, चरित)	११
छत्रम्पमाण	३५	पासपुराण (पासवंपुराण)	४
अइणेंदु (वायरण-व्याकरण)	३५	पिंगल (पिंगलाचार्य)	२
अंबुसामिचरित (अंबुस्वामिचरित)	६	पीमचरियं	२
अयववतु	१२, १७, २७, ३५	बलहृदचरित	६५
असहरचरित (असोधरचरित)	१४, ८६	बलहृदपुराण	८१
जिणपूमपुरंदरविहि	१५	बद्धकहाणा (विविधकयाणं)	१२
जीवधरचरित	८६	भरहहु सेणावइचरित	८६
जोयभणु	१३४	भारह (भारत) पुराण	२
भाणपईव (ध्यानप्रदीप)	१४	महाधवतु	१७
रावकार	११, ३५	महापुराण	८८, १०२
शोमिचरित (हरिवंशपुराण)	२	महाबन्ध (सि० ग्रन्थ)	२७
शोमिचरियं	२	मेहेसर चमुवइचरित	६५
शोमिजिण्णदचरित	७१	रयणकरंडु णाम	८, ६
शोमिणाहहो चरित	१४	रिट्टुशोमिचरित	६०
शोमिह चरित	४३	वद्धमाणजिण्णचरित (अधमानजिनचरित)	६५
तेसट्टिपुराण (महापुराण)	४	वरंगचरित	६, ११, ३५
तेसट्टिपुरिसरयणायक (महापुराण)	६५	वित्तसार	८६
पणकुमार (चरित)	६१	वीरकह (वीरकपा)	६
पणुमारचरित	६५	वीरहोचरित	३५२
धनयत्तचरित	३५	वीरजिण्णदचरित (वीर जिनेन्द्रचरित)	१
धम्मपरिक्ख (वसा)	५	सिद्धचवत्तकह (सिद्धचक्राया)	१३४
धम्मपरिक्खा	११२	सिद्धचक्कविहि	६५
धम्मोवएस	१४	सुदंसणचरित	३, ६५
धम्मंचरिताटिप्पण	१४	सुनोयणचरित	३५

सुलोयणा चारिउ प्रा० गाथा	२	आसलु	६२, ६३
सुलोयणाचरिउ अघभ्रंश	२०	इंदराउ	११५
हरिपुराण (हरिवंश पुराण)	८६	इच्छाही	६०
हरिवंश (पुराण)	३	इल्लराज	११४
हरिवंसकव्व	११	ईसप्फ	६४
हरिवंस	१३४	ईसरदास	११२
हरिवंसु	४३	ईसरु	५४

## प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित श्रावक-श्राविका

अउलिय साहु	७४	उत्तम	१२४
अक्षोद दूसरा पुत्र अंधकवृष्टि	३५	उदयचंद (वीरदास पुत्र)	४४
अचलु (छठा पुत्र अंधकवृष्टि)	३६	उदयचन्द	६०
अज्जुण (अर्जुन)	६०, १००	उदयराउ	१०१
अणंतमती (वहिन जीणाही)	७८	उदयराज	८२, ६१, ६५, ६७
अग्गुउ	१२४	उदयश्री (पत्नी वासाघर)	३६
अभगी भार्या साहुवीषा	८२	उदयसिरि	१२५
अभयचंद (पुत्र सारंगनरिद)	३६	उधरणा (पुत्र सहसराज)	७६, ८२, १३३
अभयचंद ( पुत्र मेलहाही )	६०	उधरणा संघवइ	१०५
अभयचंद	११५	उधरणा (२रा पत्र वील्हा साहु)	४०
अम (सीहु)	१२८	उधरणा	११६
अरुहदत्त	१६	उधरणु	११५
अरुहदास (चौधरी)	५८	उद्धरणा	६३
अल्हण	४७	ऊवा	११६
अल्हणु	१७	एइचन्द	६५
असपालही	१२३	ओदा (साहु)	८६
असराज	८७	ओल्हा	६०
अहिचंद ( ६ वां पुत्र अंधकवृष्टि )	३६	ओल्ही (गोइंदभार्या)	४३
आजाहिय	६३	कउरपालही	७२
आजाही ( धर्मपत्नी तोसउ साहु)	६५, ६६	कण्हड (कृष्णादित्य सोढु द्वितीय पुत्र)	२०
आणंदु	१२४, १२५, १२६	कण्ह (करां)	५०
आणाहिहाण	७२	कमलसिरि	१२६
आडूसालु	६७	कमलसीह	८५, ८६, ८७, ८८, ६३, ६४, १००
आभाहिय (धम पत्ता डाला)	६६	कमलसीह (संघाधिप)	६३
आल्हा साहु	४६, १३१	कमला (पत्नी कामराज)	११८
आसराउ (ज)	४३	कमलापह (संघाधिप)	८८
आसराउही ( लघुभार्या वील्हा )	५३	करमचन्द चौधरी	५८
		करमचन्द	५६, ६०
		करमसिंह (पुत्र डूमासदत्त)	४४
		करमसिंह	१२२, १२८
		कलसीहु	१२३

करमसीह (सुपुत्र हरिसीसाह)	७८, ७९	वेत्ता (सिमकर)	१, ९९
करमु पटवारी	९२	खेमचन्द्र	६७, ७३, ७७, ११५
कल्याणसिरि	९३	खेमद (तृतीय पुत्र सहजपाल)	६९
कल्ही	९६	खेमवंत	९०
कल्हो	१००	खेमसिह (पुत्र भोपासाह)	८७
कामराज	९२, ९३	खेमसीह (पुत्र पहणुसाह)	७४
काल्हाही (धर्मपत्नी साहूधील्हा)	९०	खेमसीह (वणिकनाथ)	६५
कंभुदास	५२, ५३, १०२	खेमसीह (खंजसाह)	८१
कुंवरपाल	६०	खेमकर (क्षेमकर)	८३
कुमरपाल (पुत्र सहदेव)	६८	खेमांही	५८
कुमरसाहू	१०, ११	खेल्हण	९९
कुमरसिह (कनिष्ठ भ्राता बहुदेव)	८८	खेल्हा	९३
कुमरसीह	५३	खेल्हा (ब्रह्मचारी)	८८
कुमरसेणु	७१	खोल्हा	१००
कुमरू	९५	खंगदेवही	५३
कुलचन्द्रही (भार्या पृथ्वीमल्ल)	६०	गदसिरि	१००
कुमुससिरि	१२६	गजभक्षसाहू	११६
कुमुवा (भार्या)	१२८	गडिहू	१२१
कैसाहि (धर्मपत्नी धील्हा)	६९	गरवड	५९
कैसुल्ल (माता धवल कवि)	१२	गरवड साहू	७६
कोडी (भार्या)	७६	गल्हा (धर्मपत्नी जगु साह)	१०
कोडी (भार्या रत्नपति)	८३	गल्हू	१३१
कोलाही	९१	गाहनु	१७
कोल्हाही	५३	गुणवाल (पाल)	१५, १५
कोल्ही देवी	११३	गुणमैत्र	६६
कृष्ण (सुपुत्र मूलराज)	७	गुरदाम	९०
कस्तिय (क्षथिय)	१२	गल्हू (द्वितीय पुत्र)	६०
सहाड	९३	गोरुगु (सुपुत्र जसहर)	३३, ३६
निडमो (पुत्र लक्ष्मदेव)	५१	गोल्हण (पुत्र पल्हण)	४०
सिडगी	५३	गोविन्द	१२३
मीनचन्द्र (संपाथिय)	११५	गोविन्दरास	१३१
मीमगीरू	९६	धणमगु	६०
मीमी (पुत्री तेजा साहू)	७०	धिरराज	९३
मूत्र (पुत्र दिवचन्द्र)	५३	धीसाही	११५
भेज्जसाहू	७१, ७५, ७६, ८२, ८३	धीस्त्राही	११८
भेज्जामरू	९०	धूमलि (साहू)	१२५, १२६
भेजासिह	६०	धदणही	११५
भेताही	६९	चन्द्र (साथ)	११६

चन्दपाल (४ था पुत्र वासाघर)	३६	जनार्दन	३६
चन्दलेहा	११६	जयचन्द (पुत्र अभयचन्द)	३६
चन्दहासु (खड्ग विशेष)	११५	जयपाल (प्रथम पुत्र वासाघर)	३६
चंद्र (लाल)	१३३	जयभद्र	१२
चंदादे (पट्टरानी) राजा डूंगरसिंह	७४, ७७	जयराम	५, २५
चंदो	१००	जयादेवी	६
चन्द्रपाल	८३	जल्हण	१०
चउमहणा	५८	जसइ	६
चच्चिण	१४, १५	जसचन्द (यशचन्द)	६०
चाग्रो (भार्या भाभू तृतीय पुत्र)	६०	जसपाल (दूसरा पुत्र वासाघर)	३६
चाचा (२ रा पुत्र खेमकर)	६९	जसभद्र	१२
चायमल्लु	६०	जसमलु	५९
चाहडिय (धर्म पत्नी पुण्यपाल)	७६, ८३	जसवाल (पुत्र श्रावण)	१७
चित्तू	१२४	जसवाल (जसाघर)	९२
चीमा (चिमन लाल-चउघरिय)	५८	जसहर श्रेष्ठी	३३
छुगना चौधरी	५८	जाटा	९०, १२३
चूहडही	११६	जालपहि (धर्म प० तेजासाहु)	६९
चूहडही (भार्या नागराजु)	९१	जालपही	७२
चेल्हण (चेलनी रानी राजा, श्रेणिक)	७४	जालपु साहु	३९
चोचा (पुत्र आसराज)	४३	जाला (छठवां पुत्र)	६९
चोचाही (भार्या उदयचन्द)	९०	जाल्हा साहु	५४
चोवाही (भार्या भाभू साहु)	६०	जाल्ही	७०
चौदे (वणिकवर)	९४	जाल्हे (साहु)	६८
छड्डा (साहु)	३८	जासा	६९
छांगे साहु	१२२	जिनदास (पुत्र गोइंद)	४३
छाजा	८३	जिनदास (पुत्र सहदेव)	६८
छाल्हाही	५३	जिनदास	११७, ११८, १२४, १२६
छीतम (सहजपालपुत्र)	६८	जितसल्ल	११५
छीया	११५	जिनमति (माता कविसिंह)	२२
छुटमल्ल	६०	जिनरक्षित	१२
छुट्टा चौधरी	५८	जीदाही	९०
जइता (माता कवि लक्ष्मण)	३१	जीवो (ज्येष्ठपत्नी)	७०
जउणाही	१२३	जेजा (साहु)	४६, ४८
जगमलही (भायां घणमलु)	६०	जोजा [दूसरा पुत्र]	६०
जगमलु	९०	जोगाही [भार्या करमसीह]	७८
जगंसी (२ रा पुत्र)	५३	जोध्या साहु	९५
जगसीह	६९	जोल्हाही	१२३
जगु साहु	१०	भंडू	७०
जटमलु	११६		

भाभम्भु	६८, ७६, ८२	तिलक	१००
भाभ्मू चौधरी	५८	तिसोकाही	११५
भाभ्मू [दिवाराज २ रा पुत्र]	६०	तिहुणपाल	५३
भाभ्मोही [धर्म प० सहजपाल]	६८	तिहुवणसिरि	६२, ६३
टोडरमलु	६२	तिहुणा	६१
टाहुफ (३ रा पुत्र खेमकर)	६६	तिहुणाही	११५
डासा (४ था पुत्र सहजपाल)	६६	तेजपाल	५२
डूंगर [पहला पुत्र साहुवोस्था]	४०	तेजपाल [वणिक]	८६
डूंगरही [भार्या भुणणा]	६०	तेजपालु	५५
डूंगरही [भार्या कोल्हसाहु]	६१	तेजा	५३
डूमासदत [४ था पुत्र दिउडा]	४४	तेजासाहु	६६
डूमाही [पुत्र दिवचन्द]	४३	तेजू [पुत्र २ रा जास्हेसाहु]	६८
ढाकक	६६	तेजू [श्रावक]	६६
णंदण	१२६	तेजूसाहु	६६
णमलता साहु	१२७	तोसठ [सहजपालपुत्र छठा]	६६
णमलत सीहु	१२८	तोसठसाहु	६८, ६९
णयणसिहु	१२३	तोसठसाहु [हरिसिंह पुत्र]	६५
णयणा [भार्या वाटूसाहु]	६०	तोसठ [सुभुवान्यव सहदेव]	६५
णायवकुदेवि (रानी)	१२८	तोपठ [पुत्र दिवराज]	७०
णाय	२	तोमही [भार्या]	४३
णायराजु	६१	थोल्हासाहु	५२, ५३
णायचन्द [ज्ञानचन्द]	११५	थोल्हा [सहजपालपुत्र पंचम]	६६
णायणा [ज्ञाना-ज्ञानचन्द]	११५	दगाई	६०
णायू	६१	दरगहमल्लु [श्रावक]	६०
णाल्हाही [धर्म प० भोगसाहु]	८७	दरवेसु	६६
णिउजी [भा० जालनसाहु]	३६	दसरहु [दसरय]	१२६
णिउररादे [पत्नी खेमसीहु]	८७	दाभाडाली	१३०
णिउररादे	६२, ६३	दालाही [ध० प० लोणासाहु]	६०
णेणाहीं	६०	दिउडा (पुत्र साहु दिवचन्द)	४१, ४३
णेम [नाम का ठाकुर]	२५	दिवचन्द	५३
णेमिचन्द [सुपुत्र योर कवि]	६	दिउचन्दहि-दिवचन्द ही (भा० करमचन्द)	५८, ५९
णेमिदास १०१, ११२, ११५, १२६, १३३, १३४		दिउपाल (पंडित)	११६
णेमिदामु १००		दिउपाल	११८
तकसडु [श्रेष्ठो]	६	दिउराजु	५८, ६०
तान्हणु ११५		दिउराजही (भार्या थोल्हा साहु)	४०, ६१
तान्हणुय [रयमलणंदणु]	५४	दिउसी [दिउही पात्र]	५१
तासहु [वीधरा पुत्र]	६०	दिउहीदेवी	५१
तिपरदास ६०		दिल्हणुश्रेष्ठो	११८
		दिवचन्द साहु	४१, ४३

दिवचन्द्रही (पत्नी हरसी साहु)	१२२	धरासिरि	१२५
दिवदासु	६०	धरासीह	१२३
दिवराज [दिवराज]	५६	धरा	१२६
दिवराज चौधरी	५८	धरा [धर्म प० खेऊसाहु]	७६
दिवराज [पुत्र बाधुसाहु]	६४	धराोर	८१
दिवराज साहु	१२७	धरावइ [धरावती]	७४
दिवराजही	५६, ६०, १२७	धनश्री [भार्या खेऊसाहु]	८३
दिव्यराजही [भा० लाहुसाहु]	५७	धम्मंग [धर्मांग पुत्र ५ वां]	६६
दीवा	६०	धम्मदास [धर्मदास]	१३१
दीवा [देवी] माता माणिक	६१	धरही [पत्नी छीतमु]	६८
हूदणु	६६	धामाही [धर्मप० सहदेव]	६८
देश्रो [द्वितीय भार्या]	४३	धारण [७वां पुत्र]	३६
देदासाहु	७६	धील्हा [पत्नी पाल्हासाहु]	६०
देदाहि [देदाभिधान]	८२	धेनाही [पत्नी वील्हासाहु]	३६
देल्हा	१००	नट्टल [णट्टलुसाहु] ३रा पुत्र साहु जेजा	४७, ४८
देवइ [भार्या भोजराज]	८७	ननो [लघुपुत्री]	७८
देवण [पितासिद्धकवि]	२१	नयरू	५५
देवदातु	५३	नरपति [३रा पुत्र]	५३
देवदासु	१०३, १०५	नरपति श्रावक	६४
देवपाल [कामराय पुत्र]	११८	नागराज [नागराज]	६०
देवपालु	५३	नागराज	५३
देवराज [बुध]	५६	नाथू साहु	७६, ८३
देवराज	८२, १२५	नानिगही	११५, १२३
देवराय	४६	नारायण	४६
देवराय संघाधिप	६७	नाल्हाही [पत्नी भोपासाहु]	८७
देवसिरि	१००	नेमिदास [संघाधिप]	६८
देवसीह	७५	पंचायणु (५वां पुत्र)	५३
देवाही [भार्या लवखुसाहु]	८६	पंपाइय (माता सिद्धकवि)	२१
देवाही	६०	पउमा (पद्मा)	१२८
दोदा [साहु]	६०, ११३	पउमिणि (पद्मिनी) माता स्वयंभूदेव	१
दोदाही [पत्नी जोजा]	६०	पजरासाहु	७५, ७६, ८०, ८३
दोदाही [भार्या साहु हरिसी]	११५	पदमसीह	८६
द्योचन्द्रही [भार्या साहु हरिसी]	७८	पदमासाहु	६०
द्रोण [पुत्र छड्डा]	३८	परसाहिमान	१२८
धराकुमार	६१	पल्हणु (१ पुत्र हेमराज)	४०
धरायाही [भोज्जुमाता]	५३	पल्हाउ (तृतीय पुत्र सोमदेव)	३३
धणराज [ज]	११५	पहराज	६६, ७५
धणराज	६५	पहराज (पु० खेऊसाहु)	७६

पहराज	८१	बाबुही (भार्गो साहू दिवचन्द)	४१
पहराज (२रा पुत्र सहस्रराज)	८३	बाहम साहू	१३१
पहुणु साहू	७४	बाहाल (भ्राता रश्मि कवि)	७६
पाण्डुरी वैयाकरण	२५	बाहुही (धर्म म० दिवन्दसाहू)	४३
पापु	६६	बोधा	७६, ८३
पाण्डुर साहू	६०	बोधा संघवी	७२
पाल्हाणु (श्रावक)	१०	बोवोकता	६०
पाल्हा (साहू)	८७, ६०, ६४	बील्हा (पुत्र जालपुसाहू)	३६
पाहा	६०	बील्हा (पुत्र नरपति)	६४
पिरधीचन्दु	६२	बील्हा	१०८
पिरधीमल्लु	११५	बील्हा	१०८
पीया	७२	बील्हाही (द्वितीय भा० साहू हरिसौं)	८८
पीमे (साहू)	१०, ११	बील्हाही (धर्म प० पजणसाहू)	८३
पुञ्जराज	११२	बील्हाही	१२३
पुण्यउ	६३	बील्हा (सन्तुपत्नी पजणसाहू)	७६
पुण्णपाल	७६, ८१, ८३, ८८, ६२	बुद्धिल्ल	१२
पुण्णपाल (छठा पुत्र वासाधर)	३६	बूडणही	११६
पुरुपाल	६२	बूल्हा	५६
पुह्मल्लु [पखीमल्लु]	६०	बोवू (साहू)	१०३
पूनर साहू	६२	बोहिय	१२३
पूरण [८वां पुत्र]	३६	बोहियही	६०
पूल्हाही [भार्गो दिउडा]	४३	भदासही	११५
पेमराजा	६४	भरहविपाल धी	११६
पेमाहो [पत्नी करमचन्द]	५६	भल्लक	१७
पोमाही	६०	भामराज (पंचपुत्र सोमदेव)	३३, ६०
पोमिणी [पत्नी वासाधर]	३६	भामराज	६०
पोल्हाणु	५४	भवणही	५३
पेमसिरि [भार्गो गोमदेव]	३३	भिक्षो	१००
फेराहो	६०	भीमणही	११५
संदश्य	२	भीलपु (साहू)	१२४, १२५
सच्छराज (तृतीय पुत्र सहदेव)	६८	भीलुही (धर्म प० खेमदे)	६६
सधो (भार्गो पोमराज)	६०	भीमासिय	६१
सहदेव (गिद्धपुत्र)	३८	मुल्लण	६२, ६३
साटू साहू	७८, ६०, १२२, १२३	मुल्लणु	११५
साल्हाही	६०, ६०, ६५	भूदेव	११६
सानू साहू (पुत्र बोल्हासाहू)	६४	मोजा	७०
वासही	६०	मोत्रराज	१० ११५
वाल्हारी	६०, ६५	मोया नामक साहू	८७



भोयराज	११४	भेमडिय भार्या जेजा साहू	४६
भोयराज (लघुभ्राता कमलसीह)	८७, ८८	मेरु भार्या रत्नसीह	३६
भोयहू (भोयराज)	११६, १२८	मेलहाही भार्या करमचन्द	६०
भोवइ (राजश्रेष्ठी)	३३	मेल्लु	६१
मणसिरि	६३	मेहा	८१
मणिको	१०	मोल्हण	४३
मदन	६४	मोल्हण	६५
मदनपालही (भार्या पहराज)	८३	यशःकीर्ति भट्टारक	३७, ३८, ४१, ४२
मदनसिंहरथ	६०	रइधू महाकइ	६४, ७१, ७७, ७९, ८३, ८४, ८५, १३२
मदो (मदन)	१२४	रइधूकइ	६७, १०१, १०२, १२४
मयणु	१७	रइधू कवि	६६, ६७
मयणु (मदनपालही)	७६	रइधू पंडित	७०, ७२, ७५, ७६, ७८, ८८, ९३, ११३
मयणु सुन्दरि	१२२	रइधु बुह	६२
मरुसेण	७२	रइपति (३ रा पुत्र सहसराज)	८३
मल्लिदास	४२, ४३, ८७	रइ (ह) पति	८१
मल्लिदासु	८७	रइपति	७६
मल्लु (दास)	११५	रउपाल (३ रा पुत्र वासाधर)	३६
मल्हा [सोढु तृतीय पुत्र]	३०	रणणउ	११५
मल्हाही (पत्नी लखमणु)	६०	रणणउ रतनू	१३१
मल्हाही (पत्नी साहू चीमा)	५८	रणमल	७२
मल्हि (ल्लि) दास	६३	रणमलसाहू	५४
महणचन्द	५९	रणमलु	५३, ७२
महणा (सुत चुगणा)	६०	रणमलु	११६
महणसिरि	६५	रणमल्लह	१६
महणसीहू	५३	रत्नकीर्ति (रयणकित्ति)	५४
महणसाहू	१३२	रत्नपाल प्रथम पुत्र सोढु	३०
महणदण (श्रेष्ठि)	६	रत्नपाल	३१
महणदासु	६०	रत्नपाल (देवराज पुत्र)	६०
महादे	१२६	रत्नपालही (धर्म प० सहसराज)	७६
महादेवही	५३	रत्नसिह (भाई वासाधर)	३७
महाराज (चतुर्थ पुत्र सोमदेव)	३३	रत्नाकर (रयणायर छठा पुत्र सोमदेव)	३३
महाराजु (कनिष्ठभ्राता खेमसिह)	८७	रयणकित्ति रत्नकीर्ति भट्टारक	११
महासिरि (महाश्री)	६३	रयणकित्ति रत्नकीर्ति आचार्य	११०
माणिकसाहू	१३३	रयणपाल	६५
मानासिधु	११५	रयणसाहू	६१
माहणसिह भ्रातरइधू कवि	७९	रयणा (भार्या बाहू साहू)	६०
मुयंग (मृदंग)	१२७	रयणु	११६, १२५
भेइण [भेदिनी] मल्लु	११६		

रयणु (छठा पुत्र करमू पटवारो)	६३	रोहिणोउ	३६
रयणु परि० नं० १	१४४	लक्ष्मण (लक्ष्मण)	३१
रयणुवाल (पुत्र सोदुसाह)	३०	लक्ष्मण पंडित	१२६
रहृणामु	२२	लक्ष्मणसिरि (लक्ष्मणश्री)	१३३
रहृो परि० नं० १	१४३	लक्ष्मणोह	१२८
राउलु	१४०	लक्ष्मणका	६
राजेंहि (राजकुमार या राजसिंह)	६०	लक्ष्मणोह (लक्ष्मणोह चौधरी)	१०४
रागू	७	लक्ष्मणु	३०
राम	५८	लक्ष्मणु परि० २	१४६
राम गरुव परि० २	१४६	लक्ष्मू (अग्रवाल संचाधिप)	८६
रामचंद्रु (चन्द्र) परि० २	१४५	लक्ष्मणु पुत्र लक्ष्मण	
रामचन्द्र (पुत्र अग्रचंद्र)	३६	लक्ष्मणु (लक्ष्मणदेव)	५२, ५३
रामणंदि	२६	लक्ष्मणसिरि परि० २	१४५
रामपुत्र परि० २	१४६	लक्ष्मणदेव	५१
रामभद्र	२०	लक्ष्मणु (लक्ष्मण)	४३
रामयंदु (रामचन्द्र) परि० ३	१५१, १५२	लक्ष्मणु	६०
रामहु	७४	लच्छीहरू (लक्ष्मीधर) प० २	१४४
रामाही	६०	लक्ष्मण (द्वि० पत्नी) प० २	१४४
रामवल्लह	१२६	लला (लालचंद्र सुपुत्र हंसराज) प० २	१४५
राममइ	१८८	लहुराइ प० २	१४७
राममल्लु (राजमल्ल)	६०	लामू	६०
रामयहु	११८	लाउणु	६०
रामसिरि (राजश्री गेहणी आसकाणु)		लाडो	४३
	पृ० २, १४८, १४९	लाहा साहु (सुपुत्र लक्ष्मण साहु)	८८, ८९
रामसेट्टि (राजश्रेष्ठी)	३३	लीलावइ (लीलावती)	६
रावण	६३	लूणगही	६०
रावणश्री	११६	लोणासाहु	८६, ८७
रावणु	२०	लोणासिंह	१२६
राहव (राघव)	४६, ७६	लोहगु (सोणपाल पुत्र)	७६
राहव साहु	४८	लोहगु प० २	१४६
राहुल परि० १	१४३	लोहव	१३३
रिसराम (ज्येष्ठपुत्र नेमिदास)	१००	लोहाडिउ	१३०
रिपिरि परि० २	१४५	लोहिडु प० २	१४६
रूपचन्द्र परि० ३	१५०	बच्छराज	२६
रूपा (ध० प० साहु कमलसीह)	६४	बच्छराजही	५३
रूले (साहु) पुत्र श्रीधर साहु	६२	वल्लहराय (वल्लभराज)	२६

वल्लहराय (वल्लभराज) प० १	१४१	वीसल साहु प० १	१४०
वल्लालु	५४	वील्हा	
वसुएव (वसुदेव)	३६	वील्हा (पुत्र नरपति)	६४
वहोर (पुत्र वाहासाहु)	६०	वील्हा	१०८
वाढू साहु	७८	वील्हाही (द्वितीय पत्नी वाढू साहु)	७८
वाढू (साहु)	१२६	वील्हाही (द्वितीय भार्या साहु हरिसी)	७८
वाडगामि	२७	वील्हाही (ध० प० पजरा साहु)	८३
वामदेव	१००	वील्हा	७६
वाल्हाही भार्या	५१	वोहियही (ध० प० पाहा साहु)	६०
वासद्धर (वासाधर)	३४	शुभंकर (भ्राता सिंह कवि)	२२
वासाधर	३७	श्रीचंद्र	११५
वासाहर	३७	श्रीधर	१६
वासाहर (वासाधर)	३३, ३६	श्रीधर (सेठ)	१८
वासुएव (वासुदेव)	४६	श्रीधर	४६
वासुएव (वासुदेव) प० २	१४५	श्रीपाल	२
वाहोल (लघु भ्राता रङ्घु कवि)	७६	श्रीहलु	५२
विक्रमाइच्च (विक्रमादित्य)	२६	शृङ्गारदेवी	७
विजयपालही	१२३	सउराजही	११५
विजयसिरि (भार्या हंसराज चौधरी) प० २	१४४	संतणु	३३
विजयसिरि (विजयश्री—माता रङ्घु कवि)	८७	संतिदास	५६
विजवालु प० १	१४३	संतुआ (माता वीर कवि)	६
विननो	१२३	संतोसु	३७
विसयसेरा	१०६	संपुण्णा	१०
विहराज	३७	सज्जरा	१३१
वीधा साहु	७२	सतनु	१७
वीधू	१०३	समदो	११५
वीधो प० २	१४४	समरासह (भा०)	१२८
वीरचंद्र प० २	१४५	समुदविजय	३६
वीरदास	४४	समुदपाल	१०
वीरदेउ	६८	सरमुत्ती (पुत्री होलिवम्मु)	७६
वीरा (भार्या पउमसिंह) प० २	१४४	सरासइ (ध० प० कमलसीहु)	८८
वीरा	१३३	सरो (गेहिणी ऊधु साहु) ।	१४७
वीर (कवि)	१०५	सलवखरा	१०
वीरो	७२	सलवखरा	११७
वीरोसाहु प० १	१४०	सलवखरा (पत्नी कृष्णादित्य)	३१
वीवो	६०	सलवखरा	१३३

ससिलेहा (शशिलेखा)	११७	सिंधो	१००
सहजपाल	६८,६९	सिद्धपाल	३८
सहजा	६६	सिरिचंद (श्रीचंद)	१२६
सहरणपाल	७,१०३	सिरिपट्टु (श्रीप्रभ)	५१
सहरणपाल कवि	११३	सिनियपाल (श्रीपाल)	६०
सहदेउ (सहदेव)	६८	सिरिपालु	६०
सहदेवी	६०	सिरिवल्लभ	३५
सहसराज	७४,७६,८१,८३,९०	सिरिहर (श्रीघर)	४५,९२
सागरविजय	३५	सिरिहर (श्रीघर) प० ३	१५०
सादल साहु	६१	सिरिहृष्ट (श्रीघर)	१८,४७,४६
साधारण	६३	सिरिहलु	५२
साधारण ब्रह्म	१२०,१२१,१२२	सिवाएव सिवदेउ (व)	३०,३१
साधारण साहु परि० २	१४६	सिवदामु	१२४
साधारणही	६०	सुहडपउ (सुहदप्रभ)	३३
साधारणु	६६	सुहडसेट्टि	३७
साधारणु (पुत्र करमूषटवारी)	६३	सुहडादेवी	३७
साघाहिय	७०	सीय (सीता)	७६
साघाही (भार्या वीरदास)	४३	सीवही	११५
साघाही	४४	सीहमल्ल	५६
सारंग (साहु) दूसरा पुत्र हेमराज	४०	सीहल्ल	६
सारंगसाहु	८६	सीहु (सिंह)	२२
सारंग साहु	१०३,१०५	सुअल्ल (माता त्रिभुवन स्वयंभू)	१
सारंगु	४०	सुअकरम (मा, भा०)	१२८
साल्हण	१०	सुकलालउ	१३३
साल्हणु	१०	सुतरणु	१७
साल्हार (साहु)	१३०	सुदंसणुसिट्ठि (सुदशंन श्रेष्ठी)	४४
साल्हाही	११६	सुपट्टु	११
साल्हे	१००	सुपट्टु (सुपट साधु) प० २	१४५
सामुत्ती	७६	सुपट्टु	४६
साहा (शाखाचंद)	६०	सुप्पडु प० २	१४६
साहारण (साधारण कवि)	११३,११४,११५,११६	सुभद्द (सुभद्र)	१२
साहारणु प० २	१४५	सुभदादेवी (सुभद्रादेवी)	३५
साहारणु	२२	सुमद्द	६
साहनु	१७	सुरजन (पंडित)	४५
साहनु (पिता नक्षमण कवि)	३१	सुरजन साहु	१२५,१२६
सिउणणु (निवमण) प० २	१४८	सुलोचना	२०

सुहंकर	२२	सोहण	१७
सुहगा साहु	३२	सोहिल्ल	१००
सुहगा	१३२	सोहिलु	११५
सुहडउ (पुत्र भोवइ श्रेष्ठी)	३३	हंसराउ	४०
सुहडादेवी	३७	हंसराज	१००
सूत्रा (गृहिणी सोलिंग) प० २	१४४	हंसराजु	५३
सूजउ (जाल्हा पुत्र)	५४	हंसराजु प० २	१४४
सूदा	६०	हम्मीर	२८
सूदाही (ध० प० जाटा साहु)	६०	हम्मीर वीर	४५
सूर (विप्र) (पिता धवल कवि)	१२	हरराजही	११५
सूरदासु	११६	हरपति	१००
सूरसेणु	३५	हरसिरि (हरश्री)	६२, १२५
सूरहो (विप्र)	१२	हरसी साहु	६५, ७८, ७९, १२२, १२३
सूरा ब्रुह	५६	हरसी साहु प० २	१४७
सूरा (ब्रुह)	६१	हरिचंद (हरिचंद)	४६, १०८
सूलेसु	६३	हरियास (हरिदास)	११६
सूवटही (भार्या नागराउ)	६०	हरिराज	६६
सेऊ साहु	१३२, १३३	हरिराय (पुत्र सोमदेव)	३२, ३४,
सेखू	६६	हरिराय	३७
सेल्ही (लघु पत्नी साहु तोसउ)	७०	हरिवंसु	६०
सेवदासु	१२४	हरिसिधु (कवि रइधू के पिता)	६७, ७१, ७६, ८१
सेवासाहु	६१		८२, ८५, ८७, १००, १३३
सोढदेव	७	हरिसुप्पायणु	१३३
सोढ (ढु) साहु	३१	हरिसेण	१०६
सोढल साहु	४६, ४८, ७८	हल्ल (कवि)	१२६
सोढल (२ रापुत्र)	४६	हल्लइ कइ	१३१
सोढु साहु (सुपुत्र हल्लरासेठ)	३०	हल्लराणु (श्रेष्ठी)	३०
सोरिणु	१२६	हालुसाहु	६७
सोरापाल (पहराज पुत्र)	७६	हिउराही (ध० प० पृथ्वी मल्ल)	११५
सोता (संघाधिप)	५२	हिमवंतु (४ था पुत्र अंधकवृष्टि)	३५
सोमएउ (देव)	३३, ३४	हिमारउ	११६
सोमएव (सोमदेव)	८	हिसपिल्लु	११६
सोमदेउ (देव)	३६	हेमराज अग्रवाल—(मन्त्री मुबारकसाह,)	
सोमराय	११६	वील्हा पुत्र)	३६, ४०, ६५
सोमजननी प० ३	१५०	हेमराज साहु	६३
सोलिंग प० २	१४४	हेमाहे	६८, ६९

होट्टलु	२०	होलू (२ रा पुत्र लखमदेव)	५१
होलिवम्मु	४८	होलू (आता खिउसी)	५३
होलिवम्मु (चतुर्यं पुत्र सहसराज)	७५, ७६	होलू साहू	५१, ५२
होलिवम्मु	१००		

### १०५ वीं पासणाह चरिउ की प्रशस्ति का अंतिम अंश पृ० १२६

(यह अंश प्रेश से लो गया पुनः ग्रन्थ से लेकर बिया जा रहा है ।)

अन्तिम भाग :—इगवीरहो गिण्वुइं कुच्छराइं, सत्तरिसहुँचउसयवत्थराइं ।  
 पच्छइं सिरिगिणवविककमगयाइं, एउरासीदीसहुँ चउदहसयाइं ॥  
 भादवतमएयारसिमूणेहुँ, वरिसिक्के पूरिउ गंधु एहु ।  
 पंचाहियवीससयाइं मुत्तु, सहसइं चयारि मंडगिणहिमुत्तु ॥  
 वहुलवखणामूगासुउ वरिट्टु, आणंदमहेसर भाइ जेट्टु ।  
 जसु पंचगुत्तसीहंतियाइं, हुअ करम-रयण महमयणराइं ॥  
 सो करम उलेविणु सज्जणांह, आहासइ गुणियण गुणमणांह ।  
 जो दुविहालंकारइ मुरोइ, जो जिणसासणि दंसणु जरोइ ॥  
 जो सम्मत्तायणुणअगच्छु, जो आयम-सत्थइं मुणइं भव्ठु ।  
 जो जीवदब्ब तच्छरथभासि, जो सद्दासद्धं कुणइं रासि ॥  
 गुणयास भाउ संवग्गु भेइ, जो वग्गु वमा मूल जि मुणेइ ।  
 जो संख अंसंख अणंतं जाणि, जो भव्वाभव्वहं कय पमाणि ॥  
 जो घण घण मूलहं मुणइं भेउ, सो सोहिवि पयडउ गंधुएउ ।  
 अह णामुणइं तो मज्जुत्थ होउ, अमुणंतहं दंसु म मज्जु देउ ॥

पत्ता :—जिण समय पट्टणु गुणगणकित्तणुअवसविमहिबित्थराइ ।  
 हउं तसु पयवंदमि अप्पउ गिणदमि जो सम्मत्तुद्धारइ ॥६॥  
 सो गंदउ जिणु सिरिपासणाह, उवसगविणासणु परमसाहं ।  
 गंदउ परमाणु गंदिसंधु, गंदउ पुह्वीसइ अरिदुलधु ॥  
 गंदउ पउरमणु अहिंसभाउ, वुह्यणु सज्जणु अमुणियकुभाव ।  
 — गंदउ सिरि वाम्ह हो तणउवंगु, कीनउ गिणकुलंजिमसेरहि हंसु ॥ ११  
 गंदउ जिणधम्म गिणद्धराउ, लोणायण सुअ हरिवम्म ताउ ।  
 गंदउ गंदणु सहं भायरेहि, घाटम्मता उवहंसिय मणेहि ॥  
 गंदउ लहुभायरु सहं सुएण, परमत्थु जेण वुज्जिउ मणेण ॥  
 गंदउ अवरवि त्रिणसमयलीणु, गउजाउ दुट्टु मिच्छत्तु हीण ।  
 गंदउ जो पयटइ पान चित्तु, आत्तम सारंकिउ गुण विचित्तु ॥  
 जो सुरगिरि रविममि महिपमोहि, ता पउविट्टु संपहं जणाहि बोहि ।  
 अमुवानु नएद मइं कयउ राउ, जिणु केयसलोयणु मज्जुदेउ ॥

किंचोज्ज जासुघरिजं हवइ । भो किं सेवय रहो तं ण देइ ?

घत्ता—जा जिणमुहरिणगय सग्ग सुभंगम गिरनइ लोणहो सारी ।

जं किउ हीणाहिउ काइमि साहिउ तमहु खमउ भंडारी ॥६॥

इय पासणाह चरिए आयमसारे सुवग्ग चहुंभरिए वुह असवाल विरइए संघाहिप सोणिगस्स कण्णाहरण सिरिपासणाह णिव्वाण गमणोणाम तेरहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥१३॥

### तृतीय परिशिष्ट (पृ० १५०) का वड्डमाणचरिउप्रशस्ति का अन्तिम भाग

(तृतीय परिशिष्ट के छप जाने पर भाद्रपद में व्यावर के ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन में प्राप्त ग्रंथ से नोट की हुई वड्डमाणचरिउ प्रशस्ति का अन्तिम भाग यहाँ दिया जा रहा है) ।

इह वोदाउ णयरे मणोहरे, विप्फुरंत णाणाविह सुरवरे ।  
जायसवंस सरोय दिणेसहो, अणुदिणु चित्त णिहित जिणेस हो ।  
णारवर सोमइं तणु संभूवहो, साहु रोमिचंदहो गुणभूवहो ।  
वयणें विरइउ सिरिहरणामें, तियरणा रक्खिय असुहर गामें ।  
'वील्हा' गव्भ समुवभव देहें, सव्वयणहिं सहें पयडियणेहें ।  
एउ विरज्जिय पावखयंकरु, वड्डमाणजिणचरिउ सुहंकरु ।  
णिगइविवकमाइच्च हो कालए' णिव्वुच्छव वर तूर खालए ।  
एयारह सएहिं परिविगयहिं, संवच्छर सय णवहिं समेयहि ।  
जेट्ट पढम पक्खइं पंचमिदिणे, सूरुवारे गयणंगणि ठिइयणे ।  
होउ संति संघ हो चउभेयहो, वड्डउ वुद्धि सुयण संघाय हो ।  
रामयंदु णियकुल हरिदीवउ, अमुणिय वरिस सहासइं जीवउ ।  
सिरिचंदु व चंदु व परियट्टउ, सम्मत्तामलसिरिआयट्टउ ।  
विमलचंदु चंदु व जणवल्लहु, होउ अमुक्कउ लच्छिए दुल्लहु ।  
एयहिं णियहिं णिय पुत्तहिप रियारियउ, जिणवर धम्माणदे भरियउ ।  
रोमिचंदु महियले चिरु णांदिउ, जिण पायारविद अहिंवंदउ ।  
एयहो गंथ हो संख मुणिज्ज हो, वे सहास सय पंच भणिज्ज हो ।

घत्ता—इयचरिउ वीरणाहहो तणउ साहु रोमिचंदहो मलु ।

अवहरउ देउ णिव्वाणसिरि, वुहसिरिहरहो वि णिम्मलु ।

इयसिरि वड्डमाणतित्थयरदेव चरिए पवर गुण रयण णिय भरिए विवुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु सिरि रोमचंद अणुमणिए वीरणाह णिव्वाणगमणो णाम दहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ।

—ऐ० पलालाल सरस्वती भवन व्यावर प्रति ।

सुगन्ध दसमीकथा (सुगन्ध दसमी कथा) भ० विमलकीर्ति

श्रादि मंगल

पणवेपियणु सम्मइ जियोसर हो जा पुव्वमूरि आगम भरियाया ।  
रिणसुरिणज्जहु भवियहु इवकमना कह कहमि सुगंधदसमी हित भरियाया ॥  
× × × ×

श्रान्तिमभाग

दसमिहि सुअंध विहारणु करेविणु तइय कप्प उपण्ण मरेविणु ।  
चउदह आहरयेहि पसाहिय सागी सुहुइ भुंजइ अविरोहिय ॥  
पुहवी मण्डणु पुरु सुरुदुल्लहु, राउ पयाउ दयाजण वल्लहु ।  
मानस सुंदरि गति उपण्णी मयणावलि नाम संपुण्णी ॥  
दिरिण दिरिण कुमरि वि पावहु भत्ती भव्वलोय भाणस मोहंती ।  
सामवण्ण मण्णवि सुरहि तरुणु, जिणवरु सामिउ पज्जइ अणुदिरुणु ।  
दाणु चउविह दिति ए थक्कइ, तह वच्छल्ल का वण्ण ए सक्कइ ।  
धम्मवंत पेखि एरणारहि पोमाइयइ धम्मह असगहि ।  
रायं सा परिणाविय जामहि पुत्तकलत्तहि वट्टियतामहि ।  
रामकित्ति गुरुविणुउ करेविणु विमलकित्ति महियलि पडेविणु ।  
पच्छइ पुणुं तवयरणु करेविणु सइ अणुक्कमेणु सो भोक्खु लहसइ ॥  
पत्ता—जो करइ करावइ एह विहि वक्खारिय विभवियह दावेइ ।  
सो जिणएणाह भासियहु सग्गु-भोक्खु फल पावइ ॥८॥  
इति सुगंध दसमी कथा समाप्ता

पुष्पंजलिकथा (अनन्तकीर्ति गुरु)

श्रादि मंगल

जय जय अरुह जियोसर ह्यवम्मीसर मुत्तिसिरी वरंगण धरण ।  
अयसय गण भासुर सहय महीसर जुत्ति गिराधर समकरण ॥

श्रान्तिम भाग

वलवत्तरिगणि रयणकित्ति मुणि सिस्त बूहिवं दिज्जइ ।  
भावकित्ति जुउ अनंतकित्ति गुरु पुष्पंजलि विहि किज्जइ ॥११॥  
पुष्पंजलि कथा समाप्ता

—राजस्थान ग्रंथ भंडार सूची भा० ४ पृ० ६३२

मेघमालवयकथा (कवि ठगुरती)

रचना काल सं० १५८०

श्रादिभाग

सुय चरिम जिणिदु वि दय कंदु वि सुव सिद्धत्व वि सिद्धधरो ।  
कह कहमि रसात्ता वयपण्णामाणा एण रिणुगणुहु वरिक्कणुपियो ॥



दिण्णोक ढुंढाहड देस मज्झि, रायरी चंपावइ अरिअ सत्थि ।  
 तहि अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णहि तारणहसेउ ।  
 तसु मज्झि पहाससि वर मुणीसु, सह संठिउ रां गोयमु मुणीसु ।  
 तहु पुरउ रिणविट्ठिय लोय भव्व, रिणसुरांत धम्मु मणि गलिय-गव्व ।  
 तहं मल्लिदास वणि तरुणु रुहेण, सेवइ सुवुत्तु विणयं सहेण ।  
 भो घेल्हणंद ! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुहु लहरु लीह ।  
 महु मेहमालवय कह पयासि, इण कियइ केण फलु लद्धु आसि ।  
 इह कह किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया वंध मित्त ।  
 ता विहसि वि जंपइ घेल्हणंदु, जो धम्म कहा कहरिण अमंदु ।  
 भो मित्त ! पइमि वुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम वुज्झिउ रा अत्थु ।  
 वायरणु न मइं गुणियउं गुणालु, कोवट्टम दीठउ रसु रत्तालु ।  
 जो हरइ जड तरण तराउ दोसु, सो सवणि सुणियउ तिय सकोसु ।  
 कह कहरिण वुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रंजावमि चित्त तुज्झु ॥

अन्तिम भागः—

सुअभंयडी चिरु लेवि सुत्तयं, करी कहा एह महा पवित्तयं ।  
 उणगगलं जंपय मत्त जंपिया, खमेउ तं देवी भारही मया ॥  
 ता माल्हा कुल-कमलु दिवायर, अजमेराह वंसि मय सायर ।  
 विणयं सज्जण जणमणा रंजणु, दाणि दुहियणह उल-भं जणु ॥  
 रूवे मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मह पुरि सु वि ।  
 जिण गुण रिणगंथह पयमत्तुवि, तोसण पंडिय कवियण चित्तु वि ।  
 वुच्चिय वयण सयल परिपालण, वंधव तिय सहयर सुयलालणु ।  
 एलीतिय भण रुहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु ।  
 तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ सु दिहु मणि ।  
 पुणु तोल्हा तरोण परमत्थे, कह सुणि वउली योसिर हत्थे ?  
 पुणुवि पहाडियाह वरवंसवि, लद्धीसयल रायरि सुपसंसवि ।  
 जीणा नंदरोण जिणभत्ते, ताल्लू वउली यो विहसंते ।  
 पुणु पारस तरोण दुहुवीरे, गहिउ सुवउ जइ तइजस धीरे ।  
 पुणु वाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो घणमालुवि ।  
 पुणु कह मुणिवि ठकुरसी रांदणि, ऐमिदास भावण भाईय मणि ।  
 पुणु राथूसी वग्गरि भुल्लणि, लीयउ वउ जिउ रिय भय डुल्लणि ।  
 पुणु कह सुणिवि मणोहर गारिहि, अवरहि भव्वण थर राण-राणहि ।  
 मेघमालावउ चंगउ महियउ, इच्छिउ फलु लहि सहि कवि करियउ ।  
 चंपावतीव रायरि रिणवसंते, रामचन्दपहु रज्जु करते ।  
 हाथुवसाहु महत्ति महत्ते, पहाचन्द गुरु उवएसंते ।

पद्मदहः इति भ्रंशं च भ्रगल सावण मासि छट् तिप मंगल ।  
 पयउ पहाइय मंगनिरोमणि, चेल्हा गर लमु तिप सर धर  
 मिणि ।  
 तह तगउ कवि ठाठुरि सुं दरि, यह कहि किय संभव जिन  
 मंदिरि ।  
 घटा— जो पउइ पडावइ नियमणि भावइ लेहाइ विसइ  
 करि लिहिये ।  
 तसु वय की यह फलु होइ विणिम्मलु राम सुयणि गोयमु

कहिपे ।  
 वस्तुबंध—जेण सुं दरि विणयइ धयणेण काराविय एह कह ।  
 मेहमालवय विहि रबणिय पुण पुयि यह लिहायि करि ।  
 पयउ कविउ पंडियह दिणिय मल्लाणंडु मु महियलह  
 सेवउ सेवउ गुणह गहोइ ।  
 नदउ तब लणु जउलइ, यहइ मंगनिदि नोह ॥११५॥  
 इति मेघमाला कहा समाप्त मिति ।

### पाठ—भेद

प्रगस्तिसंग्रह के छप जाने पर कुछ शुद्ध प्रति देखने को मिलीं जिन का पाठ शुद्ध प्रतीत हुआ, उमें नीचे दिया जाता है, पाठक उसका अवलोकन कर यथास्थान दूसरा पाठ भी बनायें ।

६० वी प्रगस्ति के व्यावर की प्राचीन प्रति के पाठ-भेद :—

- ६० १ पं० ५ में जेण अणवकमु हूउं दामाठ गुण वकरिउ के स्थान पर 'जेण अणुवकमि हूउं दामाठ गुणवकरिउ' ।  
 ६० १ पं० १६ में लवखणु चउरथी लवखणु पमल्यु के स्थान पर 'गसमणु चउरथी लवखणु पमल्यु' ।  
 ६० १ २५ तह पियणयण वइदेहं जायदणं के स्थान पर 'तह पियमणं वइ देह जाय' ।  
 शृष्ठ ८६ की पंक्ति १० के बाद का पंता निम्न प्रकार है :—

पत्ता इय खुल्लयवयणे पोगियणयणुइं भवहारि पंडिय चवइ ।  
 नीरण्णव पाणिउउ मुरयण माणिउउ को जट्टु पड उल्ले मवइ ॥३॥

### शुद्ध-पत्र

शृष्ठ	कानम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	शृष्ठ	कानम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	१६	* गंधम्मि	गंधापां	३३	१	२४	घाणावम	घाणासव
५	१	२४	गमउ	गउ	३३	१	२८	णिहभउ	णिहियउ
८	१	३३	बंध	धर	३३	२	१५	जमहए	जगरहु
११	२	२०	संपमेणु	संवेमेणु	३३	२	२१	वय यम	पिय यम
१२	१	२६	—	विण्डु मुणि सुय-	३४	१	७	बाहुवाण	चाहुवाण
				मागर पारएण	३६	१	१२	अणु	अणु
१५	२	२५	जिनदत्त चरिउ, १३ जिनदत्त चरिउ		३६	१	२५	महोमण	मणोमण
१६	१	१७	में गिरिणामें	मेंगिरिहूरणामें	३६	१	२६	णिय-यागर	णिय माग्ग
२३	१	६	कविदेवदं	कवि देवधंद	३८	२	६	पंडवपुराणु	२१ परवपुराण
२६	२	३६	कव	कय	५०	१	३०	—	दुगणिय पपरण
३२	२	१६	गहीर-माहि	गहीरणाहि					बपूर जु परि
३२	२	२७	गणियकरद	गणियकरदं	५०	१	३१	आणुण	काणुण
३३	१	२१	अणिय	अणिय	५१	२	१२	अणिय निहिउर-अ	अणोणियिअ
३३	१	८	परमणय	परमणय पम	५१	१	१२	अवविनिहिय	अवगवि मुनिद

प्रष्ठ	कालम	पंक्ति	अमृद्ध	शुद्ध	प्रष्ठ	कालम	पंक्ति	अमृद्ध	शुद्ध
५२	२	२३	संभवहो	संभवणाहहो	१२०	१	१३	रयगाकिता	रयगाकिता
५३	१	१२	देवदातु	देवदामु	१२२	१	१६	६८	६६
६६	१	६	दोमुगु	दोगु	१२३	२	२१	दिवचंदही	दिवचंदही
८८	२	३८	अरिद्रुगोमि	चरिउ रिद्रुगोमिचरिउ	१२४	१	१७	६६ पास पुराणं	१०० पास पुराण
८६	१	२०	णिवट्टु	णिवट्टे	१२६	२	१	१००	१०१
८६	१	१६	तसणिउ	ता भणिउ	१२८	१	८	१०१ पास पुराण	१०२ पासचरिउ
९०	१	३२	विणमिय	विणंभिय	१२८	२	२६	संतिवउ	संतिवउ
९०	२	३६	धम्मभेण	धम्मभेय	१२८	२	३७	मुअ कुमर	मुअलवल्लण
९१	१	६	सरवाया	सहाया	१२९	१	३०	सयत्त रयणा	सम्मत्त रयणा
९१	२	२८	मिच्छमय	मिच्छामय	१२९	२	२१	—	देत्तो, प्र० १७७
९१	२	३६	वट्टमाण	वड्डमाण	१२९	२	३२	१०२	१०३
९८	२	३५	शुड	शुउ	१३०	१	३३	मुरसइ	सरसइ
९८	१	१२	वणसरु	वणिवरु	१३१	२	१	१०३	१०४
१०१	२	०५	कईयण्ण	कईयणमण	१३२	१	१	१०४	१०५
१०४	२	१६	सिरोमणि	सिरोमणि	१३२	१	२५	१०५	१०६
१०५	१	१६	४	६४	१३३	१	११	कुमुमचंडु	कुमुयचंडु
१०७	१	३१	गायमु	गोयमु	१३३	२	१६	१०६	१०७
१०८	२	२७	तिहुमणि	तिहुयणि	१३५	१	१०	१०७	१०८
१०८	१	३४	पाविड	पाविउ	१३५	२	१	१०८	१०९
१०९	२	१३	सम	यम	१३५	२	२६	दुवल्ल	दुवल्ल
१०९	२	१६	आरहइ	आराहइ	१३६	१	३	१०९ स्सय भुच्छेद	११० सयंभुच्छेद
११०	१	८	दुधारसी	दुद्धारसी	१३७-२-१४	११०	भविसयत्त कहा	१११ भविसयत्तकहा	
११०	२	५	कविदेवदत्त	नयनानन्द	१३८	२	२	५० १-११०	१११ महापुराण
११०	२	७	देवदत्तहं	देवत्तहं				महापुराण	
११०	२	२१	भलु	फलु	१३९	२	५	५० १-११२	११३
११२	१	८	मंडलामरिय	मंडलायरिय	१४१	१	१	५० १-११३	११३
११४	२	१७	जागि	जगि	१४२	१	३०	५० १-११४	११५
११४	२	२१	भोमराड	भोयराड	१४४	१	५	५० २-१	११६
११५	१	१२	नामा	नाम	१४७	२	२६	साहुण्णामु	साहुण्णामु
११५	१	२७	भोयहु	पुणु भोयराय	१५०	१	—	तीनग्रन्थों	चारग्रन्थों
११५	२	११	माणिउ	माणें	१५०	२	२६	५० ३ जिसजिरोराहं	रोसरहं
११५	२	२१	जितमल्लो	जितमल्लो	१५१	२	३०	दामोपर	दामोयर
११८	२	२३	एपारस	एयारस					
११९	१	२३	चेथाल	चेयाल					
११९	२	१४	समरण्ण	समरह					

